जर्जर हथौड़े

[१९४० से १९४७ तक के संघर्षमय जीवन की प्रतिष्ठा-सूक्ति]

लेखक

बरुआ

१९५४

आत्माराम एण्ड सन्स

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

काश्मीरी गेट

दिल्ली-६

मूल्य छः रुपये

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड सन्स
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

लेखक की अन्य रचनाएँ

१. शैलेय (अप्राप्य)।
२. कलकत्ता के उर्दू-कथाकार।
३. कलकत्ता के हिन्दी-कथाकर।
४. कलकत्ता में श्री निराला जी।
५. रामू के मूक आँसू।

अप्रकाशित

१. जूतियाँ और सिर्फ जूतियाँ (अनुसंधान) (सचित्र)
२. कुतुबमीनार (उपन्यास)

मुद्रक
अमरजीतसिंह नलुआ
सागर प्रेस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

अभिवादन !

जिन दिनों परिस्थितियों के थपेड़े खाता हुआ, दर-दर का बेगाना राहगीर बना भटक रहा था, उन दिनों—

जिन अपरिचित टिकिट-चेकरों की अयाचित कृपा के कारण दो-ढाई हज़ार मील की सेकिण्ड-क्लास और तीन साढ़े-तीन हज़ार मील की थर्ड-क्लास बिना टिकिट ट्रेन-यात्रा का सौभाग्य मुझे मिला,

और, कलकत्ता के जिन ट्राम-कंडक्टरों की विरक्त उदासीनता की वजह से अपने कठोर बेकारी के क्षणों में मीलों बिना टिकिट ट्राम की यात्रा करते हुए वृहत्तर कलकत्ता के विराट दर्शन सुगम हो सके—

इस कृति के प्रकाशन की शुभ घड़ी में, उन सब को मेरा सादर अभिवादन !

लेखकीय विनम्र सूचना

कलकत्ता में अब मेरे स्थायी निवास को साढ़े चार वर्ष पूरे हो चुके हैं। इस लम्बी अवधि में मेरे विश्वास व मेरी निष्ठायें और भी अधिक जड़ें मजबूती से जमा पाई हैं। अपनी इस कृति में जो ज़मीन मेरे इन विश्वासों और निष्ठाओं को हरियाने के लिए मैंने स्वीकार की थी, उसके प्रति मेरा आदर-भाव दृढ़ हो गया है। कलकत्ता में साढ़े चार वर्ष रहने के बाद भी मैंने कलकत्ता-धर्म (अधन्ने को इकन्नी या अठन्नी बनाना!) स्वीकार करने के लिए किसी से भी समझौता नहीं किया है। प्रारम्भ में कोई सिलसिलेवार प्रणय-बन्धन सिर पर सेहरा रखने की खुशी दे जाये और बाद में वह मात्र 'दाम्पत्य-भार' बनकर रह जाय, उसी तरह इस कलकत्ता-प्रवास के दौरान में कोई सात हज़ार मील की लम्बी यात्रा करने की जोखिम अपने कंधों पर और सिर पर लिये हुए मैं अपने लेखक-धर्म का दायित्व उठाये घूमता रहा हूँ।

कलकत्ता-प्रवास से पूर्व, दिल्ली और राजस्थान में प्रवास करते हुए, यही पाँच साल की अवधि बिताई और इस दौर में ८ हज़ार मील की यात्रा कर पाया। उसे जब याद करता हूँ तो सन् '४२ की जेल-यात्रा का स्मरण आता है। मेरी उस यात्रा का भार तात्कालिक कठपुतली सरकार ने उठाया था और यदि भूल नहीं करता हूँ तो मेरी उस यात्रा पर किया गया होगा यही आठ-दस हज़ार रुपयों का ख़र्च! उस जेल-यात्रा में लाहौर सैंट्रल-जेल गया, लायलपुर-जेल गया और फिरोजपुर-जेल गया। इस जेल-यात्रा से पहले, सन् '४२ के पूर्व, अपने होशपूर्ण जीवन की पहली साँसों में यही ३ हज़ार मील की यात्रा कर चुका था। बचपन तो, एक प्रकार से रेल के पहियों पर ही बीता था।

इन दीर्घ यात्राओं में कुछ स्पष्ट-अस्पष्ट, धुंधले और प्रकाश-युक्त, मृदु और तीव्र, मज़ेदार और नीरस और कुछ असंबद्ध प्रभाव नेत्रों की पुतलियों पर और दिमाग़ के किसी जिज्ञासु तंतु पर छूटते चले गये। उन्हीं दिनों, सन् '३८ में, एक घटना घटी। उसे कुछ शब्दों में लिपिबद्ध कर दिल्ली के एक साप्ताहिक में बिना किसी आशय के भेज दिया। वह समाहृत हुआ और छप गया। किन्तु मन का असंतोष घुमड़ता चला आया कि वह घटना एकांगी नहीं थी। उसका सूत्र तो लम्बा था, गहन था और अन्य घटनाओं का अंग-प्रत्यंग था। समय-असमय कहानियाँ लिखने का क्रम थामता हुआ मैं नई से नई यात्रा करता रहा, और यह प्रतीति उग्र से उग्रतर होती चली गई कि मेरी सभी कहानियों में अथ-इति का एक संश्लिष्ट सम्बन्ध है और उनका धाराप्रवाहिक क्रम नियमवत्, निज मार्ग का निर्माण करती हुई धारा की

तरह, आगे बढ रहा है। शीघ्र ही मुझे एक निश्चयात्मक निर्णय करने में देर न लगी। कहानियाँ लिखने का परिच्छेद मैंने समाप्त किया और प्रवहमान फलीभूत चेतना की अभिव्यक्ति एक लम्बे कथानक के रूप में प्रस्तुत करने का भार स्वीकार कर लिया। सन् '३६ से लेकर सन् '५० तक जो कहानियाँ देश के ८०-९० पत्रो मे प्रकाशित हुईं, वे एक प्रकार से, इसी उपन्यास के प्रासगिक अश थे; आश्वस्त और मजबूत संगतराश की तरह से मामूली हेरफार के साथ मैं उन्हे कहानियो का रूप देता रहा था। इस तरह, यह कृति ११ वर्षों के एकनिष्ठ शक्ति-प्रयोग का फल है। यह भी आप स्वीकार कर लें कि यह कृति उपन्यास से अधिक जीवन की सीधी अवतारणा है और औपन्यासिक गुणा-भाग और जोड-बाकी से अछूती रहती हुई, देश के तूफानी कष्टमय जीवन-प्रवाह की प्रतिष्ठा सूक्ति है।

कलकत्ता-प्रवासमे इस प्रतिष्ठा-सूक्तिकी अभिव्यक्ति और भी उग्र हो चुकी है।

× × ×

'जर्जर हथौडे', शीर्षक के लिए मुझे एक निवेदन करने दीजिये।

आज हथौडा एकजूट मानवी शक्ति की हुँकार का प्रतीकात्मक अर्थ देने लगा है। किन्तु उस से अलग, यहाँ, बहुवचन रूप में 'हथौड़े' हमारे समाज के और प्रतीक-रूप मे देश के, उन भाग्य-निर्णायको की ओर संकेत करता है, जो नये युग की श्वास लेने का एकाधिकार सिर्फ़ अपने लिए ही ले बैठे है। निश्चय ही यह कहानी ऐसे तत्वों को अपना सीधा प्रतिनिधित्व नही करने देती। यह कहानी इन जर्जर हथौडों की नई असंतुलित समाज-रचना के बीच में जीवित रहने वाले उन अबोध मानवों की है जो विशुद्ध मानवी जीवन के हामी है, पर जिन की क्षण-क्षण की प्रगति पर सीधे और असीधे ये 'जर्जर-हथौडे' अपना साघातिक प्रहार निरन्तर करते रहते है।

आप क्षमा करें और स्वीकार करें कि लेखक ने उन ढोल और नगाड़ों का जयघोष इन पृष्ठों में गुंजित नही होने दिया है जो सन् '३८ से लेकर सन् '५० तक देश में गुंजित किया गया था और जो इधर के ताजाहाल लिखे गये इतिहास-पृष्ठों में स्थायी सत्य के रूप में मनोनीत किया गया है।

क्योंकि यह एक तूफानी घटना-क्रम का चित्रण है, मैंने कुछ छूट इन घटनाओ की व्यवस्था बैठाने में ले ली है। इसी क्षमा-याचना के साथ, मै अपने पाठको के सामने विनीत रूप से इस कृति के प्रति उनकी ही ज़िम्मेवारी लिये खडा हूँ!

—बरुआ

मनोभवन,
हरिसन रोड़, कलकत्ता
देवशयनी एकादशी, सवत् २०११

विकास-क्रम

जर्जर हथौड़े

१

संघर्ष-चक्र घूमना प्रारम्भ होता है[1]

रात एक कहानी पढ़ी थी। कहानी में वेदना है, व्यथा है और यौवन का व्यर्थ हाहाकार है। पढ़ते-पढ़ते मैं भी किसी अदृष्ट वेदना से काँप उठी, व्यथा के भार से सिहर उठी, और न जाने कौन से यौवन के भार से रो उठी। जब कोई दुखी व्यक्ति किसी दुखी से मिलता है तो असहाय अवस्था में भी उसके प्रति सहानुभूति अवश्य प्रकट करता है। मेरे बीते जीवन में उक्त कहानी की घटना का सामंजस्य हुआ है, तभी तो मैं पढ़ते-पढ़ते रो उठी और सुबकियों में घुलते हुए सो गई। अब सुबह बहुत तड़के उठी हूँ। 'वे' हँसकर कह गये, "क्यों? रात को साड़ी भी न बदली!" मैं कुछ न बोली। न मालूम क्या विचारते होंगे? मैं सोचती हूँ कि लाओ, मैं भी अपने अंतस्थल को क्यों न पालतू कबूतरों के चुग्गे के रूप में बिखेर दूँ। यदि संसार उसे सुनकर थोड़ा उन्मत्त हो जाय तो हानि ही क्या है? जीवन के रहस्यों को व्यक्त करने में भी तो एक मज़ा है!

यही दो माह की बात है। 'वे' जब शाम को दुकान से लौटे तो कहा, "रजनी इस शहर में फिर आ गया है। उसने न जाने कहाँ से फोन किया कि मैं यहाँ आ गया हूँ और आप से मिलना चाहता हूँ। आप समय बता दीजिए।"

मुझे बड़ा कौतूहल हुआ और साथ-साथ कुछ रंज भी। आज तक वह जब कभी यहाँ आया, तो सीधा मेरे पास आ जाया करता था। फिर यह उलट-फेर कैसा? 'उन्होंने' उसे उत्तर दिया था, "यह तुम्हारा ही घर है। जब-जब यहाँ आओगे तुम्हारा स्वागत होगा। माधवी भी तुमसे मिलने को बहुत इच्छुक है। सीधे चले आओ।"

'वे' बहुत देर तक बैठे रहे थे, कहते थे; पर रजनी नहीं आया। हारकर शाम को घर आये, और मुझ से कहा। मैंने कोई उत्तर न दिया। 'वे' जानते हैं, रजनी मेरा सहपाठी है, और सारी दुनियाँ के लिए पागल है। फिर भी विवाह के

---

१. माधवी की डायरी से, तिथि: ६ जुलाई, १६४०।

उपरान्त 'उन्हें' हमारा मिलना-जुलना अवांछनीय नहीं है। मैं उसे देखने के लिए व्यग्र हो उठी। बचपन का वह रहस्यवादी मित्र अभी तक सृष्टि के जंजाल में फँसा हुआ है।

दूसरे दिन रजनी ने फिर फोन किया, "मैं आ रहा हूँ। दुकान पर न आकर घर पर ही आऊँगा।"

'उन्होंने' मुझे सेवक द्वारा सूचना दे दी। मैं ख़ुशी से विह्वल हो गई। कदाचित् उसका पागलपन दूर कर सकूँ। सारे घर को स्वयं झाड़ा-बुहारा। वह स्वयं इतनी सफ़ाई पसन्द नहीं करता। फिर भी उस आत्मीय-अतिथि के आगे घर की माली हालत कैसे खोल दूँ। बाज़ार से मिठाई मँगाई। ख़ुद ही जल्दी से परांठे और आलू का शाक तैयार किया—ये वस्तुएँ उसे बड़ी पसन्द हैं। जब सब ठीक हो गया तो द्वार पर आकर उसकी प्रतीक्षा करने लगी। शाम हो गई, पर वह न आया। 'वे' दूकान से जल्दी घर आ गये। 'उन्हें' रजनी में बहुत स्वाद मिलता है। युवक जो हैं, फिर कालेज-जीवन के अनुभवी हैं। उसे न देखकर 'वे' ख़ूब हँसे, बोले, "क्या पागल है!"

सात दिन तक घर की रोज़ तैयार की हुई पूरियाँ और बाज़ार से मँगाई हुई मिठाई रजनी की प्रतीक्षा करते-करते ऊब गईं, किन्तु वह न आया। रोज़ फोन पर कहता कि मैं आ रहा हूँ, और न आता। जब आठवें दिन फोन की घंटी बजी और मुनीम जी ने रिसीवर कान में लगाकर पूछा, "हलो!" तो. उत्तर आया, "सेठजी हैं? उन्हें फोन पर बुलाओ।" पर नाम सुनकर मुनीम जी चिढ़ उठे। झल्लाकर फोन रख दिया और उसे कोई उत्तर न दिया।

मैं घर पर भोजन करके अपने पलँग पर लेटी यूँ ही बेहाल दशा में पड़ी हुई थी। जैसे ही मुझे कुछ झपकी-सी आने लगी कि किसी ने मेरे मस्तक पर हाथ रखा। मैं एकदम भौंचक्की-सी होकर उठ बैठी। उनके हाथ तो कुछ गर्म-से रहते हैं, आज यह ठंडा स्पर्श कैसा!

देखा, सामने रजनी था। पागल, क्रान्तिकारी रजनी।

उसकी दशा आज बिलकुल ही अलग थी। बिखरे हुए बाल, फटी कॉलर की कमीज, सिलवटें पड़ी हुई पतलून और पुरानी चप्पल। भाव-भंगिमा से मालूम हो रहा था कि वह अपना ही अपमान कर रहा है। मैंने पूछा, "कब आये?"

"सीधा चला आ रहा हूँ,"—पैनी आवाज़ में उसने कहा।

मैंने जल्दी से अपनी साड़ी सँभाली और पलँग से नीचे उतरी। उससे पूछा, "यह दशा कैसी बना रखी है?"

उसने विना अपनी ओर देखे कहा, जैसे वह इन प्रश्नों से अभ्यस्त हो चुका हो, "क्यों? अच्छा तो हूँ। माधवी, मैं माता-पिता की सेवा करते-करते ऊब गया हूँ।

रोज़ की झंझटें मुझ से नहीं होतीं। घर मुझे काटने दौड़ता है। अब मैं झील को छोड़कर सागर में तैरना चाहता हूँ। उसके लिए मैं तैयार भी हो चुका हूँ। केवल नाव की आवश्यकता है, वह तुमसे भिक्षा-रूप में लेने आया हूँ।" एक ही साँस में वह नीची दृष्टि किये कह गया। ऐसा मालूम होता था कि उसके पास व्यर्थ की बातें करने का समय ही नहीं है। मानो, वह समय की गति का अध्ययन कर चुका है।

मैं भी मानो उसके उत्तर को तैयार थी। कह दिया, "अच्छा, तुम्हें नाव मिल जायगी। पर यह तो बताओ कि ये आठ दिन कहाँ बिताये ?"

वह हँसा, "सराय में, एक फक्कड़ के साथ।"

हम दोनों और कुछ न बोले। आज मुझे उसके प्रति कुछ घृणा-सी लग रही थी। शाम को 'वे' आये। खूब मिलनी हुई। दोनों ने साथ भोजन किया। मैं परोस रही थी और सोच रही थी · बेचारा रजनी ! जीवन के महत्त्व को कुछ न समझ सका, मुझ से एक कक्षा ज़्यादा पढ़कर भी।

दूसरे दिन मैंने रजनी को उसकी इच्छित भिक्षा दे दी। नगर के पावर-हाउस में उसे एक रिक्त स्थान मिल गया। वह वहाँ जाने लगा। शाम को जल्दी ही घर लौट आता। उसके अस्थिर-हृदय में गम्भीरता जाग्रत हो चुकी थी। तभी तो वह न चाहते हुए भी गम्भीर रहता। नेत्रों की पुतलियों को स्थिर रखता। 'वे' शाम को कहते, "रजनी, आओ सिनेमा देख आवें, थोड़ा घूम आवें। सागर में तुमने दिन भर नाव चलाई है, अब थोड़ी किल्लोल कर आयें।" तो रजनी भर्राई हुई वाणी में उत्तर देता, "मुझे केवल नाव चलाने का समय है, किल्लोल करने का नहीं।"

फिर भी 'वे' बिना कहे नहीं मानते; और वह अपना निश्चित-सीमित अभिनय किये बिना नहीं मानता, रो देता। मैं सोचती कि जिस दिन उसके हृदय के सारे आँसू निकल पड़ेंगे, उस दिन वह क्या करेगा ?

एक दिन हम लोग सिनेमा देखने गये। जाने से पहले मैंने रजनी को भर-पेट भोजन कराया और फिर अनुरोध किया कि वह हमारे साथ चले। परन्तु जिस तरह काली वारिद-माला में असंख्य जल-कण छिपे रहते हैं और शीत पाने पर बिखर पड़ते हैं, उसी तरह रजनी भी अपने मनोवेगों को क्रोध के रूप में मेरे साथ बातें कर बखेरने लगा। झल्लाई हुई आवाज में बोला, "माधवी, मुझे तंग करने से क्या फायदा ? तुम मुझे एक जगह पड़ा क्यों नहीं रहने देतीं ? मैं जानता हूँ कि सिनेमा देखकर कुछ देर को प्रसन्न हो जाऊँगा, और तुम मेरी ख़ुशी से संतुष्ट हो जाओगी। पर मुझे भय है कि कहीं वह मनोरंजन मेरी नाव में छेद न कर दे।" मैंने भाव-भंगी से देखा कि 'वे' रजनी से कुछ-कुछ ऊब-से गये हैं। क्या ईर्ष्या भी हो गई है 'उन्हें' ? मैं क्या जानूँ।

सिनेमा में चित्र का कथानक दुखान्त था। एक पिता की दो पुत्रियाँ थीं। दोनों की माताएँ अलग-अलग थीं। पिता और दोनों माँ, तीनों के पटाक्षेप के बाद बड़ी बहिन कदाचित् अपने पूर्वजन्मों के फल से विलासिता में पली। पर छोटी, बेचारी पेट के लिए गवैयों के बीच अपना जीवन काटने लगी। छोटी को दिनों के जाते-जाते इस बात का पता चल गया कि वह बड़ी उसकी बहिन है। इसी कारण छोटी उससे आधी जायदाद माँगने लगी। उसके व्यवहार में कटुता, स्वाभिमान और द्वेष था। एक दिन बड़ी ने पूछा कि तुम ऐसी क्यों हो? उसने उत्तर दिया, "तुम क्या जानों ग़रीबों को! शरीफ़ हो न! यदि मेरे पास भी पैसा होता तो मैं भी शरीफ़ बन जाती।"

बड़ी ने निश्चय किया, वह उसे अपने यहाँ रखेगी। फलतः दोनों साथ रहने लगीं। पर बचपन से पकी हुई ग़रीबी की आदतों की नींव भी पक चुकी थी। उसने बड़ी के सुखमय जीवन में विष घोलना प्रारम्भ किया और जीवन के अन्त तक शरीफ़ानेपन को न समझ सकी।

खेल समाप्त होते ही हम बाहर आये। मैं अनुमान लगा रही थी कि रजनी अब भी लैम्प के सहारे टेबिल पर सिर धरे नाव चला रहा होगा। यदि मैं भी उसे अपना सारा कुछ प्रदान कर दूँ, तो क्या वह सुखी रह सकेगा? पर क्या 'वे' ऐसा करने देंगे। अब मेरी अपनी इच्छा का मूल्य ही क्या? जो 'वे' चाहेंगे, मुझे करना पड़ेगा। बचपन में भी माता-पिता और भाइयों की इच्छा मेरी इच्छा थी। और जो मैं चाहूँ? वह क्यों नहीं कर सकती भला? इस क्यों का कारण क्या है? स्त्री होना? यदि दुनियाँ में स्त्री न हो, तो? फिर भी उसे पुरुष समाज सुख-चैन नहीं लेने देता। पर, मैं रजनी का भाग्य क्यों सुधारूँ? वह पागल है। पागलों के लिए पागलखाना होता है। न तो मेरा घर ही पागलख़ाना है और न मैं ही पागलों की चिकित्सक हूँ। क्या रजनी मेरा सारा धन पाकर भी उस छोटी लड़की की तरह सुखी रह सकेगा? वह अभागिन छोटी लड़की। और यह अभागा रजनी!

अंधकार में कुछ दिखाई नहीं देता था। 'वे' फाटक के अन्दर आगे-आगे चले और मैं पीछे-पीछे; मेरा हृदय न जाने क्यों धड़क रहा था। 'वे' तो सीधे ऊपर चले गये, पर मैं रजनी के कमरे में गई। देखा, लैम्प जल रहा है और रजनी शेव कर रहा है। मैं वेदना से जलती हुई भी उसके चेहरे को देख खिलखिला हँस पड़ी··· आधी मूँछें शेव हो चुकी थीं और आधी बाकी थीं। "क्या पागल भी शेव किया करते हैं?"—पास बैठकर मैंने कहा।

"क्या?"—वह तीखे स्वर में चीखा।

मैं घबराई। व्यर्थ ही उसका अपमान किया। सँभलकर बोली, "दिन में कर लिया होता।"

"हाँ, है तो ठीक। पर यह रात्रि किस बात के लिए बनाई गई है ?"—रजनी कड़का और पूरी हवेली उसकी आवाज़ से गूँज गई, "पर यह रात्रि किस वास्ते बनाई गई है ?·· अपने विवाह के गर्व में क्यों भूलती हो कि मैं कुँवारा हूँ और रात्रि में एकाकी रहना होता है।" मानो, वह 'उनके' पतीत्व को लांछन लगा रहा है, मेरी ही आँखों के सामने, कि यह रात्रि इसलिए नहीं है कि माधवी सदैव तुम्हारी रहेगी। उसकी मृत्यु की राह मुझे है, तब मैं मरूँगा और तब···

मैं चौंकी। यह जीवन के हाहाकार पर नुक्का छोड़ा गया था। मैं कह उठी, "तुम ऐसे क्यों होते जा रहे हो ? अपना सारा जीवन कैसे बिताओगे ?"

वह हँसकर बोला, "भविष्य की चिन्ता मैं क्यों करूँ ? भाग्य में जो बदा है, वह होगा।"

कितना साहसी है ! पर भाग्य का विधाता तो मनुष्य है, ईश्वर नहीं। फिर यह भाग्य की राह क्यों देख रहा है ? मैंने उससे कहा, "उस अध्यापक की बात याद है, जिसने कहा था कि यदि गर्मी में तुम गरम और सर्दी में ठंडे हो जाते हो, तो तुम मनुष्य नहीं, पत्थर हो ?"

वह गरज उठा, बोला, "माधवी, वह बात बिलकुल झूठ है। उसमें केवल मन की सान्त्वना है। अन्यथा उसमें कुछ भी तथ्य नहीं। मैंने आज तक कोई मनुष्य ऐसा नहीं देखा जो सर्दी में ठिठुरा न हो और शरीर से ठंडा न हुआ हो। साधारण शीत की बात छोड़ो; तीव्र की बात करता हूँ। फिर यह ठिठुरना और गरमाना हमारे हाथ में थोड़े ही है। सब भाग्य ही तो करता है।"—अपने लक्ष्य पर आते हुए उसने कहा।

"अच्छा तो तुम विवाह क्यों नहीं करते ?"—मैं पूछने लगी।

अब तक वह शेव कर चुका था और अपनी कमीज़ के छोर से ब्लेड साफ़ कर रहा था। उसने कुछ विचारते हुए कहा, "विवाह तो तभी हो सकता है, जब पूर्व-संस्कार आज्ञा दें।"

मैं उसके उत्तरों से दिक हो गई, और कुछ न कहकर अपने कमरे में चली आई। मैंने स्वप्न में देखा कि रजनी एक गिलास में पड़ी हुई तेल की बूँद के समान है जो छिटक-छिटककर पानी में मिलना चाहती है, पर अपने कार्य में असफल हो कर पुनः एक होना चाहती है।

दूसरे दिन रजनी ने भोजन नहीं किया। कहने लगा, "मैं खाते-खाते थक गया हूँ। आखिर खाने की भी कोई हद होती है। अब भूखा रहकर कुछ शान्ति चाहता हूँ।" और काम पर चला गया।

मैं उस पर हँसती, क्रोध करती, घृणा करती, कभी उसे फटकार भी देती···

फिर भी उसे छोड़ नहीं सकती थी। वह बेचारा हमारे जीवन में कोई खलल तो डालता ही नहीं था। ट्रेन-यात्रा करते हुए पैरों घूमने की भी तो चाह होती है, बल्कि प्रबल हो जाती है। रजनी मेरे दाम्पत्य की ऐसी ही चाह में बदल गया था।

दूसरे दिन मैं पड़ौस में बैठी कसीदा काढ़ रही थी। सेवक भागा हुआ आया और बोला कि रजनी बाबू बुला रहे हैं। उसका बुलाना मात्र ही मेरे लिए काफ़ी प्रभावशाली था। मैं शीघ्र घर पहुँची। रजनी कमरे में कोच पर टाँग फैलाये बैठा था; पर आज वह गम्भीर नहीं था। वह स्वयं न जाने क्यों हँस रहा था। यदि उसकी यह अनियमित समय की अस्थिरता किसी तरह नष्ट हो जाये तो वह सुखी रह सकता है, यह मेरा पक्का विश्वास था। मैं भावी आशंका से चिन्तित-सी होने लगी। फिर भी कुछ मुस्कराकर मैंने कहा, "अरे, बीच में कैसे आ गये आज ?"

"माधवी, मैं नाव चलाते-चलाते थक गया हूँ। अब यह मेरे बस का काम नहीं। आखिर हूँ तो इन्सान ही। एक ही काम करने में क्या मज़ा ? दुनियाँ में पैदा तो इसलिए हुआ हूँ कि तरह-तरह के रोचक कार्य करूँ।"—अपनी हँसी में जीवन की अनिहिंसा दर्शाते हुए उसने कहा।

"तो, क्या नौकरी छोड़ आए ?"—मैंने डरकर पूछा।

वह बोला, "नहीं, अपनी एक माह की तनख्वाह ले आया हूँ। कुछ दिनों के लिए काफ़ी है।"

यह बात मुझे बर्छी-सी लगी। मैं इतने दारुण अपमान सहकर भी उसकी अनियमित चरम-सीमा के सेतु-बंधन पर ही बँधी हुई थी, फिर भी !

"तो कब जा रहे हो घर ?"—मैंने पूछा।

बोला, "आज रात को।"

× × ×

मैं उस रात रजनी को छोड़कर कुछ विहीना-सी हो गई। 'वे' तो केवल रूखी हँसी भर हँस दिये। पर मैं रात्रि भर जागती रही।

क्या विभीषिका में इतना ही स्पंदन होता है ? वह गाड़ी में बैठा जा रहा होगा, उसी तरह रोता हुआ जैसा कि मेरी शादी के क्षणों में रोया था। कदाचित् अपने को कौस भी रहा होगा कि व्यर्थ ही मैंने माधवी को कष्ट दिया। मैं सोच रही थी, कौतूहलता कहानी की पोषिका होती है। रजनी की पोषिका कौन है ? मैं ? नहीं। असम्भव। वह उस अनन्त में उसे ही ढूँढ़ने जा रहा है। भगवान् उसे अपनी पोषिका खोजने में सहायता प्रदान करें।

पिछले शनिवार को यही समय था।

सूर्यदेव अभी तक इस लोक में न आये थे। पर प्रकृति के निरीह प्राणी उनके

दर्शनार्थ पहले से ही हरे-भरे वृक्षों पर चहक रहे थे। मेरे मिट्ठू ने भी 'राधाकृष्ण-राधाकृष्ण' रटना आरम्भ कर दिया था। 'वे' अभी तक सो रहे थे। मैं अलसाई आँखों से अपने शयन-कक्ष में पड़ी थी कि सेवक ने बाहर से पुकारा, "बहू जी!"

मैंने समझा कि चाय बनाकर लाया है। पर वह हाथ में पत्र लिये खड़ा था।

"बहू जी, कल यह आया था। मैं देना भूल गया।"—और पत्र मेरे हाथ में देकर वह उल्टे पैरों लौट गया।

पत्र रजनी का था। उसे खोलते हुए मैं गम्भीर हो गई। पढ़ने लगी।

"माधवी,

मैं सीधे तुम्हारे यहाँ से, घर ही आया। माता-पिता भी मेरी ही राह देख रहे थे। पहिले दिन तो कोई कुछ न बोला। केवल भाभी ने पान में चूना ज्यादा लगा दिया था, सो कुछ मनोविनोद हो गया। दूसरे दिन चाय पीते समय पिता जी से पता चला कि वे मेरे विवाह के लिए पूर्णरूप से कटिबद्ध हैं। और किसी अंश में भी मेरे द्वारा अनादृत होना नहीं चाहते।

इस कार्य में उनके सहायक हैं, सगे-सम्बन्धी और माता जी। ऐसे स्थलों पर तुम मेरे स्वभाव से परिचित हो ही। मैं तीव्र भाव से बरस पड़ा, "मैं अभी विवाह नहीं करूँगा। यदि करोगे तो किसी कुएँ में डूबकर मर जाऊँगा।"

इस तरह मैं समझा था कि वे शान्त हो जायेंगे। पर कहाँ? पिता जी में मेरी बात से किसी भाव का संचार न हुआ और उन्होंने मुझे कसकर चाँटा मार दिया। पर क्या इन चाँटों से दशा या स्वभाव परिवर्तित हो सकते हैं? तलवार की धार पर किसी के जी को जीवित रखा जा सकता है? हाँ, दो दिन तक मुझ से कोई नहीं बोला। यहाँ तक कि भाभी ने भी नहीं बोलना चाहा। क्योंकि मैं एक पागल हूँ। इसीलिए वहाँ से भागकर मैं यहाँ मामी-मामा के आ गया हूँ।

यह पत्र तुम्हें ऐसे समय लिख रहा हूँ जब कि मेरे आश्रयदाता अपनी चिन्ताओं से मुक्त खर्राटे भर रहे हैं। शायद कोई स्वप्न भी देख रहा होगा। खिड़की के बाहर घनघोर अंधकार फैला हुआ है, जिसको देखकर तरंगायित वायु के साथ-साथ मैं भी तड़प उठ रहा हूँ। बाहर नीरवता है। कहीं-कहीं वही घोंसलेवाला पक्षी बोल उठ रहा है और कमरे में है केवल तुम्हारा तैल-चित्र। माधवी, तुम यह सब पागल का प्रलाप समझ रही होगी। और सब भी समझते हैं कि मैं पागल हूँ। इसका मुझे खेद नहीं। न मैं इसकी चिन्ता करता हूँ। बचपन से हम साथ रहे हैं। तुम मुझे समझती थीं और मैं तुम्हें। पर अमर बनने के लिए हम एक रंग में न रंग सके। तुम चली गईं और मैं यहाँ हूँ। पर यहाँ ऊब चुका हूँ। माँ ने तो वही बहू के रोने रोये। पिता जी कहते रहे, "कुछ कमा।" किस लिए? माता-पिता के लिए? उनके

पास पर्याप्त मात्रा में धन है। अब मैं विवाह न करूँगा न···करूँगा···न करूँगा। प्रारम्भ से ही चाहता था, मैं अपने विचारों पर स्थिर रहूँ। लेकिन विधाता मेरे साथ न था। दो दिन खूब हँसता, तो तीन दिन खूब रोता। और भाभी की तो अब हिम्मत भी नहीं पड़ती कि मेरे क्रोधमय मुख की ओर एक नज़र देख ले। मैंने निश्चय किया था कि तुम्हारे यहाँ नाव खेऊँगा, पर उससे भी अपने जीवन की शान्ति का विकास न कर सका। अब मैं इसके लिए कटिबद्ध हो गया हूँ, पक्का निश्चय जानना, पागल न समझना···कि तपस्या करके शान्ति प्राप्त करूँ। तुम जानती होगी कि मैं सराय में क्यों ठहरा और बार-बार तुम्हारे पास क्यों आया? तुम्हें देखने के बाद मुझे कुछ स्थिरता-सी मालूम होती है। हाँ, तपस्या करने तुम भी आ जाओ। पर नहीं, तुम्हें अभी बहुत कार्य है। उसे समाप्त करो। मैं कौन होता हूँ कि तुम्हें अपने पास बुलाऊँ। समाज के अनुसार तो मैं तुम से बात करने का भी अधिकारी नहीं। बस; बाकी जीवन अब शान्ति से पूरा कर दूँगा। यही मेरी कार्य-तालिका है। तुम सुखी रहो बस, मैं यही चाहता हूँ। मेरा अनुरोध है कि तुम जीजाजी को सुखी रखना हाँ, अब मैं अपनी अन्तिम अस्थिरता को जड़ से उखाड़ फेंकूँगा। पर यह सब समाज कहाँ समझता है? वह उस समय समझेगा जब कि मैं सागर को पार कर जाऊँगा और किसी का साहस न होगा कि मुझे वापिस लौटा लाये। मैं तुम्हें भी चेतावनी देता हूँ कि जब सब मुझे समझने लग जायेंगे, तब तुम मुझे एक पहेली समझने लगोगी। सो माधवी, किंचित् सावधान रहना और उन्हें सुखी रखना। दीपक बुझने की तैयारी कर रहा है। इस तैयारी को पत्र बन्द करने का उपक्रम न समझ लेना। मैं भी सोना चाहता हूँ। सोने के लिए मेरे पास समय नहीं है, परन्तु मैं क्या करूँ? माता-पिता को तो समझा सकता हूँ, मामा-मामी को समझा सकता हूँ, इस प्रकृति को कैसे समझाऊँ? यहाँ से जाने से पहिले एक पत्र और लिखूँगा।"

जीजाजी! इतना उलट-फेर? पर रजनी ने ठीक लिखा है कि 'जब दुनिया मुझे समझने लगेगी, मैं तुम्हें पहेली-सा लगूँगा।' आज तक मैं रजनी को समझती रही हूँ। उसकी अस्थिरता में वही यौवन का हाहाकार है, जो लैम्प की तरह अस्थिरता के मिट्टी के तेल के लैम्प में यौवन की बाती बन जल रहा है। आयु उसकी पेच है, जो बाती को नीचे सरकाती जा रही है। हाँ! शास्त्र में लिखा है कि स्थिरता और चंचलता उसी मनुष्य को होती है जिसे अप्राकृतिक रोग होता है। मैं समझती हूँ, यदि यह रोग दूर कर दिया जाय तो वह जीवन को समझ उठेगा। फिर भी मैं रजनी के आधे पत्र को समझ सकती हूँ, आधे को नहीं। मैं कहती हूँ, जब वह जानता है कि सारा कार्य भाग्य से होता है तो अपने भविष्य के भाग्य का सोच-समझकर निर्माण क्यों नहीं कर लेता?

२

सड़ी हुई गृहस्थी से अलविदा

चन्द्रग्रहण की साँझ थी। छत पर रजनी अकेला टहल रहा था। मामा जी और मामी जी जमना नदी स्नान करने गये हैं। कुसुम भी ज़िद्द पर अड़कर साथ हो ली थी कि वह भी पवित्र नहान नहाकर आयेगी। चलते हुए मामी जी ने मीठे दुलार से पूछा था, "रजनी भैया, आओ, चलो, जमना नहा आना। वहाँ मेला लगता है। मन बहल जायेगा, और ग्रहण का पुण्य भी लेते आना।"

रजनी ने बात सिर नीचे किये सुन ली थी। वह बस, इतना ही कह सका था कि मेरा जी अच्छा नहीं है। लेकिन जब वे चले गये थे, तो वह एकान्त कमरे के खोल में ज़ोरों से बड़बड़ाया था, "पहाड़ों की खोह में रहने वाले बनमानुष कहीं के! मूर्ख और कमअकल! चले हैं मुझे ग्रहण का पुण्य देने।"

और वह ऊपर छत पर आकर चहलक़दमी करने लगा था। सामने चाँद अभी कालिमा के जबड़ों में अटका हुआ था। व्योम में एक विचित्र मनहूसियत छाई हुई थी। पास-पड़ौस में यह मनहूसियत मौत की घुटी हुई सुबकियाँ बनकर रह गई थी। रजनी को भी लगा कि जैसे उसकी सारी देह इसी चाँद की तरह जाने किस राहु के जबड़ों में अटककर, ज़िंदगी की गहरी कालिमा से ढँककर, अपना रास्ता खोये बैठी है···अरे, न सिर्फ़ वह रास्ता खोये बैठी है, बल्कि किसी अनन्त खाई में औंधी पड़ी हुई असहाय अवस्था को पहुँच चुकी है। हल्के-हल्के चाँद पर चाँदनी का पल्ला ऐसे चढ़ता आ रहा है, गोया कि किसी का अदृष्ट हाथ, अर्द्ध-मृत चाँद पर कफन उड़ा रहा हो। रजनी को सन्तोष हुआ कि वह ऐसी बात सोच सका। अच्छा है कि इस चाँद पर कोई सदा को स्थायी तौर पर कफन उढ़ा दे तो इस दुनिया में ३६५ दिनों का अँधेरा छा जाये। सुना है, नवोढ़ा दुलहनों को बड़ा प्यारा लगता है यह चाँद। और बेवकूफ़ इंसानों को बड़ा भय लगता है इस चाँद के ग्रहण से। दोनों को चाँद की इस बदतमीज़ी से ज़रा लम्बे समय के लिए फ़ुर्सत मिल लेगी···

वह हठात् रुका। सामने की, पड़ौस में, छत पर पटवारी जी की बड़ी लड़की हल्के-हल्के चहलक़दमी कर रही है। उसके साथ कोई और नहीं है। और इस वक़्त वह उससे सिर्फ़ हाथ भर की दूरी पर ही खड़ी है। कनखियों से जब काफ़ी बोझ पड़ चुका तो रजनी ने उधर उसकी ओर देखा, तो पाया कि वह उसकी ओर ही तक रही है। हल्की मैली धुँधलिका में उसका गोरा मुखड़ा सिर्फ़ अपनी आँखें ही चमका

रहा है। उसने सुना कि वह कुछ कह रही है। पिछले आठ महीनों से वह उसे देखता आ रहा है। साग-सब्ज़ी की दुकान पर अक्सर दोनों मिलते हैं। वह स्कूल जाती है और वह बाग़ की सैर कर लौटता है तो प्रायः नित्य ही दोनों का रास्ता कटता है। पर आज तक न तो दोनों की नज़रें ही आपस में गुँथी हैं और न रजनी को एहसास हुआ है कि वह इस छोकरी से अपनी पड़ौसिन होने के नाते अपने निकट की बात करे। वह उधर पास गया और उसे देखने लगा। वह स्मित हास में कहने लगी, "आज चाची कहाँ गई हैं?"

रजनी उत्तर दे, इसके पहले ही वह कह बैठी, "जमना जी नहाने गई होंगी? हमारी माता जी भी वहीं गई हैं। और क्या कुसुम भी गई है?"

रजनी अभी क्रोध में लालटेन की तपी हुई चिमनी-सा तड़क रहा था। और उसे अभी-अभी, पूरे आठ-दस महीने बाद, माधवी की याद आई थी और उस याद को अपने दिमाग़ से इस तरह झटक देना चाहता था जैसे तो वह कोई कटखनी चींटी हो। पर, प्रश्न सुनकर अनायास हँस दिया और बोला, "जी, कुसुम भी अपनी माँ के साथ जमना जी की गन्दगी में डुबकी लगाने गई है।"

रजनी को याद आया कि इस तरुणी लड़की का नाम कुसुम ने इमरती बताया था। शायद स्कूल के रजिस्टर में इसका नाम अमरावती होगा। उसकी हँसी के साथ इमरती की दंत-पंक्ति पालिश का ज़ोर खाने से चमक उठी और वह अचकचाकर अपनी साड़ी का छोर अपनी चिटली उँगली पर लपेटने लगी और कभी इधर लचकने लगी, कभी उधर कुछ झाँकने-सी लगी, कि रजनी को निमेष भर सीधे देखकर बोली, "आप भी ख़ूब मज़ाक करते हैं। आज जमना में जितने हज़ारों आदमी नहायेंगे, सभी क्या वहाँ कुम्हार के गधों से कूड़े की कुरड़ी पर लोट लगाने गये हैं?"

रजनी जरा जमकर हँसा। संक्षिप्त बोला, "जी, सचमुच।"

कुछ आश्वस्त भाव में वह उचककर उधर दो फुट दूरी पर, मुँडेर पर पैर लटकाकर बैठ गई। अल्हड़पने से चाँद के ग्रहण की तहें उघड़ती हुई देखने लगीं और फिर रजनी की आँखों में न जाने कितना मीठा रस उँडेलते हुए बोली, "आप मज़ाक कितनी ही उड़ा लें, आप की मामी अगर आज के दिन जमना नहाकर न आयें तो गजब ढह जाये उन पर।"

वह इस प्रश्नवाचक पहेली में न उलझकर हँस पड़ा और बोला, "गजब तो यह है कि आप जमना नहाने न गईं। और यहाँ पर अपने घर अकेली हैं।"

इमरती की चुहल और दूनी हो गई। वह बोली, "आप भी कहाँ गये?"

रजनी का उद्वेग इस तरुणी के प्रति अनायास ढीला-सा हो गया और वह अपनी सिगरेट निकालकर पीने लगा। बोला, "मेरे नहाने से सारी जमना बेहद

गँदली हो जाती। और फिर, अब तो मेरे बेटे-पोते ही जमना नहाने जायेंगे इकट्ठा होकर।"

इस बार दोनों ने रस लेकर एक-लय हँसी हँसी। रजनी भी उचककर अपनी मुँडेर पर चढ़कर आलती-पालती मार बैठ गया। तो इमरती बोली, "कुसुम कहती थी कि आप खूब पढ़ते हैं और अच्छी-अच्छी कवितायें भी बनाते हैं।"

रजनी के मन के मोद को एक गुदगुदी मिली। बोला, "कुसुम कहती थी कि आप बहुत अच्छा कसीदा काढ़ती हैं और बहुत अच्छी खीर पकाती हैं।"

इमरती अल्हड़ता से अँगड़ाई लेती हुई बोली, "कुसुम तो पगली है। जाने उसे कब शऊर आयेगा। हाँ, वह यह भी कहती थी कि आपका गुस्सा बहुत तेज है।"

रजनी ने कहा, "और कुसुम कहती थी कि आप सिनेमा के गाने बहुत अच्छा गाती हैं। ख़ासकर यह : 'बालम आन बसो मेरे मन में'।"

इमरती लाज में गड़ गई। और इधर पीठ कर, उधर पीपल पर चिल्लाती हुई चील का घोंसला देखने लगी कि इधर अपनी मुलायम गर्दन को घुमाकर बोली, "पर आप तो कभी भी सिनेमा देखने नहीं जाते। न आप कभी नाटक ही गये। ऐसा भी क्या! बस, आपको उधर अकेले बाग़ में ही आते-जाते देखा है।"

रजनी हठात् सँभलकर बैठ गया। कल मामा जी ने भी यही एतराज़ उससे उठाया था कि वह बहुत अकेला रहता है। यह ठीक नहीं है। पर मामा जी की बात पर तो वह चुप रहता है। पर इस पड़ौसिन की छोकरी को तो जैसे उसे अवश्य उत्तर देना होगा और इस बरबस मजबूरी पर उसे न जाने कौन चुपके से गुदगुदा गया। वह बोला, "सिनेमा-नाटक देखकर मुझे किसी के स्वप्न तो देखने नहीं हैं। रही अकेलेपन की बात, सो उस मजबूरी की सफ़ाई सुनकर आप क्या करेंगी? अच्छा है, मेरे अकेलेपन से किसी को क्लेश नहीं पहुँचता है!" पर उसने देखा कि नगर के इस कोने में रहने वाली इस तरुणी ने उसका उत्तर हृदयंगम् नहीं किया है। उसे इमरती पर तरस आया। जाने यह क्या पढ़ती है और उस पढ़ाई से अपनी ज़िंदगी में कौन-सा शब्दकोष सँजो पाई है।

अब चन्द्रग्रहण पूरा हो चुका था और रात का गाढ़ा अँधेरा राहु की शक्ति के साम्राज्य को व्याप्त बनाने में लगा हुआ था। इस अँधेरे में रजनी का हाथ इमरती की हथेली में अनायास चला गया।

और इमरती ने हल्की आवाज़ में कहा, "पिता जी आपकी तारीफ़ कई बार कर चुके हैं कि बड़ा शरीफ़ लड़का है। आप भी एक दिन हमारे स्कूल में कविता सुनाने आयें न। वहाँ तो साल में कई कवि अपनी कवितायें सुनाने आते हैं।"

पर इस क्षण सारे मुहल्ले में और नगर भर में चन्द्रमा के दुख से हाहाकार मच गया है। वहाँ जमना नदी पर स्नानार्थियों का शोर भरसक ऊपर उठ रहा है ताकि वह चाँद को मृत्यु के ग्रास से बचा सके । रजनी के दिल में इमरती के इस साक्षात् स्पर्श से एक निनाद भर गया है और वह नहीं जानता कि इस घड़ी वह इमरती का ग्रहण कर रहा है या कि इमरती उसे ग्रहण कर रही है । फिर भी शांत स्वर में उसने कहा, "मैं कवि नहीं हूँ। आप तो ख़ुद ही कह चुकी हैं कि कुसुम पागल है और न जाने उसे कब शऊर आयेगा । इसलिए तुम्हारे स्कूल में आने का सवाल ही नहीं उठता। पर हाँ, एक दिन आप अपने हाथ की खीर ज़रूर खिलायें।"

इमरती उसके पास सरक आई । रजनी को याद आया कि माधवी का हाथ उस पंडित ने विवाह-मंडप के नीचे इसी प्रकार अपने हाथ से पकड़कर उन सेठ जी के हाथ में पल्ले के नीचे आड़ में थमा दिया था । और उसी क्षण से वह उससे अपनापा छोड़कर इस तरह अपनी ससुराल चली गई थी जैसे तो किसी बाढ़ में पूरा पेड़ अपनी जड़ समेत उखड़कर बह गया हो और उसका निशान भी न बचा रह पाया हो। इस चन्द्र-ग्रहण के अँधेरे में यह अपरिचिता इमरती उसके हाथ को अपनी हथेली में भला क्यूँ थामे हुए है ? इमरती ने अब अपना माथा उसकी छाती पर टेक दिया और फुसफुसाई, "आप बड़े अच्छे हैं । मेरे हाथों की खीर खाकर आपको क्या मिलेगा ?"

रजनी को लगा कि लम्बे-चौड़े रेगिस्तान की भरी दुपहरिया में किसी एक ठूँठ पेड़ की लकीर-मात्र छाया में खड़ा हुआ इस क्षण वह झुलस रहा है और नहीं समझ पा रहा कि यह जो काया उसे मिली है वह किस काम की है !! इमरती के स्वस्थ अंगों से उसे एक हल्की-सी ख़ुशबू मिली, पर वह नहीं जान पाया कि इस उत्तप्त युवति की उत्तेजना को वह किस तरह सँवारे और किस तरह से इस क्षण मन की तरंग का आश्वासन पाये······उसने उसके दोनों कंधों को पकड़कर ज़रा अपने समानान्तर सतर बैठाया और तपाक से पूछा, "क्या आप इस तरह मेरे पास दिन में बैठने का साहस कर सकेंगी ?"

इमरती सकपकाकर उठी और मुँडेर से नीचे खड़ी होकर उसे देखने लगी। अब रजनी को उसका चेहरा दीखने को नहीं मिल रहा है। पर वह हल्के से बोली, "कहीं दिन में इस तरह मिला जाता है !"

रजनी ने पूछा, "क्या अपने पिता जी से कह सकती हैं कि मैं रजनी के साथ ·····"

इमरती बीच में ही फुसफुसाई, "आपको क्या हो गया है ? आप क्यों नाराज़ हो उठे हैं ?"

रजनी एकदम भड़क उठना चाहता है । जाने क्या-क्या चीखकर जली-कटी इस मूर्खा छोकरी को सुना देना चाहता है । बस, वह इतना ही कह सका, "मुझे क्रोध नहीं है । आपको यूँ हिमाकत नहीं करनी चाहिए मेरे साथ । मैं सस्ता युवक नहीं हूँ । अभी आप ज़रा और पढ़ाई पढ़ें तब··· " रुका । क्योंकि इमरती भागकर नीचे जीने पर उतर गई और अपनी छत का मैदान खाली कर गई ।

दूसरी सिगरेट निकालकर वह पीने लगा ।

अब चाँद क़ै हुई ग्लानि-सा काला स्याह पड़ चुका है और उस पर हल्की-सी भद्दी ललाई की परत ताज़ा सूजन-सी उभड़ आई है । नक्षत्र भी क्या बेहूदा सास-बहुओं-सा झगड़ा किया करते हैं ?

और उसे सहसा याद आया कि एक दिन कुसुम ने उससे कहा था कि इमरती जीजी अपनी कापी में 'प्यारे रजनी बाबू' नाम से एक चिट्ठी लिख रही थी । यह क्या ज़रूरी था कि वह 'रजनी बाबू' उस स्कूली छोकरी की कापी में वही हो । अजीब दिलेर लड़की है कि बिना पूछे प्रीत करने का चस्का लगाये बैठी है । वह देखता है कि स्कूल के लड़कों को नये-से-नये फाऊन्टेनपेन ख़रीदने का चस्का रहता है । और, उन्हें फ्रेंच-कार्डों को छिपाकर अपनी गोपनीय अलमारियों में रखे रखने का चस्का रहता है । एक इमरती का चस्का है । और, उसके मानस-पटल पर इमरती की अम्मा के प्रति उसकी घृणा विकृत पित-सी फूट आई । जब भी उसने ऊपर छत पर या नल पर या आते-जाते इमरती की माँ को देखा है तो वह घूँघट में घुटी हुई दीख पड़ी है । उसकी मामी भी रजनी के सामने मामा जी से घूँघट काढ़े रहती है । और इस मौहल्ले की जो भी औरत विवाहित है, या वह कहे, किसी पुरुष की तिजोरी-नुमा है, बस घूँघट में बंद रहकर साँसें लेती है और अपनी आयु को पूरा करती है । यह इमरती भी, एक दिन उसे देखकर वह बाग़ में सैर करते हुए सोच रहा था, इसी तरह स्कूल से परित्यक्त होते ही अपनी ससुराल की चौखट के अन्दर घूँघट की क़ैद को सहर्ष अपना लेगी और ख़ुश रहेगी । और, उसने यह भी विचार किया था कि यह इमरती जो आज स्कूल में नव शिक्षा पा रही है सो यह भी एक नये तर्ज़ के झीने रेशमी घूँघट के अन्दर ही आत्म-विडंबना की साँसें ले रही है । नई चप्पलें पहन लेना, सिर पर आधी साड़ी सरकाकर रखना, और नये ज़माने के गिने-चुने शऊर कण्ठस्थ कर लेना सिवाय नयी सभ्यता के नये घूँघट के और क्या है ? यह घूँघट जब अपनी जड़ें मज़बूती से किसी औरत या इन्सान पर जमा लेता है तो ऐसा पेच बन जाता है जिसकी चूड़ियाँ किसी भी मशीन से खुलाये नहीं खुल सकतीं । बस, वह जड़ से ही काटा जा सकता है । वही इमरती आज इस अँधेरे में अपनी सिनेमा की भूख मिटाने आई थी । अरे, नहीं, वह अपने घूँघट में उसे क़ैद करने आई थी । झूठ है

कि वह उससे प्रीत निभाने आई थी, अन्यथा यूँ बिना उत्तर दिये वह न भाग गई होती···

आज उसका जी एक गहरे विषाद से भर गया है । चन्द्र-ग्रहण का निरंकुश विषाद उसके मन के क्लेश को और गाढ़ा बनाये दे रहा है । सोच तो कितने दिन से रहा है कि वह यहाँ से चले । पर बार-बार यही सोचकर रह जाता है कि मामा-मामी उसे किसी तरह की तकलीफ़ तो देते नहीं हैं । न उससे कमाने या विवाह करने का तकादा करते हैं । घर वाला क्लेश यहाँ रत्ती-भर भी नहीं है । पर मामा-मामी की रूढ़ि-प्रियता उसे बार-बार उँगली दिखाती है कि वह यहाँ ज़मीन में भला किस लिए गड़ गया है । और, उसे इस क्षण याद आया कि उसने माधवी को लिखा था कि वह तपस्या करने जायगा···पर कैसा चमगादड़-सा यहाँ मौज में लटक गया है । और उल्टे लटककर दुनिया को मौज में देख रहा है । उसने घूमकर देखा कि इमरती की छत एकदम सुनसान है । अब वह क्या कर रही है ?

नित्य उसका यही प्रोग्राम रहता है कि सुबह घूमकर आयगा । फिर नहा-धोकर पढ़ने बैठेगा और दुनियाँ की उड़ान भरते हुए सो जायगा । शाम को वह फिर घूमने जायगा और रात को न जाने कब लौटकर चिमनी के प्रकाश में किताबों के पन्नों पर ज़बरदस्त दौड़ता हुआ थककर बेहोश हो जायगा । आख़िर यह ज़िन्दगी क्या है । घर से भागकर आया है तो यहाँ मामा-मामी के दुलार में अपना रास्ता क्यूँ भूल बैठा है ?

उसके कंठ में बैचैनी है । वह आया और सुराही से गिलास उठाकर पीने लगा कि कुसुम छत पर चढ़ती हुई जीने पर चीखी, "अम्मा ! देख तो, भैया ग्रहण में ही पानी पी रहा है ।"

दूसरे ही क्षण मामा जी और मामी जी ऊपर आ गये । मामी जी ने घूँघट काढ़ रखा है । वे अपने स्वाभाविक दुलार की मिठास में बोलीं, "लाला, यह बचपन किस काम का । हमने मना कर दिया था न कि अभी पानी नहीं पीना है ।"

रजनी की आँखों में उसका दिल फटकर बहते हुए ख़ून समेत उतर आया है । उसके दिमाग़ में महीनों के फितूर घुसे हुए हैं । आज छिद्र खुला पाकर सब एक मुश्त छूट जाना चाहते हैं । उनके द्वन्द्व में उसे झँझावात के से वेग ने आकर झकझोर दिया है । गिलास मुँडेर पर रखकर वह कुछ न बोला और नीचे चटाई पर बैठ गया । इच्छा हो रही है कि कुसुम को कसकर तमाचा जड़ दे । क्या कुँदअक्ल लड़की पैदा हुई है इस मामी की कोख से !

भैया की चुप्पी से मामा जी भी कुछ झींक-से उठे । बोले, "रजनी, तुम हमारे ही ख़ून के बने हो, सो कहता हूँ । तुम्हें धर्मों पर विश्वास नहीं है, इसी से तुम्हारी

बुद्धि भ्रष्ट हो गई है और तुम्हें किसी तरह का चैन नहीं है । कम-से-कम हमारी सीखों पर अमल और कर देखो । पिछले आठ माह से तुम हमारी बात आजमाते आ रहे हो और यहाँ एक जगह टिके हुए हो । हम चलती बेर कह गये थे कि आज छः बजे से चन्द्र-ग्रहण शुरू होगा सो खाना-पानी न करना, पर तुम्हारी नास्तिकता जाने क्यूँ तुम्हारी किसी-न-किसी नस से चू पड़ती है……?"

कि मामी जी ने कहना शुरू किया, "हमारी ननद जी तो इतनी धर्म-कर्म मानने वाली हैं कि बस कोई सती-देवी ही उतना नेम निभा सकती है। पर तुम उनकी कोख को क्यूँ लजाते हो ?"

हर चीज़ गरम होकर बढ़ती है । गरम होकर यह दिमाग़ भी न सिर्फ़ आगे-पीछे बढ़ता है, बल्कि चौड़ता है और अपनी हड्डियों के खोल को फाड़ फेंकना चाहता है। रजनी वातरोगी-सा एकदम तनाव खा गया गुस्से में और सतर होकर खड़ा हो गया। और कुसुम के कान ऐंठता हुआ बोला, "तू तो उस निर्जला एकादशी के दिन डाक्टर साहब की लड़की के साथ चाय पी आई थी चुपके से दोपहर में और आज मेरी शिकायत करने में चीख़ पड़ी ।"

मामा जी यह बात सुनकर पसीज आये और उनके चित्त को चोट पहुँची कि क्यूँ नाहक रजनी को भला-बुरा कह दिया । मामी जी भी अपने गुस्से का निचोड़ खा बैठीं और उमड़कर रजनी के सिर पर हाथ फेरते हुए उसे समझाने लगीं, "लाला, ग्रहण में रखा हुआ वासी पानी अशुद्ध हो जाता है । उसे पीना अपना धर्म नहीं है। आज तो बस कमीनों का टैम है। उन्हें भीख बाँटकर और रामनाम जपकर अपनी आत्मा धोनी पड़ती है । अब तो सुबह ही अपना सब खाना-पीना करेंगे।"

रजनी उठा । नीचे आया । अपनी अटेची में अपना सामान सजाकर रखने लगा । और गुस्से से थूक उड़ाते हुए उसने अपना सामान भी बाँध लिया और जल्दी से अपना बिस्तरा भी लपेटकर कस लिया । सामने एक ताँगा खड़ा है । मामा जी या मामा जी या कुसुम कहीं नीचे न आ जायें, सामान लादकर वह ताँगे में बैठा और स्टेशन की ओर चल पड़ा । ताँगे वाले ने जब पता किया कि बाबू जी किस शहर जायेंगे, तो उसने कहा कि जी, शायद ही ट्रेन हाथ आये । बस, चलने वाली ही होगी । रजनी उचककर कोचवान के पास आकर बैठा और उसने उसके हाथ से चाबुक लेकर ज़ोर से घोड़े की पीठ पर जमा दी । ताँगे वाला बाबू जी का यह तैश देखकर चिढ़-सा गया, पर हँस दिया । अब ताँगा हवा की चाल दौड़ रहा था। स्टेशन पहुँचते ही उसने टिकट लिया और लपककर गाड़ी में बैठा कि गाड़ी चल दी ।

अब आकाश में चाँद स्वस्थ हो चुका है और अपनी पूर्व-परिचित चाँदनी छिटका रहा है । रजनी भी कुछ सुस्थाया तो उसने मुट्ठी में भींचा हुआ टिकट देखा ।

यह तो उसके घर वाले शहर का टिकट है। क्या वह अपने घर लौटकर चल रहा है? पर क्यूँ? क्यूँ वह अपने पिता जी के नरक में लौटकर जा रहा है? भगवान् के नरक में तो उसे ज़बरदस्ती कोई ले जायगा ही।

पर शिथिल वह बैठा रहा। और गाड़ी के हिचकोले खाता हुआ वह बैठे-बैठे सो गया। भारी गुस्से में रजनी का दिमाग़ काम नहीं करता है। हल्की-सी उचाट तो उसे यह भी इसी क्षण हुई थी कि चलती गाड़ी से कूद पड़े और सामने के पहाड़ में कुटिया बनाकर अपनी यह फालतू ज़िन्दगी ख़त्म कर दे।

चौथे दिन मामा जी का पत्र आया। रजनी के सब यशपूर्ण कृत्यों पर प्रकाश डाला गया था और लिखा था कि किस तरह नाराज़ होकर वे यहाँ से बिना कहे-सुने कुशकुनी घड़ी में भाग गये हैं। पता नहीं कि भैया कहाँ चले गये हैं अपना सारा सामान लेकर। रजनी माँ के पास बैठा हुआ रसोई के मोटे चाकू पर धार चढ़ा रहा था कि पिता जी गुस्से से लाल-पीले होकर अन्दर आये और पहले तो ज़रा धीमे-से बोले कि तेरे मामा जी का पत्र आया है। रजनी ने ऊपर सिर नहीं उठाया और अपना काम करता रहा तो पिता जी थूक उड़ाते हुए बोले, "अरे कुत्ते, एक ही चौखट पर पड़ा रहकर तुझ से रोटी के टुकड़े नहीं तोड़े जा सकते? जो इधर से उधर दुम उठाये आवारागरदी करता रहता है। क्यूँ नहीं उनसे बाकायदा इजाज़त लेकर आया?" रजनी ने सुना और चाकू की धार तेज़ करता रहा। तो पिता जी अब दहाड़ने लगे, "यह रंडी इसे अपने गोड़ों के पास बिठाकर न जाने क्या-क्या सीख देती रहती है। अरी, तुझ से हज़ार बार कह दिया कि तू इसे अपने पास न फटकने दिया कर। बस, यह जान ले कि इसे कोढ़ हो गया है।" माँ ने अपना घूँघट नीचे सरकाया और सुबक उठी।

रजनी उठा और वहाँ से नीची नज़र किये बाहर चौंतरे पर आ गया। कुछ क्षण वहाँ खड़ा रहा। पिता जी अब भी माँ को न जानें क्या-क्या बुरी-बुरी बातें कोस रहे हैं। उससे न रहा गया और वह तालाब वाली सड़क पर चल दिया और वहाँ पहुँचते ही कमीज़ उतारकर तालाब में छलाँग लगा बैठा। पानी की शीतलता से भी उसे तसल्ली नहीं मिली, पर वह तैरता रहा ...

× × ×

आज सुबह रजनी ने माँ से तकरार कर ली। उधर रसोई में जाकर माँ नें चूल्हा नहीं चढ़ाया और रोने बैठ गई। पर रजनी कठोर क्रोध में निरंतर दालान में चहलक़दमी करता रहा।

दुपहर को पिता जी आये। उनसे भी वह गरम-गरम उलझ बैठा। इसके बाद भाभी को उसने अपनी दहाड़ से इतना कँपा दिया कि बेचारी अपने कमरे में दौड़

भागी और रजनी के कई बार पानी माँगने पर भी न निकली। तैरने की बनियान और जाँघिया उठाकर वह चीखा, "ऐसी सड़ी हुई गृहस्थियों से तो वीरान जंगल में पैदा हुआ होता तो ठीक रहता......"

कई मील वह दौड़ता हुआ चला आया। दो फर्लांग तक उसने संज्ञाहीन विवेक से एक ताँगे से दौड़ ली। उसे मात देकर वह गन्नों के खेत में मुड़ गया। नहर के उधर मोड़ पर एक सघन कुँज है। बालू रेत में चारों अंगों चित वह लेट गया और पसीना सुखाने लगा। उन पीपलों के ऊपर से कुछ बदलियाँ आ रही हैं। मटिया नीला रंग है उनका। उधर क्षितिज पर वे तैर रही थीं कि एक तेज़ वायु के झोंके ने उन्हें सूर्य की दिशा फूँक देकर तेज़ धक्का दे दिया। वे सूर्य के समक्ष कुछ क्षण खड़ी रहीं और फिर उन्होंने सूर्य को अपने पीछे ढँक लिया। चुभती हुई धूप हठात् धुँधली पड़ गई, फर...र...र करता हुआ एक शीतल झोंका नहर की लहरों से मस्ती की भंगिमा में उठा .... रजनी के सारे पसीने वह पोंछ गया। उसने बदलियाँ देखीं, सूर्य की इस यौन-दुर्बलता पर वह मुस्करा उठा। दो-तीन करवटें लीं और वह सचेत होकर बैठ गया। कोई उससे मूक स्वर में कह रहा है, "यूँ ही दुनियाँ की तेज़ी भी शान्त हो सकती है, यदि तू सूर्य के आगे अपनी बलि झोंक दे और सर्वत्र पीड़ित जनों को छाया प्रदान कर सके ....."

अलमस्त चुहल में, तड़प, वह उठ बैठा। दूर सघन कुँजों में एक चिलचिलाती ज्योति ने उसे चकाचौंध कर दिया......उसकी पुतलियाँ चमक उठीं, हृदय तरंगित होने लगा। छलाँग मारकर वह नहर में कूदा और तैरने लगा। तैरता रहा .....

किनारे पर आकर जब रजनी ने साँस ली तो सूर्य पुनः प्रज्ज्वलित हो उठा था। उसे लगा कि बस, यह धूप ही जीवन की पोषक है; क्योंकि इस धूप में उन बदलियों की आत्म-बलि निहित है! इस बलि के उत्सर्ग ने इस धूप को कितनी मीठी बना दी है। कपड़े बदल वह घर वापिस दौड़ पड़ा। एक साँस दौड़ता चला आया।

तुरन्त उसने अपनी अटेची सँभाली। ओवरकोट कंधों पर डाला। दूसरे कंधे पर थरमस लटका ली। रसोई-गृह में पहुँचकर माँ को आवाज़ दी। कोई उत्तर नहीं। चिक उठाकर देखा, एक-दृष्टि, स्थिर पल्कों से माँ घुटनों में मुँह दिये बैठी है और निष्कंप है। रजनी का जी न पसीजा। बोला, "माँ! यह कलह ख़त्म करो। मैं सभी को अखरता हूँ, तो लो, आज चला जा रहा हूँ। मेरे पीछे से सब चैन में रहना।"

माँ ने सुना, ठिठुरकर वह अधिक जड़वत् हो गई..... कुछ हिली, सूखे हुए आँसू माँ की आँखों में छाती के दूध की नाईं विह्वल होकर उफन आये। रजनी को तैयार देखा। भरे कंठ से बोली, "रजनी! मैंने तेरा क्या अपराध किया था?"

रजनी फिर भी विचलित नहीं हुआ। बोला, "माँ! हम में से किसी ने किसी

का अपराध नहीं किया है। केवल तुम अपने खून का असर मुझ में पैदा नहीं कर सकी हो। माँ! इतनी दुखी न हो। मुझे चला जाने दो, तब ही सब को चैन मिलेगा।"

पलटकर, बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये, पिता जी के द्वारों पर उसने थाप दी। वे रजाई में, शायद, भूखे सो रहे हैं। अन्दर जाकर बोला, "पिता जी!"

वे जाने कौन से अतीत के होश में डूबे हुए कैसा रस ले रहे थे कि उनका चेहरा शुष्क मिला। करूणार्द्र वे हो रहे थे। पसीने से भीगे हुए थे। रजनी ने उनकी कोमल मनोभिव्यंजनाओं पर आघात किया। "आज्ञा दें, मैं जा रहा हूँ।"

पिता जी ने झपकियाँ लेकर रजनी को देखा, कुछ सुन न पाये, समझ न पाये। आँखें मिलीं और अधिकार के स्वर में पूछा, "क्या है बेटा?"

रजनी 'बेटा' सम्बोधन से कुछ हिला। बोला, "जी! मैं जा रहा हूँ।"

पिता जी ने उसे ऊपर से नीचे तक देखा। उठकर सामने कोने में रखा हुआ अपना डंडा उठा लाये। उसे हाथों में सख्ती से सँभालकर जानना चाहा कि कहाँ?

रजनी इस डंडे से कई बार पिट चुका है। आज इस बिदा-वेला में पिटना ही है यदि, तो पिट लेगा। निश्छल, बोला, "घर का कलह जहाँ भी मुझे ले जाये।"

उसने देखा पिता जी की मुट्ठी शिथिल पड़ गई। डंडा उन्होंने तकिये के ऊपर रख दिया। पूर्ववत् अधिकारी-स्वर में उन्होंने रजनी को आज्ञा दी, "नालायक! मेरी इस उम्र में यह भी नहीं कर सकता कि नित्य-प्रति सोने के बाद एक कप चाय का पिला सके।"

रजनी हत्प्रभ-सा रह गया। वह घर से कहीं दूर भाग जाने की इजाज़त लेने आया था। यह कैसी इजाज़त है? कुछ कुंद मन जूतों को ज़ोर से दालान की सिल्लियों पर पटकता हुआ इधर आ गया। अँगीठी दहक रही थी बेमतलब। ओवरकोट और थरमस कंधे पर ही लटकते रहे। पानी, पिता जी के एक कप से अधिक, थरमस भरने लायक अँगीठी पर चढ़ा दिया। भाभी को ज़ोर से, मकान भर को गुंजाते हुए, आवाज़ दी कि चाय का दूध लाये, चाय की चीनी लाये, चाय लाये······

भाभी की प्रतीक्षा करते हुए उसका जी कुनमुनाने लगा। घर छोड़कर क्या वह सचमुच चला जाये? उसके कमरे की सब निजी वस्तुएँ उसे अपनी ओर खींचने लगीं। मन के अंतरंग में से कुछ अश्रु ज़बरदस्ती छलछलाने लगे। वहाँ उस आले में बड़े भैय्या का छुरा चमड़े से ढँका हुआ पड़ा है। तपाक से उसे उठाकर अपनी अटेची में रख लिया और उसी क्षण अपने अंतरतम के अश्रुओं को अपनी कठिनता से सुखा दिया······

भाभी आई। दूध ज़मीन पर रखकर पीठ कर खड़ी हो गई। रजनी ने भाभी के इस नवीन व्यवहार को देखा और देखा कि भाभी ने उससे आधा घूँघट किया हुआ

है। रजनी गृहस्थी में रहता हुआ विनम्र, विनीत परिवार-सदस्य नहीं है। गृहस्थी के फ़र्श को, आधार को, पग-पग पर वह जर्जर और चरमराता हुआ अनुभव करता है। पहले, प्रारम्भिक अवस्था में, वह भी गृहस्थी के आधार पर औरों की तरह इस प्रकार अधर-अधर, सँभल-सँभलकर चलता था कि वह चरमराये न, और टूट न जाये। पर अब रजनी कठोर दानव की तरह इस गृहस्थी के आधार पर पैर पटक-पटककर धम्-धम् करता हुआ चलता है। वह चाहता है कि यह आधार टूट ही जाये तो अच्छा। माँ, पिता जी, भाई, भाभी उससे इसी कारण भयभीत हैं। रजनी ने कठिनता से मुस्कराकर कहा, "भाभी, अब तो मैं जा रहा हूँ। यूँ अब मेरे से पीठ फेरकर, और मुझ से घूँघट कर जाती बेर मेरा अपमान न करो।"

भाभी निष्कंप खड़ी रही, खड़ी रही कि एक सुबकी उन्होंने ली।

रजनी ने सुना। शीघ्र उसने चाय बनाई। लपककर एक कप पिता जी के हाथ में थमा आया। वे बोले, इससे पहले ही उल्टे पैरों लौटकर, दूसरा कप तैयार किया। बोला, "भाभी, चाय लो।"

भाभी वैसे ही खड़ी रही।

रजनी अब हँस पड़ा। कप हाथ में उठाकर भाभी के सामने जाकर खड़ा हो गया कि चाय ले लें। भाभी ने आँसू पूँछे और काँपते हाथों से कप थाम लिया। रजनी को गीली आँखों देखा। जैसे-तैसे बोली, "लाला जी!"

रजनी खिलखिला पड़ा। बोला, "हाँ भाभी!"

"तुम कहाँ जा रहे हो?"

रजनी ने एक क्षण सोचा। अभी वह नहीं जानता कि दुबारा कहां जा रहा है। कम-से-कम माधवी के यहाँ तो नहीं जा रहा है! जल्दी से इधर आकर उसने चाय से थरमस भरा, कंधे पर उसे लटकाता हुआ बोला, अब तक भाभी भी मुड़कर इधर हो रही थी, "पहले आपके पीहर जाऊँगा।"

भाभी भी अश्रुओं-सहित समुज्ज्वल हँसी हँस दी। रजनी ने आगे कहा, "भाभी, मेरी वजह से आप सब परेशान हैं, दुखी हैं। मैं अब जा रहा हूँ। आप से यही चाहता हूँ कि माँ को हर प्रकार का आराम देना। पिता जी की टहल के लिए माँ काफ़ी हैं। अच्छा!" अनपूछी बिदा, नमस्ते कर, उसने पलक झपकते माँ के चरण छुए, पिता जी के आगे नत् हुआ और अटेची, ओवरकोट सँभालकर इतने वेग से द्वार के बाहर हुआ कि कुछ क्षण तक मकान का फ़र्श थरथर काँपता रहा ....

ताँगे में रजनी बैठा तो अनमना पेड़ों के भिन्न-भिन्न आकारों को, गली-कूचों के बेढंगे कोणों को और बाज़ार की बेतरतीब दुकानों को देखता रहा। उसके हृदय का अंतरात्मा-पटल माँ, पिता जी, भाभी के भौंटे दुलार से टूटने के कारण मृत प्राण-सा

कलप रहा था। रजनी ने अनुभव किया कि उसके हृदय का वेग उसके वश से बाहर हो रहा है और अब शायद करुणा-रस स्रवित करने वाला है। उसने ताँगे वाले से कहा, "मियाँ, ज़रा घोड़ा तेज़ दौड़ाओ।"

चाबुक के लगते ही घोड़ा तेज़ दौड़ पड़ा। पर जैसे वह चाबुक रजनी के ही लग गया। उसका हृदय घोड़े से भी तेज़ कलपता हुआ धड़कने लगा। रजनी को आश्चर्य हुआ कि बात क्या है। पिछली बार भी तो वह घर से भागकर माधवी के यहाँ गया था। रजनी ने अपने को बहुत रोका, बहुत रोका, पर अश्रु उसके ढुलक आये।

गाड़ी हँकने को खड़ी थी। लपककर उसने टिकट लिया। लपककर वह एक कम्पार्टमेंट में बैठ गया। गाड़ी चल दी। शहर से उसने ऐसे विदा ली, जैसे तो सदा को, अज्ञात समय के लिए, वह भविष्य की काल-कोठरी में घुस रहा है। अपने अश्रुओं में उसने देखा, माँ हिस्टीरिया की मूर्च्छना में तड़फ रही है कि उसका कम्बख़्त बेटा रजनी जाने किन विपत्तियों में झुलसने के लिए, जाने कहाँ जा रहा है? उसके पिता सूखे मुँह गले में ही अपने अश्रु पी रहे हैं और पुत्र-वियोग के दाह से सुलग रहे हैं। भाभी स्वयं रो रही है, और दुविधा में है कि सास जी की सँभाल करूँ या श्वसुर जी की?

रजनी बड़बड़ाया, "ये सड़ी गृहस्थियाँ!" और उसने अपने आँसू पोंछे। अंदर ही अंदर एक कठिन निश्चय से उसने अपना टिकट देखा। सोचा, नहीं, इस टिकट के गंतव्य से भी आगे चलना है।

३

रजनी एक बृहत् पुल लाँघता है

भाभी के पीहर का मोह रजनी को बार-बार तंग कर रहा था कि वहाँ ही चले और कुछ दिन वहाँ ही ठहरे। पर मोह तो माँ और पिता जी और भाभी का भी उसके निरन्तर चिकोटियाँ काट रहा था कि वह घर लौट चले। और बेतहाशा भागा-दौड़ी में उसने, जाने क्यों जो टिकट ख़रीदा था, बस भाभी के पीहर के नगर का ही ख़रीदा था। इससे रजनी कुढ़ रहा था। सायंकाल उसे भूख लगी। जेब में जो पैसे थे, उनसे वह टिकट ख़रीद चुका था। बाकी दो आने बचे थे। इनसे स्टेशन के खोमचों की वस्तुयें नहीं ख़रीदी ज़ा सकती थीं। भूखा बैठा रहा, पर सुस्त नहीं हुआ। आकाश से उतरती हुई अँधेरे की चादर को वह आँख फाड़-फाड़कर देखता रहा। इस घनघोर काली चादर के नीचे घर में वह रोज़ ही सोया है। मूक-दृष्टि रजनी क्रोधित हो उठा कि इन्सान क्यों नहीं इस मौत की-सी चादर को चीर-फाड़ देता? और इसके नीचे सोने की बजाय, इसे अपने पैरों से चींथकर इसके ऊपर चलने लगता? अवश्य यह रात, किसी प्रकाश की परिच्छाया है। वह प्रकाश अवश्य ही इस परिच्छाया के ऊपर होगा। भूख से व्याकुल रजनी सिमटा बैठा रहा और जागता रहा। और थोड़ी-थोड़ी देर बाद थरमस से दो-दो घूँट चाय उँडेलकर पीता रहा।

लगभग रात के तीसरे पहर भाभी का पीहर-नगर आ गया। गाड़ी प्लेटफार्म पर आकर खड़ी हो गई। रजनी दुविधा में बैठा रहा कि उतरे या न उतरे; जी उतरने का न था। उसे आशंका थी कि भाभी के पीहर में घर के कीचड़ से भी अधिक दल-दल है और वह वहाँ कहीं फँस न जाये। गाड़ी ने सीटी दी कि मैं चल रही हूँ। और रजनी ने सोचा कि आगे चलने के लिए उसके पास भला पैसे और कहाँ हैं? चलती गाड़ी से वह उतर गया।

'गेट' पर टिकट देकर वह बाहर आ गया। चारों ओर सुनसान है और पर्याप्त वीभत्स नीरवता है।

स्टेशन की हद के चौराहे पर चिमनी के प्रभाव में एक व्यक्ति उसे सामने के मकान से निकलता हुआ मिला। रजनी ने अपना ठीक-ठिकाना पूछा। उस व्यक्ति ने रजनी को ऐसे देखा, जैसे वह पारदर्शक शीशा है और उसके बीच से देख रहा है। फिर खाँसने लगा, घना सारा कफ उगला और रजनी के पैरों में ही थूक दिया। बिना उत्तर दिये थोथी दृष्टि से उसे देखता हुआ आगे बढ़ गया। रजनी ने लपककर

पीछे से उसकी बाँह पकड़ ली और पुनः अपना प्रश्न किया। वह नहीं रुका। चलता रहा। बड़ी कठिनाई से वह कह सका, "रात इस सराय में आराम करो। दिन में अपना ठिकाना ढूँढ़ लेना।"

रजनी ने उसे छोड़ दिया। जिस मकान से वह निकला था, उसकी देहली पर चढ़ा और वृहत्-द्वार में घुस गया। अन्दर से सराय काफ़ी लम्बी-चौड़ी है। बड़े सारे आँगन में एक दिया टिमटिमा रहा है। राजपूती ठाठ की हवेली है। खाँसकर उसने सूचना देनी चाही कि एक राहगीर आश्रय चाहता है।

ऊपर की मंज़िल से एक काली-सी छाया एक ओर से निकली और रजनी की पीठ के पीछे से हठात् सामने आकर खड़ी हो गई। रजनी निमेष भर को चौंक गया। सामने खड़ी बुढ़िया ने उसे अपनी जीर्ण आँखों से टकटकी बाँधकर घूरा। बिना दाँतों के मुँह से पोपली हँसी उसने हँस दी। आत्मीय स्वर में बोली, "लाला!"

रजनी ने उत्तर में केवल कहा, "हाँ!"

बुढ़िया ने उसे उस कोने की कोठरी में ठहरा दिया, जहाँ एक नंगी खाट पड़ी हुई थी और एक लालटेन जल रही थी। अपने हाथों पौली का द्वार ढाँपकर वह बुढ़िया वहाँ से लौट आई। रजनी उस व्यक्ति के और इस बुढ़िया के व्यवहार से थक गया। थका-सा खाट पर बैठ गया।

थरमस को पाये के सहारे लटकाकर, अटेची का सिरहाना बनाया। ओवरकोट को ओढ़कर सख्त सिपाही की नाँई मूँज की नंगी खाट पर ही वह आराम से लेट गया।

छत के कोनों में झींगुर व्यर्थ में परेशान करते हुए झींक रहे हैं।

कोठरी के एकांत में किसी ने चुपके से पूछा, "भला यह रात वीभत्स न होकर स्वर्णमयी कैसे हो सकती है?"

लेकिन रजनी सोचने लगा कि आज से मैं अपना जीवन शुरू कर रहा हूँ। माँ, पिता जी, भाभी और माधवी सभी मुझे बच्चा समझती हैं और मेरी नव-युवावस्था का, इस प्रकार, अपमान करती रही हैं।

किसी ने चुपके से कहा, 'और तुम माँ, पिता जी, भाभी और माधवी की नव-प्रौढ़ावस्था का अपमान कर दर-दर भटकने को भाग आये हो।'

मूक-रोदन से आहत रजनी चुप संज्ञाहीन-सा पड़ा रहा। कोई उसे शीतलता दे।

कि द्वार खुला। कोई अन्दर आया है। वह रजनी के पास आया और अपने हाथ से उसने उसे थपथपाया। रजनी आँख मूँदे पड़ा रहा। शायद वही बुढ़िया लौट आई है। पर एक युवति ने कहा, "जी!"

केवल कमरे में ही बिजली नहीं कौंध गई, रजनी की सारी देह में प्रवेश कर गई। पर वह अपनी करवट लेटा रहा। दुर्बल मनुष्य की नांई चौंककर युवति को देखने के लिए उसने करवट नहीं ली। पगध्वनि से, निसांस, उसने प्रतीत किया, वह शायद इस चिन्ता में खड़ी है कि मैं सो न गया हूँ।

नवागंतुका रजनी की खाट पर चढ़ गई और उसके सहारे लेट गई। उसकी बहियाँ कसकर इधर खींचीं, ताकि वह करवट इस ओर कर ले। रजनी ने इस अयाचित आग्रह को माना और करवट इस ओर कर ली। देखा, और कमरे के तीव्र-प्रकाश से चुँधिया गया। स्तव्ध रह गया। ठीक उसकी आँखों के निकट एक सुन्दरतम स्त्री का चेहरा दमक रहा है और जाने किस भावावेग से दीप्त है।

तत्क्षण रजनी उस कमरे से भाग जाने को उद्यत हुआ। उसने देखा कि उसके सहारे लेटी हुई तरुणी नव-युवति सर्वांग नग्न है और, निश्चिन्त, रजनी से प्रेम करने को आतुर है। पर वह लेटा रहा। तरुणी एक मनःहर सौम्य मुस्कान से हँस दी। रजनी हँस दिया। बलात्।

प्रश्न हुआ, "आप कहाँ से पधारे हैं?" और वह सहज रूप से रजनी के ओवरकोट में प्रवेश कर गई।

उत्तर दिया ही जा रहा था कि बाधा पड़ गई। मुँह से किया हुआ प्रश्न तो सीधा-सा है। मेरे ओवरकोट **में** समाविष्ट होकर जो यह विराट प्रश्न कर रही है, सो भला संगत है?

पर रजनी ने अपने नगर का नाम बताया और कहा कि मैं बेगाना राहगीर नहीं हूँ। अपने यहाँ के स्वजनों के यहाँ जा रहा था। आपके किसी आत्मीय ने रात भर मुझे यहाँ ठहरने को कहा। सो ठहर गया हूँ। सुबह चला जाऊँगा।

तरुणी मधुर वीणा-सी हँस दी। और मृदुतर लता की नांई उसके लिपट गई। बोली, "आप बड़े अच्छे हैं, जो हमारे मेहमान बने हैं।"

उसे याद आया कि उस रात इमरती ने भी उससे कहा था कि आप बड़े अच्छे हैं।

रजनी का दग्ध-हृदय कुछ चैन में हुआ। उसने आज से अपना युवक-जीवन शुरू किया है। आज से ही वह 'आप' है। माँ, बाप, भाई, भाभी, माधवी का परवश-शिशु रजनी नहीं। लेकिन उसने इस तरुणी का आवाहन कब चाहा था? और यह प्रश्न उसने सतर्क होकर, दृढ़तापूर्वक, कठोर होकर पूछा। पर तरुणी बिना संशय रजनी से परिचय प्राप्त कर अतिरेकानन्द में है। बोली, "एक बार आप-जैसे ही एक मेहमान यहाँ और आये थे। उन्होंनें मुझे बहुत-बहुत प्यार किया था। आप तो चुप पड़े हैं। भला क्यूँ?" और उसने रजनी को अथाह प्यार-सागर में डुबो दिया। फिर

कहने लगी, "उन बाबू जी ने मुझे अपनी आप-बीती सुनाई थी। कहते थे कि एक बार वे किसी मेले में गये। शाम को जब वे लौटे तो लौटने वाली गाड़ी में उन्हें जगह किसी भी तरह नहीं मिल पा रही थी, और वह एक ही गाड़ी वहाँ से आती थी। उनकी परेशानी बढ़ती जाती थी और साथ में उनके हृदय की धड़कन। इधर गाड़ी ने सीटी दी तो उन्हें ऐसा लगा जैसे तो आकाश में साक्षात् भगवान् बैठे हैं और आज उन्होंने एक सीढ़ी नीचे लटकाई थी जो अब ऊपर चढ़ रही थी और जिस पर वे चढ़ने का स्थान नहीं पा सके थे। गाड़ी चल दी। आँखों में आँसू लिये वे प्लेटफार्म पर अब भी इस आशा में खड़े थे कि जगह माते ही गाड़ी में चढ़ जायें। एक डिब्बे का द्वार खुला पड़ा था, और यात्रियों के जूतों के ऊपर उनका एक मित्र बाहर पैर लटकाये बैठा था। उसने चीख़ दी कि आओ, यहीं लटक जाओ। और वे बाबू जी वहीं, बाहर लटक गये थे। गाड़ी ने धीरे-धीरे अपनी रफ़्तार पकड़ी तो सामने से धुएँ के गरम-गरम कोयले के टुकड़े उनकी आँखों में पड़ने लगे। जैसे-तैसे उन्होंने मुँह फेरा और गाड़ी की 'ब्रेक' की ओर मुँह कर खड़े हो गये। अब उन्होंने अनुभव किया कि उसकी खिड़की के अन्दर एक चंचल सुकुमारी बैठी हुई मूँगफलियाँ खा रही है। और उन बाबू जी की परेशानियों का रस भी लेती जा रही है। कुछ नट-खट भाव में उसने एक छिलके का टुकड़ा बाहर फेंका। हवा में वह उड़ा और गाड़ी के वेग का ज़ोर पाकर चट से बाबू जी के मुँह पर आकर लगा। चट की ध्वनि पर वह चंचला खिलखिला पड़ी। और अब एक-एक मूँगफली खाते हुए, छिलके बाहर फेंकने लगी। वे आ-आकर उनके मुँह को बुरी तरह थपेड़ने लगे कि एक बड़ा-सा टुकड़ा उनकी आँखों में घुस गया। तीव्र दाह से वे कराह उठे और आँखों को सम्हालने लगे कि उनका हाथ छट गया और वे उस वेगवती गाड़ी से गिर पड़े। कहते थे कि अस्पताल में उनसे मिलने के लिए एक दिन वह सुकुमारी आई थी। आकर पास बैठ गई और उनकी कुशलता पूछी। बाबू जी ने पूछा कि भला आप कौन हैं? तो उस चंचला ने खिलखिलाकर उत्तर दिया, 'मैं हूँ आपको गाड़ी से गिराकर पंगु बनाने वाली।' बाबू जी ने चीख़कर तुरन्त करवट ले ली थी, 'मुझे पंगु बनाने वाली औरत से घृणा है'......।"

रजनी का हाथ अटेची की ओर बढ़ा। उछलकर वह उस नग्न युवति की छाती पर चढ़ बैठा। और दूसरे ही क्षण रजनी ने छुरा उसके श्वेत रक्तिम उरोजों में रोप दिया। चीख़ निकल भी न पाई थी कि पुनः छुरा ऊपर उठा और उस हंसिनी की गर्दन पर चोट कर बैठा। रक्त की फुहार उठी और वह कुछ कलपकर, कुछ तड़पकर शान्त हो गई। रजनी खाट से नीचे उतरा। ओवरकोट, रक्त के दागों से अछूता रह गया है। उसे ओढ़ा। थरमस कन्धों पर लटकाकर अटेची उसने सँभाल

ली। छुरा गरदन में ही सतर खड़ा हुआ छोड़ा। अपने हाथों को पोंछकर लालटेन उसने गुल की। वह बाहर आ गया और सड़क पर फैले हुए अन्धकार में प्रवेश कर गया……

बी. ए. पास कर रजनी ग्रेजुएट हो गया था। पर परीक्षा-फल आते ही जैसे तो वह बत्ती के गुल के धुँयें से हुई काली चिमनी बन गया था और अपने ही प्रकाश को धुँधला कर बैठा था। माधवी का विवाह कब हुआ, उसे यह याद है। लेकिन यह उसे याद नहीं है कि किस दिन वह अपने घर से भाग खड़ा हुआ था अचानक माधवी से मिलने के लिए। और उस दिन से आज तक वह बराबर भागता ही रहा है। न जाने कब उसकी यह दौड़ समाप्ति पर आयेगी? मानो उसमें इस दौड़ का कीड़ा लग गया है और उसे पूरा जब तक खा न लेगा, तब तक उसे ज़मीन के तल से उड़ाता फिरेगा।

'बस' में बैठा हुआ वह जंगल देख रहा है और सड़क के किनारे-किनारे मील के पत्थरों को पढ़ता जा रहा है। अपनी लम्बी आवारागर्दी में पढ़ता तो वह पिछले ग्यारह सालों से आ रहा है। और भी न जाने उसने कितना पढ़ा है। पर वह इस 'बस' की तरह से इन मीलों के पत्थरों को लाँघता हुआ नहीं दौड़ सका है। उसकी पढ़ाई सिर्फ़ पिंजरे के अन्दर बन्द तोते की 'राधेश्याम'-सी ही गूँजकर रह गई है। या वह अगर दौड़ा है तो माधवी की ससुराल की चौखट तक या फिर मामा-मामी की चौखट तक या आज फिर वह न जाने किस की चौखट तक भागकर जा रहा है और वहाँ से न जाने कब ऊबकर मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक चरितार्थ कर लौट आयेगा। क्यों नहीं वह अपने घर की डाल से टूटकर सदा को अलग गिर पड़ता?

बी. ए. का नतीजा जब आ चुका था तो उसके पिताजी उसे अपनी बैठक में बुलाकर ले गये थे। वहाँ पर उन्होंने उसे अपने पैरों के पास बैठाकर पूछा था कि अब तुम्हारा क्या इरादा है? सुनकर पहले तो वह सुम बैठा रहा था और फिर अचानक रोने बैठ गया था। उसके पिता जी पहले तो उसे पुचकारते रहे थे कि शायद वह घर से बाहर जाकर कमाने की बात से भय खाता है और अपनी माँ को छोड़ना नहीं चाहता है। पर तब भी रजनी का सिसकना बन्द नहीं हुआ था। तो वे गरज पड़े थे, "अरे, मैंने अपना ख़ून सुखा-सुखाकर तुझे कालेज में पढ़ाया है तो इसलिए कि आज तू योग्य बनकर इस तरह छोकरियों-सा रोने बैठ जायेगा, गोया कि तू अपने पीहर को छोड़कर अपनी ससुराल जाने से हिचक रहा है? नीच! जलील हिजड़े! शरम नहीं आती तुझे रोते हुए?"

अन्दर से माँ आई थी और उसे हाथ पकड़कर उठा ले गई थी। उस दिन घर में ख़ूब क्लेश मचा था और चूल्हे में रसोई तक नहीं पकी थी। सब ही भूखे रहे थे।

और शाम तक पिताजी ने माँ को न जाने क्या-क्या गालियाँ सुनाई थीं। पर रजनी क्यों रो रहा था? वह तो उसी घड़ी से बात-बात पर रो देता है, जबकि माधवी के घर पर शहनाई बज उठी थी और वह घूँघट में सजकर अपनी ससुराल चली गई थी। उस दिन जैसे-जैसे पिता जी माँ को गालियाँ देते जाते थे, वैसे-वैसे वह भीगे कपड़े पर डंडा पड़ने की चोट से छिटकी हुई बूँद की मानिंद आह खाकर घर से भागने के लिए आतुर हो उठता था। और उसी दिन उसने निश्चय कर लिया था कि वह अपने घर में ज़िन्दा कतई न रह सकेगा। वह अपने पिता के कठोर शासन की लंका में विभीषण बनकर ज़िन्दा रहने की सहिष्णुता को अक्षुण्ण न रख पायेगा। और उसके बाद जब-जब रजनी को लेकर माँ में और पिता जी में कहा-सुनी हुई है और गाली-गलौज का बाँध टूट-टूट पड़ा है, तब-तब रजनी बूँद की तरह से न ऊपर ही छिटककर उठा है, बल्कि उसने भाप बनकर कहीं दूर अनन्त में ग़ायब हो जाना चाहा है।

सराय से भागकर उसने एक पेड़ के नीचे अपने कपड़े बदले थे और ख़ून के कपड़े वहीं छोड़कर वह 'बस-स्टैण्ड' पर आकर सो गया था। अब वह अपने एक कालेज-मित्र के यहाँ चल रहा है। कालेज के नाटक में दोनों ने एक साथ अभिनय किया था और एक साथ की सीट के सहपाठी थे।

रात बीत गई है और अब आधा दिन बीत गया है। पर उसके पेट में अभी तक कुछ भी नहीं पड़ा है। भूख से वह बेचैन है। रह-रहकर वह 'बस' में बैठे हुए यात्रियों को देखता है और उसे जलन होने लगती है। सभी अपने-अपने ढंग से अपने जीवन से संतुष्ट हैं। सभी अपनी-अपनी तर्ज से अपने दुख-सुख की घड़ियों को काट रहे हैं। हँसी आती है तो हँस लेते हैं और रोने की हूक उठती है तो रो लेते हैं। और बेहोश इन्हें कोई कर देता है तो राज़ी-राज़ी बेहोश हो जाते हैं। नहीं, वह ऐसा जीवन कदापि नहीं जियेगा। वह अपनी ज़िन्दगी जियेगा और अपनी चाल चलेगा।

उसकी आँखों के आगे रात की हत्या का नज़ारा मुखर हुआ। कैसे उस नग्न लड़की की आँखें आख़िरी हिचकी के साथ ऊपर चढ़ गई थीं। और किस तरह उसकी छाती से ख़ून का फौवारा फूटा था। पत्थर की तरह मूर्त्त, वह सामने बैठी हुई घूँघट में बन्द एक ताज़ा दुलहिन को देखता रहा। इसकी छाती में भी छुरा मारा जाये तो उसी तरह ख़ून की धार फूट उठेगी। पर यह अब जल्दी ही माँ बनेगी और अपनी छाती में दूध की धारें सँजोयेगी। क्यों नहीं उस नग्न छोकरी ने भी अपनी छाती में दूध सँजोने का उपक्रम रचा था क्यों वह इतनी कम उमर में वेश्या बन गई थी?···और वह आँख मींचकर सो गया।

शाम को 'बस' उसके मित्र के नगर पहुँच गई। उतरकर वह सीधा पूछता-

पूछता वहाँ पहुँचा। उसे देखते ही नरेश ख़ुशी की चीत्कार कर बैठा और अन्दर उसने आवाज़ दी कि लिली, आओ, अपने यहाँ एक ज़बरदस्त मेहमान आये हैं।

नरेश ने रजनी से जब हाथ मिलाया तो उसे लगा कि मित्र की ये अँगुलिया उसे सदा को जकड़ लेना चाहती हैं। वह सचेत रहेगा। पैदा हुआ है तो कुत्ते की मौत मरने को नहीं। वह अब ठोकरें मारना और सीखेगा और हर एक से लोहा लेना सीखेगा। मामा-मामी की बातें तो वह चुपके से सिर नीचा कर सुन लेता था। पिता जी की बातें भी वह सिर नीचा कर सुन लेता था। माधवी और उसके सेठ जी की बातें भी वह सिर नीचा कर सुन लेता था। पर अब, वह नरेश के उपदेशों को सिर नीचा कर न सुनेगा। उसने हड़बड़ाकर नरेश से हाथ मिलाया और दबे स्वर में नमस्ते भी की। जब लिली अन्दर से आकर सामने खड़ी हुई तो उसने उससे भी कठोर मुद्रा में नमस्ते की और जैसे उससे कहा कि मुझ से सावधान रहो · मैं, रजनी, यहाँ कोई समझौता करने नहीं आया हूँ।

चाय आई। नाश्ता आया। सिगरेटें आईं। मित्र की बातें वह सुनता रहा और चेहरे पर ख़ुशी न चमका सका। तो पकोड़ी की प्लेट सामने रखते हुए लिली ने पूछा कि आप गम्भीर क्यों हैं? राजी-ख़ुशी तो है? रजनी ने उत्तर में सूखी हँसी हँसकर कहा, "राज़ी-ख़ुशी आपके यहाँ इतनी है कि मैं सोच रहा हूँ कि आपके यहाँ ही कुछ दिन टिक जाऊँ।"

नरेश ख़ुशी से उछल पड़ा। बोला, "भई, रजनी, मैं बहुत ख़ुशनसीब हूँ कि तुम मेरे यहाँ ठहरोगे।"

रजनी ने ज़रा तरेरकर नरेश को देखा और पूछा, "पर मैं यहाँ मेहमान की तरह रहने नहीं आया हूँ। मैं यहाँ पर एक ग़ैर की तरह ही रहूँगा।"

नरेश रजनी के फितूरी-दिमाग़ से वाकिफ़ है। वह उसकी उलझी हुई दार्शनिकता से भी जानकारी रखता है। वह रजनी से इतना घुला-मिला है कि इस बात से उसके अंग-अंग में हर्ष की लहर दौड़ गई। वह बोला, "लिली, ये मेरे ग़ैर मेहमान रहेंगे पर तुम इन्हें अपना मेहमान बनाकर रखोगी। ये मेरे वे दोस्त हैं जिन्हें मैं आजीवन अपनी परिधि में रखकर भी संतोष न पा सकूँगा।"

ललिता अपने पति के ऐसे पागल-मित्र को देखकर चुहल उठी और बहुत प्रसन्न हुई। उठकर वह अन्दर जाने लगी तो पूछा, "ये मेरे देवर हैं या जेठ हैं?"

सुनकर नरेश ठहाका मार बैठा। रजनी को भी बरबस हँसना पड़ा और वह बोला, "जी, देवर और जेठ बनने की तमीज मुझ में कतई नहीं है। मैं सिर्फ़ रजनी हूँ और यही रह सकूँगा। आप मुझे बस यही जानें।"

रसोई की ओर जाती हुई लिली ख़ूब हँसी और इस उत्तर पर मुग्ध हो गई।

पकौड़ियों से जब उसका पेट तनकर भर गया तो वह सिगरेट की खुमारी में इतना डूब गया कि वहीं आराम-कुर्सी पर पड़कर सो गया।

लिली ने अन्दर रसोई में नरेश को बुलाकर पूछा, "ये कौन हैं ? बड़े विचित्र जीव हैं।"

नरेश ने मुस्कराकर पत्नि की चिबुक पकड़ी और कहा, "ये विचित्र जीव नहीं है। यह अच्छा है कि इनका असंतोष बरसने वाली घटा-सा अभी घुमड़ता ही जा रहा है। महरबानी कर मेरे मित्र को गलत न पहचानने लगना। बेचारे ने जिससे प्रीत की थी, उसकी शादी किसी सेठ से हो गई है, सो ही खोया-खोया घूमता-फिरता है। अच्छा है, अपने यहाँ रहेगा तो मैं इनके अनेक उपकारों से उऋण हो जाऊँगा।"

लिली चुप हो गई। पर पूछा, "इनको क्या-क्या प्रिय रसोई है सो बतादो ?"

ठठाकर नरेश ने कहा, "तुम पाक-शास्त्र की आचार्या हो। मुझे भला क्यों लज्जित करती हो ? रही रजनी की बात। वह चार दिन की बासी रोटी भी खा लेगा और बढ़िया पाक भी खा लेगा। पर सिर्फ़ खायेगा ही। उससे अपने पेट में अजीर्ण नहीं करेगा।"

रात के दस बजे तक रजनी सोता रहा तो नरेश ने उसे उठाया। कहा कि निबट लो और गरम पानी करवाया है सो नहा लो। रसोई तैयार है। तब दूध पीकर सोना।

रजनी ने आँख खोलकर नरेश की गृहस्थी को देखा और इस गृहस्थी की सज्जा को देखा। उसे लगा कि नरेश को यह सौभाग्य इस तरह छिपाकर किसने जुटा दिया है ? पर नहीं, वह इस सौभाग्य की बात न सोचे। न इससे ईर्ष्या करे। उठकर वह नहाया। और तब लिली की रसोई में जाकर नीची निगाहें किये रसोई खाने बैठ गया। उसने महसूस किया कि आज उसके लिए विशेष रसोई बनी है। पर वह चुप खाता रहा। तो लिली ने पूछा कि जी साग-सब्ज़ी में नमक तो कम नहीं है।

रजनी ने ज़रा मुस्कराकर कहा कि जी, नमक की वैसे ही जीवन में कमी नहीं है। आप मेरे खारेपन की कमी से ज्यादा चिन्तित न हों। हाँ, आपके खाये हुए नमक को अदा करने की शर्त मैं नहीं ले सकूँगा। न उसे चुकाने का इरादा रखूँगा।

बाहर आँगन में नरेश तकिये के सहारे आकाश के तारों को घूरता हुआ कालेज की बातों पर एक सिंहावलोकन कर रहा था। सुनकर वहीं से हँसकर बोला, "भई मान गये राजी। आज तुम ने लिली को खरा जवाब दिया है। वरना यह तो इतनी वाचाल है कि मेरा तो सदा ही यह मुँह बन्द रखती है। अब बोलो, लिली ?

अरी, इस महाब्राह्मण के महापण्डित बेटे से पूछा होता कि जी, हलुवे में मीठा तो कम नहीं है ?"

और तीनों ही रस में डूबकर खिलखिला पड़े ।

सोने के समय नरेश ने ज़िद् की कि वह रजनी के साथ मकान के दालान में सोयेगा। पर वह नाराज़ हो पड़ा कि नहीं, मुझे कोई हक नहीं है कि आप लोगों के रोज़ाना 'रुटीन' में फरक डालूँ । और मैं अकेला ही भला । रात का एकान्त जब तक मुझे नसीब है, तब तक उसमें किसी का दखल मैं नहीं चाहता ।

नरेश इस तर्क पर जी खोलकर हँसा और आकर पिछवाड़े आँगन में अपनी पत्नी के साथ ही सोया । पर, सोने से पहले वह रजनी के लिए सिगरेटें रख गया, जिनके सहारे रात-जगा ज़रा आसानी से हो जाया करता है । रजनी ने उत्तर देते हुए कहा कि रात-जगा तो दिल का ख़ून पानी-पानी करते हुए ज़्यादा आसानी से किया जा सकता है ।

× × ×

रात नरेश को नींद नहीं आई । वह सोचने लगा कि यह मानव-लोक कितनी गाँठों से जकड़ा हुआ और बँधा हुआ है । आदिकाल से यहाँ पर पीड़ा की पूछ नहीं है । आह का आदर नहीं है । इनमें उलझा-उलझा मानव अपने दुख को यदि समीचीन करना चाहता है तो वह फितूर दिमाग़ी कहलाने लगता है। रजनी का हृदय वज्र नहीं है । वह पारे की तरह चंचल है । उसे याद आया कि एक दिन हॉकी खेलते-खेलते रजनी बीच खेल से भाग गया था और जाकर मैदान के इमली के पेड़ पर चढ़कर पकी-पकी इमलियाँ तोड़ता रहा था । फिर भी पत्ते की तरह से दुनियाँ की जिस डाली पर वह पका है, उसी से लटका हुआ वह आज विद्रोही बन बैठा है । इसी में उसकी भविष्य की आशायें निहित हैं । तब ही वह अपने बीहड रास्तों पर बढ़ता हुआ दृढ़ है । इसी रजनी का साथी वह खुद था और इसकी अनर्गल बातों की मज़ाक करने में उसे सबसे ज़्यादा मज़ा आया करता था । पर, जब से लिली उसके जीवन में आई है वह दुनिया का तमीज़दार इन्सान बन चुका है । अन्यथा आज वह भी इसी रजनी की तरह जाने कहाँ-कहाँ भटकता फिरता···

सुबह उठा तो देखा कि रजनी अपनी खाट पर नहीं है । शायद घूमने चला गया है । चाय के समय वह बहुत देर तक उसकी प्रतीक्षा देखता रहा । पर आफिस के टाइम तक वह नहीं आया, तो लिली से वह उसकी देखभाल करने के लिए कहकर, आफिस चला गया ।

लगभग ग्यारह बजे रजनी लौटा । और आकर चुपके से दालान में बैठ गया । अन्दर से लिली ने दरवाज़ा बन्द कर रखा है । वह साहस न कर सका कि अन्दर

आवाज़ दे। कल से वह भय खा गया है कि यह लिली कितनी भयावह सुन्दरी है। नरेश को जो यह अचानक मिल गई है, उसकी वजह से वह भी पूँछ को टाँगों में दबा कर थरथर काँपने वाली बिल्ली बन चुका है। अन्यथा कालेज में प्रायः सभी लड़कियाँ नरेश से बचकर रहती थीं और उससे कभी भी मज़ाक करने का साहस नहीं करती थीं।

कि साढ़े बारह के लगभग दरवाज़ा खुला तो लिली ने देखा कि रजनी बाबू मूढ़े पर बैठे हुए ऊँघ रहे हैं। उसने आवाज़ दी, "जी, आप कब से बैठे हैं?"

रजनी ने आँख मलते हुए कहा, "हो गया यही डेढ़ घंटा।"

"तो आप आवाज़ देकर दरवाज़ा खुलवा लेते।"—लिली ने संकोच से भरते हुए कहा।

रजनी ने उत्तर नहीं दिया। मुस्कराकर वह उठा। और अन्दर जाकर निबटने के काम में लगा। नहा चुका तो लिली ने रसोई में आसन बिछाकर थाली परोसी और कहा कि जी, आइये। पर उसने देखा कि ये झिझक रहे हैं कि यहाँ लिली के पास इस समय बैठें कि नहीं। तो उसने ज़रा ज़ोर देकर कहा, "चलिये, ज़ल्दी कीजिये, इतनी देर से खाना खाने से शरीर में गरमी भर जाती है।"

वह बैठ गया और भोजन करने लगा। इस वक़्त रात से भी ज़्यादा चीज़ें पकाई गई हैं। और ध्यान रखा गया है कि रजनी को कैसा मसाला प्रिय है। लिली ने पूछा, "जी, खीर में मीठा तो कम नहीं है।"

रजनी को भय लगा कि वह खुलकर इसका जवाब दे। बस, गर्दन हिलाकर उसने अपना सन्तोष प्रकट किया और जल्दी से खाकर वह उठ गया।

लिली अन्दर पान लगाकर लाई तो रजनी अपना सिर खुजला रहा था। वह पूछ बैठी कि आपके सिर में जूँएँ तो नहीं हैं।

रजनी ने सिगरेट का धुआँ उड़ाकर अपनी हँसी छिपा ली और कहा, "वह तो जूँओं की पारखी ही देख सकेगी।"

लिली उधर मूढ़े पर बैठ गई और कहा, "अच्छा तो आइये, यहाँ बैठिये गलीचे पर। मैं आपकी जूँएँ देखूँगी।"

रजनी आज्ञाकारी आत्मीय की तरह लिली के पैरों के बीच बैठ गया और अपना सिर लिली के हाथों में थमा दिया। पहले बारीक कंघी से रज़नी के बालों को ज़रा दर्द पैदा करते हुए उसने मैल निकाला। और फिर अपनी कोमल उँगलियों से सिर में गुदगुदी करते हुए वह जूँएँ देखने लगी। और उसी क्षण एक जूँ मिल गई। लिली ने वह जूँ पकड़कर रजनी की हथेली पर धरकर कहा, "मैं आपको दिये जाती हूँ और आप मारते जाइये। मारने का क़ाम मेरे से नहीं हो सकेगा। आपकी हत्या

आपको ही लगे।"

वह मुस्करा दिया और उसने पैर के अँगूठे से उस जूँ को चीथ दिया और चुप बैठा रहा।

पूरे घंटे भर तक उसके सिर से लिली जूँएँ निकालती रही और वह उन्हें चीथ कर मारता रहा।

कि लिली ने पूछा, "आप अपने घर से अपने पिता जी से बिना कहे-सुने भाग आये हैं?"

लिली के हाथों में सिर को दिये-दिये उसकी गर्दन थक गई है। वह उठना चाहता है। ज़रा-सा झटका देकर उसने आज्ञा चाही कि वह उठे? लिली ने उसका सिर छोड़ दिया तो वह उठा और सामने गलीचे पर ही तकिया लेकर आड़ी करवट लेकर लेट गया। तो उसने कहा, "पिता जी से कहे बिना आना क्या मायना रखता है? मैं आपका मतलब नहीं समझा।"

लिली इस दार्शनिक युवक से क्या परास्त होने बैठेगी? और अब तो इसे यहीं रहना है। वह इस घर में शासन करती है। इस शासन में यह नया युवक आया है तो इसे भी उसके शासन में रहना होगा। इसी से वह ज़रा मुग्धा बनकर बोली, "मेरा मतलब है कि क्या आपके पिता जी को पता नहीं है कि आप हमारे यहाँ पर आये हुए हैं?"

रजनी ने अपराधी की नाईं बस इतना ही कहा, "जी!"

"तो, अपने घर का पता मुझे देना, मैं वहाँ पर पत्र लिख दूँगी।"

रजनी चुप रहा और साँस रोककर लेटा रहा।

× × ×

नरेश ने रजनी को अपनी गृहस्थी का नियमित सदस्य बना लिया है और उसे बाध्य कर दिया है कि वह लिली के हर वायदे का उल्लंघन नहीं करेगा। ठीक समय पर चाय पीना, ठीक समय पर नहाना, ठीक समय पर भोजन करना, ठीक समय पर रात को सोना रजनी के लिए ऐसा अकाट्य नियम बन गया है कि यह उसकी खुद की समझ से बाहर की बात बनकर रह गई है। वह तो बस निर्देश सुनता है लिली के और उसी तरह से मानता है जिस तरह से नरेश मानता है। और नरेश के हुक्म भी वह इस तरह से मान लेता है कि बस, वह ही है जिसे उसे हुक्म देने का पहला और आखिरी हक है। और, नरेश और लिली ने मिलकर रजनी को मना लिया है कि वह एक स्थानीय दैनिक पत्र में थोड़ा सम्पादकीय का काम सीख आया करे और बाकी वह अपनी मौज़ के अनुसार पढ़े-लिखे।

ठीक समय पर भोजन कर रजनी समाचार-पत्र के कार्यालय में अनुवाद का

काम करने चल देता है। और वहाँ से तीन-चार घंटे काम कर लौट आता है। मन उसका इस अनुवाद में कतई नहीं लगता है। फिर भी, शाम की चाय के समय लिली उससे सवाल करती है कि आज क्या-क्या ख़बरें आईं और आज उसने क्या-क्या अंग्रेज़ी का अनुवाद किया।

लिली ने रजनी के घर पर चिट्ठी दी थी कि वे चिन्ता न करें। रजनी यहाँ सकुशल है। वहाँ से पहले दो पत्रों का तो कोई उत्तर ही नहीं आया था। पर तीसरे पत्र का उत्तर उसके पिता जी ने यह दिया, "बेटी, चिरंजीव रहो। तुम्हारी तीन चिट्ठियाँ मिलीं। यह अच्छा नहीं किया है तुम्हारे पति ने कि उस आवारा लड़के को अपने यहाँ ठहरा लिया है। फिर भी यह ख्याल रखना कि वह कहीं जल्दी ही ऊबकर उस माधवी के यहाँ भागने की टोह में न रहे। भगवान् की ऐसी ही मर्ज़ी थी कि अपने पेट और तन को काटकर मैंने उसे बी. ए. तक जैसे-तैसे पढ़ाया, पर मुझे इस आख़िरी घड़ी धोखा देकर वह घर से निकल पड़ा है आवारा बनने के लिए। पर अगर वह मेरी आत्मा को चैन नहीं दे सका है तो उसकी भी आत्मा को चैन नहीं मिलेगा। उसकी माँ तो सदा उसी के रोने रोया करती है। पर तुम उसे अब इस घर में वापिस न भेजना। कम से कम उसकी ग़ैरहाज़िरी में यहाँ का क्लेश तो बन्द रहता है। वरना उसके आते ही यह घर क्लेश की दहकती हुई भट्टी बन उठेगा। फिर भी मैं तुम्हें आशीर्वाद भेजता हूँ कि तुम उसे ज़रा दुमदार बन्दर से तमीज़दार इन्सान बना सको।"

चिट्ठी पहले लिली ने खुद ही रसोई में लेजाकर पढ़ी। और उसकी आँखों में हर्ष और वेदना के मिश्रित आँसू छलक आये। तब, उसने वह पत्र शाम को उन्हें दिखाया। वे पढ़ चुके तो सामने बैठे हुए रजनी को देते हुए बोले, "लो—तुम्हारे पिता जी का पत्र आया है। और अपना आशीर्वाद लिली को भेजा है।"

रजनी ने पत्र हाथ में लेकर टेबल पर रख दिया और चाय पीते हुए गम्भीर हो गया। चाय समाप्त कर अपना मूढ़ा उठाकर बाहर दालान में जाकर बैठ गया। सुबह तो आज वह कुछ ख़ास खुशी की उत्तेजना में था। पर, सहसा पिता जी की पत्र की मौजूदगी ने उसके अन्तस्थल को पकड़कर भींच दिया है। और उसे लगा कि आज उसे यहाँ से भी भाग खड़ा होना चाहिए। लिली ने जो पत्र उसके घर भेजकर वहाँ से अपना रिश्ता क़ायम कर लिया है सो उसके साथ दग़ा किया है। वह यहाँ पर इसलिए नहीं ठहरा था कि अपने घर में परोक्ष रहकर भी अपने घर की इस सीमित परिधि में बन्द रहेगा। नहीं, वह सुबह ही यहाँ से चल देगा।

कि नरेश कपड़े पहनकर बाहर आया और बोला, कि चलो, कपड़े पहनो। घूम आयें।

रजनी मान गया। पैदल चलकर वे शहर से बाहर एक ऊँचे टीले पर आकर बैठ गये। अब सूरज बस गौबेला वाली स्वर्णिम-रंगीनी में मदहोश होकर बेहोश होना ही चाहता है। एक सिगरेट रजनी को देकर नरेश ने अपनी सिगरेट जलाई और कहने लगा, "राजी, आज रात को सोते-सोते मुझे कालेज की वह छठी जुलाई वाली बात याद हो आई। और, दिन में आफिस में भी रह-रहकर वही मेरी आँखों के आगे घूमती रही। क्या वह तुम्हारा स्वप्न पूरा हो गया होता तो तुम आज इस तरह अपने पिता से ज़बरदस्ती चोरी कर यहाँ अजगर-साँप की तरह छिपे हुए पड़े रहते?"

रजनी क्योंकि आज न जाने कैसी चोट या खरोंच खा गया है सो सुस्त चुप ही बैठा रहा।

नरेश ने याद दिलाया कि उस दिन नाटक खेला गया था और हीरो रजनी बना था और हीरोइन माधवी बनी थी। 'विलेन' नरेश बना था। वह एक दुखांत कथा थी, पर कथा के बीच में माधवी ने रजनी से स्टेज पर कहा था 'किशन, तुम युवक हो। मैं युवती हूँ। तुम समाज के कर्णधारों में से हो; मैं तो बस समाज के खूँटों से बँधी रहने वाली एक दुधारू गाय भर हूँ जो किसी दिन भी ठांगर (दूध सूखी हुई) होते ही किसी पिंजरापोल या गऊशाला में ले जाकर पटक दी जाऊँगी। इसीलिए मैं कहना चाहती हूँ कि आज तुम बहकी-बहकी बातें न करो। बात वह करो जिससे मुझे भरोसा हो जाये कि अगर तुम्हारी कसमों से अकेली मेरी समस्या न सुलझे तो कम-से-कम वह भविष्य के लिए अनेक नागरिकों की समस्या सुलझाने के नये रास्ते ही इंगित कर दे। युवक का मतलब यही नहीं है कि वह चीखकर या गुस्से से या दहाड़कर बातें करे। और युवती वह नहीं है कि किसी भी युवक की अनर्गल बातों पर विश्वास कर उससे अपना लगाव लगा ले। नहीं, हमें सबसे पहले अपने आप के अर्थ बदलने होंगे।'

रजनी ने एक दृष्टि नरेश का चेहरा देखा और फिर डूबे हुए सूरज की सुनहरी लाली देखने लगा।

नरेश ने कहा, "और तुमने क्या जवाब दिया था? तुमने कहा था कि प्रिये, तुम सच कहती हो। हम अपने अर्थों को बदलकर समाज को बदलने का आन्दोलन जारी रखेंगे। इस आन्दोलन की पहली शर्त यह है कि हम शादी नहीं करेंगे।

रजनी सहसा हँस पड़ा। और बोला, "तो, तुम यही कहना चाहते हो कि क्योंकि मैंने वह बात नाटक में कही थी सो ठीक ही कही थी। और अगर माधवी से मेरा विवाह नहीं हुआ है, तो मैंने अपने उस कथन को ही पूरा किया है। और इसीलिए मुझे अपने समाज के बदलने के काम में पूरी तत्परता से लगे रहना चाहिए?"

नरेश मुस्कराकर सिगरेट पीने लगा। बोला, "नहीं, मैं यह कहना नहीं

चाहता हूँ कि तुम कहीं मेरी तरह से किसी सामाजिक गुफ़ा में न ठहर जाना। तुम्हारा रास्ता माधवी ने हटकर जो एकदम खुला छोड़ दिया है सो तुम्हें उसका कृतज्ञ रहना चाहिए।"

रजनी ने चिढ़कर कहा, "क्यूँ नाहक बार-बार उस परायी पत्नी का नाम यहाँ ले रहे हो ?"

नरेश ने कहा, "लेकिन तुम उस परायी पत्नी के यहाँ बिना पूछे-ताछे कैसे जा ठहरते हो, गोया कि वह तुम्हारे मार्ग का 'डाक-बंगला' हो !!"

रजनी चुप रहा। नरेश ने कहा, "ऐडीटिंग का काम कुछ रुचिकर लगने लगा कि नहीं ?"

रजनी फिर चुप रहा। वह बोला, "नरेश, लिली को मना करो कि वह मेरे पिता जी से पत्र-व्यवहार बन्द करे।"

नरेश ने कहा, "लिली से कोई 'नहीं' कहने की ताक़त मुझ में नहीं है। और तुम्हें उससे मनाही करने में ज्यादा दुविधा नहीं होनी चाहिए।"

रजनी चुप रहा। और उसने अपनी कठिन चुप्पी से नरेश को बाध्य कर दिया कि वह भी चुप बैठे।

× × ×

जिस दिन रजनी भागने की तैयारी कर रहा था, उसी दिन लिली बीमार पड़ गई। न वैसी सूचना लिली की ओर से ही दी गई थी कि क्योंकि वह बीमार है इसलिए वह भी वहाँ से न जाये। न रजनी को ही आत्मा की आवाज़ मिली थी कि वह अभी और इस पड़ाव पर रुके। पर वह उस रात रुक गया था और रात को तीन बार डाक्टर बुलाने के काम पर मुस्तैदी से तैनात रहा था।

और इसके बाद कब सात-आठ महीने बीत गये, इसका उसे ख्याल नहीं रहा। और जब उसे ख्याल हुआ कि वह अब ज़रूर चले यहाँ से, तो नरेश ने एक दिन उसे सूचना दी कि लिली को आगामी मास प्रसव होना है, उसके बाद ही वह जा सकेगा।

पिता जी का पत्र इसके बाद फिर न आया। लेकिन नियमित समय पर रजनी की कुशलता का समाचार लिली बराबर उन्हें भेजती रही। समाचार-पत्र के कार्यालय में वह बमुश्किल यही चार महीने ही गया। हिन्दी के समाचारों का और उनके पत्रों के कार्यालयों की हीन दशा का जब उसे सही ज्ञान हुआ तो उसका जी मितला आया और वहाँ की दयनीय स्थिति से ऊबकर उसने वहाँ जाकर काम सीखना बन्द कर दिया। हँसकर उसने नरेश से कहा था, "हिन्दी की पत्रकारिता न वैश्य-वृत्ति है और न वेश्या-वृत्ति। कुछ क़साई संचालकों के कसाई-खानों की वह कीर्त्तनशाला ही है!"

लिली के आग्रह पर रजनी लिली की एक सखी को अंग्रेज़ी और हिन्दी पढ़ाने जाता है। वहाँ से ट्यूशन के पैसे कितने मिलते हैं, वह नहीं जानता। न वह जानना चाहता है। वह बस वहाँ जाकर दो घण्टे मेहनत कर आता है। उसे रेणुका को पढ़ाते हुए यह संतोष है कि वह निरी मूर्खा नहीं है। और न वह घूँघट के संस्कारों से ही पीड़ित है। रेणुका के पिता किसी कलक्टर साहब के यहाँ हैडक्लर्क हैं। उसके मामा किसी शहर में सिटी कोतवाल हैं। उसकी माता जी कालेज में शिक्षा पा चुकी हैं। उसका बड़ा भाई कालेज से एम. ए. कर चुका है। और रेणुका शेक्सपीयर को पढ़ते हुए इतनी विभोर हो जाती है कि वह रजनी से इतने सारे भावुक प्रश्न कर उठती है कि उनमें से अनेक प्रश्नों का उत्तर देते हुए वह अचकचा जाता है।

लिली ने एक दिन रजनी से कसम ले ली थी कि वह शादी से पहले अपनी भावी वधु उससे 'पास' करवा लेगा। हँसकर, इस शर्त पर टिप्पणी करते हुए नरेश ने कहा था, "लिली, तुम अपनी ताक़त भर रजनी पर अपना ब्रह्मफाँस फेंके जाओ। पर एक दिन तुम निराश होओगी कि तुम्हारे सब जाल वह बेलाग काटकर अलग जाता रहेगा।" पर नहीं, लिली को अपनी चतुराई पर और अपनी बुद्धि पर पूरा भरोसा था। वह जानती थी कि बहुत जल्दी वह रेणुका से रजनी का विवाह सम्पन्न करा देगी!

ललिता नरेश से व्याहने से पहले कानपुर के कालेज में बी. ए. की छात्रा रह चुकी है। उसके पिता शहर के रईसों में से एक थे। अपनी इकलौती लाड़ली को उन्होंने बचपन में एक ईसाई-आया के ज़िम्मे रखा था। इस 'आया' से ललिता ने पाश्चात्यता की खुली हवा का स्पर्श पाया था और उस हवा की तेज़-से-तेज़ गति का परिचय भी लिया था। उसके बाद ललिता को कन्वेंट स्कूल में शिक्षा मिली थी। वहाँ वह अपनी मैट्रन से निकटवर्ती आत्मीयता पाने में सफल हुई थी और इसके ऐवज़ में मैट्रन ने उसे पाश्चात्य देशों के उन्मुक्त व्यक्ति-धर्म की पूरी दीक्षा दी थी। इसीलिए जब ललिता कालेज में आई तो आते ही वह युवकों के बीच लोकप्रिय हो गई और गम्भीर विषयों पर प्रायः कालेज के सभी लोग उससे अपना-अपना परामर्श लेने लगे। एक दिन एक प्रोफेसर ने उसके पिता जी से कहा था, "आपकी पुत्री कितनी योग्य है, शायद इसका ज्ञान आपको नहीं है। मैं बस इतना ही कह सकता हूँ कि वह परिस्थितियाँ पायेगी तो नवसमाज-निर्माण-कार्य तक में पूरी दक्ष उतरेगी।"

लेकिन ललिता के सारे स्वप्न उसकी बूढ़ी भुआ ने भंग कर दिये। और उसी के दबाव में आकर उसके पिता ने उसका विवाह कर दिया। शायद इस विवाह में कुछ सरकारी राज भी था।

कालेज की उच्छृङ्खल रूपसि ललिता नरेश की पत्नी बनकर भी अपनी शासन करने की नीयत न छोड़ सकी। और आज भी वह इस नगर के स्त्री-आन्दोलन को

अपने हाथ में सँभाले हुए है।

रजनी पहले ही दिन यहाँ जब आया था तो ललिता को वह एक जंगली खच्चर लगा था जो कि नकेल के अभाव में उद्धत बना हुआ है। उसका विश्वास था कि वह शीघ्र ही उसकी नाक में नकेल डाल सकेगी। कालेज के अन्तिम दिनों में एक दिन उसने अपनी एक सखी पूर्णिमा से (जिसका विवाह बाद में चलकर एक तरुण नेता से हुआ था) कहा था कि उद्धत युवकों की एक ही दवा है। तुम उससे भय न खाओ और अपना पूरा विश्वास उसे दे दो। यह ज़रूरी नहीं है कि तुम्हें वह अपना विश्वास दे ही दे। पर उससे भयभीत होने की ज़रूरत नहीं है कि वह तुम्हें काट खायेगा या अपने नुकीले सींग मारकर घायल कर देगा। बस, यही ख़्याल रखो कि वह जानवर नहीं, एक बेनकेल का इंसान है। और जिस दिन वह तुम्हें आत्मसमर्पण कर दे, उसी दिन उसके आत्मदर्प को कुचल दो। हर शिक्षित युवक का आत्मदर्प उसकी वह मनोभावना है कि वह अपने समकक्ष युवकों में सबसे सबल है। और तुम उसी क्षण उसके समकक्ष किसी भी अन्य युवक से घनिष्ठतम आत्मीयता का प्रदर्शन करना शुरू कर दो। अपने इसी पुराने नुस्खे को ललिता ने रजनी पर लागू किया था। पर रजनी अब उद्धत युवक न रहकर एक निश्चित पथ का विद्रोही बन चुका था। उस पर नकेल के डोरे डालने-डालने में उसे पूरा साल भर लग गया और इसी उधेड़बुन में ललिता को यह भी याद नहीं रहा कि वह अभी अपना सन्तति-निग्रह का वचन चार वर्ष और निभायेगी!!

डेढ़ महीने बाद ललिता ने एक कन्या को जन्म दिया। उसके नामकरण-संस्कार के दिन रजनी ने भरपेट हँसकर कहा, "आज से हम आपको ललिता भाभी कहेंगे। नरेश भी तुम्हें पूरा नाम ललिता से ही सम्बोधित करेगा। और इस कन्या का नाम लिली रहेगा।"

नरेश और ललिता को इस प्रस्ताव में कुछ भी हानिकर नहीं लगा और उन्होंने स्वीकार कर लिया। दिन में उस दिन दावत हुई थी और आगतों में रेणुका भी आई थी। रजनी ने महसूस किया था कि इन समस्त महिलाओं में रेणुका का ही सौन्दर्य सबसे ज़्यादा अपनी बात कह रहा है। उसे याद आया कि एक दिन अपने एक आत्मीय प्रोफ़ेसर से उसने मज़ाक में कहा था कि जिस किसी कालेज-छात्रा का सौन्दर्य अपनी बात सबसे ज़्यादा शोर कर बोलता है, समझ लीजिये कि वह बहुत जल्दी घिसा हुआ रेकार्ड बन जाने वाला है। प्रोफ़ेसर साहब ने, उससे उसकी बात में एक संशोधन करते हुए, प्रति-मज़ाक की थी, "रजनी जी, रेकार्ड अपने आप नहीं घिसा करता। उसे तो नादान की नादानी घिस देती है। यदि तेज़ सुइयों से उसे बजाया जाये तो उस पर घिसावट का ज़्यादा अन्देशा नहीं रहता।"

शाम को जब सब चले गये तो ललिता ने रेणुका को रोक लिया था और उसे मजबूर किया था कि वह रात में खाना खाकर तब जायेगी। रजनी जी उसे घर तक छोड़ आयेंगे। लाज में बल खाकर रेणुका ने यह बात मान ली थी और वह वहीं रुक गई थी।

चाय पीकर नरेश तो अपने साहब के घर मिठाई पहुँचाने चला और रजनी, ललिता तथा रेणुका बाग़ में घूमने चले गये।

उस रात जब रजनी सो गया था तो नरेश ने ललिता से पूछा था, "कहो, क्या ख्याल है ?"

ललिता ने पूरे आत्मविश्वास से कहा, "अभी ८० फ़ीसदी उम्मीद है। रेणुका रजनी की पत्नी बनने के लिए पूर्ण रजामन्द है।"—पर नरेश को सन्देह बना ही हुआ था। वह जानता है कि रजनी किसी भी क्षण यहा से भूखे बाघ की तरह भाग खड़ा होने वाला है।

आज छुट्टी है। रजनी अभी रेणुका को पढ़ाकर आया है। रेणुका इस साल इन्टर की परीक्षा देने वाली है। चाय पीकर वह आयुर्वेद की एक पुस्तक पढ़ने लगा। नरेश के पुस्तकालय में न जाने किस-किस विषय की पुस्तकें रखी हैं। पिछले चार-पाँच मास से स्थायी अजीर्ण रहता है। बहुत कोशिश करता है कि वह उपवास कर अपने स्वास्थ्य को संयमित रखे। पर रोजाना निश्चय कर भी वह उपवास की बात भूल जाता है। चाय छोड़ना वह चाहता है। पर वह छूटती नहीं है। सिगरेट की आदत से अब छुटकारा उसका निकट भविष्य में तो दीखता ही नहीं है। इसी बात पर कल नरेश ने उस पर एक फब्ती कसी थी कि तुम "नहीं" के विरुद्ध ही तो जिहाद बोलने चले हो, और तुम्हारे ही जीवन में सबसे ज्यादा "नहीं" घुस आये हैं कुत्ते की जूओं की मानिंद, जिन्हें वह अपनी फ़ुर्सत के समय खाने की चेष्टा में घण्टों जागता रहता है।

पुस्तक के पन्ने पलटते हुए उसने ज़रा ज़ोर से रेणुका-औषधि के गुण पढ़े, 'रेणुका-औषधि विषाक्त होती है ······' सुनकर ललिता हँस दी कि नरेश भी आफ़िस से आ गया। पूछा "राजी, क्या बात है ? बहुत गम्भीर हो।"

रजनी ने कहा, "भई, मैं आज एक तथ्य पर पहुँचा हूँ। अब मेरे लिए मेरे माता-पिता इस संसार में जैसे नहीं के बराबर हैं। मामा-मामी को मैं वैसे ही मरा बराबर समझता हूँ। मेरा स्वास्थ्य अब बराबर गिरता जा रहा है। रेणुका के गुण आप इस पुस्तक में पढ़िए, जिस औषधि को देने का षड़यन्त्र ललिता भाभी पिछले आठ मास से रचे बैठी है। मैं पक्का निश्चय कर चुका हूँ कि इस जीवन में मेरी कोई पत्नी भी नहीं।"

ललिता आँख फाड़कर रजनी को घूरने लगी। पर नरेश उसकी बात से गम्भीर नहीं हुआ। बोला, "पर किसी बात का निर्णय कर उस पर अड़ बैठना सरासर दिमागी क्लिष्टता है। और इस उलझन भरी बदहोशी का संवरण न करना इंसान की सबसे बड़ी बुराई है।"

रजनी ने थूक उड़ाते हुए कहा, "यह झूठ है।"

"तो कल कह दोगे कि मेरे लिए ईश्वर भी कोई चीज नहीं है।"—ललिता ने खीझकर कहा।

वज्र गिरता है तो अचिन्त्य दुःख-दैन्य बिखेरकर कहीं पर जाकर टिकता भी है।

रजनी मुट्ठी दृढ़ कर बोला, "कह दूँ तो हानि ही क्या है। वह अज्ञेय है। मानव ने प्रकृति को तोड़ डाला तो वह कौन सी खेत की मूली रह गया है। मेरा उत्तर क्यों नहीं देते ? जिस प्रकार तमाम दुनियाँ लेखकों की भविष्य-कल्पनाओं का उपहास करती है, किन्तु धर्म-पुराणों के आगे नाक रगड़ती है, वैसे ही सड़े हुए सुख और जर्जर-ऐश्वर्य से आक्रान्त विश्व के विद्रोही को वह तन-मन से सहयोग क्यों नहीं देती ?"

नरेश रजनी की इस फूत्कार से बचने के लिए अन्दर चला गया। पर ललिता को ऐसी फूत्कार पहली बार दिखाई नहीं दी है। उसने पूछा, "आप नाहक शिकायत करते हैं। आपको सहयोग इन्होंने कितना नहीं दिया है। आप हमारी पलकों पर सदा बैठे रह सकते हैं!"

रजनी विद्रूप में बद्ध हँसी से चेहरे को विकृत कर बोला, "नरेश की बात छोड़ो। अपनी बात कहो। रेणुका के पास जिस दिन तुमने मुझे पढ़ाने भेजा था उसी दिन तुम्हारे गोपन की बात मैं समझ गया था। आखिर तुम्हें क्या तसल्ली मिल जायेगी कि उसके आँचल में मुझे कसकर बाँध दोगी। तुम समझती हो कि मुझे माधवी नहीं मिली तो उससे भी अधिक रूपवती मेरे अंक में सौंपकर तुम मुझे पालतू साँप बना लोगी ? यह तुम्हारी कोरी नादानी भर है।"

ललिता की आँखों में आँसू छलक आये। वह बोली, "रजनी जी, पालतू साँप बन जाओगे, उस दिन तो मुझे कैसा भी भय नहीं रहेगा। पर आज जब आप काफ़ी कटखने ज़हरीले साँप हैं तब भी मुझे आपसे कोई भय नहीं है। बस, आपको यह गलतफ़हमी नहीं रहनी चाहिए कि आप किसी की आस्तीन के साँप तो नहीं बन रहे हैं।" और दौड़कर वह रसोई में जा छिपी थी।

रजनी स्तब्ध हो गया। अन्दर, नरेश इस गरमागरम बहस पर खूब ठठाकर हँसने लगा।

४

रजनी अंधड़ को भी लाँघता है

रजनी ने गाड़ी बदली ।

ललिता से इतनी दूर अब वह आ गया है । डर उसको नहीं रह गया है कि पास-पड़ौसियों, मित्रों और दीन-दुनियाँ के विधि-निषेध उसकी निजी सीमित आशा-आकांक्षाओं को कुचलकर यह निर्णय देंगे कि, बस, वह जो इस दुनियाँ में पैदा हुआ है, फलतः वह यहाँ सरीखी रीति-रिवाजों-का-सा काम-काज करे और बातचीत करे, और शादी-वादी के बाद घरबार बसाकर गृहस्थी के छोटे से परनाले के प्रवाह में रमता हुआ प्रतीक्षा करे कि अन्य छोटी-मोटी नदियों की नाईं उसे भी एक दिन सबसे महान् पोखर, समुद्र में रम जाना है । भाग्य के इस सर्वमान्य व सर्वप्रचलित रूप के विरुद्ध दहाड़ने-चिंघाड़ने की मूर्खता करना अब व्यर्थ है ।

सुस्त, शिथिल, ललिता के भय से अधिक, उसके आतंक से जकड़े हुए रजनी ने अपनी अटेची कुली को दी ।

प्लेटफार्म पर हृदय की जलन तीव्र होती जा रही है । और ललिता के आश्वासन उसकी अपनी आत्मसमर्पण की अँजुली में पुनः भरते आ रहे हैं ।···हठात् उस दिन कहा-सुनी के बाद रजनी ललिता को आत्मसमर्पण कर चुका था । जब नरेश ललिता की जली-कटी बातों पर हँसने लगा तो वह भी हँस पड़ा था । उसे बड़ा प्रिय लगा था कि वह किसी की आस्तीन का साँप बनने का धोखा न खा जाये । नरेश ने उसके पास आकर कहा था कि ललिता वाचाल है । उसकी वाचालता के व्यर्थ के मायने व्यर्थ में ढूँढ़ने की सरपटक कोशिश न की जाये । और यह कहकर उसने अपनी नवजात कन्या को उसकी गोदी में लेटा दिया था । वह काफ़ी देर से रो रही थी और ललिता ने उसे सँभालने से इंकार कर दिया था । तो रजनी ने ही उसे चुप किया था । वह लिली से बात करने लगा था कि उसकी ममी बड़ी सख्त है कि इतनी प्यारी बेटी पर अपना शासन इसलिए करना चाहती है क्योंकि उसका शासन मुझ पर चलना असम्भव हो गया है ।···और उसके आश्चर्य की सीमा नहीं रही कि उसकी इस बात पर रसोई में कोपभवन के अन्दर बैठी हुई-सी ललिता एकबारगी ही हँस पड़ी थी । वह उठकर बाहर आई और उसने रजनी की गोदी से लिली को लेकर पुचकारा और वहीं मूढ़े पर बैठकर उसे दूध पिलाने बैठ गई ।···रजनी बैठा-बैठा ललिता को देखता रहा और उसने तय किया कि वह इस तरुणी को जब तक

आत्मसमर्पण न कर देगा, उसे आवश्यक चैन न पड़ेगा। दूसरे दिन नरेश के आफ़िस चले जाने पर रजनी ने ललिता से कहा था कि भाभी, मैं हारा और आप जीतीं।

ललिता की आँखें विजय-गर्व से भर गई थीं और उनमें हद से ज़्यादा चमक आ गई थी। विह्वल होकर वह पूछ बैठी थी, "तो फिर कब का मुहूर्त निकाला जाये विवाह का। रेणुका के पिता को भी तो आख़िर तैयारी करनी पड़ेगी। बेचारे लड़की के पिता को हर हालत में कीमत चुकानी पड़ती है। उसके लेखे चाहे उसकी पुत्री किसी युवक पर विजय-लाभ कर आये या कि किसी युवक के आगे वह नतमस्तक होकर आये···"

बात काटकर रजनी ने कहा था कि भाभी मेरी हार का मतलब ग़लत न समझें। रेणुका का निर्णय जो कल हो चुका, सो हो चुका। मैंने आत्मसमर्पण आपको किया है न कि रेणुका को।

ललिता रजनी को देखती रह गई थी। और आज पहला अवसर था कि उसने रजनी को सीधी नज़रों से देखा था और काफ़ी देर तक वह उसे देखती रही थी। और फिर एक रहस्यमयी हँसी हँस पड़ी थी। और एक असीम लाज में सुर्ख होकर वह अपना सिर नीचे कर बैठी रही थी। रजनी ने साफ़ देखा था कि अपनी हार स्वीकार कर उसने मानिनी को ही हरा दिया था।

रजनी विद्रोह करने के लिए जन्मा है। वह सबको थर्राकर, हिलाकर झकझोर देगा और विप्लव मचाते-मचाते वह ख़ुद भी इतना बूढ़ा हो लेगा कि उसका विद्रोह ही उस अन्तिम समय में उसकी सहारे की लाठी बनकर रहेगा। अन्यथा और किस में ताक़त रहेगी कि उस आखिरी समय में उसे सहारे का हाथ बढ़ाये···पर मरने से पहले वह किसी को आत्मसमर्पण कर यह ज़रूर चाहेगा कि वह उसके विद्रोह का उचित ही नहीं, समचित सम्पादन कर दे। काश! यह ललिता ही उसके अब तक के विद्रोह का सम्पादन कर दे।—पिता जी ने भी तो उसे अपना आशीर्वाद भेजा था कि बहू उसे पूँछदार बन्दर से तमीज़दार इंसान बना दे।

इस तरुणी-संगिनी का साथ उसके लिए सरल जीविका बना रहता, इसमें रजनी को उज्र नहीं था। ललिता की देह उसे प्रतिक्षण यह निमन्त्रण, और साथ ही यह चेतावनी भी देती प्रतीत होती थी कि रजनी नरेश के घर में जो पैर जमा रहा है सो सचेत रहे। अन्यथा होने पर (!) वह उखड़ेगा······भारी आवाज़ करते हुए वह उखड़ेगा और अन्यमनस्कता के कठोर स्पर्श से अपने आप समाधान पाकर अनुलंघनीय जीवन में उलझकर रह जायेगा अपने डैनों को फड़फड़ाकर। ठीक ही तो है, वह कुँवारा है। ललिता नरेश से ब्याह दी गई। ललिता और नरेश के सेतु पर यदि वह अंकुश चलायगा तो पहले वह स्वयं गिरेगा और फिर उस टटे हुए बाँध के

पुरजोर प्रवाह में बहकर न जाने कहाँ खो जायेगा सदा के लिए···

रजनी को व्यर्थ की भावुकता से चिढ़ है। वह अन्यमनस्क हो उठता है।

कुली ने कहा, "ओ बाबू, आपका प्लेटफार्म पुल के उस पार है।"

वह पुल की सीढ़ियों पर चढ़ता हुआ सोचने लगा, ललिता भाभी सही! नरेश की पत्नी सही! आमोद की प्रतिमा···यह भी सही! आमोद का यह दम्भ ही ललिता को पत्थर बनाता रहा है कि उसे मूर्त्त प्रतिमा जाना जाये और उसकी पूजा की जाये। अन्यथा ललिता मानवी रूप में तो एक व्यापक नारी थी। असंख्य की संख्या में रजनी के जीवन के जाने कौन-कौन से अमूल्य क्षण ललिता को ईर्ष्या से मुग्ध निहारते रहे हैं···यह स्त्री है? और, स्त्री में इतना आकर्षण होता है? इस ललिता में माधवी से भी अधिक आकर्षण कैसे आ घुसा है?······

आकर्षण में दम्भ नहीं होता। आकर्षण अपने आप में बुरा न होकर एक व्यापी मानवीय सत्य होता है। आकर्षण के आगे जो यह माँसल काया मुख्य हो उठती है, यही दम्भ है और बुराई की जड़ है। ऐसी काया को छुरी से काट-काटकर रजनी छितरा देना चाहेगा···तभी वह दम्भ नष्ट हो सकेगा। उस निर्जीव खण्डित लाश के प्रति रजनी अपना मानवी मोह पैदा कर सकता है, यह विश्वास उसे है। ओह! रजनी कसाई से भी बढ़कर है। वह ललिता की काया का यही दम्भ काटकर अलग न फेंक सका था, इसीलिए वह वहाँ से चला आया है। और इसी मायने में वह ललिता से हारकर चला गया है!

प्लेटफार्म के मुसाफ़िरों ने सँभाला कि रजनी भकभक इंजन के आगे आने की तैयारी कर रहा है। पर उसने सबको झिड़क दिया कि वह गाड़ी में बैठने जा रहा है। और उसने जल्दी-जल्दी अपने लिए कम्पार्टमेंट देखना शुरू किया। एक डिब्बे में निश्चित् संख्या से दुगने मुसाफ़िर और उनके कच्चर-बच्चर भरे हुए थे। इसी में एक फूहड़ पिया की ऊल-जुलूल बातों पर उसकी मूर्ख प्रेयसी दाँत फाड़ रही थी। समय अब नहीं है। रजनी को फजीहत लगी कि इस भम्भड़पन की ठसाठस भीड़ में वह और जगह ढूँढ़े। कुली ने यहीं पर दरवाज़े के पास ही सीट पर अटेची रखकर अपनी हम्माली माँगी।

यात्रियों के हो-हल्ले और खोमचे वालों की चहल-पहल में उसने कुछ बिजली की रोशनी में देखा कि उस सेठ की जेब नफीस तौर पर हल्के-हल्के काटी जा रही है। नोटों का बंडल जेबकतरे के हाथ लग गया है। उसे लेकर वह इधर-आ खड़ा हुआ।

गाड़ी हँकी। कुली ने दुहराया, "बाबू, पैसे।"

रजनी ने कुली की हथेली पर दुअन्नी धर दी। 'यह कम है' कुली ने कहकर

रजनी की हथेली दाबकर नीचे खींच ली। हैंडल में पायजामा अटका और चिर गया। वह सँभला···प्लेटफार्म पर से गिर लाइनों में वह कट मरे कि सँभला। उठकर ज़ोर से तमाचा रजनी ने घुमा दिया। वह कुली के न लगकर जेबकतरे पर जा जमा। ओह! यह क्या हुआ? दूसरी बार हाथ घुमाया कि जेबकतरे ने मायूसी की आँखों रजनी को देखा। ठिठककर हाथ पकड़कर आग्रह किया, "बस बाबू, खुलेआम नहीं। गाड़ी में देख लेंगे। आप अपने डिब्बे में चलें।"

रजनी सुनने-समझने में पागल हो रहा है। गाड़ी बढ़ रही है। दोनों, वह और जेबकतरा, चलती गाड़ी में दौड़कर डिब्बे में चढ़े। इन्हें देखकर गधी-सी एक प्रेयसी अपने माथे का पल्ला ठीक करने बैठ गई, जो कि कनपटी पर से सरक, जूड़े पर आ, गुद्दी पर उलझ गया था। नेत्र निमीलित किये और रजाई ओढ़कर वह चुपचाप सो गई। चलती गाड़ी के साथ प्लेटफार्म पर से कुली की ध्वनि उठी, "ये बाबू लोग···सत्यानाश जाये इनका।"

सेठ अपनी जेब के कतरे जाने पर रो रहा था। रजनी रोष में अंधा बना हुआ बड़बड़ाने लगा, "जीवन के शुभ मुहूर्त में मैं पैदा ही नहीं हुआ हूँ। शुभ मुझे क्यों और कैसे मिले? हर जगह की शक्तियाँ मुझे काटने को दौड़ती हैं।" और सीट पर बैठकर उसने आँखें बन्द कीं और पैर फैलाकर शिथिल हो गया।

व्यक्तित्व बहुत अंशों में रजनी का भयावह है। अभी तक जहाँ-जहाँ भी भटका है, अपनी विकटता में वह सफल रहा है। अपने इस विपथिकत्व की आभा को यदि वह मटियाला बना दे और एक जगह बस जाये, तब भी इतना तो स्पष्ट हो जायेगा कि वह दुनियाँ से परित्यक्त, किंतु बलिष्ठ है। सब को उससे डरना चाहिये। ···लेकिन क्या ललिता भाभी को भी उससे डरते रहना चाहिए?

ललिता के साथ बीती हुई ज़िन्दगी के हर क्षण पुनः पुनः सजीव होकर रजनी के आगे आ खड़े हो रहे हैं। स्वयं ललिता को रजनी के प्रथम परिचय से एक-एक दिन क्षण-क्षण का याद है। रजनी ने कितनी जल्दी नरेश की मित्रता को बाण बना लिया था। उस पर स्वयं तीर बन-बनकर वह ललिता को छिद्रित करता रहा है और वे छिद्र इतने गहरे हो गये हैं कि मामूली बीती बात नहीं हो पाये हैं। वर्तमान का बल पाकर वह बीती बात घनी होती चली गई है और ललिता के लिए जंजाल बन बैठी है। भला ललिता कोई भीष्म पितामह तो है नहीं कि उसके शरीर में एक हज़ार छिद्र हो जायें और फिर भी वह महायोद्धा की तरह से जीवित रहे और मुस्कराती रहे।

अब ललिता एक ओर नरेश से दुखी है, क्योंकि ललिता की देह के अदृष्ट छिद्र साफ दीखने लगने की भ्रांति उसे होने लग गई है। दूसरी ओर रजनी से वह परेशान रहेगी, चाहे वह अब उसके सामने आँखों के उठता-बैठता नहीं रहेगा। अपनी

पुत्री लिली से जीवन में जबरन इस नाते वह बँध चुकी है कि मातृत्व निभाये और उसका पोषण करे। यह मजबूरी अलग ललिता को सता रही है कि वह अब तरुणी भर है या एक माँ भर ? ये सब बातें आपस में मिलकर नियमहीन आनन्द में क्लेश हो उठी हैं। आज तक वह जीवन-साथी की आकांक्षा को स्पष्ट नहीं कर सकी। अक्सर वह सुनाई पड़ती थी यह गाती हुई : "लगा मधुमास गरल मुझे···"

न, ललिता रजनी से न डरेगी।

"बाबू, हम तुम्हारा गुलाम रहेगा,"—यह कहकर जेबकतरा एक ओर उसी के पास सो गया बगल में। उसने नोट निकाले लेटे-लेटे। उनमें से आधे गिने और रजनी की जाँघ के नीचे सरका दिये। रजनी का रौब उस पर पूरी तरह छा गया है। वह रीझ उठा है कि इन बाबू ने हमें पुलिस में नहीं दिया। उसने याचना की बंद आँखें किये बैठे रजनी से, "अब हम पर और नाराज़ न हों।"

पर रजनी क्रोध में बौखला रहा है, "ये रेलवे के कुली···रेलवे निज़ाम के सड़े हुए इंसान···कम्बख्तों को सख्त हिदायत है कि दो आना लें अपनी हम्माली···पर हर यात्री का खून चाटे बिना इन्हें चैन नहीं पड़ता···ओह! ये रेलवे के कुली! टिकट के पैसे देकर भी इनका अपमान जैसे अत्यावश्यक है हर यात्री के लिए···"

जेबकतरा ध्यान से सुनता रहा। डिब्बे के दोनों बल्ब अब जल चुके हैं। असम्वद्ध टीमटाम बनाये वह प्रेयसी अब सो चुकी है और उसका चेहरा कतई ऐसा नहीं लग रहा कि उसका चुम्बन लेने से उसके पति तक को रस मिल सकेगा। उससे सटकर लेटा हुआ उसका पति हिचकियाँ ले रहा है। अन्य सभी यात्री अवश सुविधाओं के बीच तंगदस्ती से यात्रा का बोझा जैसे-तैसे अपने दिलों पर ढोये बैठे हैं और ऊँघ रहे हैं।

रजनी और बड़बड़ाया, " शायद अन्तिम व्यक्ति मैं ही हूँगा जो कि इन रेलवे-कुलियों की चिता को फूँकने का बीड़ा उठाऊँगा ···।" कि उसने आँखें खोलीं और खिड़की से बाहर सिर निकालकर पीछे दौड़ते हुए पेड़-झाड़ियों को देखता रहा। आँख में कोयला आ पड़ा, वह अंदर हो लिया। कि देखे, उसकी जाँघ के नीचे नोट पड़े हुए हैं। थूक लगाकर उँगली से गिने : डेढ़ सौ! शायद इसी जेबकतरे ने मुझे देने को रखे हैं। और खुद सो गया है। नोट उसी जगह रखकर रजनी और भी शिथिल हो गया। कुछ आराम की मुद्रा में, लकड़ी की टेक का सहारा ले, उसके दूसरी ओर हाथ डालकर वह फैल गया। और, अपने हृदय की क्षति-पूर्ति का लेखा-जोखा लेता रहा···अब तक वह भागता रहा है। रुका भी है कहीं अधिक से अधिक, तो ललिता भाभी के यहाँ; पूरे डेढ़ साल। वहाँ से वह क्यों भाग आया ? क्यों न किसी ने उसकी नस-नस तोड़ दी···एक जगह जमकर ताकि वह बैठ सके और···

नहीं तो, गर्म-गर्म फौलाद के सुये ही उसके चुभो दिये जाते और वह घायल पड़ा रहता···माना कि वह अत्यन्त पुष्ट है। रजनी के घाव पुरते देर न लगेगी और वह पुन: अपनी बन्दिशों की दीवारों को तोड़ने में जुट जायेगा बहुत ही जल्दी···

लकड़ी की टेक के पीछे उसे अपनी लटकती हुई हथेली पर किसी के अधरों के स्पर्श का अनुभव हुआ।

यह मधुर स्पर्श···! किसी ने उसकी हथेली पर चुम्बन किया है।

रजनी दुनियाँ के सीधे रास्तों को लाँघकर बीहड़ रास्तों पर चलने वाला पथिक है। चौंकना वह नहीं जानता। पीछे घूमकर उसने नहीं देखा। वह बैठा रहा। कौन रास्ता अब वह चल रहा है, या कौन आज उसके तलुओं से अपने आपको चिथने-दलने के लिए पथ में बिखर पड़ा है और इस प्रकार चर्चित है कि वह रजनी की आस्था को चुनौती देने आ गया है।

किसी मुलायम मुट्ठी ने उसकी कलाई पकड़ी। और उसे नग्न स्तनों पर ले जाकर रख दी। ओह! रजनी के मुँह में थूक के बुदबुद उफन उठे। हथेली और नीचे सरकाई गई। यह किसी का मुलायम पेट है चिकना-चिकना और···

शक कैसा ? यह नारी विपथगा है। इतनी आकांक्षा है इसे कि रजनी के रौद्र की अपेक्षा यह उसका बल चाहती है। हाँ, बल ! वय पाने पर मेरे पौरुष का संचित बल। मुझ में चौंतीस वर्षों का बल है। किंतु क्या यह मुझे जानना भी चाहेगी पूरी तरह ? अभी तो अपने आपको ही जता रही है। अपने आपको जताना उद्वेग नहीं है। परत्व का अपमान किंचित हो। पर अपने आपको जताने में, और विशेष-कर किसी स्त्री को और वह भी किसी तरुणी को, बड़ा ज़ोर लगता है दिल का और दिमाग़ का। अनिवार्य चाह अपने आपको जताने में यही रहती है कि अपने अभाव दूसरे में उँडेलकर उसके अभाव जान लिये जायें। तब रुकने का और खड़े होने का एक सहारा मिले और एक प्रस्तुत-आस्था पर दूसरी प्रस्तुत-आस्था टिके। रजनी की हथेली पर भाग्य-रेखायें अपनी अंकित हैं। अपनी प्रस्तुत-आस्था इस अज्ञात तरुणी ने (रजनी को विश्वास हो गया कि यह बुढ़िया कतई नहीं है!) पूरी की पूरी उघाड़कर अपने मूल रूप में मेरी हथेली पर टिका रखी है।

हथेली पर पुन: एक मधुर स्पर्श। सुमधुर अधरों का एक मीठा चुम्बन।

इस तरुणी की यह अभिलाषा ? रजनी गुमसुम बैठा रहा। बीहड़ मार्गों में कुलाचें भरने को रेलगाड़ी बनाई गई है। खबर न थी; ललिता से टूटकर यहाँ अन्य नारी नाम्नी अमिट-सत्य की विक्षिप्त लहरों में तरंगहीन वह आ पड़ेगा। उसके माथे में त्यौरियाँ इकट्ठी हो चली हैं। अज्ञेयों के सम्पर्क में मात्र रिक्तता है। द्वंद्व रजनी में भरता गया। क्या इसकी सम्पूर्ण काया को तहस-नहस कर डाले ? अपने नग्न-स्पर्श

द्वारा यह स्त्री कितना भारी हल्ला मचा रही है और मैं हूँ कि उसे अभी तक अनसुना कर रहा हूँ। कब चाहा था मैंने किसी फूहड़ प्रेयसी का नग्न स्पर्श ?

उसकी हथेली बलात् उच्छृङ्खलता से पुनः नग्न स्तनों पर धर दी गई।

रजनी ने झींककर हथेली वहाँ से हटा ली। वहाँ पर माँस में रक्त अधिक है, मुलायम है, और उनमें दुग्ध नहीं ही पैदा हुआ दीखता···एकबारगी ही वह विचार पाया···स्तन पुत्र के लिए होता है···ललिता भी कैसे तृप्त-तृप्त प्रार्थनीय-सी लिली को पयोधर पान कराती थी। और अब जो दूसरी नवजात कन्या और हो गई है वह तो उसके पयोधरों का पीछा ही नहीं छोड़ने का उपक्रम किये रहती थी।

हथेली उठाकर उस अपरिचिता की गर्दन पर रख दी गई। नहीं, वह गल-बहियाँ न लेगा। सोच रहा है···क्या गर्दन दबाकर इस षोड़शी की मृत्यु कर दे। वह रजनी प्रामाणित है। उसे पत्नी चाहिए कि नहीं, यह समस्या अभी पैदा ही नहीं हुई है। फिर भी ऐसी छलछलाती षोड़शी तो कतई नहीं चाहिए कि स्वस्थ चिंतन जिसमें न हो और रास्ता चलते···किसी भी युवक पर जो गहरी हो उठे।

यह क्या···मुट्ठियों ने हथेली अपने अधिकार में ही रखीं। उसे उठाया और··· रजनी से न रहा गया। उसने एक हल्की चपत उसके कपोल पर चित्ती-सी बैठा दी, और उसकी केशराशि में उलझते-सुलझते वह उसका कान पकड़ पाया। दो बालियाँ, एक ईयररिंग वहाँ झूम रहे हैं। सुप्राप्त इस कान को उसने उमेठना शुरू किया··· अब बोले यह कि उसे, दोषी व प्राणघातक रजनी को, यह अपने लगाव में लेगी ? पर महसूस किया, उसकी मुट्ठियाँ संलग्न नहीं हुईं कि रिस प्रकट करें और कान से उसकी उँगलियों को झटककर छुड़ा लें कि अजी आप यह किस भाँति की प्रीत दिखा रहे हैं ?

तो यह क्या चाहती है ?

रजनी भोला है और अट्ठाईस साल का है। उसे नहीं मालूम कि ऐसे वक़्त वह कैसे पेश आये ? उसने सदा मातृत्व को, अपने घर में और पास-पड़ौस में, बस रोते हुए देखा है। ललिता भी माँ बनने के बाद से एक-दो बार रोई है और इस तरह उसने भी रोने का श्रीगणेश कर लिया है। या, एक-दो तरुणियों के यौवन की अवश लहरों को व्यर्थ का विद्रोह करते देखा है···

वक़्त बीतता गया। सहसा इंजन ने सीटी दी। सिगनल नहीं हुआ है तो हो आये। उत्सुकता हुई कि गाड़ी अभी रुकी जाती है। रुक जाने पर यदि रजनी आग्रह भी करेगा तो भी यह युवती फिर···

गाड़ी की धीमी गति से आशंकित उस युवती ने उसकी हथेली छोड़ दी और अपने जम्पर के बटन बन्द कर लिये। रजनी का दिल धक्क रह गया। अपमान, कि

हुआ, कि दिल की मर्ज़ी, कि तबियत···यह क्या है ? भर्त्सना से रजनी ने हथेली इस ओर कर ली। मुन्न देखा : हथेली झूठी है और तमाम थूक से सनी है।

सामने की कई सीटों पर यात्री उठ बैठे। सामान की उठका-पटकी शुरू होने लगी। स्टेशन आया तो गाड़ी ठहरी। रजनी पीछे नहीं घूमा, स्तब्ध सीधा बैठा रहा। गर्दन पर आँखें होतीं तो शायद कुछ देख पाता। अब अंदर जलन है, बेचैनी है। फिर भी इतनी व्यग्रता नहीं कि पीछे फिरकर देख ले।

कि कोट का कालर पीछे से पकड़ा गया। चेहरा पीछे की ओर बलात् रजनी का घूम गया। रक्तवर्णी बुर्के में छिपी हुई कोई नारी-सी खड़ी है।

बुर्के के अंदर से नमस्ते हुई। उसके मियाँ सामान उठाकर नीचे उतर गये। कुली बुलाने के लिए जो वह ओट में हुए तो उसने पान की पीक थोड़ा बुर्का हटाकर थूकी और रजनी को आँखों की जालियों में से बिदाई की दृष्टि से देखा। रजनी ने समुचित उत्तर हाथ जोड़कर दिया।

विवश वह अपने मियाँ के साथ नीचे उतर ली। गार्ड ने सीटी दी। प्लेटफार्म पर यात्रियों की चीख-पुकार। वह चलता-फिरता बुर्के से ढँका बंडल मुसाफ़िरख़ाने के बाहर, सड़क पर, अपने मियाँ के पीछे घिसटता जा रहा है। वह आवरणमयी, मायूसी भरी प्रेयसी !

गाड़ी आगे चली। वह चली जा रही है। आँखों से ओट न हुई, तब तक रजनी की नज़र उधर ही रही। नयनों के कोर से उफनते ज्वार में अब वह रुका। अपने अभिसार में उसे संदेह हुआ। प्रश्न था, उथला होकर भी मैं चुप क्यों रहा। उससे बात की होती, परिचय किया होता। तब कहता : तुम विपथगा नहीं, काम ज़रूर विपथगा-सा कर रही हो। मरोगी तो सही, अब सौंदर्य की मौत न मरोगी। मरते दम भी तुम्हारे सौंदर्य का धर्म जीवित रहना चाहिए। हर युवक को इतना ग़लत न समझा जाय कि उसकी हथेली पर भी चुम्बन ले लिया जाय तो वह ऐसा हो जाय कि जैसे तो किसी बटन को दबाते ही विद्युत-प्रकाश जल उठे। यही कि जैसे उस युवक के यौवन की विद्युत का करंट चालू कर दिया गया हो···नहीं, मैं उससे कहता कि मैं ऐसा ग़लत बेमाय़ने का युवक नहीं हूँ।···

कम्पार्टमेंट में सब सोये हैं। आधी सीट पर जेबकतरा ऊँघ रहा है। आधी सीट पर तुड़मुड़कर रजनी भी सो गया। लाइन से टक्कर लेती हुई गाड़ी ख़ूब तेजी से चल रही है। बाहर अँधेरा है। वह स्वप्न देखने लगा।

'भाभी ललिता ?'

'भाभी तुम नरेश से ब्याही गई हो ?'

'भाभी, किन्तु तुम मुझ से विनोद कर मुझे प्रेमाधीन न बना दो। मैं नरेश

का मित्र ही ठीक हूँ और समझ लेना चाहता हूँ कि जैसे नरेश अभी भी अविवाहित है···'

'भाभी, किन्तु मुझ से देवर होना भी अखरता है।'

'भाभी, तुम्हारी मृत्यु कब होगी ? तुम्हारे मरते ही मैं आत्महत्या कर लूँगा।'

'भाभी तुम स्त्री हो ? कभी पुरुष होने की बात सोची है तुमने ? मैं तो स्त्री होना नहीं चाहता। प्रलय तक पुरुष ही रहना चाहता हूँ। और सदा एक माँ चाहता हूँ। मन के संतोष ठीक-ठीक मैंने पाये हैं। इससे दो लाभ यह हुए कि एक अपनी अज्ञता में निरंकुश नहीं बना। दूसरे, भाभी, आपकी कल्चर का संवेदनापूर्ण वैयक्तिक उग्र भाव मुझ में आ गया···'लगा मधुमास गरल मुझे'। इस तरह सदा को आप से स्नेह-पाश में जकड़ गया हूँ। भाभी, आप प्रकृति से बृहत् मालूम हुईं मुझे। प्रकृति बहुत अंशों में सीमित है, जिस पर हम बैठे-बैठे अखिल दृष्टि डाल सकते हैं। मैं जब तक जीवित रहूँगा, ये आसमान के तारे टूट-टूटकर निःशेष हो लेंगे। भाभी, आप निःशेष न होना। अगले जन्म में मैं तुम्हें किसी अन्य युवक के स्पर्श से छूतीला न होने दूँगा···'

'भाभी, मेरे आक्रोश में तुम बन्द हो सकती हो, यह कोई गुनाह नहीं है। पर नरेश के स्पर्श से नई से नई औलाद का प्रसव करना तुम बन्द न कर देना, यही हाथ जोड़कर मेरी अर्ज है !'

जेबकतरे ने हिलाकर रजनी को उठा दिया और कहा कि बाबू, एक बात कहूँ। स्वप्न से चौंककर उसने कहा कि कहो।

"आप हिटलर को जानते हैं ?"

"नहीं, सुना है कि वह यूरोप का एक नया दानव है। वैसे बात उससे कभी नहीं की है।"

जेबकतरे ने कहा, "हाँ जी, वह इंसानी स्वप्नों का जीवित दानव है। उन इंसानी स्वप्नों का जो कि बहशी दिमाग़ों के जरिये देखे गये हैं। फिर भी उसकी इति-श्री जाग्रत रूप से स्वीकार करनी चाहिए। हिटलर का एक ही मायना मुझे समझ में आया है कि भविष्य में इंसान सब कुछ हो जायेगा, सिर्फ़ अपनी गृहस्थी का मालिक न रहेगा; और न रहेगा एक पति और न रहेगा एक पिता। कितनी निराशा होती है कि हिटलर सब-कुछ के बाद सकल संसार को गुमसुम बना देगा। हम ठीकरे-सा जीवन लिये उसासें भरेंगे और वह गर्वमुक्त, सहज, क्रोधी, बियाबान जंगल में भी दहा-ड़ने वाला हर एक के अवगुंठन को बलात् खोलेगा, हम में विचार-विन्यास करायेगा और यकलख्त दानवी संस्कार देते हुए मात्र हेय की छानबीन कराने में ही हमें मटियामेट कर

देगा। न सही, भविष्य के लिए की गई इन बातों को आप न मानें, उसकी राजनीति-क्षुधित ज़बानदराज़ी हम में और भी अवरोध-विरोध उपजायेगी। हालांकि वह जीवित हैं, हम भी जीवित हैं, और लड़ाई बड़े ज़ोरों पर चल रही है। और भारत भी इस बड़ी लड़ाई में दिन-रात झुलसने लगा है।"

यह जेबकतरा है ? ...लेकिन क्या सचमुच ? रजनी ने उसे निकट से पढ़ते हुए कहा कि आप अपनी बात कहें। हिटलर की बात करते हुए नाहक अपने को न छिपायें।

'आप' शब्द को सुनकर जेबकतरा ज़रा आश्वस्त हुआ और उच्चतल पर आसीन हो गया। बोला, "यस मिस्टर, सोचें, कभी मुझे एक लड़की हुई थी। पर वह मेरी कहाँ रही। भिन्न-भिन्न रिश्तों के नामकरण में उड़ी-उड़ी वह डोल रही है। मैं भगवान् को नहीं मानता। मैं अपनी उस बेटी को भी इंकार करता हूँ, जिसे उस भगवान् ने जन्मा था। अभी आपको जो बुर्केवाली मुग्ध कर गई है, वही मेरी बेटी थी। अब मुसलमान हो गई है। और उसी को भरपेट देने के लिए मैं जेबकतराई का धंधा सँभाले हुए हूँ।"

तो इसने देख लिया है कि वह मेरी हथेली पर चुम्बन दे रही थी। सुनते ही रजनी आहत हुआ। कहा, "मिस्टर, दुर्घटना से ही दुर्घटना की पैदाइश होती है। आपकी बेटी मुसलमान हो गई है, यह कोई घटना नहीं है। वह मुझे मुग्ध नहीं कर गई, यह आपको बतला दूँ। वह सिर्फ़ मुझे एक चुनौती देने बैठी थी; सो हारकर चली गई है। हाँ, यह खुशी की बात है कि आप उसके पिता हैं और जेबकतरे हैं।"

सामने की तीसरी सीट पर लेटा हुआ जाट हड़बड़ाकर उठा और तड़कने लगा। उसने खूब खाँसकर ढेर सारा बलगम थूका और फिर बदहोश होकर सो गया। जेबकतरे की खाँसी भी जैसे जाग गई, और खाँसते-खाँसते उसके प्राणों पर बन आई। रजनी को लगा कि इसे तपेदिक की खाँसी है। छाती-माथा पकड़कर उसने बे-इंतहा खाँसा। शायद आज इस समय उसके अन्दर उस पुत्री की सुइयाँ कोंच उठी हैं। जाट ने फ़र्श पर जो थूक दिया था उस पर कीट-पतंगे भिनभिनाने लगे थे। जेबकतरा इस बात को देखकर गरम हुआ और उसने एक अस्फुट-सी गाली भी उस जाट को दी। स्वयं उसने खिड़की के बाहर ही थूका। ज़रा दम आया तो बोला, "बाबू, हमारे देश में लड़ाई नहीं चल रही, फिर हमारे देश की औरतें क्यों इस तरह भूखे यौन से हाहाकार करने लगी हैं ?"

मेलगाड़ी की स्पीड अब बहुत ही तेज़ हो गई है। रजनी ने जेबकतरे को एक नज़र सीधे देखा और खड़ा हो गया। दरवाज़े के पास जाकर उसने दरवाज़ा खोला और दौड़ती हुई मेल ट्रेन के बाहर झूलकर उसने इंजन की दिशा को देखा कि अभी उसका

शहर आने में कितनी देर है। पर दरवाज़ा खुलते ही बहुत सारा कूड़ा और बहुत सारी धूल अन्दर घुस आई। तो जल्दी से उसने दरवाज़ा बन्द किया और एक ओर खाली पड़ी हुई जगह पर वह चहलक़दमी करने लगा। और सिगरेट पीने लगा। हर क़दम पर जो भी चीज़ मिलती है वह कितनी सड़ी हुई है। यहाँ वह मूर्खा बुर्केवाली मिली तो कितनी सड़ी हुई थी! और यह जेबकतरा मिला है तो कितना सड़ चुका है। और अब तपेदिक से मरने के अनकरीब है। क्या देश के अधिकांश लोगों की ऐसी ही चिंतनीय हालत है?

उसने सुना, जेबकतरे ने दुबारा खाँसते हुए बड़बड़ाया है, "वह पुत्री क्यूँ मुझ से बलात् जन्मी?"

रजनी सिहरकर काँप गया। इस जेबकतरे ने उसको हिला दिया है। पर वह चहलक़दमी करता रहा कि पैरों में लेटे हुए एक आदमी से उसका पैर टकरा गया तो उसे लगा कि यह आदमी ज़िंदा नहीं है। उसने चप्पल से पैर निकालकर उस आदमी की छाती पर पैर रखा तो साफ़ हो गया कि यह सरदी से ठिठुरकर इसी गाड़ी में मर चुका है। न जाने कब से मरा पड़ा है। कोई भिखारी मालूम पड़ता है। जेबकतरे ने भी यह देखा और हत्बुद्धि-सा रजनी को देखता रहा। लपककर रजनी ने दुबारा वह दरवाज़ा खोला और लाश को धकेलकर बाहर चलती ट्रेन से धकेल दिया। लाइन के सहारे पड़ी हुई गिट्टियों में कुछ खड़खड़ाहट हुई, पर तत्क्षण ट्रेन आगे बढ़ गई।

अब तक कई यात्री जाग चुके थे। वे सभी रजनी के इस कृत्य से परेशान हो उठे और कुछ भयभीत। पर रजनी उन्हें निश्चित और शांत दीखा। वह सिगरेट फूँकता हुआ चहलक़दमी करता रहा।

कुछ देर बीती। जेबकतरा रजनी की अटेची में खोंसे हुए अखबार को खोलकर पढ़ने लगा। उसने ज़ोर-ज़ोर से पढ़ना शुरू किया—

"इन्दौर। पिता-पुत्री के संयोग से उत्पन्न एक पुत्री गटर में पड़ी मिली थी। शिनाख्त से अपराधियों को पकड़ा गया। अदालत में पिता ने कहा, 'मजिस्ट्रेट साहब, हम पेड़ बोते हैं फल खाने को। अपनी स्त्री से यह फल मैंने पाया। इसका रस लेने से कब चूकता। रस लेकिन इसलिए नहीं लिया था कि बेहया बनाया जाकर यहाँ इस कटघरे में लाया जाऊँ। मुझे अपने कर्म पर कैसी भी शंका नहीं है। पहले यदि पता होता तो और उपाय करता और क़ानून की नज़रों से साफ़ बच निकल भागता। बच्ची को गटर में फेंका ही इसलिए था कि इसे कोई उठाले। हमारे समाज में आज सभी औरतें गटर में ही पड़ी हुई के माफ़िक हैं, लेकिन आपका क़ानून उन सब को बंदिश में न डालेगा और न वैसा सरदर्द करने की चिंता मोल लेगा। ख़ैर, यह मासूम बच्ची मेरी पुत्री से मैंने पैदा की है। यह फल का बीज है जो मुझे नहीं खाना। खाऊँ तो

सही, पर जब तक यह पनपेगा, शायद मैं जिंदा न रहूँगा। भला सोचिये, आज तमाम रजवाड़ों में क्या होता है। खासकर उनमें, जिनमें लड़कियाँ बाहर शादी के लिए नहीं भेजी जातीं। लेकिन सरकार उनकी चिंता क्यों ले। आपके न्याय में आकर्षण होगा···लेकिन मुझे वैसा नहीं जँचता। सो, इसे उठाया और गटर में फेंक दिया। आप चाहें तो इसे अपने घर में बोयें और फल आने पर खायें···मेरी आत्मा को शांति मिल लेगी···फिर बीज निकले···उसे बोयें और खायें। फिर बीज बोयें और फल आने पर खायें। फिर बीज···"

मजिस्ट्रेट साहब ने कानों में उँगली दे ली। चिघाड़कर अपराधी को उन्होंने चुप किया, और फैसला सुनाया कि अपराधी को पागलखाने भेज दिया जाये और उसकी पुत्री को आर्यसमाज के हवाले कर दिया जाये जो कि उसके भविष्य का संरक्षक बनने को तैयार है।

रजनी ने यह समाचार सुना। तो यह पिता क्या शाश्वत सत्य है। निरीह साँसों में संतप्त, पुत्री का यौवन पिता को निठुर बना सका या पिता ने पुत्री को निठुर बना दिया ? मानस का कुण्ठित स्पन्दन है यह ? या हमारी सामाजिक व्यवस्था का विकृत कोढ़ है ? या, यह एक प्रश्न है कि हमारे परिवार कौन सी पतित नग्नता को पहुँच चुके हैं ? झीनी नैतिकता के दायरे के अन्दर ! अपराधी पिता का यह कैसा विद्रोह था कि वह अपनी पुत्री का चर्म ही उधेड़ने बैठ गया था, यह देखने, कि इसमें भी तो वही रक्त-माँस है जो कि मेरी पत्नी में था। और यदि यह विद्रोह नहीं है, तो निश्चित् तौर पर यह हमारी इंसानियत का एक अनिवार्य तथ्य है जो कि काँटे-सा गड़ गया है !

वह कुछ कहे कि गाड़ी रुक गई। रजनी ने अटेची सँभाली और उतर गया। नीचे प्लेटफार्म पर उतरकर उसने गाड़ी की खिड़की के ऊपर सिर उठाया और जेबकतरे से हाथ मिलाया। अब जेबकतरे ने कहा, "मैं बी. ए. हूँ और मेरा नाम पद्माक्ष है।"

रजनी सुनकर और भी आहत हो गया। फिर भी बोला, "मिस्टर पद्माक्ष ! अपराधी पिता की पुत्री में और आपकी बेटी में एक ही अन्तर नहीं है और बाकी सब-कुछ है। दोनों ही घृणित समाज की विभीषिकाओं से कसाईखाने की गायों की तरह तप्त निशानों से दग्ध की जाती रही हैं और ग़रीबी में सड़े अन्न की तरह सड़े यौन की भोग्या बनाई जाती रही हैं। अन्तर यही है कि आपकी बेटी आज स्वयं अपनी ओर से घृणित यौन के कीटाणु मुझ में संचरित करने आई थी। उस बेटी में उसके अपराधी पिता ने मार-पिटाई के ज़ोर पर विषाक्त कीटाणु संचरित किये थे। ऐसे समाज के पोषण के लिए आप जेबकतरे जैसा अपराधपूर्ण कृत्य करते जा रहे हैं, यह

कहाँ तक शोभनीय है ? इस तरह आप अपनी बेटी को एक ऐसा नारकीय कुण्ड बनाने पर तुले हैं जिसमें कई सहस्र युवक झोंके जा सकेंगे···"

जेबकतरे की खांसी बढ़ चली और वह खिड़की पर सिर पटकता हुआ खाँसता रहा। कुछ चुप हुआ तो रजनी ने आगे कहा, "आपने देखा कि मैंने उस लाश को चलती गाड़ी से फेंक दिया। सिर्फ़ इसलिए कि जन-संस्कृति की इस मौन पहेली की मौन निष्ठुरता को सामने देखते ही लोग आँख न मींच लें कि कोई बिना सहारा पाये समाज में ऐसी बेगानी मौत क्यों मर गया ? हमारी आज की पुलिस को देश की बेगानी मौत से ताल्लुक नहीं है । वह तो उस मौत से ताल्लुक रखती है जिसका व्यापक षड्यन्त्र वह स्वयं अपने हाथों अपने विदेशी आकाओं की देखरेख में आयोजित कर रही है। पुलिस का काम सिर्फ़ आज एक रह गया है कि वह किसी को भी पकड़ ले और उसे क़ानून की न्यायौचित्य न बनाकर उसे क़ानून की भयावह विभीषिका बना दे। आज क़ानून की भयावह विभीषिका के खौलते नरक-कुण्ड में हर अवश, दीन, हीन, पंगु और निस्सहाय इंसान सिर्फ़ जीवित रह रहा है और अपनी साँसों को बेमायने बकरार रख रहा है । अजीब है यह युग और अजीब है इस युग की ज़िन्दगानी···"

गाड़ी चल दी । जल्दी से जेबकतरे ने पूछा, "जी, मेरी बेटी आपको मुग्ध करती हुई अपने मियाँ को इन्कार कर रही थी या उससे प्रतिकार ले रही थी ?"

गाड़ी की रफ़्तार के साथ तेज़ी से अपनी आवाज़ फेंकते हुए रजनी ने कहा, "जी नहीं, वह अपने मियाँ को इन्कार कर रही थी।"

पलटकर जेबकतरे ने देखा कि रजनी के स्थान पर उसे दिये हुए डेढ़ सौ के नोट पूर्ववत् रखे हुए हैं। तो क्या इस बाबू ने तमाचा मुझे न मारकर कुली को मारा था ? जल्दी से उसने सिर बाहर निकाला और प्लेटफार्म के प्रकाश में हाथ हिलाया। देखा कि वे बाबू भी उसके उत्तर में हाथ हिला रहे हैं।

गाड़ी के ओझल हो जाने पर रजनी रुका। गेट पर टिकट देकर वह बाहर आ गया। चलते हुए उसने टिकट के पैसे ललिता से ही माँगे थे। ललिता का बोलने का साहस तो कल दिन हुआ नहीं था। फिर भी वह इतना जरूर बोली थी, "हो सके तो ये रुपये वापिस भिजवा देना। उनके हैं ।"

अब रात के दो बजे हैं। माधवी के यहाँ से भागने के बाद से आज दो वर्ष बाद वह लौटा है। रात्रि के अन्धकार में से कठिन शीत के थपेड़े आकर उसे झकझोर रहे हैं। पर वह कठिन डगों से शीघ्र-शीघ्र शीत खाता हुआ माधवी के मकान की ओर चल रहा है।

इस समय उसके दिल पर पद्माक्ष की पुत्री एक बोझ-सी जमी बैठी जैसे

तेज साँसें ले रही है और उसके बदन से सटी गोदी में चढ़ी हुई है। वह सोच नहीं पाया कि उस बुरके में ढँकी नारी का अर्थ क्या था? उसके जीवन को किस छोर से शुरू कर पढ़ा जाये? यह जरूर था कि वह आज के विश्वव्यापी तुमुल युद्ध में सेनानिनी का रूप लिये मेरे पास आई थी···वीर सेनानिनी की भाँति। फिर स्त्री का सैनिक रूप भला हो भी क्या सकेगा?

कसकर उसने एक अँगड़ाई ली और उसके साथ एक उबकाई। उसी के साथ उसकी आँखों में आँसू-से छलक आये। तो क्या ये आँसू हैं? पर मैंने रोना छोड़ दिया है; एक अरसा हुआ।

अब उसने तेज़ी से चलना शुरू कर दिया, जिससे कि कहीं उसके मुँह से शीत की शीतकार न निकल जाये। वैसे भी शीत में ख़ून जमने की तैयारी करने लगता है। इस समय मैं माधवी के यहाँ चल रहा हूँ। उसके लिए तो खौलता हुआ ही ख़ून चाहिए।

५

अपने जर्जर-केन्द्र पर वापिसी[1]

देखो न, रात दो घंटे निरन्तर रोई।

औरों की मौत को तो ये आँखें देख लेती हैं, स्वयं की मौत को किस भाँति, कैसे देखें? अन्तिम जो नीर इनसे ढल रहा है, अपने आक्रोश में उसको कैसे छू, अपने प्रति सहानुभूति उपजा लूँ? इसी कारण मेरे चेहरे का मौखिक-सुहाग साक्षी होता जा रहा था कि मरने से पहले मुझे बहुत विथा हुई थी और रोई भी बहुत थी। पर, आँसू मेरे मौखिक-सुहाग के लाल-लाल मधु पर खारिश पोतकर नीचे ढुलकते और धूल में सनते जाते थे। उन्हें अपनी प्यास बुझाने के लिए अपनी अँजुली में कोई नहीं ले रहा था। स्त्री सगों के बीच ही रोये तो ठीक हो। यहाँ मेरे समस्त अश्रु बेकार जायेंगे···।

मैं और फफक उठी थी। भर रोई थी। तो···मैं···मर जाऊँगी?

नित्य अनगिनत कुमारियाँ यौवन को बेबुझाये, भयावनी आँखें निकाल, जाने किसे खाने ठंडी हो जाती हैं। मर जाती हैं। न, तू इस निर्जन में न रो। तू, माधवी, २२ वर्ष की ब्याहता, बिन-सन्तान है। और यह एकान्त तेरे इन आँसुओं को खारा बना दे रहा है। वे झरकर मिट्टी हो जायेंगे। इस धरती की प्यास का क्या ठिकाना रे! बिन पुत्र-पुत्री यौवनाओं की और भी भूखी है यह धरती। रो वहाँ, ताकि पोंछने वाले का रूमाल गीला हो उठे। पगली! ये आँसू किन्हीं को बड़े मीठे लगते हैं, जो लालायित हैं कि उन्हें संचित करें और···

मैंने अपने आँसू पोंछे तो, हाथ उठाने से, मेरी कलाई में पिरी हुई चूड़ियाँ झनझना उठीं और मैं विधवा-सी सशंक रह गई। पलक भी स्थिर हो गये। निरी काँच की ये गोलाइयाँ उनकी स्वस्थ गोल काया में जैसे घूम रही हों···ऐसा मुझे दीखा। उन्हें जाग्रत-कल्पना में देखती रही। किसी ने मेरे कानों में ध्वनि झंकृत की, 'युग बीतने पर भी पत्नी का अतीत पति के माध्यम से ही दीखने को मिलेगा।' और ज़ोरों से फफककर मैं रोने लगी।

माधवी! अभी सुहाग तेरा चालू है। रोने-धोने के फज़ीते में सुहागिनी की हाय पति को पस्त कर दिया करती है। भला रहे, अपनी उलझन का निपटारा करले, और सदा अलग रहे। माँ में आँसू हुआ करते हैं। ५ वर्ष में तुम माँ न बनीं तो हानि

---

१. माधवी की डायरी से : १ जनवरी, १९४२।

कुछ नहीं है इसमें । पत्नी हो और रम्य हो । बैठ सोचो, रम्य कौन नहीं है ? तुम नहीं हो तो रोग्रोगी ? पर रोने का एकमात्र समूचा मायना यही है कि तुम माँ होना चाहती हो । सन्तान के अधीन होने की कठिन आकांक्षा में तेरा मानस सड़ रहा है । न रो । वे इंसान हैं और तुझे अपने संग रखने ले आये हैं । वे तुझे सन्तान नहीं देने के, तो क्या करोगी ? देने को वैसे वे स्वयं तो हैं । चाहे उनकी पूरी काया ले ले । पर उनके पैरों की गति तो न रोक । उनकी दृष्टि तो धुँधली न कर ! क्या चाहती है कि वे घुटने तुड़ा बैठ जायँ और तेरे चश्मे में से यह दुनिया देखते रहें । यह प्रतिकार विडम्बना में तुझे नहीं फबता री !

कुंवारा उन्हें रहना था । तू एक बोझा-सी, सन्तान के प्रश्न का विष उगलने वाली साँपिनी यहाँ आ जमी । जमी रहो । जंग तो नहीं खा रही । तुझे प्यार वे करते हैं ।

कुछ आँसू मेरे सूखे, तो अँगड़ाई ले आसमान निहारने लगी और अनुरणित चाँद देखती रही । व्योम की अपेक्षया इस समय चाँदनी कहीं अधिक प्रकट है । सहसा फिर दिल को आघात लगा, जब मैंने देखा और सोचा, कि इस चाँदनी का रँडापा यही है कि ये तारे इस चाँद से रिस लिये क्षितिज की ओर फिसल रहे हैं, घृणा लिये उससे दूर भाग रहे हैं । रात का प्रतिरूप तो बहुत जल्दी बनी यह चाँदनी । पर रात की श्री इन तारिकाओं का, गला घोंट रही है ।

यह भरी-पूरी रात स्वयं सतृष्ण है और सरक रही है कि भोर हो ! मैं सुहराई । देर हो चुकी है । ठोड़ी से हथेली दूर की और उठी । वे सो गये होंगे शायद ।

मुझ में यौवन है, यह कहते हुए मैं विनीत हूँ । इसे मैं चाहती नहीं, यह बताने में अपने तईं मैं निर्मम हूँ । प्रथम-मिलन की वैयक्तिक आकांक्षा में ५ वर्ष पहले वे मुझे व्याकुल बना चुके हैं । जीवन को सुचारु चलाने में मैं अनभिज्ञ ठहरी । किस-किस की सुनूँ । कौन-कौन की सोचूँ । और आफ़त पल्ले यह है कि उनके सब मित्रों की लोभनीय दृष्टियों से कृश हूँ । सभी भर्त्सना घनीभूत कर मुझ में सुप्ति-सी उत्पन्न कर देना चाहते हैं । उनके एक मित्र ने एक दिन सिनेमा-हॉल के अँधेरे में, उन्हीं की मौजूदगी में मुझ से कहा था, "सुना है माधवी जी आप कालेज में बहुत अच्छा नाटक किया करती थीं । यदि मेरे साथ हीरोइन खेलने की अनुमति दें तो एक 'कॉमेडी' की तैयारी की जाये !" मानती हूँ जो हो रहा है, चंगा है । किन्तु 'वे' स्थिर मित्र बने रहें, मैं चैन में रहती चली जाऊँगी ।

बचपन की ज़िद मिटी कहाँ है कि चाँदनी के पखवाड़े दिन सोऊँ और रात जागूँ । चाँदनी रात सदा रहती चली आती, बड़ा वैसा रहता । इन दिनों यह मिज़ाज

का रोग और भी तसल्ली से है। तब, माँ की घुड़कियाँ सुनने को मिलती थीं और जब-तब बिस्तर में दुबकना होता था। आज-कल 'मून-लाईट' में प्रहरिनी बनी हुई अपने-उनके बीच की हर दिन की खुदती खाई की चौकसी करती रहती हूँ। यदि कहीं मैं आत्म-घात करने भी बैठूँ, मेरी यह प्रहरिनी मेरी आगाही तो कर देगी, 'अरी, ओ आत्मघातिनी! सचेत, जीती रह। तुझ में यह क्या अधकपारी हो गई। तुझे यहाँ खाई पर आँखें फैलाये बहुत कड़ी निगरानी करनी है कि कहीं जीवन-निशा से ऊबकर, वे इसमें न डूब मरें। रुक, और यह जल भी सोख। कदाचित् कूदें भी तो वे डूबें तो न। हल्की चोट ही लग लेगी महज़।'

आज शाम से चाँदनी में छत पर लेट रही थी। अपनी बनाई कविता का पहला छंद हल्के-हल्के गुनगुना रही थी, 'विकल कटाक्ष में अपरूप लावण्य है···।'

कि उन्होंने पुकारा, "माधवी!"

शहर से लौट, कलित-आशय से वे मुझे खड़े हुए घूर रहे थे। तुरन्त उठ बैठी। काँपते हुए कहा कि बैठें।

"कविता मुझ में भी है माधवी।"

मैं झँझलाई। इनकी कविता की तक्षशिला में काव्य ही उपजेगा न सन्तान तो नहीं? चुप रही।

उन्होंने सरस गाया—

"निष्ठुर सखि की वेदना छोर-विहीन।"

मानव-लिखित साहित्य में नारी बहुत अंशों में विवाह की पूरक है। नारी-निर्मित युगीन-अनुभूतियों में मानव अमांगलिक-कथन समझकर दूर नहीं रखा गया है। अवश्य नारी से गाई गई कविता और कवि से पठित गीत के अंतर्प्रांतीय-संघर्ष से एक नया जीवन या नया जीव उत्पन्न हो सकेगा। मैंने सोचा कि उनके साथ मैं भी गाऊँ और दोनों की कविता के दो छोर मिलें और······

पर गा न सकी। अपने जीवन में मुझे वे देख रहे हैं। मेरा जीवन उन्होंने छुआ तक नहीं है। यही सोचकर जी भर आया और झड़ी आँसुओं की मैंने बाँध दी।

वे रुके और चीखें, "चाहती हो, मैं और तुम्हारे साथ रोने बैठ जाऊँ?"

मैं रोती रही और उनकी गोदी में पसर गई।

मेरा गला घोंट मुट्ठी से उन्होंने दाबना शुरू किया। मारना चाह रहे थे मुझे। ग़ड़गड़ाहट गले में मैं न लाई। न चीखी। पड़ी रही बेबस हो। साँस उनका भर रहा था और गला मेरा घोंट रहे थे। थक, मुझे तिलमिलाती छोड़, वे उठे और सामने के कमरे में चले गये। शीतल चाँदनी से होश में हुई तो यहाँ नीचे चली आई। क्या करूँ? पुनः बैठ गई रोने······

कि अब उठी। गर्दो-गुब्बार, झाड़-झंकार, तूफ़ान आ रहा है। मैं 'रेलिंग' पर चढ़ने लगी कि धूल से आँखें भर उठीं। कि रेलिंग के मैं चिमट गई। लग रहा है, रेलिंग का ऊपरी सिरा दीवार से उखड़ गया है। और मैं जो अब गिरी कि हड्डी-पसली का पता न चलेगा। अब गिरी.... बहुत ऊँचे हूँ ....कि किसी ने मुझे गोदी में उठाया और ऊपर कमरे में ले आया। और द्वार पर मुझे खड़ी कर दी। वे सामने बैठे हैं। बोले, 'आ गई हो तो अन्दर आ जाओ और आँखें खोल लो। खिड़की मैंने बन्द कर लीनी है। उफ़! ज़रा-सी देर में कमरा मैला हो गया है।'

तो मुझे रेलिंग की दुर्घटना से कौन बचाकर लाया है? ये तो कतई नहीं लाये दीखते। आँधी चालू है, धूल-सना एक झोंका दरवाज़े में आ कमरे में घुमेर खा गया। वे बोले, "माधवी! अन्दर जल्दी आ किवाड़ लगाओ।"

जो सांकल लगाई, तो छूट पड़ी। कुछ शरणार्थी जैसा रजनी अन्दर घुस आया। विप्लवी से अधिक ये शरणार्थी क्रान्ति का संदेश ले आते हैं। रजनी ने जल्दी से सांकल लगा दी। नमस्ते की। पास उनके बैठ गया, बोला, "सेठ जी ये आँधी-अंधड़ इंसान का चित्त कभी नहीं दुखाते। इंसान आज ईश्वर-सा आलसी होता जा रहा है। यह तूफ़ान ऐसे ही बेगानेपन की चिकोटियाँ काट लिया करता है कि हम कूड़े-करकट को साफ़ करें और अंग-अंग हमारा पसीने से तर हो ले।"

सेठ जी हत्प्रभ, सफ़ेद बुर्राक मुँह लिये, रजनी को ताक रहे थे। वह हँसा, "माधवी! आज मैं न आता, तो तुम नीचे गिरकर ज़रूर खत्म हो जातीं।"

मैंने कहा, "बैठो, अभी चाय लाई।"

पर उसने मुझे रोका। बोला, "माधवी! देखो, दूर गाड़ी के सिगनल की हरी रोशनी चमक रही है। उस रोशनी को इस अन्धड़ की पर्वाह नहीं है। उल्टे, वह आने वाली गाड़ी को संकेत दे रही है कि इधर खतरा नहीं है। प्रकाश सुरक्षा का प्रतीक जो ठहरा! किन्तु उस गाड़ी में बैठे इंसानों को यह सूचना वह प्रकाश कभी नहीं देता। चाँद और सूर्य की सूचना इस इंसान ने कभी भी स्वीकार नहीं की है। यह टिमटिमाती रोशनी उसी अस्वीकृति की अपेक्षा रखती हुई सदा यात्रियों को घृणा से घूरती रहती है कि क्यों इस इंसान ने तम की विभीषिका से भास्कर और ऊषा का परिचय जाना है। स्वर्णिम-ज्योति, माधवी, दीपशिखाओं में नहीं मिलने की। स्वर्ग की कल्पना तुम कभी न करना। क्यों न सिर्फ़ दिन चाहती और रात को......।" और चौंककर वह चुप हो गया। हल्के से रजनी ने उनकी आकृति देखी, फिर मुझे देखा। फिर बोला, "माधवी, अंधड़ की गहरती हुई सायँ-सायँ सुन रही हो?"

मैंने उनकी क्रुद्ध-दृष्टि से टकराकर पीठ इधर कर ली। रजनी कहता है, "क्यों नहीं सिर्फ़ दिन चाहती?" अरे, रात्रि में ही नारी का सूर्य उदित होता है।

उसी सूय-प्रकाश में पुरुष उसे क्यों नहीं खोजता ? वह रात्रि में यदि नारी को ढूँढ़ पाये तो दूसरे दिन, दोनों के मिलन से, महासागर की लहरें जित्ते तपस्वी-दीप अगम दृढ़ता से जलते मिलेंगे !!!

खिड़की बाहर देखा, वर्षा शुरू हो गई है । तीखी पानी की रेख खिड़की के शीशे पर आ टिकती है और तब बूँद बनकर नीचे फिसलने लगती है । जीवन के मधु की रेख कण-कण हो, फिर रेखा बनती हुई, कतरे-कतरे सीपी में संचित होते मैंने भी देखी है ।

सुनाई दिया, रजनी बोला, "सेठजी, इस कमरे में बैठे हुए हम अपनी रक्षा कर रहे हैं ।"

रजनी दो साल पहिले हमारे यहाँ आ चुका है । अब तक क्रियात्मक शक्ति को वह कोरे मानसिक वैभव से ही संतुष्ट कर पाया है ।

ठंड को सिसकी उन्होंने ली । मुझे ख़याल आया, ओह ! चाय ! स्टोव जलाकर वह रख दी गई । रात मेरा गला घोंटे इनके हाथों खून हो जाता तो रजनी के दो अश्रु-मुक्ता न गिरते ? बाहर बारिश ज़ोरों की है । ओले गिर रहे हैं । पंछियों के डैनों की फड़फड़ाहट । उस गाय को वहाँ बरांडे में जगह न मिली, तो ओलों की चोट से चीखी । शिकायत ईश को फेंक रही है, 'न्याय !' ओह ! मैं भूली । ईश्वर किसी आदिम युग की संतान थी जो मर चुकी । अब हम हैं इस सृष्टि को चलाने के लिए सुन्दर स्त्री-पुरुष !

बल्ब 'फ़्यूज़' हो गया । बाहर बिजली कौंध रही है । पानी उबल आया तो चाय की फंकी उसमें झौंक दी । देखा, चाय के लिए शक्कर नहीं है । तड़प, यहीं कोने में खाट बिछाई और पौढ़ रही । ठंड मुझे ओढ़ रही है । बाहर पानी, अंधड़ और घड़···ड़······जाने कब सो गई ।

"आप जग रहे हैं, सेठजी ! सुनते हैं दूर शहर में फैक्टरी की घड़घड़ को । वह अब चल रही है और सब सोये हुए उसके शोरशरापे को सुनने को बाध्य हैं । यहाँ छत पर मैं चल रहा हूँ । चाहता हूँ, मैं भी चलूँ तो और लोग सुनते रहें मेरी आग्नेय-पगध्वनि को ।"

नींद टूटते हुए ही मेरे कान में किसी के अधर हिले, "माधवी ! अरी उठ न । ये तेरे रजनी बाबू हैं !"

"रेणुका ?" उसे चुपके से मैंने अपनी बगल सुला लिया ।

भूल में मैंने लेटे-लेटे कहा, "रजनी, चाय पीलो ।"

उफ़ ! कुँवारे रजनी को न जीत पाऊँगी । उनसे ही मैं मोर्चा ले सकती हूँ । भगोना उसने ओठों से लगाया और गट-गट बे-छनी चाय, बे-मीठे चाय वह आतुर पी गया ।

मुझे रजनी अपनी कोख मे मूढ-गर्भ-सा लगा जो मुझे दारुण कष्ट दे रहा है !

"बीबी, मुझे इनसे मिला दो न ।"—रेणुका ने कहा ।

रेणुका और रेणुका के नारीत्व के बीच भी सचेत विद्रोह यही है, मैं इतनी सुन्दर और रजनी ने मुझ से ब्याह करने से इन्कार कर दिया । शीशे के आगे बैठ कर—वह घण्टो बाल सँवारती रहती । लिपस्टिक की गुलाबी अपने गुलाबी-मण्डित अधरो पर रचती और अपनी महकती मनमोहकता का बिम्ब देखते नही अघाती । फिर पाऊडर लगाती । दिल मे उसके खार काट करता रहता कि वह इतनी ललित और आकर्षक क्यो नही है जो रजनी को भी भा पाये । शीशे के प्रतिबिम्ब से आँख फाड़-फाडकर उसने इतना पूछा है कि वह प्राय अधी-सी हो गई है । अपने समृद्ध माता-पिता की यह पुत्री इस तरह जीवन के प्रथम चरण मे ही जब उलझ बैठी तो एक ललिता-देवी ने, जिनके यहाँ, डेढ साल से रजनी ठहरा हुआ था, इसे मेरे यहाँ भेज दिया है कि मै रजनी को जैसे-तैसे मना सकने की आखिरी क्षमता रखती हूँ । अधी होने के बाद से उसके माता-पिता ने यही भेज दिया था कि रजनी प्राय मेरे यहाँ आता रहता है । कभी मिल ही लेगी ।

ललिता देवी जी ने मुझे एक पत्र शुरू मे इस प्रकार लिखा था, 'माधवी देवी जी, आपको यह पत्र लिखने का अधिकार मैंने रजनी जी से ले लिया है । आपको यह नम्र सूचना है कि रजनी जी घर से भागकर यहाँ आ गये थे और अब यही सुरक्षित रह रहे है । मुझे आशा है कि अब शायद वे यही आराम से स्थायी तौर पर रह सकेंगे । आपकी शुभ कामनाओ की मै इस महत् काम मे प्राथिनी हूँ ।

'एक दुखद घटना यहाँ घट गई है । उसका दुख मुझे कितना है यह शब्दो में बताना मेरे बूते की बात नही है । मैंने अपने आत्मविश्वास मे निश्चित होकर रजनी जी को इस आशय से एक अपनी निकट की सखी को पढाने के लिए नियुक्त कर दिया था कि शनै-शनै वे उसको निकट से देख सकें । पर रजनी जी ने मेरे आशय को एक-दम गलत समझा और अपनी इस जिद् पर कायम रहे कि वे उस सखी को निकट से देखने के हामी एक दिन भी न हो सके । और आज वह सखी उनकी इस इन्कारी पर इतना गहरा आघात खा गई है कि आधी अधी हो गई है ।

'रजनी जी अपने आप मे एक दुर्घटना है । उन्होने अपने हाथो तो नही, अपनी जिद् से यह दूसरी दुर्घटना कर दी है । इसी के उपचार के लिए आपके समक्ष उपस्थित हो रही हूँ ।

'आप रजनी की पूरक काफी समय तक रही है । और आपको अपना केन्द्र बनाकर आज वे एक ऐसे गोल दायरे मे घूम रहे है जिसमे कैसा भी जीवन-चिह्न न

तो उत्पन्न हो सकेगा, न वहाँ पर जीवित रह सकेगा।

'मुझे विश्वास है कि आप इसलिए मुझे अपना सहयोग देंगी कि इस मामले में दो जानों के शुभ-अशुभ प्रत्यावर्त्तन का सवाल हिलगा हुआ है। आपकी शुभाकांक्षिणी, ललिता देवी।'

उसे ले बाहर आई। रजनी में कुत्सित-श्लेष रुके रहने का तारतम्य रहता चला आया है। उसकी गोल्ड ऐनक की फ्रेम में से उसका नीरव-अभिमान हृदय-निक्कण से रुन-भुन रुन-भुन भरता रहता है। स्वयं वह सोचे बैठा है, मैं इतना सुन्दर! और अब वह चाँद और बलती सिगरेट के बीच बल खाते हुए धुएँ को एकाग्र देख रहा है।

"अपने आभिजात्य से शान्ति पा रहे हो," मैंने यूँ ही पूछा।

चौंककर वह पलटा। हाथ की टक्कर ने उसका चश्मा गिरा दिया। उठाकर उसी क्षण लगा लिया। "क्या कहा तुमने माधवी?"

"आप रेणुका हैं?"

"तो मैं क्या करूँ?" रजनी ने बिना देखे जल्दी में कहा।

इस प्रलयंकारी ज्योत्सना से रेणुका पीछे ही मेरे बगल में सिकुड़ गई। अब वर्षा नहीं है। भोर की लाली पूरब में है। चाकी पीसी जा रही है। ओस, नव-वधु-सी, पीनम फूलों की ओर सुमधुर चल रही है। रजनी दूर के मील के भोंपे से धुआँ उगलता हुआ देखने लगा।

उसी चिमनी की प्रतिच्छाया यह रजनी!!

अब रजनी क्षितिज में सूर्य उगता हुआ देख रहा है।

उसके इस बेशऊरपने से खीझकर मैंने कहना चाहा कि मनुष्य अग्नि का रूपांतर है। अग्नि का बना वह स्वयं नहीं। ओ रजनी! तुम अग्नि से सर्वस्व पोपित न हो पाओगे। चिर-अग्नि की नई कोंपल, जो स्वयं वधु है, जहाँ फूटती देखो, उसकी रक्षा करो। पर कहा यह, "आप आपसे मिलना चाहती हैं।"

रजनी ने अब रेणुका देखी, और शायद पहचान भी लिया, "हाँ, हाँ, आप मुझ से मिल सकती हैं। माधवी चलो, नीचे बैठेंगे। मुझे इस चाँदनी से घृणा है। मैं तो सूर्य चाहता हूँ।" और स्वयं जीने पर नीचे हो लिया। और नीचे पहुँचकर उसने आवाज़ दी, "माधवी, मैं घूमने जा रहा हूँ। जल्दी आ जाऊँगा।"

मैंने कहा, "रेणुका, दुखी न होना। ये ऐसे ही है। इन्हें संशय का उद्रेक है तो क्या, भावुकता की धारणा है तो क्या?"

"और मैं अंधी होऊँ तो क्या?"—पीतमहीन रेणुका आँसुओं में ही समाप्त हो गई। जाकर माला जपने बैठी अपने कमरे में। मैंने देखा उसकी ये पतली-पतली

उँगलियों के पोरवे जीवन के हर कंप को नहीं सँभाल पायेंगे । रेणुका का क्लेश कुछ सच हो सकता है । पर इस तरह रेणुका का राम-नाम जपना तो एकदम ग़लत है ।

ऊपर चली आई । सीढ़ियों में 'वे' मिले । विषाद में मुझे न देखा । तैयार, बाहर जा रहे हैं । मैं रुकी, पर वे उतरते ही रहे । खट-खट-खट-खट । खटाक ! मोटर भी उनकी चालू हो गई ।

"माधवी !"—बाहर से रजनी गूँजा ।

बेसब्रा ! यौवन के छिपे कंप को युगों से बह रहे तरुणाई के बहाव में अभिन्न करना चाहता है बिन लोक-मर्यादा के ? मैं नीचे उतरी और बाहर पहुँची । सामने नदी है । पुल पर के रेलिंगों पर वह झुका हुआ है । मुझे देख उसकी आँखें चमकीं । "माधवी !"—वह बोला और रुककर, फिर पानी की धार देखता रहा । पास पहुँची तो गम्भीर, पूछा, "माधवी, सेठजी मेरे बुलाने पर कुछ कहते तो न थे ? वे कुछ सोच तो नहीं रहे हैं ?"

रे शिष्टाचार ! शादी न होने तक रजनी बच्चा ही है । संतान ऐसी गम्भीरता कैसे पिता में ले आती है ?

"और हाँ, माधवी ! मैं यहाँ कोई बेबी नहीं देख रहा हूँ ।"

रात उरतल में संतान की गहराई को अम्बार पानी से मैंने भर दिया था कि वह खाली न रहे और किसी के व्यंग-ताने उसमें पुनः-पुनः न गूँजें । रजनी ने वह क्षण-भर में सोख ली । अब वहाँ संतान फिर घुमड़ उठी । आँसू मेरे टपकें-टपकें कि रजनी अस्थिर होते ही बना, "हैं, माधवी, रोना नहीं । तुम्हारे कोई बच्चा नहीं है तो रोती हो ?"

और न ठहरी मैं । लौट आई । आ, पौली बंद की, कि किवाड़ों को रजनी ने भड़भड़ाकर खोल डाला । वह अन्दर तेज़ घुस आया । पाखाने के ऊपर उसकी अटेची रखी है । उठाई, "चल रहा हूँ माधवी । रात घर लौट रहा था तो अंधड़ चल पड़ा था । फिर देखो, जाती बेर अंधड़ के आसार दुबारा उफन रहे हैं । अच्छा, माधवी !" बहुत तेज़ सामने की सीधी सड़क पर अब वह जा रहा है । अब बिंदु-सा दीखता है । इंसान बिंदु-सा पैदा होकर बिंदु-सा ही रह जाता और बिंदु-सा ही मर जाता, तो ? तो···तो ? तो क्या जानूँ मैं ?

६

आख़िर रजनी दूल्हा बना

घर पहुँचा तो रजनी ने आवाज़ दी, "माँ !"

माँ आटे में सने हाथों बाहर दौड़ आई और उसे अपनी बाहों में समेट लिया। और समेटकर आर्द्र कंठ न जाने क्या कहने लगी ? खिलखिलाते हुए रजनी ने जैसे-तैसे अपने को छुड़ाया और बोला कि माँ, अब मैं कहीं नहीं जाऊँगा।

अन्दर पहुँचकर उसने हँसते हुए भाभी से नमस्ते की। कुछ मज़ाक करने के लिए रजनी ने मुँह खोला कि सामने पिता जी आ खड़े हुए। उनका चेहरा पहले से रूक्ष हो गया है। युवावस्था ने उनको जैसे त्याग दिया है। कठोर स्वर में बोले, "रजनी, कौन सी गाड़ी से आ रहे हो ?"

रजनी ने मुस्कराते हुए कहा, "अभी सुबह वाली से।"

वे बोले, "बड़ी बहू, फौरन रजनी के लिए खाना बनाओ। और देखो, तुम मेरे पीछे आओ।"

माँ ने कहा, "ठहरो जी ! अभी आया है, ज़रा सुस्था ले। बेटा, तू तो मेरे साथ आ।"

पिता जी ने कड़ककर कहा, "नहीं, तुम इधर आओ।"

माँ रोने को हो आई। रजनी पिता जी के पीछे हो लिया।

बैठक में पहुँचकर पिता जी ने रजनी को बैठाया। कुछ देर वे इधर से उधर चहलक़दमी करते रहे। फिर बोले, "आज शाम को ही तुम्हें दिल्ली अपने मामा जी के यहाँ जाना है।"—और तुरन्त बाहर चले गये।

रजनी बैठा-बैठा पिता जी की कठोरता से कुंठित सोचता रहा कि दिल्ली क्या ज़रूर जाना चाहिए ? पर इस घर का क्लेश आज भी वैसा ही ताज़ा है। और यह माँ क्या यूँ रो-रोकर ही अपनी श्वासें ख़त्म कर देगी ?

अन्दर से माँ ने रोते हुए कहा, "रजनी ! रोटियाँ खा जाओ।"

× × ×

शाम गाड़ी में बैठकर रजनी माँ की दयनीय दशा से दुखी रो उठा। कुछ सुस्थ हुआ तो उसने सिगरेटें पीनी शुरू कीं और देर रात हुए, वह धूम्रपान करता रहा। हल्के से उसने बड़बड़ाया, "अब मैं ज़रूर योग्य होऊँगा और तब, तुम्हें, पिता जी से अलग, अपने पास रखकर शान्ति और सुख दूँगा।"

रजनी लेटकर सोचने लगा कि वह क्या करे ?

एक नींद वह सो चुका तो हठात् उठ बैठा । उसके दिल ने कहा, "उसे कवि बनना चाहिए !"

× × ×

सुबह नौ बजे दिल्ली आ गई। अटेची सँभाले वह गाड़ी से नीचे उतरा तो एक क्रिश्चियन जैसे सज्जन ने उसके कंधों को झकझोर डाला ।

"भाई रजनी खूब आये । तुम्हारे पिता जी का तार कल ही मिल गया था; और आज भी भेजा है । बस, यहीं से कुतुबमीनार चलेंगे ? और देखो, यह रिक्शी है; और ये हमारे रजनी बाबू हैं, रिक्शी ।"

रजनी ने विना शिष्टाचार के केवल कुछ मुस्कराकर रिक्शी को देखा और दूसरे क्षण वह दिल्ली स्टेशन की भव्यता को देखने लगा । कैसी भीड़ है । यही दिल्ली है । भारत की राजधानी । रजनी का क्षीण उत्साह कुछ चंचल हो उठा ।

रजनी के मामा जी ने कहा, "भाई, तुम हमें डैडी कहोगे । आओ, थके मालूम पड़ते हो, कुछ चाय-नाश्ता कर लें ।"

स्टेशन के रेस्तराँ में पहुँचकर एक ओर पीठ कर रजनी अंग्रेजी दैनिक में डूब गया और डैडी की किसी बात का उत्तर न देते हुए, वह चुस्कियाँ गट-गट चढ़ाने लगा । यह जरूर उसने देखा कि प्याला खत्म होते ही रिक्शी ने उसको दूसरा प्याला चाय 'सर्व' कर दी है ।

डैडी ने कहा, "रजनी बाबू ! तुम हमसे कुछ संकोच न कर सकोगे । लो ये सिगरेटें । तुम्हारी पीली उँगलियाँ कह रही हैं कि तुम ज़बरदस्त स्मोकर हो ।"

कुछ शर्माकर रजनी ने सिगरेट चास ली और फिर अखबार में डूब गया । डैडी ने उठने को कहा, तो वह उठ गया । और उनके पीछे चलते हुए, स्टेशन से बाहर आकर कार में बैठ गया । उसके तईं सिकुड़कर रिक्शी आ बैठी । रिक्शी के तईं डैडी । रजनी रिक्शी से दूर, विस्मय में दिल्ली देखने लगा । 'कार' चलने के साथ दृश्य बदलने लगे । वह तन्मयता से उन बदलते हुए दृश्यों को देखने लगा······

'कार' अब चढाई पर चढ़ने लगी । तीनों ने ड्राईवर की पीठ पर से झाँककर देखा, सामने कुतुबमीनार खड़ी है । भीड़ को हार्न दिया गया । दूसरे क्षण 'कार' मीनार के नीचे जा खड़ी हुई । तीनों उतरे । आज मेला है । रंग-बिरंगे वस्त्रों को पहने हुए रंग-बिरंगे स्त्री-पुरुषों को उन्होंने देखा । डैडी ब्वॉय से बोले, "थरमस निकालो ।"

एक-एक चाय का कप डैडी ने और रजनी ने पिया। दोनों ने सिगरेटें सुलगाईं। रिक्शी ने चॉकलेट का टुकड़ा चूसना शुरू किया । चलें, अब कुतुबमीनार पर ।

मेले का उफान इस समय चढ़ रहा है। बच्चे खिलौने ख़रीद रहे हैं। न मिलने पर वे रो देते हैं। औरतें अपने बढ़िया से बढ़िया वस्त्रों के प्रदर्शन में लिपटकर आई हैं, पर पारस्परिक ईर्ष्या में बेचैन हैं कि और भी उत्तम प्रदर्शन किया होता। यूँ मेले में उन्हें आनन्द नहीं आ रहा है। कुतुब तो प्रायः सभी पहले भी देख चुकी होंगी। आज महज़ मेले की रौनक बढाने ही वे यहाँ आई हैं। लोग हैं कि बच्चे-औरतों के खोने की चिन्ता से मरे जा रहे हैं। 'भाड़ में जाये यह मेला।'

कुछ विदेशी सैनिक उस गेस्ट-हाऊस से निकले। उन्होंने भीड़ के कुछ चित्र लिये और हँसने लगे। उन्होने भी सोचा कि अब कुतुब पर चढ़ेंगे।

कि प्रवेश करने के लिए सामने का कुतुबुमीनार का द्वार कुछ सुविधाजनक मालूम दिया। विदेशी आगे आये। और तीनों के आगे बढ़े। रजनी ने सिगरेट का धआँ भर-भर खींचते हुए कहा, "अभी गुम्बज के अन्दर भीड़ की गर्मी होगी। थोड़ा ठहर न जायँ ?"

सामने विदेशी सीढ़ियों पर चढ़ चुके थे। लेकिन अन्दर गर्मी की हुमस पाकर सीटियाँ बजाते हुए बाहर लौट आये। वे अब भी हँस रहे हैं। चॉकलेट चूसती हुई रिवशी कुतुब की चोटी की ओर मुख उठाये देख रही है कि बच्चे वहाँ पहुँचकर किलकारी मारते हैं, औरतें अपने पतियों से घूँघट किये हुए न जाने क्या नीचे देखती हैं, और बेचारे पति कोई गिर न जाये, एक इसी चिन्ता में मरे जा रहे हैं, 'भाड़ में जाय यह मेला······'

डैडी ने कहा, "गर्मी-वर्मी कैसी जी ! मेले का लुत्फ़ ही यह है। लो, हम टार्च जलाते हैं। तुम दोनों पीछे-पीछे आना।"

पहली सीढी पर उन्होंने क़दम रखा। विदेशी भी टार्च के लाभ से वंचित न रहना चाहते थे। वे भी पीछे हो लिये। दोनों विदेशियों के पीछे रहे। ये अमरीकन हैं। उनमें से एक जल्दी-जल्दी अपनी प्रेम-कहानी सुना रहा था। इस समय वह बोला, "वह अब हवाई-द्वीप में रह गई है। पत्र उसके मिल नहीं रहे हैं। जिससे अन्दाज़ा किया जाता है कि उसने किसी और से सम्पर्क कर लिया होगा।"

दूसरे ने टिप्पणी की, "सैनिक ही कौन अपनी प्रेमिकाओं के प्रति उत्तरदायी होते हैं। प्रेमिका और सैनिक···ये दोनों चलतू शब्द हैं। फिर वह प्रेमिका और हमारे ये कैप्टिन हैरी मुशकिन।"

इस पर सब विदेशी सैनिक ज़ोर से अट्टहास कर उठे। गुम्बज में आज भीड़ के कारण ज्यादा बदबू है। चॉकलेट ख़त्म होते ही रिवशी ने रूमाल से नाक ढँक ली।

सब सँभल-सँभलकर टूटी और भग्न सीढ़ियों पर चढ़ते रहे। सहसा देखते

क्या हैं कि कुतुब का जहाँ बाहर से लाल चिट्टा रूप है, अन्दर से वह जीर्ण हो रहा है। डैडी ने अंग्रेज़ी में कहा, "इंसान भी अन्दर से ही पहले क्षीण होता है। थोड़ा-थोड़ा करके उसके ह्रास के चिन्ह काया पर विस्फोट के रूप में फूटते रहते हैं।" पर उनके आगे के शब्द विदेशियों की भारी खिलखिलाहट से अनसुने हो गये। एक कह रहा था, "क्या मज़े की बात कही है। युवक अपनी युवावस्था भर तक योद्धा रहे और और यूँ ही देश-देश की युवतियों का प्रेम-पात्र बनकर घूमता रहे। भावी नवसमाज का इससे अच्छा आधार और क्या हो सकता है?"

दूसरे विदेशी ने इस गवेषणा को और भी हास्यास्पद बनाते हुए जी भर हँसकर कहा, "पर इस प्रेम-प्रवास में आगामी सन्तति महा लज्जा का कारण न बने, इसलिए यह प्रेम बर्बर भी न हो और स्वयं इन्सान को भी पराजय न दे। निग्रह से हर स्त्री की पवित्रता और विश्व-शान्ति सुरक्षित रहेगी।"

कि सीढ़ियों पर वे रुक गये। और इस कथन पर उन्होंने खूब ही-ही-ही की। फिर चढ़ने लगे। ये अपने देशी साथियों से यूँ खिंचे हुए हैं, शायद उनकी टामी अंग्रेज़ी ये न समझ सकें।

सब-कुछ सुन-समझकर डैडी ने पैंट की जेब में हाथ देकर अपना पाइप निकाला। अंग्रेज़ी-ज्ञान का प्रदर्शन करते हुए जिह्वा को मरोड़कर, रुकते हुए, अंग्रेज़ी में बोले, "अजी, मेरा 'पाऊच' देना।"

रजनी ने अनसुना कर रिक्शी से पूछा, कि क्या माँगा गया है?

वह झिझककर बोली, "वह तो 'कार' में छूट गया है।" फिर नीची दृष्टि कर चढ़ती रही। शुरू से बराबर सीढ़ियाँ गिनती आ रही है। अठावनवीं सीढ़ी पर अपने पदतल रखे तो सैंडल का फीता खुल गया। इसी समय विदेशी, जो, काफ़ी पीछे थे, एक दूसरे को ढकेलते हुए डैडी की सीढ़ी पर चढ़ आये। उनसे एक-एक ने हाथ मिलाकर अपना परिचय दिया, "हम लोग आज ही लाहौर से यहाँ आये हैं और कुछ दिन ठहरकर बर्मा की ओर जाने वाले हैं। आप टार्च का प्रकाश कर रहे हैं, इसके लिए धन्यवाद। लीजिये, यह हमारा 'पाऊच'? इसमें ख़ास पनामा का तम्बाकू है।" और उन्होंने उनके पाइप में तम्बाकू भरकर उसे जलवा भी दिया। ये सब सीढ़ियों पर खड़े हो गये थे, सो ऊपर से उतरने वाले और नीचे से चढ़ने वाले दर्शनार्थी भी रास्ता रुका देखकर खड़े हो गये थे। इस पर एक हंगामा खड़ा हो गया और आवाज़ें कसी जाने लगीं कि कौन है जो रास्ता रोककर यूँ बादशाह कुतुबुद्दीन बनकर खड़े हो गये हैं।

इन्होंने रास्ते की छूट दे दी और अपनी बातों से लगे। डैडी ने कहा, "आप लोग यह अन्याय क्यों करते हैं, मैं तो कहूँगा, यह अनाचार क्यों फैलाते हैं? युद्ध से

त्रस्त देश-देश की जनता हाहाकार कर रही है। उनकी संतानें अभी अबोध हैं, और इस युद्ध के पचड़े से अनभिज्ञ हैं। और फिर देश-देश की अबोध बालायें तो इस युद्ध में स्वयं शान्ति की स्वर्णिम आशा-रेखायें हैं। सैनिक बनकर मानव-हत्या का अनन्त अपराध और गहन कलंक तो आप अपने माथे पर ले ही लेंगे। इसके साथ-साथ यह अपराध तो न करें कि पीड़ित और विक्षुब्ध और आतंकित परिवारों की इन अबोध ललनाओं को अपनी युद्ध-रक्त से रक्ताभ वासना का शिकार बनाकर उनकी पवित्रता अपहरण करलें और दुनियाँ की इन आशा-रेखाओं के सुनहलेपन को कालोस-राख बना दें।"

इनमें से एक अमरीकन सैनिक ने अपना पाइप जलाते हुए कहा, "एक दिल की बात कहूँ तो क्षमा कीजियेगा। युद्ध एक अभियोग है या सैनिक होना एक अभियोग है? जब कि युद्ध ललकारा जाता है और सैनिक उस चुनौती को स्वीकार करता है? ये दोनों बातें विवादास्पद हैं। मेरा निजी ख्याल है कि युद्ध एक अपमान है। पुराने सैनिक अपनी प्रतिशोध और प्रतिहिंसा की मानअग्नि को बुझाने के लिए नये सैनिक बनवाते हैं।"

प्रेम-कथाकार सैनिक ने अपने इस साथी के श्लेष का, बिना आपत्ति के, आघात सह लिया। कुछ मुँह बनाकर और बिना अर्थ हँसते हुए कहा, "लेकिन युवक भी तो अबोध होने की दुहाई देकर बूढ़ों का अपमान कर सकते हैं। मेरा अर्थ है, नागरिकता भी सैनिकों का अपमान कब नहीं करती आ रही है। जी नहीं, अबोध कुछ नहीं, रौरव कुहराम से कलपता हुआ विश्व कुछ नहीं, योद्धा कुछ नहीं,······यह सब साँप की केंचुली बदलने के माफ़िक़ है। देश-देश की बालायें सैनिकों से प्रेम करती हैं सो अपनी देशीय सामाजिकता की केंचुली बदलती हैं। अपनी मृत्यु के बाद प्रत्येक व्यक्ति नई सन्तति छोड़ जाता है। नई सन्तति ही सब कुछ है।"

एक बंगाली सपत्नीक इसी क्षण उतरते हुए यह अंतिम वाक्य सुनकर चौंके। अधेड़ उम्र हो जाने पर भी वे नई सन्तति के तकाज़े का अनुभव नहीं कर सके हैं। सब सैनिक यह अनुभव कर अट्टहास करने लगे। अपनी मूँछों को सिकोड़कर डैडी गम्भीर हुए और बोले, "देखें, सामाजिकता की केंचुली बदलने का अर्थ है कि वह कोई कृत्रिम आवरण···इच्छा से या अनिच्छा से···धारण कर रहा है। केंचुली स्वाभाविक चीज़ होती है। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि दुनियाँ की कोई भी बाला अपनी सामाजिकता की केंचुली बदलकर स्वभावतया सैनिक-दाम्पत्य नहीं चाहेगी। सैनिकों का भोग सहन करने वाली कुछ विशेष युवतियाँ होती हैं जो सौतिया डाह से मानसिक कमज़ोर होती हैं। (रजनी सुनकर सिहर गया) आप महज़ उनकी कमज़ोरी का फायदा उठाते हैं।"

और यह अस्सीवीं सीढ़ी थी। पर परेशान हुई कि यहाँ तो शासन और नवयुग की बहस छिड़ी हुई है। रिस और झुँझलाहट में उसने इधर नहीं देखा। पर डैडी ने कहा, "रिक्शी, इधर आओ।" फिर उसका परिचय विदेशियों से कराया, "ये मेरे साले के बहनोई के भतीजे की प्रपौत्री हैं और यहाँ सिर्फ़ आज दिन भर को ठहरेंगी।"

एक सैनिक ने पूछा, "आप भारतीय ललना हैं। मान लें, विदेशी लोग भारत पर आक्रमण करते हैं और मान लें, कोई अन्य विदेशी आपकी सहायता कर उस आक्रमणकारी को भगा दे तो आप इस विदेशी सहयोगी का सम्मान कैसा करेंगी? उत्तर देने से पहले यह और मान लें कि देश का कोई भी युवक और वृद्ध राष्ट्र-सुरक्षा के संघर्ष में जीवित नहीं रहा है।"

रिक्शी रजनी की बात सुन चुकी थी। अब उसकी ओर देखा। रजनी तपाक से बोला, "गहन अंधकार की राजनीति में स्त्रियाँ बस दृढ़तम पौरुष के चरणों पर नत् हो जाना जानती हैं।"

रिक्शी ने रजनी की बात सुनी। दृष्टि उसने नीची की और कहा, "मैं उस विदेशी के राखी नहीं बाँधना चाहूँगी। अपनी शेष-सन्तति के पोषण करने में ही अपना संतोष जानूँगी। आज जौहर का ज़माना लय हो चुका। आज का कर्तव्य अधूरा नहीं रहना चाहिए।"

डैडी ने इस बात को स्पष्ट कर सब को समझाया। सुनकर वे चौंके। एक अमरीकन ने डैडी से कहा, "आपके प्रश्न में और मिस रिक्शी के उत्तर में एक ही तीव्र वेदना है जो हिन्दुस्तान नेशन की अपनी है। हमें आश्चर्य है कि भारत के युवकों में आज इतना परिवर्तन क्यों हो रहा है? क्या आज के सभी युवक इन रजनी महोदय का अनुसरण कर रहे हैं?"

डैडी ने उत्तर नहीं दिया। टार्च जलाई और फिर चढ़ना शुरू कर दिया। रिक्शी फिर पहले की तरह सबकी पीछे चली। रजनी इस बार सिगरेट के धूएँ में अपने को छिपाता हुआ डैडी के साथ हो लिया। वह समझ नहीं पा रहा है कि आज कैसी बुद्धिजीवि दुनियाँ के दैत्यों के बीच वह घिर गया है। अभी तक उसके जीवन में माधवी थी। फिर ललिता आई। उन दोनों के सामने वह दीन रहता था, पर उसकी किसी बात का उत्तर देने का वे दोनों साहस कहाँ करती थीं। और जहाँ-जहाँ वह गया, गूँजता-चीखता ही वह रहा। आज पिता जी ने उसे इन डैडी के पास क्यों भेजा है? और क्यों ये डैडी उसे निर्बुद्धि घोषित करवाना चाहते हैं……

डैडी ने अपना सिलसिला जारी रखा। फिर पाइप भरा। कहने लगे, "भारतीय युवकों में आज हिम्मत बहुत है। उत्साह बढ़ा-चढ़ा है। उनके मानसिक क्षितिज पर उनके हृदय-सूर्य का प्रकाश भी तीव्र है, उनकी आँखों की दिव्य-दृष्टि की दूरदर्शिता भी

स्पष्ट है। एक ही रोग से वे ग्रस्त हैं और वह रोग एक भ्रम है। आज वे सोचते हैं कि इन सुगठित बाहुओं में अस्त्र-शस्त्र सँभालें कि वाद्य-यंत्र, लेखनी, तूलिका अथवा अन्य कोई औजार ? भारतीय युवकों को सही-सही यह कोई नहीं बतलाता कि राष्ट्र की सबलता लहू के निकालने और उसे फैलाने में निहित नहीं है। आज की क्रान्ति कठोर बात में नहीं, गम्भीर बात बोलने में है।"

रजनी अविचलित डैडी की बातों को हृदयंगम करने लगा। विदेशी इस मन्तव्य से आत्मविभोर हो गये। एक स्वर से उन्होंने कहा, "दैट्स इट !"

रिक्शी जल्दी-जल्दी चढ़कर रजनी के आगे से निकल डैडी की दूसरी बगल में हो गई। आग्रह किया, "डैडी, इन अमरीकनों से पूछें कि क्या अमरीका में स्त्रियाँ राजनीति के रूढ़ अस्तित्व और सौन्दर्य के रूढ़ अस्तित्व की ही रक्षा करती रहती हैं ? क्या ऐसी राजनीति और ऐसे सौन्दर्य की भौतिकता और झूठी श्रद्धायें उन्हें अस्वस्थ नहीं बनातीं ?"

डैडी ने इस प्रश्न के अभिप्राय को खोलकर अमरीकनों के आगे रखा। वे रिक्शी की ओर आमुख हुए तो रिक्शी ने अपने प्रश्न का बचाव करते हुए कहा, "हम भारत में खुल्लमखुल्ला राजनीति में भाग न लेती हुई भी राष्ट्र में फैली हुई अविश्वास-उपेक्षा की खाइयों को भरती रहती हैं। इस प्रकार साहचर्य की मिठास से विरोधी भावनाओं का मुँह मीठा करती रहती हैं।"

अमरीकनों ने ध्यान से सुना। एक ने पूछा, "तो आप सीधे लांछन पुरुषों को दे रही हैं कि वे राजनीति को नये वस्त्र पहनाने की तमा नहीं रखते हैं और उसके फटे वस्त्रों में थीगड़े चिपकाने भी उन्हें नहीं आते हैं ?"

रिक्शी कुछ मुस्कराई। दीप्ति उसके चेहरे पर बिखर आई। शिष्ट वह बोली, "जर्मन-युवक ने सदा विश्व-युद्ध की आत्म-ट्रेजेडी अपने कंधों पर और साथ में अपनी नारी के कंधों पर ली है। जर्मन-नारी ने विश्व-युद्ध के ज्वर का नर्स की तरह बड़े धैर्य से सदैव ही उपचार किया है। फ्रांस और ब्रिटेन और रूस की नारी ने भी सदा अपने अधिकारों के लिए आत्म-बलिदान किया और राजनीति के नाम पर बलिदान किये गये अपराधों का पूरा-पूरा एवजा चुकाया गया है। अमरीका की नारी की बात आप बतायें ?"

सबसे प्रौढ़ अमरीकन ने कहा, "अभी तक अमरीकी नारी राष्ट्र की सम्पदा का अपव्यय ही करती रही है। उसकी महत्ता को श्रेय वह नहीं दे सकी है। राजनीति का अर्थ प्रेसीडेंट-निर्वाचन से अधिक उसके लिए कुछ नहीं। अवश्य पर्लबक एक अपवाद है। जब तक अमरीकी-नारी भारतीय-नारी के नैतिक तल तक ऊपर न उठेगी, दोनों राष्ट्रों में सौहार्द्र कठिन रहेगा।"

चुपचाप कुछ देर बाद ये कुतुब की चोटी पर पहुँच गये। डैडी ने एक लम्बी साँस ली और कहा, "देश-देश के सभी पुरुषों का अन्तर मैं नहीं जानता। मैं तो इतना जानता हूँ कि हम इस कुतुबमीनार के गर्भ-मार्ग से आये हैं। कितना परिश्रम हमें करना पड़ा है। यहाँ कितनी थकान है, कितना पसीना है और कितनी बदबू है? इसी प्रकार कुतुबमीनार के इस अन्तःमार्ग की-सी मरीचिका को पकड़ने के लिए इंसान हमेशा इतिहास के इसी गुम्बज-मार्ग से चला है। लेकिन हाथ उसके सदा क्या आया? यही न कि वह यहाँ कुतुब की चोटी तक पहुँच सका है? यहाँ खड़ा होकर कुछ क्षण वह आत्मश्लाघा भले ही कर ले और अपनी महानता के अहं में नीचे की जनता को चींटी समझे। पर याद रखें कि थोड़ी देर बाद ही वह स्वयं नीचे उतरने को बाध्य हुआ करता है। क्योंकि इतनी ऊँचाई पर उसको जीवन का आश्रय नहीं मिल सकता। जीवित तो वह पृथ्वी पर पैर रखकर ही रह सकता है। किन्तु नारी? नारी ने स्वप्न में भी कुतुबमीनार बनाने की नहीं सोची? यहाँ तक कि ताजमहल भी नहीं। अवश्य वह अपने प्रेम की स्मृति स्थायी चाहती है। पर वह स्मृति ताजमहल नहीं है। ताजमहल जो खड़ा है सो शाहजहां का सहारा पाकर अभी तक खड़ा है। मुमताज बेचारी में इतनी सबलता कहाँ? संक्षेप में यह कि यहाँ इतने ऊँचे खड़े होकर हम कुतुबुद्दीन का गौरव-गान न गायें। जिस पृथ्वी के टुकड़े पर यह खड़ा है, उसकी दाद दें।"

अमरीकनों ने हामी भरी और मंत्रमुग्ध नीचे देखते रहे। नीचे से सीटियों की आवाज़ आई। उनके कुछ मित्र नीचे आ गये। वे इन्हें बुला रहे थे। धन्यवाद दे, बिदा ले, शीघ्र वे सब नीचे उतर गये। रजनी दूर तक दिल्ली को देखता रहा। कहाँ वह सड़ी-सी गृहस्थी, संतान की पीड़ा से ग्रस्त माधवी और उसकी आवारा ज़िन्दगी...

डैडी ने कहा, "भाई रजनी बाबू! आओ अब नीचे चलें। हम लोग बादशाह कुतुबुद्दीन नहीं हैं। हमें तो अपने घरों में ही रहना है।"

एक साँस वे नीचे उतर आये। रजनी आगे रहा, बीच में डैडी, पीछे रिक्शी। नीचे उतरकर उन्होंने कुछ नाश्ता किया। शीघ्र वे 'कार' में बैठे। निश्चित पोर्च में जाकर 'कार' रुकी। उतरकर डैडी ने कहा, "लो भाई रजनी बाबू! आप झटपट गुसल कर नहा आओ, तो खाना खायें। फिर रेडियो सुनेंगे और फिर सिनेमा चलेंगे। अरे झम्मू, बाबू को अपने साथ ले जाओ।"

रजनी एक प्रकार से अभी तक दरिद्र रहा है। उसके वातावरण भी दरिद्र ही रहे हैं। आज प्रातः से वह कैसा सम्पन्न लग रहा है। 'कार', अमरीकनों से गम्भीर बातचीत। और यह रिक्शी? पर वह झम्मू के पीछे हो लिया।

भोजन के समय उसने देखा कि रिक्शी नहीं है, उसके स्थान पर मामी जी

बैठो हैं।

भोजन कर वह रेडियो सुनने लगा। सामने की टेबल पर एक पत्रिका पड़ी है। उसके टाइटल पर लिखा हुआ है—"पुरुष का अग्निबाण, राम के अग्निबाण की तरह, नर-संहार और प्राण-संहार ही फैलाता है। पर नारी का अग्निबाण प्राणों पर सुधा-वर्षा ही करता है।" वाक्य का अर्थ समझने में रजनी को कुछ क्षण लगे। और उसके सामने दिन भर की सब घटनाएँ पुनः एक-एक कर घूम गईं। और वह चॉकलेट चूसती हुई रिक्शी ?

डैडी अंदर आये। बोले, "क्या स्वप्न देख रहे हो रजनी बाबू ? शायद रेडियो में मन नहीं लग रहा। तो आओ। सिनेमा चलें। रिक्शी तो इसी ट्रेन से वापिस चली गई है।"

सुनकर रजनी ने सिगरेट जलाई और घना सारा धुआँ छोड़कर अपना मुँह छिपा लिया।

× × ×

आठ दिन बाद। सुबह ही डैडी ने कहा, "देखो, रजनी बाबू, आज हम भी आपके घर चलेंगे। कुछ तो सोचो, आपकी माता जी कितनी दुखी नहीं हैं। तुम्हारे पिता जी का उनके प्रति कर्कश-व्यवहार कितना दारुण नहीं है। अगर तुम विवाह कर लो, तो कम अज कम, तुम्हारी माताजी का आशीर्वाद तुम्हें मिले और तुम दुनियाँ की बड़ी बातों में निश्चिन्त होकर क़दम रख सको।"

आठ दिन से डैडी ने रजनी की जिह्वा को वश में कर रखा है। रजनी ने कुछ नहीं कहा और रिक्शी की बची हुई चॉकलेटों को चूसता रहा।

घंटे भर बाद ही मामा जी रजनी को लेकर गाड़ी में आ बैठे। रजनी अपने अख़बार में डूब गया और सिगरेट के धुएँ के पीछे डैडी से छिप गया। डैडी किसी दर्शन की पुस्तक में व्यस्त हो गये।

रात घर पहुँचे तो एक लम्बा-चौड़ा हंगामा फैला हुआ है। जाने कहाँ-कहाँ के मेहमान आये हुए हैं। हलवाइयों की कढ़ाइयाँ चढ़ी हुई हैं। उधर बैठक के चौंतरे पर शहनाई बज रही है।

कल सुबह रजनी की बारात जायेगी।

सुनकर रजनी के माथे में त्यौरियाँ पड़ गईं। क्रुद्ध वह माँ के पास पहुँचा और कड़ककर बोला, "माँ !"

माँ गैस की रोशनी के पास पूरियाँ बेल रही थी और गीत गा रही थी। रजनी की आवाज़ उसने सुनी, हाथ उसके अकड़े…और वह भर आई। आँसू उसके झर झरे…। उठी और रजनी के पास पहुँची। बोली, "हाँ रजनी।"

रजनी ने रोती हुई माँ देखी। वह लौट आया और डैडी की गोदी में पसर गया। और सुबक-सुबककर रो उठा।

तिमंजले से पिता जी पुकारे, "जो इस ख़ुशी की घड़ियों में रो रहा है उसका मुँह सुई-धागे से सीम दो।"

डैडी ने रजनी को उठाया और ऊपर की बैठक में ले गये। उसे आराम-कुर्सी पर बैठाकर जली हुई सिगरेट दी। पूछा, "भला क्यों रो रहे हो रजनी बाबू?"

रजनी नें विक्षिप्त कंठ से कहा, "विवाह की बेड़ियों से क़ैद करने से पहले मुझे वैसी क़ैद में ही डाल दो न।"

"देखो, यह बी-क्लास की जेल दी जा रही है तुम्हें, वैसी सी-क्लास की जेल होती है।"—डैडी ने अपना पाइप सुलगाते हुए कहा।

रजनी का जी हँसने का हुआ। पर उसके आँसू और ढुल आये। बोला, "पिता जी इस विवाह द्वारा एक भयानक षड्यंत्र रच रहे हैं, जिससे मैं उनकी कठोर श्लाघाओं से पिटता रहूँ।"

डैडी ने कहा, "रजनी बाबू, पिता जी और माता जी और मैं तुम्हारे विवाह के साक्षी भर ही रहेंगे और कुछ नहीं। और साक्षी भी इसलिए कि समाज की ऐसी ही रीति है। विवाह के बाद ही वधु को तुम ज़हर देने की आज्ञा मुझ से पा सकोगे।"

रजनी ने देखा, डैडी आज प्रथम बार राक्षस की नाईं अपने नथने फुलाकर श्वासें ले रहे हैं। साँस रोककर उसने अपना मुँह अपने घुटनों में छिपा लिया।

× × ×

गोटे-ज़री और सलमे-सितारे की भूषा में सजकर रजनी अपने आपको न समझ सका···मैं कहाँ हूँ। अतिथि जो आये हैं और इस क्षण साथ बराती के रूप में हैं, उसे सम्बोधन करते हैं···'कुँवरजी, दूल्हे साहब! वर महोदय!' उन सबको रजनी ने झिड़क देना चाहा कि झूठ है। मैं बस रजनी हूँ।

गाड़ी में बैठकर, सब आगे एक छोटे स्टेशन पर उतरे। यहाँ से बारात छः मील आगे एक गाँव जायेगी। वहीं वह छोकरी अपने यौवन के हंस को पोस चुकी है। अब रजनी की राह मीठी चाह में देख रही है।

सब बहलों में बैठे। कुछ ऊँटों पर चढ़े। रजनी को सजे हुए रथ में बैठाया गया। चाबुकें सर्राई गईं और रथ और बहलों के बैल आहत भाग चले, खुश और मस्त···ओहो जी! रजनी का विवाह है। उनके गले में घंटियाँ टुन-टुन बज रही हैं।

अब राह खेतों के बीच थी। उनमें सरसों संकल्प लिये फूली हुई है···मैं सरसों! निर्माता-की सरलता-सी देखें मुझे। शीतल हवा चारों ओर की हरियाली को

नाहक तंग कर रही है कि वह अपने पर क्या ढँके ? किसान खेतों में पानी सींच रहे हैं। उनके घर की मालकिनें क्यारियाँ भरती हैं; वे भोले किसान यह देखकर गा उठते हैं। नगर के कोलाहल से दूर, यहाँ की चिर शान्ति; अपने मधु को तुरन्त छूने के लिए दौड़ता हुआ रजनी उस गाँव की ओर; और अखिल-पृथ्वी का नग्न-यौवन। रजनी बुदबुदाया, "इस पृथ्वी पर जाने कौन नक्षत्र से उतरकर, कुछ क्षण चिर-अवहेलित सौन्दर्य के गीत गाते हुए ही हम आगे चलें और यहाँ के मूक नीरव संगीत के अपरूप को रूप में ले आयें।"

वर्षा की झड़ी शुरू हो गई है अब। सामने का पहाड़ निकट आ चुका है। श्वेत काले बादल इन पहाड़ों की चोटियों को शृङ्खला पर चलकर भीगी तूलिका फेर रहे हैं कि हर क्षण इन शुभ्र-चोटियों को कठिन और गम्भीर रहना भला नहीं है। कभी स्निग्ध भी वे हो आया करें। रजनी बौछार से गीला होकर आवेश में हो गया। उसने देखा, प्रकृति के अणु-परमाणुओं का यह प्रतिदान-मय अपूर्व आत्ममिलन। दुष्ट ये बादल उन पहाड़ की चोटियों से आलिंगन कर इतना प्रेम-वारि चुआ रहे हैं कि उसकी सुप्ति में मैं तक ठिठक गया हूँ। मैं कवि रजनी !

कठोर गड़गड़ाये वे बादल। रजनी ने अपने को धन्य समझा कि मेरे आँखें हैं अन्यथा······

रिमझिम-रिमझिम रुकी। ज़मीन ने अपने ऊपर के पानी को सोख लिया। पगडंडी सामने अब सीधी हैं। बहल के बैल उचित चल रहे हैं। काँटों की बाढ़ को छलाँगकर बरात के ऊँट आगे हो लिये। उनके पैरों की झाँझनों की छुन-छुन जो ऊँची हुई तो सब ऊँट आपस में होड़ लेने लगे। धूमिल जंगल के इस हास में रजनी को भान हुआ, जैसे तो अमीरअली ठग सामने ऊँट पर भागा जाता है। रजनी के जीवन का उद्देश्य फूट उठा कि मैं भी ठग और लुटेरा हो लूँ ? मेरे मस्तिष्क की अनियन्त्रित कल्पना इन डाकुओं की रहस्यवादिता के सदृश ही तो है। ये डाकू इतिहास में भी यशस्वी हैं···अपनी स्वच्छन्द कला के कलाकार। पर किसी ने रजनी के हृदय को चिकोटी काटी कि वेदना की अभ्यर्थना से प्राप्त कविता और उसका अमृत रजनी को इस डाकाज़नी से न मिल पायेगा। कविता सहज स्नेह और रुँधे स्वर से अपनी सौरभ सबको देगी। यह लूट-खसोटपन सुखी-दुखी कण्ठों में अपमान और प्रपीड़न के बल से केवल कुंठित फेन भर निकाल सकेगी। रजनी ने तुरन्त ठगपने को इन्कार किया···

रथ रोका गया कि सब बहलें पीछे रह गई हैं। वे आ लें। उस पहाड़ के तलुवों से लेकर यहाँ तक कोरा मैदान है। इस दिशा से, उस समस्त दिशा में घुसती हुई प्रबल वायु जाने क्या अन्तरतम का सन्देश रजनी को दे गई। अँगड़ाई ले, उसने

सेहरा खोल फैंका और रथ के नीचे उतर आया। उसने देखा, यहाँ वनस्पति और जीव-जन्तु दासत्व भाव से परे स्वरक्षा में धनिक हैं। हमारी आदिम सभ्यता से विरोध इन्हें है। सब अलग हटकर अपने-अपने स्वराज्य के एकान्त में कुशल हैं। मैं भी रिक्त-मन, शून्य-हृदय, निष्क्रिय-मस्तिष्क क्यूँ न रहूँ और यों अपना स्वराज्य स्थापित करूँ? बहती हवा में रजनी के केश उज्ज्वल लहरा रहे हैं।

"रजनी पागल! न बनो। चलो, रथ में बैठो। अब गाँव निकट है। यह है सामने।"—पिता जी ने चिल्लाकर कहा।

सच, निष्क्रिय बन लूँ? रजनी एकबारगी चौंका। अरे, विवाह करने अब चल रहा हूँ। बृहत्-ब्रह्मांड के इस क्षुद्र कोने में वह छोकरी रहती है। आज वधु मेरी बनेगी और आज से ही अधिकांश समय मेरा उसके साथ बीतेगा। भाग्य का यह वितंडावाद! यदि एकाकी रहता, उतने समय भी कविता करता और युग-वेत्ता हो, अमर मैं हो जाता!! साहस कर, रजनी ने गाँव की ओर दृष्टि उठाई।

मेरे यौवन का भी कुछ मूल्य है। क्या यूँ ही उस अपरिचित छोकरी को वह दे दे? क्यों नहीं पिता जी और डैडी और इन बरातियों को मति आती कि वे रजनी का विवाह उस सोलह वर्षीया अपरिचित युवती से न करें। और क्यों वह गाँव की छोकरी रजनी के मानसिक क्लेश को अभिशप्त करने पर तुली हुई है?

रथ में बैठकर रजनी ने करवट ली। पीछे देखी, लम्बी पंक्ति बरात की यह यात्रा! इतिहास में नगर-राष्ट्र विजयी होते रहे हैं। विजय के बाद युद्ध के क्षेत्र में पराजीत वर्ग को वे विजयी अपना झंडा भेजते, इधर से कोई कन्या स्वयं झंडा बन फहर-फहर ललकारती आती कि विजय-पराजय के ऊपर मैं हूँ अटूट-सन्धि की गाँठ, मुझे अपनाओ। ऐसे विवाहों-द्वारा ऐसी आत्मिक विजय कितनी व्यक्त और कोमल होती होगी? रजनी ने दीर्घ श्वास ली, "आज से मैं पति हूँ। वहाँ वधु का पड़ाव है···वहाँ। बस, आधा घण्टा और!"

आधा घण्टा क्या, तीन दिन तक कुछ हुआ। बिदायगी की घड़ी भी आ रही है। रथ में रजनी के पास एक कन्या अपने को एड़ी तक उज्ज्वल ज़री के कपड़ों में ढँके बैठी सुबक रही है। कुटुम्ब ने उसे ख़ूब-ख़ूब निचोड़कर इस क्षण जैसे आलिंगन-भर रहने दिया है। अब गीत गाकर परिवार की स्त्रियों ने बिदा दी—

"लाड़ी! लाड़ा से मिल म्हाने चैन दे।"

रथ चला। रजनी को संगत न लगा, यह उसकी वधु है। अनुमान न हुआ कि यह अपने सोलह वर्ष कैसे काट सकी? क्या यह मेरे साथ चलने में सहर्ष है? तो सुबक क्यों रही है? पर यह मेरे से चाहती क्या है? इसको लेकर मैं अपने को धन्य समझूँ? पिता जी कहते हैं कि रजनी के विवाह में पाँच हज़ार ख़र्च हो चुके।

पाँच हज़ार रुपया ख़र्च करके इससे परिचय हुआ है और यह मुझ से बोलती तक नहीं है। रजनी ने उससे कहा, "उकड़ू न बैठो। ठीक रहो। बस, रथ में मैं ही मैं हूँ।" पर ग्राम्य-वधु के उन कपड़ों के बीच उस तप्त रक्त-संचार से उत्तर तक न आया। इस वधु की नादान और भोली-भीति से रजनी खीझ उठा। समस्त मार्ग भर रजनी के वाह्य-सौन्दर्य के दर्शन के सुभीते तक को जैसे ढँकी हुई सुबकती वँधु ने जंग लगा दी······

घर पहुँचे। डैडी ने वधु के गठजोड़े से युक्त रजनी से मुस्कराते हुए विदा ली कि भाई हम तो इसी गाड़ी से जायेंगे। पर हमें यह तो बतलाओ कि कहीं विष-पान तो (कनखियों से वधु की ओर संकेत कर) इन्हें न कराओगे ?

रजनी ने घनी सारी स्त्रियों से अपनी दृष्टि को सिकोड़कर डैडी से कहा, "न तो ये सुकरात हैं जो इन्हें विष-पान कराया जाय और न मैं सुकरात के युग का असहिष्णु-शासक हूँ। आपने इसे मेरी जीवन-परिधि में धकेल दिया है तो अपनी सहिष्णुता के बदले इसे मैं न धकेल सकूँगा।"

डैडी ठहाका मारते हुए ताँगे में बैठ गये और 'चीरियो' कर गये।

फ़ुर्सत पाते ही, बेटे की बहू के आने की ख़ुशहाली से दूर, रजनी अपनी 'स्टडी' में आ रहा। पर आज वह सिर्फ़ किताबें न पढ़ेगा। उसका जी आज लिखने का हुआ है। लेखनी लेकर मध्याह्न तक लिखता रहा। भोजन की बुलाहट की भी अवज्ञा की। अब रजनी लिख रहा था—

"मुझ से चरित्र की संयमशीलता न निभेगी कि विवाह को उन्माद और चुहल में लूँ। जीवन की महानताओं को ही मैं देखूँ। मैं हीन हूँ, अपनी गृहस्थी की विवशताओं का प्रतिबिम्ब हूँ। मैं तो अपने चरित्र में वह अराजकता चाहता हूँ जो सबकी नीयत और मनोवृत्ति के माप को कुटिल-दृष्टि से आँक सके, अपने को विपत्ति से बचा सके······"

लगा, द्वार खोल कोई आया है। मुड़ा, देखा, रिक्शी। बीते इतनी रात, यहाँ कमरे में मुझ अकेले के पास। सुशील कहा, "क्या चाहिए ?"

हाय, अल्हड़ रिक्शी ! तुझे यहाँ परदेश में रजनी के पास क्या चाहिए ?

रजनी ने देखा, रिक्शी विशेष तौर पर सजी हुई है और उसकी माँग में सिंदूर कैसी लाल पन्ने-सी चमक रही है। तो रिक्शी ही उसकी वधु बनकर आई है ?

रजनी ने कहा, "ओह ! आप खड़ी न रहें। कमरे में और कुर्सी नहीं है। आयें यहाँ, पलँग पर बैठें।"

रिक्शी मान सहित बैठी। रजनी और झिझका, "देखें, बैठी न रहें। रात बीत रही है, आप सो लें। दिन में भला सोई होंगी ? पास-पड़ौस की औरतों ने क्या

चैन लेने दिया होगा ? मैं अभी लिखूँगा।" उसके कंधों को छूआ कि स्वयं लेटा दे कि रजनी को जैसे झटका लगा।

अच्छा ? स्त्री की छुअन में यह है ?

रिक्शी लेट गई। मज़े में करवट ली, वह दिन आज है कि पति के घर है। करवट ली और सो गई सुख की निंदिया।

रजनी काम समाप्त कर उठा। अन्तिम वाक्य था, "मैं इस दिन-रात से ऊब उठा हूँ। इन्हें और नहीं चाहता। मैं तो सदा वह ज्योति चाहता हूँ कि जिसके एकान्त प्रकाश में हर क्षण कविता करता रहूँ।"

ऐं ! कमरे में और खाट नहीं है ? रिक्शी सो गई है, अब घूँघट नहीं है। पलकें वीर वधुटिका-सी थमी हैं और छोटी-सी नासिका से हवा अपने ही रास्ते आ-जा रही है। रजाई रह-रहा उस पर ही लिपट गई है। रजनी फ़र्श पर ही सो गया।

पति की हठात् करवट से रिक्शी उठ बैठी। उसे आत्मसम्मान मिला है कि रात वह इनके संग सोई है। ये सर्वथा अच्छे हैं। पर तुरन्त घबरा आई। तुरन्त उन्हें रजाई उढ़ाई और उनके सिरहाने बैठ गई। जी दुखी है कि क्या इन्हें जगाकर पलँग पर सुलाये। उन्माद में पति के केश पर उँगलियाँ सहलाईं, प्रथम-मिलन का संगीत रजनी के मस्तिष्क के ऊपर घूँघर बने केशों में वीणा के तारों-का-सा उमड़ आया। एक प्यार इनका ले लूँ ? पर नवीन प्यार की नवीन फ़ुहार पति की गम्भीर मुख-श्री को छूने से पहिले ही लौट आई। भोर होते ही बाहर निकली। पड़ौस की सब भाभियों ने एक-साथ पूछा, "क्यों ?"

अबोधा रिक्शी सकुचाई। शीघ्र इधर-उधर हो ली। कुछ न बताया। भला क्या बताये ? पति की बातें भी कहीं बताने की होती हैं ? अवश्य। हाँ बताने की होती हैं। एक भाभी ने अपनी प्रथम-मिलन की सब कथा खूब हँस-हँसकर कह सुनाई तो पूछा, "क्यों ?" रिक्शी ने बताया कि कुछ भी नहीं हुआ।

किन्तु होना तो चाहिए। आज रात्रि रिक्शी फिर किसी मीठी पिपासा की लकीर में आसीन की गई कि सीताहरण हो। यह एक भाभी का चुनिंदा शब्द था। और दूसरी प्रातः फिर सब भाभियों ने 'क्यों ?' का प्रश्न किया। रिक्शी ने वही छोटा सा 'ना' कहा। पर यह ना या सिर हिलाने का आत्म-अपमान कब तक रिक्शी लेती रहेगी ? मेरा भाग्य खोटा है तभी तो ? जैसा हो, भुगतूँगी। मैंने ऐसा क्या अपराध किया है कि कुछ होता नहीं।

बड़ी भाभी को तीसरी सुबह भी नकारा सुन ठेस लगी। बेचारी नव-वधु ! दौड़ी हुई तैश में रजनी के दरवाज़े को उन्होंने खटखटाया "लाला जी।" वह उठा। इतनी सबेरे भाभी को बड़े भैया से छुट्टी मिल चुकी ? पूछा, "हाँ भाभी।"

"यह हम क्या देख रही हैं ?"

"क्या देख रही हैं ? और आप भी देख रही हैं ?"

हाय ! मुझ से लाज छुड़वाकर देवर जी कितना विराट उत्तर चाह रहे हैं, और वे अपना प्रतिनिधित्व सुरुचि से कर भी सकेंगी ? उलझी हुई लौट आई। वधु को कहा कि जा नहा आओ।

निर्मल स्वच्छ जल की नाँद में रिक्शी उतरी। जेठानी जी पर झुँझला आई, 'नहा आओ। यह नहीं हुआ कि उन्हें समझायें।' अपने नग्न अंगों की परछाईं देखी। मैं क्या कहूँ ? रिक्शी ? मैं क्यों बनी हूँ ? यहाँ क्यों आई हूँ ? और वे मुझे क्या चाहते नहीं ? रोष में जल को छलछला दिया और बाहर आ गई। नहीं, नहीं, अब ऐसा नहीं होगा। मैं उनकी रानी बनकर रहूँगी और हूँ भी मैं यही।

पिता जी को भी समझाया गया, आप उनके पिता हैं। उन्हें मति दें। साँझ ढले वे अन्दर आये। रजनी ने दिन भर भोजन नहीं किया है। सुस्त है। किसी से बात करता नहीं है। पिता जी ही क्या करें ? लड़के की शादी कर अपने बुढ़ापे का धर्म उन्होंने निभा दिया है। रजनी अपने युवापन का धर्म क्यों नहीं निभाता ?

पिता जी को देखकर रजनी सादर खड़ा हो गया। बिन-कसूर अपराध में गर्दन झुका ली। पिता जी ने पुस्तकों को उलट-पुलट देखा। कविता उनमें सधवा तरुणी-सी गृहस्थी बसाये बैठी है। इस कविता के कवि अपने पिता के सम्मुख निर्देश सुनने के लिए उत्सुक हैं ? विवाह का हुक्म तो वैसे बजा लाये हैं। वधु पड़ौस के गृह में प्रतीक्षा से है, कब रात्रि हो और पति का संग हो !

पिता जी आज पहली बार मामा जी के सदृश करुणार्द्र हो बोले, "रजनी, तुम कवि हुए···यह अच्छा है, बुरा है, इससे मुझे क्या ? बहू तुम्हें ला दी गई है। पर बारह दिन होने आए, यह मैं क्या सुन रहा हूँ···?"

रजनी ने देखा, वधु के श्वसुर की आँखें डबडबा आई हैं। वे उठे और बाहर चले गये। रजनी सुन्न खड़ा रहा। ये मुझ से क्या चाहते हैं ? विवाह हुआ तो ? और बारह दिन से क्या सुन रहे हैं ? क्या रिक्शी ने तो कुछ नहीं कहा है ? उस आम की बौर एक कोयल कूक उठी और रजनी को ज़मीन से उठाकर अपने तल तक ले आई। जैसे बोल रही है, 'आज की विभिन्न शक्तियाँ तुम्हें दबोचकर तुम्हारा कचूमर निकालना चाहेंगी। तुम कवि ही बने रहो···दृढ़-युग की नाईं विशाल।'

रजनी आकाश की नीलिमा में घुला रहा। ये पंछी कैसे बिन बाधा के वहाँ नीलिमा में जा छुपते हैं। मुझे अमृत्व पाना है। यह क्या अड़कने-रड़कने पथ में आ पड़ी हैं···रिक्शी ? और, उसने साँझ होते ही आज अपने कमरे के किवाड़ अन्दर से बन्द कर लिये। मैं नहीं चाहता, रात्रि में कोई चुनौती लिये रार करने मुझ से आये।

स्त्री तो कतई नहीं। उसकी संगत से कहीं मेरी कविता करुण न हो उठे। मैं रात्रि को सांस्कृतिक चाहता हूँ।

रिक्शी पति-गृह के लिए चली कि शैया तैयार होगी। मैं कहूँगी आज अवश्य, "मैं आ गई हूँ। चलें और कमरे में अँधियारा करदें।" अनम्र बाधा वे बन्द किवाड़ देखे, जहाँ उन्होंने छिपकर आश्रय ले लिया है। रिक्शी रो आई। कुतुबमीनार पर तो ये सर्वश्रेष्ठ युवक-जैसा प्रतिनिधित्व कर रहे थे। यहाँ यूँ अपनी नव-पत्नी का अपमान स्थानीय स्त्रियों में करते इन्हें रंच भी विचार नहीं है? यह रात्रि और मैं? तड़प कर, धीर गति लौट आई। सब भाभियाँ अपने कमरों में पहुँच चुकी हैं। एक कमरे के किवाड़ों की दरार में उसने देखा—पति-पत्नी की ऐसी क्रीड़ा? नव-वधू निष्प्राण-सी होने लगी। बड़ी भाभी अब अपने कमरे में जाने लगी थी। ठिठक, रिक्शी को देख, चिंतित हुई। बन्द किवाड़ों की बात जानकर उसे अपने कमरे में सुलाने लिवा गई।

रात भर जागकर रिक्शी पूछती रही कि क्या यूँ ही मर जाऊँगी? पर मैं ब्याही क्यों गई हूँ?

दूसरे दिन की वही अर्द्ध रात्रि। रिक्शी आई। आज वह घूँघट में नहीं है। माथे पर बिन्दी है। नैनों में काजल। पति को पलकों की राह नव आशा में देखने लगी। रजनी लिख रहा था, "मैं क्लिष्ट नहीं हूँ। आप मेरी कीमत न लगायें। मुझे आपका मूल्य आँकने दें। मैं भारी ग्राहक हूँ। गहरी खरीदारी मैंने जानी है।" कि रिक्शी को देखा। बोला, "खड़ी न रहें। सो जायँ। मैं अभी लिख रहा हूँ।" किन्तु रिक्शी घूँघट हटाकर भी संकोच लायेगी? भाभी ने जैसा पढ़ाया है, यहाँ कर बैठे।

रजनी को रिक्शी की यह अवज्ञा तिरस्कार लगी। ज़ोरों से चीखा, "भाभी!"

वे आईं। "क्यों भाभी, घर में और खाट नहीं है? मुझे एक खाट पर इनके साथ सोने में एतराज है। ये परायी कन्या हैं।"

भाभी ने मुस्कराकर कहा, "बहू, यहाँ आओ।" भाभी रिक्शी को खड़ी कर रजनी की बाहों में सुगम कर कहा, "एक, दो, तीन..."

रिक्शी ने पति के चुम्बन ले, अपनी उमँग को संयत रखा और पति के चरणों में लज्जा से बैठ गई कि इन जेठानी जी के आगे मैं क्या कर बैठी? भाभी ने उसे रजनी के हाथों उठा गोद में बैठाकर कहा, "अब आप?"

स्वर्ण-रेखा जैसे कमरे में गूँज गई। रजनी रिक्शी का चुम्बन इतने तौर पर ले सका कि भाभी मोह आई और जल्दी से रिक्शी को छुड़ाया, "मेरे आगे आप यह क्या कर रहे हैं?"

"भाभी!"—पुनः होश में आ रजनी चीखा।

मुस्कराकर भाभी ने कहा, "खड़ी तो हूँ, यहाँ।"

"वहाँ दूसरी खाट क्यों नहीं बिछातीं ?"

रिक्शी ने भाभी को दयनीय देखा। तुड़-मुड़कर वह पति का उद्वेग भी न पा सकी। भाभी ने गम्भीर कहा, "लालाजी, एक खाट पर ही आप दोनों को सोना है।" और लौट गई।

ऐसा ? रजनी ने रिक्शी से कहा कि वे अभी सोयें। मैं लिख रहा हूँ। उसने आगे लिखा, "कोढ़ी, दरिद्र, स्वस्थ और धनिक अपने भाग्य से समाज के कीट, पशु या मानव है। पर वह रात्रि कोढ़ी, दरिद्र, स्वस्थ और धनिकों के भाग्य को एकसां किस प्रकार कर देती है ? दिन भर तो सब अपने काम में व्यस्त जीवनी-शक्ति के वहाव में ठहर नहीं पाते। पर रात्रि होते ही निशा की प्रतिहिंसा की शीत उन्हें क्यों तंग करती है कि सबको एक जैसा हाड़-माँस का उपभोग मिले ? वे कोढ़ी-दरिद्र इस रात्रि से युद्ध करें या अपने भाग्य से ? मैं चाहता हूँ कि इस रात्रि की शीत के रूप में किसी के भाग्य के रूप के तल से उठकर प्रकृति का कठिन निर्देश मैं बन जाऊँ कि भाग्य कुछ नहीं, रात्रि कुछ नहीं। हाड़-माँस का उपभोग कुछ नहीं······"

आगे लिखे कि नींद का झटका रजनी को लगा। वह सोने के लिए उठा। किन्तु यह रात्रि; वह सामने की शैय्या और नव-वधु ? घर भर का उससे क्लेश ! सब मुझ से क्या चाहते हैं ? उसने रिक्शी को जा झकझोरा, "रिक्शी, मैं यह क्या देख रहा हूँ ?"

पिया की ख़्वहिश में, हर क्षण सूर्योदय की आशा में, वह उठ बैठी घबड़ाकर। देह के वस्त्र सँभाले। दीर्घ नैनों से पति को विस्मय में देखा।

"क्या सचमुच तुम यहाँ सोने को आती हो ?······किन्तु ओ ! तुम जाग आईं। सो जाओ, सो जाओ।" और रजनी स्वयं अस्तव्यस्त कुर्सी पर आ बैठ गया।

इन्हें क्या हुआ है ? पुस्तक के पन्नों पर सिर रखकर रजनी बड़बड़ाता रहा, "रिक्शी ! एक बात कहनी थी तुम्हें।" रिक्शी तुरन्त उठकर उनके कन्धों बल जा खड़ी हुई। रजनी का कण्ठ किसी अपराजेय उद्गार से रुका हुआ है।

"रिक्शी, मैं इन मामलों में सचेत नहीं हूँ।" और रजनी किस के स्थान पर क्या कह गया, "अपनी मन की मौज़ के हित जब चाहे मुझे तुम ले सकती हो। अपना समय तुम्हें सहर्ष दे सकूँगा। समझी। किन्तु···" कि रजनी खड़ा हुआ, पत्नि को पुनः शैया पर प्यार से थपकी देते हुए सुला दिया। बोला न। और जमीन पर ही पूर्ववत् सो गया। आज की रात रजनी और विजया कर सका।

दूसरा दिन भी आया। रात हुई। रजनी बाहर से देर से आया। कपड़े उतारे कि भीड़ सी कमरे में आ गई है। कठिन देखा, पास-पड़ौस की, मुहल्ले भर की

भाभियाँ हैं। उनके बीच रिक्शी विशेष सज्जा में है। वह रजनी की अनछुई वधु है। माँसल पिंड-रूपा रिक्शी ? इन भामियों के बीच वह कितनी प्रकाशित हो आई है। और ये भामियाँ ?

"कहिये ?" दोनों आँखें भामियों के झुण्ड को एक साथ समूचा देखकर रजनी ने प्रश्न किया। एक-एक को देखने का साहस उसमें नहीं है। सब बढ़-बढ़कर अति और अतिशय सुन्दरियाँ हैं।

एक भाभी आगे बढ़ी। रजनी को मुलायम गोरे हाथों से ढकेलकर शैया पर बैठा दिया। तब रिक्शी को उसके बायें बैठाने में सफल हुई। आहाजी, यह मनमोहक दम्पति ! सब भाभियाँ खिलखिला हँसीं। हँसीं······हँसी······खूब हँसीं······हँसी में वे आज न रुकेंगी।

रिक्शी लज्जा-संकोच में संयत है।। हाँ, रजनी थोड़ा हँस पाया। यह क्या ? एक-एक कर सब बाहर खिसक गईं। और बाहर किवाड़ों के ताला ठोक दिया। रजनी ने इस क्षण रस लिया। रिक्शी से पूछा, "क्या बात है ?"

पुतलियों पर अपने को उँडेलकर रजनी की देह को रिक्शी ने अपनी ओर खींचा। अधरों पर पान की लाली रचाये हुए वह अनुपम कटाक्ष कर बैठी।

रजनी चिहुँका। कुछ समझ भी सका। रिक्शी के प्रति उसे घृणा हो आई। पर घृणा तो लौह सदृश होती है। वह जलेगी नहीं, उसे पिघलने भर को प्रचंडतम अग्नि चाहिए। इधर आ लिखने बैठ गया, "किन्तु रात्रि का प्रकाश क्या है ? ये भाभियाँ अपनी श्रेणी में रिक्शी को लाकर क्यों आह्लाद में है। उनकी इच्छा क्या है ? यह वधु क्यों ? मैं पति क्यों ? रिक्शी ब्याहता हुई, हो ली। अब क्या चाहती है ? स्वयं या इन भाभियों के सिखाने पर······?"

बाहर भाभियों का कोलाहल रुक चुका है। गर्दन घुमाई कि रिक्शी से सोने के लिए कहे। पर देखा, अच्छा ? स्त्री के इतने अंग होते हैं ? कविता की साक्षात् और सच्ची ज्वाला-रूप रिक्शी से रजनी चकाचौंध हो गया। जीवित रहने के लिए जग का संघर्ष चाहिए। यह नग्न-रिक्शी ? अल्हड़ता इसकी बीत चुकी है। अब यह युवती बनेगी।

रिक्शी भी आज पति की प्रीति में टूटकर इन पति की देह पर गिरकर ही रहेगी। अपनी जोशीली मधुरता का बोझ वह अब और न उठा सकेगी। कोई अब यह बोझ हल्का करे, हल्का करे तो उसे चैन मिले। द्रौपदी की आयु के बसंत का चीर-हरण हुआ था; भगवान् उसे याद हो आये थे। आज यहाँ दुःशासन है पर मुझे अपना हठ न देकर मेरी ओर से ही उल्टे हठ ले रहा है ? चीरहरण क्यों नहीं करता ? कृष्ण को उसने याद किया, इस पति को वह अनुमति दे, दृष्टि दे, बुद्धि दे और यह मेरा

चीरहरण करे। अल्हड़ता ने उठी और पति के गले में गलबहियाँ डाल दीं···"नाथ !"

"हाँ !"—रजनी ज्वार-भाटे में पथ भूल गया है। "अभी मैं लिखूँगा।"

"नहीं, आज नहीं। आज मेरे से बातें करें।"

लेखनी कुछ क्षण वह सिर में खुजलाता रहा। कुर्सी खड़खड़ा उठा और आज्ञा मानकर शैया पर आ बैठा। बायें एक षोड़शी है। कौमार्य उसका छलछला रहा है। रिक्शी लेटी, अपने संग, इस रात्रि के विश्वास में, पति को दायें सुला लिया। भोला-भाली ने रजनी को पति की देह समझा। उसके इधर-उधर गुदगुदी की और प्रीत में हँस दी। मन में उसे आश्वासन मिल पाया, यह कमरा आज सुहाग-रात्रि का साक्षी होगा। और आज से ये बस मेरी देह भर के आमोद में विह्वल रहना चाहेंगे।

इतनी गुदगुदी, इतनी क्रीड़ा। रजनी ने महाकाल की प्रतिष्ठा पर अपना बलिदान कर दिया···दृढ़ रहा, उत्तेजित न हुआ। उसने विचारा, उच्छृङ्खलता से महज़ जी भरा करता है। आत्मा ऐसे मन-बहलावों से संतुष्ट नहीं होती। यह रिक्शी पीहर के एकांत मन से विचलित होकर यहाँ आई है। हम व्यक्तिगत गम्भीरता ही दाम्पत्य में मान्य रहने दें। क्रीड़ा की व्याख्या क्षणिक नहीं है···बृहत् है।

रिक्शी ने पति की हथेली अपनी वक्ष पर उत्कंठा में क्षुधा-सी ला रखी। ओह रुन-झुन रुन-झुन ! पत्नी के हृदय की झंकार यहाँ सुप्त नहीं है। इसकी वक्ष की यह आकांक्षा ? इसके समस्त शरीर में इस आकांक्षा कीं सरसता का संचालन अब तीव्र-गति से है······

खिड़की से दीखा, ध्रुवतारा चमक रहा है। सप्त-ऋषि उसकी परिक्रमा कर रहे हैं। रजनी खड़ा हुआ। उघड़ी पत्नी ने हथेलियों के गुम्फन उनको अपनी ओर खींचा। उसने सबल झटका दिया और खिड़की के आगे आ खड़ा हो गया। आकाश में तारे हैं। वह ध्रुव है और ये सप्त-ऋषि हैं और अँधियारा······

रिक्शी ने कहा, "जी, दिया बुझा दें। कमरे में अँधेरा ठीक रहेगा।"

रजनी ने यह बात मान ली। दिये की लौ को फूँक दे दी कि नटखट यह क्या साँस रोककर हमें देख रही है। उस कर्तव्य-प्रणय के राक्षस-पति ध्रुव को रजनी ने नमस्कार किया। उससे पूछा, "किस ध्रुव को मैं सम्मुख रखूँ ?" ओट में बाहर चमेली है, और बेल के अनुरूप है। पत्तियों के शिखर पर दीप-शिखा-सी वे कलियाँ ज्वलित हैं। अपनी गंध से उन्होंने रजनी का स्वागत किया।

दूर सड़क पर एक दम्पति टहल रहा है। रात्रि की टहलें एकांत में मन देती हैं। जग के अखिल संघर्ष से अपने को सिकोड़कर बस स्वयं-स्वयं का मनचीता खिचाव ही वहाँ रहता है।

अनजाने इस नागपाश में रजनी को अपार मदिरा का पेय जैसे चुम्बन सहित

मिल गया हो। शीघ्र वह लौटा। रिक्शी का एक चुम्बन लिया और आकर खिड़की पर खड़ा हो गया। मुग्ध, रात्रि के सौन्दर्य को निहारा, निहारा और विद्रूप-निहारा। और हल्के उचककर, खिड़की के बाहर कूद गया। क्यारियों में पहुँचकर मंदे-मंदे विकसित क्षुपों के निकुंजों में टहलने लगा। उसने विचारा, 'जब जब आमंत्रण या निमंत्रण नारी का रहा है, इंसान को पता है कि वहाँ अंतिम विराम क्या है? मुझे तव प्रश्न है, कौन सी अहं की चीज़ मेरे पास है जो नारी के अहं से मेल खाये और उससे चुनौती ले। कम-से-कम पति की खाल ओढ़कर ही मैं जानना चाहूँगा।'

रिक्शी भी बाहर खिड़की से कूद आई। रजनी का साथ लिया और उसके कमर में बाँह डाल दी। रजनी को इधर ध्यान नहीं है, चेत नहीं है कि रिक्शी को ऐसा करने से इन्कार कर दे।

भवदीय जीवन-संगिनी ने पूछा, "आप क्या चाहते हैं? यहाँ टहल भर रहे हैं।"

रजनी ने वधु को दृष्टि का ग्रास बनाया, "तुम मुझ से क्या चाहती हो?" और तपाक से रिक्शी के कपोल पर एक तमाचा जड़ दिया।

आज सुहाग की रात्रि के सिंहासन पर अभिषेक अवश्य होगा···यह रिक्शी जानती है। उसे स्वीकार करे तो; इतना चाँटा भर स्वीकार करे तो। मंद आमोद में खिलकर पूछा, "आप मुझे चाँटा मारकर क्या चाहते हैं।"

रजनी के दूसरे तमाचे का हाथ लौट आया। तुरन्त पत्नी को सहलाया। नीचे से एक फूल तोड़कर उसके जूड़े में लगा दिया, मेरी वधु! उसे गोदी में उठाकर वह खिड़की पर चढ़ा और अंधकार में प्रवेश कर गया। आज वह रात्रि के प्रकाश को छुयेगा। अंदर उसने रिक्शी से अत्यन्त प्रेममय अनुनय की—

"रिक्शी, यदि तुम्हारे पास गर्भाशय है, तो मेरे पास मस्तिष्क है। तू मुझे अपनी ओर न खींच जहाँ समय का कसाई वर्षों बाद तुझे मरु-भूमि के टीले की चोटी-सा मूर्तिमान कर देगा। तेरे गोल-गोल कपोलों पर झुर्रियाँ पड़ जायेंगी। तू मेरे मस्तिष्क की ओर बढ़ती चली आ। यहाँ तुझे समय का कसाई दीखेगा भी नहीं। तेरे यौवन को अक्षय में रखूँगा और हम दोनों स्वर्ग के इस छोर से उस छोर तक चलते रहेंगे······"

७

मिट्टी के ठीकरों की चाँदी

नरेश के श्वसुर ने हंसियापुर रियासत के दीवान की पुत्री का ऐसा रामबाण इलाज किया कि वह मरने से बच गई। दीवान साहब ने आँखों में आँसू लाकर वैद्य जी का ऐसा आभार माना और पुरस्कार के एवज में उनके दामाद को अपनी रियासत का सिविल-सप्लाई कमिश्नर बना दिया।

जिस दिन रजनी बिदा हुआ, ललिता तीव्र ज्वर से पीड़ित थी। सुबह तक वह ज्वर में अनाप-शनाप बड़बड़ाती रही। दीवार के पीछे नरेश छिपकर सुनता रहा कि ललिता के हृदय का कौन सा गुब्बार फूट रहा है?

नरेश इन पाँच-छः वर्षों में एक नदी के तट से हटकर दूसरे तट पर नहीं आ गया है। ललिता, लिली और उसकी नवजात कन्या स्वाद में फीके ही नहीं, बल्कि बेज़ायका लगने लगे हैं। रजनी को दोष कहाँ तक दे, यह वह अभी निर्णय नहीं कर पाया है। वह तो एक बात समझ सका है कि नरेश, रजनी और ललिता के बीच में बीसवीं सदी का दाम्पत्य और उसकी शराफ़त मोमबत्ती के मोम की नाईं पिघल गई है और केवल नग्न धागा बच रहा है जो बिना मोम के प्रकाश देता हुआ न जल सकेगा······

नरेश ललिता को कोई समस्या नहीं मानता क्योंकि अब उसके दो सन्तानें हो चुकी हैं। देशी औरतों के यौवन का विद्रोह जैसे सन्तानों के छिद्र से स्रवित होकर, व्यर्थ हो जाता हो! उसके व्यवहार में कुछ अन्तर जान-बूझकर वह नहीं देख पाया है। फिर भी कुछ है कि घर में क्लेष की धुआँ उसका दम एक वर्ष से निरन्तर घोट रही है।

लड़ाई अब ज़ोरों पर चल रही है। सिविल-सप्लाई कमिश्नर बनकर नरेश के ठाठ-बाट चौगुने हो गये हैं। एक बनिये से एक परमिट देने के एवज में उसने नामचारे के दामों में एक कार खरीद ली है। जो नया बंगला मिला है, उस पर फोन लग गया है। दफ़्तर के दो चपरासी घर के रुआब को ऊँचा रखते हैं। सप्ताह में एक बार महाराजा साहब के संग भोजन करने का सौभाग्य उसे मिलता है। नगर के धनाढ्य और पूँजीपति व्यापारी प्रातः-सायं सलामी झुकाने आते हैं। पर ललिता··· जैसे वह उसकी शाही चिलमनों को अपनी उपस्थिति भर से चीर-फाड़ फैंक देती हो।

सुबह रजनी गया है। चपरासी ने तीन बार आकर दफ़्तर में सूचना दी कि

मालकिन साहिबा का बुख़ार बहुत तेज़ है। दो बार नौकर आया कि मालकिन साहिबा बेहोश पड़ी हैं। नरेश ने सुना। कठोर हृदय से उसने ललिता का ध्यान तक चेतना को स्पर्शित न होने दिया। वह आज बहुत प्रसन्न है कि एक बनिये से उसे तीन परमिटों के एवज़ में पाँच हज़ार रुपये की रिश्वत नक़द प्राप्त हुई।

दफ़्तर से सीधा वह कपड़े के थानों की जाँच करने के बहाने उस बनिये की दुकान पर गया।

नरेश का दृढ़ मत इन दिनों यह बन गया है कि वैश्य-जाति ब्राह्मणों का यथोचित आदर-सत्कार करना भूल गई है और सरासर दुष्टता पर उतर आई है। पुरोहित और जजमान की परम्परा पुनः प्रचलित हो जाय तो समाज की विषमता का पहला हल निकल आये। चोरबाज़ारी करके ये बनिये किसी हिसाब से लाभ नहीं कमाते। बेहिसाब, विषम तौर-तरीके से पूँजी कमाकर अपने यहाँ भाँडार भरकर ये बनिये इस लड़ाई में मालामाल हो रहे हैं। इनकी आर्थिक विषमता को यदि नृशंसता से काटने-छाँटने का सुअवसर समाज को नहीं मिलता तो सरकारी अधिकारियों को इनकी सम्पत्ति के अपहरण करने का नैतिक दायित्व अपने कंधों पर ले लेना चाहिए। देश में कौन सा तबका आज एक इकन्नी की चवन्नी या अठन्नी नहीं बना रहा। सिर्फ़ गधे के लात तो हम सरकारी नौकरों ने मारी है।

लालाजी ने सिविल-सप्लाई कमिश्नर साहब को अपनी दुकान पर मय जूतों के चढ़ते देखकर आभार माना। गिड़गिड़ाकर वह मुस्कराया। अपनी तौंद उसने थुलथुलाई और हाथ जोड़कर उसने सिर नवाया।

नरेश ने अकड़े रहकर उचित नहीं समझा कि इस विनीत सत्कार का विनीत उत्तर दिया जाय। ज़रा रुखे स्वर में कहा कि अपनी बहियाँ दिखाइये।

सेठ ने दुबारा हाथ जोड़कर आज्ञा का पालन किया और अपनी बहियाँ कमिश्नर साहब के आगे इस प्रकार रख दीं, मानों वे उसकी धर्म-कन्यायें हों और उनके सतीत्व की रक्षा अब उन्हीं के हाथों सम्भव है।

नरेश का कहना है कि इस बड़ी लड़ाई में राजनीतिज्ञ मिलिट्री कमांडरों के पीछे बैठकर अपनी जान सुरक्षित रखता है और उसकी युद्ध-घोषणाओं के एवज़ में उसके वेतन-प्राप्त सिपाही युद्ध-ज्वाला में अपने प्राण होमते हैं। सेठों की ये बहियाँ राजनीतिज्ञों की पीठ-पीछे की वह सुरक्षा-दीवारें हैं, जहाँ से जनता विद्रोह में उत्तेजित होकर उसकी पीठ में छुरा न भौंक सके। इसलिए युद्धकालीन जनता की सब पूँजी मानों किसी जादू के बल से दोनों हाथों बटोरकर ये सेठ जनता को अशक्त और निस्सहाय रखते हैं और इस प्रकार घर के आर्थिक मोर्चे को आँच नहीं आने देते। हज़ारों वर्षों से सेठों की ये बहियाँ युद्ध-प्रिय शासकों की पीठ-कवचिकाओं के पद पर

आसीन रहती चली आई हैं। आज हिन्दू समाज की बीसों केंचुलियाँ जब अपनी देहों पर दृढ़ता से जड़ी हुई हैं और उतरने की इच्छा तक प्रकट नहीं करतीं तो ये बहियाँ भला बीसवीं शती की वैज्ञानिक राजनीति का भय क्यों खायें ?

उसने हल्के मन से बहियाँ देखीं । उन आँकड़ों पर उँगली रखी जो अवश्य निरापद नहीं थे और सेठजी को जतला दिया कि सिविल-सप्लाई कमिश्नर निरा बुद्धू नहीं है।

सेठजी खीसें निपोरकर रह गये और विनीत आदर में कुछ उत्तर नहीं दिया।

एक-दो औपचारिक ताड़नायें देकर वह एक आश्वस्त-अहं में विभोर कोठी लौट आया। उसकी जेब में पाँच हज़ार के पाँच नोट नदी से जाल उठाने के बाद जाल में फँसी मछलियों की नाईं उछल रहे हैं।

बरामदे में चपरासी, नौकर और आया सुस्त खिन्न खड़े हैं। कनखियों से उनकी मुद्रायें देखकर वह सीधे अपने ग्रीन-रूम में गया। चाँदी के चाभियों के गुच्छे से तिज़ोरी खोली। वहाँ साढ़े सात हज़ार के नोट कैसे सर्कस के शेर-से ख़ुमारी की नींद में सोये पड़े हैं। यह स्वर्णमाला है। तीन महीने हुए उसने ललिता के लिए बनवाई थी, पर अभी उसे देने की या प्रेम से अपने हाथों उसके गले में पहनाने की इच्छा नहीं जगी है। एक बार फिर उसने पाँच नोट सँभाले। उन्हें रखकर तिज़ोरी बन्द की। और कपड़े उतारने लगा।

पड़ौस के कमरे में ललिता ज्वर से तपती हुई कराह रही है।

लिली का मुँह आज सुबह से नहीं धुला है। वह बदसूरत हालत में कुछ रुआँसी दौड़ी हुई आई। बोली, "पापा ! अम्मी लोती हैं।"

नरेश ने उसे ज़ोर से कोठी को गुँजाकर झिड़की दी, "उसके भाग्य में रोना ही बदा है।"—और जाकर भोजन-गृह में टेबल पर बैठा कि उसे चाय परोसी जाय।

सप्लाई-कमिश्नर बनने से पहले उसके पास एक अच्छा मकान था। तब डाइनिंग टेबल नहीं थी। रसोई में आसन पर वह बैठता और ललिता उसे चाय का कप देती। एक तश्तरी में नाश्ता आगे बढ़ाती। एक घूंट वह ले चुकता तो ललिता अपने कप से चाय की घूंट लेने का रसीला-अभिनय करती। वह इस दैनिक अभिनय से निहाल हो जाता और अपने को धन्य मानता। फिर उनके यहाँ रजनी आया। चाय परोस दी जाती तो नरेश नियम से पूछता कि बड़े हुज़ूर साहब कहाँ हैं ? ललिता हँसी की फ़ुहारों में बरसकर, रजनी को उसके कमरे से बुलाकर लाती और तब तीनों मिल-कर चाय पीते।

पर इस खुशी और इस आमोद को जाने कौन सा साँप सूंघ गया। कल तक

इसी नियम से तीनों साथ चाय व भोजन करते रहे हैं। पर मानों तीनों किसी नज़रबन्द कैम्प में तीन देशों के नज़रबन्द कमांडर-जनरल हों और चेहरों पर मनहूस मुर्दनी-सी लिये बैठे हों।

रसोइये ने चाय की ट्रे लाकर रखी। फिर नाश्ते की प्लेट लाकर रखी। नरेश आज पाँच वर्षों बाद अकेला चाय पियेगा, सो इसका अर्थ क्या है ?

उसने चाय का कप तैयार किया और एक चुस्की ली।

रसोइये ने दबे स्वर में कहा कि हुज़ूर, हुकुम हो तो मालकिन जी के लिए बड़े डाक्टर को बुला लावें।

पहले निश्चितता से चाय पी ले तो इस प्रश्न का निर्णय करे।

नाश्ता पूरा कर, वह उठा। रसोइये की निगाहों तक को कोई मूक उत्तर न देकर वह दालान में आया कि चले और ललिता को देख ले कि चपरासी ने सूचना दी, "कोई दो सज्जन बाहर खड़े हैं।"

उसने इजाज़त दी कि उन्हें ले आया जाय और वह बैठक में साहबी गम्भीरता से जाकर बैठ गया।

उच्च कुल के दो राजकुमार श्रेष्ठ पाश्चात्य भूषा में अन्दर आये। अकड़ी हुई कलाई से हाथ मिलाया और बैठकर शिष्ट लाज में मुस्कराते हुए उसको देखने लगे।

उसने सौम्य हास से पूछा कि कहाँ से पधारना हो रहा है ?

"जी, हम आपकी रियासत की उत्तरी निज़ामत में रहते हैं और आपकी प्रजा हैं। कारबार अपना कलकत्ते और बम्बई में है। जूट और सुपारी का व्यापार तो पिछले पच्चीस वर्षों से हो रहा है। पर अब सरसों की मिल खोलने का इरादा है, सो आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं।"—यह कहकर उन्होंने आवाज दी, 'बंसी !'

बाहर से एक नई मुरादाबादी थाली को तौलिये से ढँककर उनका नौकर बंसी हाज़िर हुआ। बड़े युवक ने आजिज़ी के लहज़े में कहा कि ये कुछ सौगात हैं, इन्हें अन्दर भिजवा दो।

नरेश ने हल्के से अन्दर सूचना भिजवाई कि एक ट्रे चाय लाई जाय।

सौगात अन्दर चली गई और दूसरे क्षण चाय की ट्रे और नाश्ता आ गया।

अन्दर लिली ने एक तीखी चीख मारी और फिर सुबकियाँ लेकर रोने लगी।

नरेश ने दोनों युवकों से कहा कि आप स्वयं चाय बनावें और स्वयं सिगरेट पीने बैठा। रजनी उसे भारी धूम्रपान सिखा गया है।

बातचीत के दौरान में नरेश को मालूम हुआ कि दो हज़ार मन सरसों का

परमिट देने पर इनसे चार हज़ार रुपये की रिश्वत मिलेगी। उसने समस्त शिष्टता के साथ कहा कि मैं विचार करूँगा।

परन्तु छोटे युवक ने बड़ी खुशनुमा प्रार्थना में कहा कि हाँ, आपका विचार हम पर कृपा करेगा और यह कहकर ऊँट के चमड़े का एक बैग उनकी गोदी में रख दिया। नरेश ने उसे खोलकर देखा···हज़ार-हज़ार के चार नोट पड़े हुए हैं।

तो वह उठा। कहा कि कल आप दफ़्तर आयें।

वे चले गये तो वह अपने सोफे से चिपका रहा। उसकी गोदी में वह बैग विरक्त भाव में कुछ अधिक कम्पन न ला सका।

अँधेरा आसमान से उतरकर उसकी बैठक में फैल गया। पर वह बैठा रहा। अन्दर ललिता बराबर कुन्हा रही है।

इस क्षण रजनी रेडियो सुना करता था। आज उसका अभाव सचमुच अप्रिय है।

आठ बज चुके तो वह उठा और ललिता की चौखट पर जाकर ठिठक गया। चपरासी और नौकर हटकर उधर सहन में चले गये। परदों से झाँककर उसने देखा, लिली अब भी अपनी अम्मी की छाती पर उल्टी पड़ी हुई सुबक रही है और सो चुकी है।

वह अन्दर नहीं गया और बाहर खड़ा रहा।

किले की तोप ने कुछ समय बाद रात के दस बजने की सूचना दी।

रसोइये ने आकर कहा कि जी, भोजन तैयार है। उसने भर्राये स्वर में कहा कि वह भोजन नहीं करेगा और दालान की एक कुर्सी लेकर वह वहीं चौखट पर बैठ गया। ज़रा तेज़ बोला कि कोठी की सारी रोशनी बुझा दो और स्वयं पर्दे में हाथ डालकर ललिता के कमरे का स्विच ऊपर उठाकर अँधेरा फैला दिया।

सामने के पहाड़ पर कोई चीता गरजा है। स्पष्टतया यह शेर नहीं है।

मन तो यह हुआ है कि इसी क्षण जीप लेकर और बंदूक थामकर वह शिकार को पहुँचे। कि ललिता कुछ साफ़ शब्दों में बड़बड़ाई, "अम्माँ···छोड़कर कहाँ चली गई। मैं बहुत दुःखी······"

नहीं, अभी ललिता में हड़फूटनी तक ज्वर भर जाने दो, जिससे वह अन्तर्तम के गोपन की क़ै कर दे।

वह निश्चल बैठा रहा। रह-रहकर लिली सुबकी ले लेती है। उधर के 'आया' के कमरे में नवकन्या बार-बार रो पड़ती है।

निर्जन एकान्त। उसने अनुभव किया कि शाम वाला नया बैग अभी उसी के हाथों में थमा है। धीमे से उसकी झिप खोली और वहाँ चार नोट उँगलियों से

स्पर्श किये। विवाह की ताज़ा रात्रियों में वह सो चुकता था। ललिता घर का काम देर रात तक करती रहती। जब उसके तईं वह शैया करने आती तो अँधेरे में अपनी उँगलियों से इसी प्रकार वह उसे स्पर्श कर देखता कि यह उसकी सुन्दर नासिका है…यह उसकी चिबुक है…

आज तो छः महीने से ज्यादा हो चुके हैं, ललिता के साथ रात्रि की संगति का स्वर्णिम-मौन उसे हासिल नहीं हुआ है।

याद आया कि वह उस दिन महाराजा साहब के यहाँ भोजन करने गया था। कोई बंगाली सज्जन रियासत में एक मील खोलना चाहते हैं। वे महाराज साहब से मिलने आये थे। उनके संग एक छलकती हुई षोड़शी थी। वह किस तरह बिना द्विधा महाराज साहब के साथ हँस-हँस कलिया रही थी, खिलखिला रही थी और महाराज साहब कैसा आमोद पा रहे थे। नरेश भी ब्रिजिस और शाही साफ़ा बाँधने लगा है। और पूरा राजकुमार जँचता है। पर उससे वह षोड़शी क्यों नहीं मिलने आई……

ललिता बड़बड़ाई, "रजनी बाबू! जुओं के मिस घाघरा न खोलो। लिली को मैं सोलह जमात से ज़्यादा पढ़ाऊँगी।"

नरेश सुनकर निस्तब्ध रहा। आगरा कालेज में उसने शिक्षा पाई है। उसके पिता ने प्रायः लम्बी उम्र तक उसे अपनी गोदी से नहीं उतरने दिया है। या घर की चौखट को लाँघने की इजाज़त उसे नहीं मिली है। कालेज में पहुँचकर ताजमहल उसने देखा था। ताज़बीबी की कब्र से निःसृत उसने कुछ स्वर-लहरी सुनी थी, पर वह अस्पष्ट थी। उसने दिमाग़ पर काफ़ी बोझ दिया कि वह समझे, वह कब्र की वाणी क्या थी? दूसरे दिन जब मिस सक्सेना ने उससे आह्लाद में हँसकर फाउंटेनपैन माँगा तो हठात् ताजमहल के रोम-रोम का सूक्ष्म सन्देशा उसके सामने अवतरित हो गया और उसी दिन से वह मिस सक्सेना को प्रेम करने लगा था।

अपनी माँ से दूर रहकर नरेश को और किसी प्रौढ़-नारी का साक्षात्कार नहीं हुआ था। नारी की हार्दिक ऊष्मा से संतप्त या पोषित वह नहीं हो पाया, इसलिए उसने नारी को सम्भोग-क्रीड़ा के अतिरिक्त कुछ नहीं समझा है। और यहाँ रियासत में तो उच्च अधिकारी वर्ग में नारी वह उच्च भोग का साधन है, जिस पर छोटी-मोटी नैतिकतायें तक बलि की जा सकती हैं।

महाराज साहब पिछले महीने तीसरी रानी लाये हैं। बड़ी महारानी साहिबा १८वीं सदी की नारी हैं और पर्दे में बन्द रहती हैं। दूसरी रानी से महाराज साहब को विलायत जाने का नक़द व्यय मिला था, इसीलिए उससे विवाह कर लिया है। और क्योंकि बड़ी रानी से पुत्र का संयोग नहीं बैठा, इसलिए दूसरी रानी का उनके

राज-परिवार में प्रवेश सुगमतया हो सका है। अब ये तीसरी रानी इसलिए कि इस आधुनिक बीसवीं शती में महाराजा के तई बंगले में एक आधुनिक अंग्रेज़ी-शिक्षिता और बाल-डान्स करने वाली महारानी अनिवार्य है। सो महाराज साहब इन दिनों सिर्फ़ उन्हीं के जनानखाने में आबाद रहते हैं।

नरेश क्यूँ नहीं किसी राज-परिवार में हुआ। तब वह किसी राजकुमारी से विवाह न करता। वह सीधा विलायतों की सुन्दरियों का पेय पीता और भारतीय राजकुमारों के आगे एक नया आदर्श उपस्थित करता!

ललिता बड़बड़ाई, "जी, मुझे ज़हर देकर मार डालो। बिन-कसूर मरूँगी···" और हठात् वह ज़ोर से कराही, "पानी!"

नरेश कुछ निर्णय न कर सका कि वह क्या करे। वह ललिता को अपने हाथों पानी नहीं पिलायेगा। वहाँ से आया और अपनी शैया पर आकर लेट गया। अँधेरे में तकिये के नीचे सिगरेटें नहीं हैं। पर उसका साहस नहीं हुआ कि नौकर को आज्ञा देकर मँगाये। अँधेरे में आँखें खोले वह अपने पिछले पाँच वर्षों को देखने लगा।

रात के तीन बजे होंगे। किसी ने उसके माथे पर गरम-गरम हाथ रखा है। वह चौंककर उठ बैठा तो पाया, पलँग की पाटी पर तीव्र ज्वर में हाँफती हुई ललिता बैठी है। उसके हाथ में गिलास का दूध है। रुक-रुककर बोली, "जी, रोटी नहीं खाई। उठो, दूध पियो।"

नरेश ने उसे सँभाला। उसके हाथ से दूध का गिलास लिया और उधर टेबल पर रख दिया। पूछा कि कैसा हाल है?

ललिता रो पड़ी। बोली, "पैदा हुई तो माँ छोड़कर चल बसी। फिर बड़ी बहन मर गई। और बड़ी हुई तो चाचा जी दौरों से रोगी रहने लगे। पीहर में तो सुख बदा नहीं था। यहाँ आपका कौन सा सुख मिला है। भगवान्! तू मुझे उठा क्यों नहीं लेता।"

उधर कमरे में लिली जाग पड़ी है और चीखकर रो रही है। नरेश ने ललिता के आँसू नहीं पोंछे। निर्मम बैठा सामने टँगे हुए रजनी के चित्र को देखने लगा।

ललिता ने कराहकर कहा, "जी, दूध पी लो। उधर वह लिली भूखी रो रही है!"

उसने देखा, ललिता के होंठों पर प्यास से पपड़ी जम गई है और वह थर-थर काँप रही है। उसने कहा कि जाकर अपने कमरे में सोओ।

ललिता ने कहा कि जी, दूध पी लो तो मैं निश्चित सो जाऊँगी।

जर्जर हथौड़े

नरेश ने कटु होकर कहा, "मुझे भूख कतई नहीं है और मेरी नींद में दख़ल न दो।"

ललिता ने एक हाथ से अपने माथे की अधकपारी को दबाकर कहा, "जी, क्या बात है जो आप अन्दर ही अन्दर कुढ़ते रहते हो। बात साफ़ क्यों नहीं कहते। किसी दोस्त को घर में टिकाने के पहिले क्यों नहीं अपने दिल को मज़बूत कर लिया था। अपनी कमज़ोरी से यूँ कुढ़ते रहोगे तो कैसे काम चलेगा। बात साफ़ बोलो और घर का कलह दूर करो।"

तो वह स्वयं अभियोगी है ?

उधर लिली गला फाड़कर चीखें मारने लगी। घर के दोनों नौकर जाग पड़े हैं।

उसने ज़रा डाँटते हुए कहा, "ललिता, तुम्हें इस समय सख़्त बुख़ार है। जाकर सो जाओ।"

ललिता ने कनपटी पर लटकते हुए उलझे केशों को हथेली से पीछे सँवारते हुए कहा, "मैं तो ख़ैर सदा के लिए सोने को तैयार हूँ। मुझे मेरा कसूर तो मरने से पहले समझा दो। यह मैं जान चुकी हूँ कि तुम चाहते हो, मैं मर जाऊँ। दिन भर नौकरों ने तुम से डाक्टर को बुलाने को कहा और तुम ऐसे ख़ामोश रहे जैसे तो मैं किसी तीसरे मुहल्ले की आवारा औरत थी। बुख़ार में मैं पानी के लिए कलपती रही और तुम एक कसाई की तरह चुपके से वहाँ से उठकर चले आये।"

उसने ज़ोर से कसकर एक तमाचा ललिता के मारा और दहाड़ा, "निकल जाओ कमरे से।"

वह दो क्षणों को स्तब्ध रह गई। अपना गाल उसने नहीं सहलाया। पर तुरन्त स्वस्थ हुई। रसोइये को आवाज़ दी कि साहब का खाना परोस ला। और नीची दृष्टि कर बड़बड़ाई, "यह तो तमाचा ही है। पिछले महाराज साहब ने तो अपनी दूसरी रानी को पिस्तौल का निशाना बना दिया था, क्योंकि वह दीवान साहब के यहाँ सोने नहीं गई थी।"

कमरे में एकदम ख़ामोशी।

नौकर रसोई की थाली ले आया और साहब के तकिये के निकट टेबल सरकाकर थाली उस पर सजा दी। पानी का गिलास रख दिया और उल्टे पैरों जल्दी क़दम लौट गया।

नरेश ने तीखे पूछा, "यह क्या है ?

ललिता ने कहा, "यह रसोई है। मेरे मरने के बाद कोई आमरण अनशन थोड़े ही करोगे। अच्छी से अच्छी रसोई खाओगे। तो मेरे कहने से मेरी नज़रों का

आखिरी भोजन कर लो न। कहोगे तो मैं शुक्रिया भी कह दूँगी।"—वह स्वयं खिल-खिलाने को हुई कि वह सचमुच में मुस्करा दिया।

उसने कहा, "ललिता!"

ललिता ने कहा, 'जी', और एक कौर अपने हाथों उठाकर उनके मुँह तक उठाया, पर वह तुनका कि जबरन उनके होठों में कौर सरका दिया।

अब उसने और कौर स्वीकार किया और खाने लगा कि ललिता हाँफ उठी और पलँग से उतरकर ज़मीन पर फैल गई। उसने चीत्कार की, "अरे, बड़े डाक्टर को फोन करो। फौरन कार लेकर उसे लेने जाओ।"

ललिता ने अस्फुट कहा, "पानी!"

नरेश दौड़कर पानी लाया और साथ ही गोद में रोती हुई लिली को उठा लाया। हीटर जलाकर पानी नवाया किया और दो चम्मचें ललिता के गले में उँडेलीं।

वह जल से कुछ आश्वस्त होकर, बुदबुदाई, "घबराओ मत, मैं अभी नहीं मरूँगी और तुम्हें एक पुत्र देकर जाऊँगी।"

नरेश की आँखों में आँसू छलछला आये। दृष्टि रजनी के चित्र पर पड़ी तो कमरे में उसे एक सह रजनी चिलकने लगे। लपककर वह उठा और रजनी का चित्र पिछले दालान में उठाकर फेंक दिया।

बाहर रजनी के चित्र ने तो नहीं, उसकी रक्षा करते हुए काँच ने क्षणिक क्रन्दन-गीत गाया। पुनः सर्वत्र स्तब्धता छा गई।

नरेश ललिता का सिर अपनी गोद में रखकर डाक्टर की प्रतीक्षा करने लगा। लिली किसी भय से उसकी दूसरी जंघा में मुँह छिपाकर सो चुकी थी।

८

वधु के आकाश-कुसुम

सुबह होते ही रजनी को दो पत्र मिले। उन्हें लेकर रिक्शी आई थी। पत्नी को अपने तईं आरामकुर्सी की 'आर्म' पर बैठाकर रजनी ने पहला पत्र खोला। माधवी की लिखावट थी। उसे रिक्शी को सुनाते हुए रजनी पढ़ने लगा।

"प्रिय रजनी,

इस प्रिय-सम्बोधन को इसलिए लगा दिया है कि इस क्षण मुझे और कोई सम्बोधन उचित नहीं लगा। लोक-लाज में तो यह प्रिय शब्द जैसे हिन्दू-नारी के लिए सर्वथा त्याज्य है और वह निजी गृहस्थी की परिधि के बाहर इसका उपयोग नहीं कर सकेगी। पत्र लिखते हुए आँसू भी मेरे उमड़ आये। पर हर्षातिरेक में भी हूँ। विवाह कर लाये हो। हमारी भाभी जी हम से अपरिचित हैं, पर हमारी सखी तो वे बन जायेंगी ही। कम से कम विवाह की घड़ियों में निमन्त्रण की अधिकारिणी तो मैं थी। किन्तु, इस क्षण पत्र लिखने को इसलिए बाध्य हुई हूँ कि तुमको पत्र लिखे बिना मुझे चैन न पड़ेगा। 'उन्होंने' घर पर भोजन तक करना बन्द कर दिया है। तुमने भी एक दिन झुँझलाकर इसलिए भोजन नहीं किया था, क्योंकि तुम खाते-खाते थक चुके थे। पर पुरुष इस नारी को भोजन इतिहास की कौन सी तिथि तक जानता चलेगा। मेरी यही अनुनय है कि हमारी भाभी को भोजन न समझना। वे तुम्हारे भावी सफल जीवन की अग्रिम ध्वजा बनकर आई हैं। उस ध्वजा को सदैव ऊँचा ही उठाये रखना। कहीं सख़्तीपने से उसे उठाकर एक कोने में किसी दिन रख दो और कहो कि मैं ध्वजा उठाते-उठाते थक गया हूँ।

पुनश्च: विवाह तो तुमने आख़िर किया है और शायद भाग्य ने ही कराया है। पर एक समर्थ पुरुष की तरह से यदि विवाह रेणुका से कर लेते तो आज वह एक गहरा आघात लिये हुए अन्धी बनकर तुम्हारे नाम की माला न जपती होती। अभी वह यहीं ठहरी हुई है और उसे मैंने तुम्हारे विवाह का कोई समाचार नहीं दिया है।

शुभाकांक्षिणी

माधवी"

अन्तिम पंक्तियाँ रिक्शी ठीक न सुन पाई सो उसने पत्र अपने हाथ में ले लिया और पुन: पढ़ा। पढ़ चुकी तो पति के मुख को निहारा। रजनी ने अपने मुख को काफ़ी देर तक सिगरेट के धुएँ में छिपाये रखा। जब सारा धुआँ ऊपर उठ चुका, तो पत्नी

को केवल वहाँ शान्त मुद्रा ही मिली। अब रजनी ने दूसरा पत्र खोला। यह डैडी का था—

"प्रिय रजनी और प्रिय रिक्शी,

मुझे चार रोज़ हुए, तुम्हारे यहाँ से पत्र मिला है कि तुम दोनों आपस में प्रथम क्षण से ही झगड़ने लगे हो। सो निश्चित रहो, तुम्हारे झगड़ों का निपटारा करने तो कतई नहीं आऊँगा। एक ५०० रु० का चैक भेज रहा हूँ। आज ही तुम दोनों अपनी गृहस्थी की गंदगी से निकलकर भारत भर की यात्रा के लिए निकल पड़ो। यह रुपया ऐसे मौके पर खत्म करना कि तुम्हारी यात्रा यहाँ दिल्ली में समाप्त हो।

तब तक के लिए,
तुम्हारा अप्रसन्न,
डैडी"

चैक को पत्नी के हाथों में थमाकर रजनी ने फिर अपना मुख सिगरेट के धुएँ के पीछे छिपा लिया। चैक को लेकर रिक्शी बाहर दौड़ भागी और जेठानी जी के पास पहुँची। सुकुमार भंगिमा से वह चैक उन्हें बताया, मचलकर उनके लिपट गई और बोली, "माता जी और पिता जी से हमें यात्रा की आज्ञा दिला दें। हम आज ही जाना चाहते हैं···"

जेठानी जी ने मधुर दर्पण में वह चैक देखा। कुछ समझीं और कनखियों को चंचलायमान कर कहा, "हमारा कमीशन ?"

रिक्शी ने पग-पायलों को झंकृत किया और नृत्य के दो डगों पर नाचकर वह मानिनी बन गई, "कमीशन-वमीशन कुछ नहीं। हम आज ही यात्रा में जायेंगी। डैडी ने यह चैक भेजा है।"—और कुछ इस प्रकार जेठानी जी को मूक संकेत किया कि वे सास जी के पास जाने को बाध्य हो गईं।

माता जी ने सुना। पिता जी ने सुना। सब घर भर ने सुना। शाम तक यात्रा की तैयारियाँ कर सबने प्रसन्नता सहित रिक्शी और रजनी को बिदा दी।

पिता जी ने कम से कम कठोर शब्दों में कहा, "रजनी, बहू को जैसी ले जा रहे हो, वैसी ही सकुशल लौटाकर ले आना।"

माता जी ने भरे हुए कण्ठ से कुछ मुस्कराकर कहा, "बहू, रजनी की सँभाल तेरे ज़िम्मे है।"

पीछे मुहल्ले भर की भाभियाँ अपने-अपने घूँघटों में असंख्य रतियों के हास को गुंजा उठीं।

× × ×

स्टेशन पहुँचे तो नौकर दौड़ा हुआ आया। दुपहर की डाक से डैडी का दूसरा पत्र आया है। गाड़ी में स्थान पाने की शीघ्रता में रजनी ने उसे अपनी जेब में रख लिया। गाड़ी आई और रजनी को और वधु को सुहाग-रात्रि की यात्रा के निमित्त अपनी पलकों पर उठाकर नीलम देश की परी की नाईं ले उड़ी······

शान्तिनिकेतन देख चुके तो वधु ने इच्छा की, अब अजन्ता की गुफ़ाएँ देखें।

एक मुस्कान, एक स्पर्श। एक सम्बोधन·········

वधु ने इस बार मुस्कान भी दी, सम्बोधन भी किया, पर अपने मृदु हाथों से उसे स्पर्श करके आग्रह नहीं किया। अलंकारों में अगर कहीं कभी कमी रह जाये, तो रह जाये। देह, गात, मुखड़ा यदि चित्त को मोह ले तो वहाँ अलंकारों की कमी नहीं दीखती। वधु की इस आलंकारिक शिष्टता में चूक है, पर रजनी ने मूक-मुग्ध अजन्ता का टिकट खरीद लिया। आग्रह की उत्कण्ठा तो रही कि इनसे कहे, "पहिले कलकत्ता देखें, फिर पुरी की यात्रा करें, तब अजन्ता की ओर बढ़ें।" पर ये कालेज में रहकर भारत के अंग-अंग का अक्षर-ज्ञान कर चुकी हैं। किस अंग का सौन्दर्य-ज्ञान किस के बाद कब, कैसे करने की हबिश इनमें है सो बताती नहीं हैं। दिल्ली की कुतुबमीनार दुबारा देखकर यहाँ शान्तिनिकेतन चली आई हैं और अब अजन्ता। इनके हृदय-समीर के झौंके क्यों यूँ मचल-उछल रहे हैं ?

रजनी ने टिकट रिक्शी को दे दिया। और कुली से सामान लिवाकर अपनी 'रिजर्व्ड-बर्थ' पर जा बैठा। टिकट के छोटे-से कागज़ का संकेत जैसे रजनी को कुछ नहीं है कि सीधे अजंता ही जाकर वह रुके। इस वधु की श्री ही सब है जो जिस ओर शीत पाकर छिटक जायेगी, रजनी उस तुषार से वहीं नहाकर तुष्ट हो लेगा। मार्ग में यह चाहेगी तो वह उतर सकेगा और बिन दुविधा अजंता का टिकट लौटा देगा। 'हनीमून' की यात्रा की सफलता की कामना करते हुए डैडी ने अपने दूसरे पत्र में लिखा था कि काम-भगवान के पुष्पबाण की पंखुरियाँ, एक सहस्र संभावना यही रहती है कि, मार्ग में बिखर पड़ती हैं। वे बिखरी हुई पंखुरियाँ नीचे आते हुए जिस-जिस को छूती हैं···वे बसंत-राग गा उठते हैं और वह अपरूप-बाण अपने असली शिकार का अवगुंठन नहीं खोल पाता······

गाड़ी चली तो रिक्शी रवि ठाकुर की कविताओं को गुनगुनाने लगी। कम्पार्टमेण्ट खाली है और दोनों अकेले हैं। रजनी इनसे पूछकर धूम्रपान में विश्वस्त होकर लेट गया। वधु का अवगुंठन पूर्ण विकसित होकर पुष्पित हो गया है। इसका अर्थ है कि 'काम' के पुष्पबाण की पंखुरियाँ मार्ग में नहीं बिखरीं। वधु के सुहाग की गंध इतनी तीव्र है कि रजनी काश्मीर से सीधे अपने घर नहीं गया। रिक्शी ने हल्के से उसे कहा था कि क्यों न हम भारत के सौन्दर्य-प्रासादों का दर्शन कर आयें।

रजनी ने कारण नहीं पूछा। पूछा कि कहाँ चलें ? वधु ने चुपके से कहा, "ताजमहल।" रजनी तुरन्त आगरे को प्रस्थान कर निकला। पूर्णिमा के बाद दो रात्रि वे वहाँ और रहे। तो वधु ने कहा कि अब शालीमार बाग़ देखेंगे। वह विस्मित रह गया और इनके अबोध अज्ञान पर सकुचा आया। इनसे शिकायत नहीं की कि पहले लाहौर देख लेते तो यहाँ आते। अब दुबारा ख़र्चा······

पर वह रिक्शी को लेकर लाहौर गया। बम्बई की ओर बढ़कर दोनों उदयपुर घूम गये। सांभरलेक और मकराना से निवृत्त होकर दोनों ने जबलपुर का टिकट लिया। और फिर बस, टिकट बाबू कहाँ का टिकट देता है, यह ध्यान रजनी को न रहा। वधु एक मुस्कान, एक स्पर्श और संबोधन करती रही है, और वह उसी दिशा में उन्माद में डग बढ़ाता रहा है।

हरेक स्टेशन के निकट पहुँचते ही गाड़ी के और यात्री अपनी खिड़कियों से नगरों की छतों को देखने लगते हैं। वधु गाड़ी की गति हल्के होते ही उबासी लेने लगती है। स्टेशन पर गाड़ी रुकने के पहले ही वह अपनी किताब उठा पढ़ने लगती है। हल्की होकर गाड़ी हावड़ा स्टेशन पर रुकी। तो दोनों ने गाड़ी बदली। एक मारवाड़ी दम्पति इनके डिब्बे में चढ़ आये। दो 'बर्थों' पर ये हैं। तीसरी बर्थ पर वे दोनों बैठ गये हैं। वे रात ही विवाह कर आये हैं। तोला-तोला भर भाँति-भाँति का गोटा मारवाड़ी दुलहिन के ओढ़ने में रूढ़ चित्र-गणित-सा चिपका हुआ है। लम्बे घूँघट में दुबककर वह कोने की ओर मुँह कर बैठ गई है। गाड़ी चली तो सेठ साहब अपनी नवपत्नी के इस असभ्य लज्जा के व्यवहार से झेंपकर अख़बार के पन्ने उलटने लगे।

गाड़ी आगे बढ़ने लगी। पहाड़ आस-पास दीखने लगते हैं तो वधु चॉकलेट चूसने लगती है। न जाने क्यों हल्के-हल्के मुस्काकर क्या दार्शनिकता करती रहती है। तकिये के ऊपर रेशमी रंगीन धागों से कढ़ा हुआ है, 'सौन्दर्य-की-ऊषा'। उसके ऊपर अपना सिर ऊँचे रखकर दृष्टि चंचल रखती है। पुस्तक भी देखती है, बाहर भी सचेत रहती है। नदी के पुल पर से गाड़ी गुज़रती है तो खिड़की से ख़ूब झुक-झुककर क्या अध्ययन करती रहती है सो वह ही जाने। हरे-हरे मैदान आते हैं तो अपना धूप का चश्मा उतारकर एकटक उस हरियाली को देखने लगती है। जी इसका बड़ा प्रफुल्लित हो आता है। और इस अवसर पर हर बार एक बात दुहराती है, "आहा, कितनी हरियाली है। और क्यों जी, गर्मी में यहाँ सब सूख जाता होगा ?" रजनी, हर बार इसकी नीली-नीली पुतलियों के हास्य से हँस पड़ता है। उत्तर देना है, सो कहता है, "जी हाँ, गर्मी के चार महीने ज्वर के होते हैं। ज्वर में तो अच्छे-ख़ासे आदमी मुरझा जाते हैं।"

और रिक्शी सदैव एक ही बहस करती है, "पर ज्वर का तो उपचार हो

जाता है।"

जानते-बूझते भी रजनी इस बहस का उत्तर नहीं देता। अपनी सुहाग-रात्रि के चरम क्षणों में दीर्घ वह बना रहा है। सुहाग की ग्रीष्म-ऋतु के उपचार की जय-घोषणा तो तब होगी कि वह ज्वर इस वधु में चढ़े। अभी उस सुहाग-ग्रीष्म की प्रतीक्षा करना वह नहीं चाहता। और वह उत्तर भी क्या दे ? गाड़ी आगे बढ़ लेती है। और वीरान जंगल आँखों के आगे से गुज़रने लगते हैं। ऐसे समय यह अपनी आखें मींचकर लेट जाती है। एक रेशमी चद्दर ऊपर से तान लेती है। रजनी शान्त, तृप्त, कभी इसे देख लेता है, नहीं बाहर ही देखता रहता है···वधु की काव्य-संगति से विभोर, पीछे भागते हुए झाड़-झंकार।

सिगरेट उसकी उँगली के पोरवे तक फुँक चुकी थी। सेठजी ने अपनी पैकेट निकाली और इधर बढ़ाई। रजनी ने उन्हें धन्यवाद दिया और सिगरेट उनकी स्वीकार की। सेठजी ने अपना परिचय-पत्र उन्हें दिया, रजनी ने भी अपना परिचय-पत्र परिवर्तित किया। दोनों ने 'हैंड-शेक' किया और सेठजी को अपनी बर्थ पर बुलाकर रजनी ने एक तीली से दोनों की सिगरेटें चासीं। आज्ञा ली कि नये मित्र के नाते उनके विवाह पर उसे बधाई देने की आज्ञा दी जाय। सेठजी इस आत्मीयता पर अपनी ओर से सम्मान में झुक गये। पूछा कि कहाँ पधारना हो रहा है? रजनी ने बताया कि हम दोनों (सेठजी ने वधु की सम्पूर्ण देह पर एक दृष्टि अब डाली) अजंता जा रहे हैं। तो पूछा गया कि आप कहाँ से आ रहे हैं ? बताया गया कि जी, दो महीने से यात्रा में हैं।

सेठजी अजंता देख चुके हैं। उन्होंने इन्हें ठहरने की सुविधा के लिए वहाँ के स्टेशन मास्टर से मिलने को कहा, कि जो मेरा हवाला पाकर आपको हर प्रकार का सहयोग देंगे।

शाम हो चुकी थी। वधु उठ बैठी। 'थर्मस' निकालकर चाय अपने गिलास में डाल दी और बोतल के ढँकने में रजनी को बढ़ाई। ओह ! और ये कौन इनकी 'बर्थ' पर बैठे हैं ?

रजनी ने कहा कि सन्दूक से दूसरा कप निकालकर सेठजी को भी पेश करें। और सेठजी से वधु का परिचय कराया, "मिसेज़ रिक्शी रजनी।" वधु ने सुन्दर तन्वी के अनुरूप इन्हें हाथ जोड़कर नमस्कार किया और इन्हें चाय दी।

सेठजी सेठजी नहीं हैं। वस्त्र मात्र वैसे पहन रखे हैं। विद्याध्ययन लंदन के विद्यालय में और शायद अमरीका के किसी विद्यालय में कर आये हैं। संभ्रान्त कुल के हैं। प्राचीन परिपाटी में जो भी शुभ है, उसे छोड़ना नहीं चाहते। चाहते तो अपने हाथों इस गोटे-जरी के वस्त्रों में लिपटी हुई वधु से दस साल पहले बाँधी गई सगाई की पीत-वस्त्रों की प्रणय-डोरी को तोड़ फेंकते। विलायत में, और देशों में प्रायः जो

देखना-पढ़ना था सो कर चुके हैं। सुहाग-रात्रि की यात्रा को वर्ष भर तक क्रमशः रखने में संलग्न दम्पति स्विट्ज़रलैंड में उन्होंने देखे हैं। पर इन वधु की बिन-प्रारम्भ और बिन-इति की योजना का सदाशय वे नहीं चीन्ह सके। बोले, "आप आश्चर्य तो नहीं करेंगे, मैं कहूँ, कि मुझे पेरिस की सुन्दरियों की एक संस्था ने मेरे निबन्ध 'सौन्दर्य और उसके पंख' पर पाँच सौ डालर का पुरस्कार दिया है ?"

रजनी गहरा कुआँ है। रिक्शी विवाह से पहले यह जान चुकी थी। अपने जी की जाग्रत लता के डोरों की कुँडली जितनी विशाल बनाकर डालना चाहें, उसे विश्वास है, रजनी के हृदय के कुएँ में उतनी ठौर सहज ही कुंडली-स्थली बन जायेगी। सेठजी के निबन्ध-शीर्षक से अधिक क्या शेष है ? सो रजनी कोष ठहरेगा। पर आँखों को दीर्घ कर रजनी बोला······"ओह !"

सेठजी ने बात आगे बढ़ाई। सिगरेटें और जलीं। अब दोनों की चर्चा रिक्शी की यात्रा पर टिक गई है। जो पूछते हैं, रजनी सेठजी को बता देता है।

सेठजी ने कहा, "काश्मीर की सुषमा-क्यारियों में पहुँचने से पहिले श्रीमती रिक्शी असीम उल्लास में थीं। वहाँ के बजड़ों में तुम दम्पति का चित्त जहाँ सुहाग के राजपथ पर घूँघट उठाकर चल पड़ा था, वहाँ वधु अपने पति के संबल-कण पीकर पूर्ण आश्वस्त नहीं हो पाई थी। पति का मनुष्यत्व तो हरेक वधु अपनी सुहाग की रात्रि में अपने पति से प्राप्त कर लेती है। पति की मनुष्य-श्री दुर्लभ वस्तु है। वधु उससे वंचित ही रही, (रजनी ने आँखें मींच लीं और इसे अस्वीकार नहीं किया) अतएव वह ताजमहल आई। यहाँ शाहजहां ने अपने जीवनकाल में मुमताज को अपनी पूरी मनुष्य-श्री दी थी. अपनी मृत्यु के बाद ही उसे दुनियावी-प्रेम दिया था। तभी वह प्रेम 'शाही-आँसुओं-का-स्वर्ण-स्तूप' बन सका था। वधु का विचार सत्य था कि ताज-महल की मर्यादा में प्रवेश कर आप उसे अपनी श्री दे देंगे। वह आपने दी भी। पर वधु की वेदना को तब भी आप चीन्ह न सके। वधु की वेदना मूर्च्छित हो रही थी, ताजमहल के संगमरमर की शीत उसे जाग्रत करने में अवश थी। तभी वह शालीमार की सरल क्रीड़ा के लिए मार्ग पर वापस हो ली। उसे शालीमार नहीं देखना था जो दुबारा व्यय का भय होता। सुहाग की रात का तापक्रम नीचे न उतर आये, वह यही चाहती है। आज्ञा दें, तो कुछ उनसे बात कर सकूँ।"

रजनी और सेठजी ने देखा, वधु एक कविता यीट्स की पढ़ रही है, फिर रवीन्द्र की एक कविता पढ़ लेती है। गाड़ी अब धानों के खेतों के किनारे से गुजर रही है। बाईं ओर कुछ ऊपर दशमी का चन्द्रमा अर्द्ध-निद्रित पड़ा हुआ है। अँधेरे में नगर की उर्द्धव रेखायें ऐसी भान होती हैं कि ये चारों व्यक्ति किसी स्वप्न-यान में इन नगरों के ऊपर काफ़ी नीचे उड़ रहे हैं।

रजनी ने कहा कि ज़रा उठें, सेठजी आप से कुछ बात करना चाहते हैं।

रिक्शी उत्तरोत्तर ध्रुवतल तक संभवतः उठ चुकी थी। हठात् नीचे उतर-सी आई। पुस्तकों को एक ओर रख जिज्ञासा में बैठ गई। टाँगें बर्थ से नीचे लटका लीं। प्रसन्न है कि जाने क्या बात करना चाहते हैं ये।

सेठजी ने कहा कि क्षमा करें, बात हमें रुचिकर नहीं लगी कि शान्तिनिकेतन देखने के बाद आप सीधे अजंता जा रही हैं। यहाँ टाटानगर है। वह आप पहले देखतीं तो अच्छा होता। फिर बनारस में बौद्धों का मठ देखतीं, तब वहाँ पहुँचतीं।

वधु शरमा गई। और अपनी हथेलियों कोउ लझा बैठी। पर ये सौन्दर्य-बिहार को समझते नहीं दीखते। कोरे सेठजी हैं। हँसते हुए पूछा कि टाटानगर बंगाल में है ?

रजनी न हँसा, गम्भीर रहा।

सेठजी इस असंगत प्रश्न पर स्तब्ध हो गये। पर निष्कर्ष पर वे पहुँचेंगे। धैर्य से कहा, "हाँ, बिहार में जमशेदपुर है। और रजनी बाबू उसे देखकर अवश्य आनन्द पाते। आप देखतीं वहाँ कि यह इंसान स्त्री-पुरुष के दायरे से ऊपर एक ऐसी दुनियाँ बसा रहा है कि जो सदा दुनियाँ की छत पर टिकी रहेगी। और जिसकी छाया के नीचे हमारी यह दुनियाँ मुरझाकर रह जायेगी। पर जहाँ साधारण इंसान न रह सकेगा। केवल बौद्धिक व्यक्ति ही वहाँ श्वास ले सकेंगे। वह खरे लोहे की दुनियाँ होगी। वहाँ लोहा ढलता है और तब इंसान सामूहिक मौत की चाबी का दावेदार बन जाता है। शान्तिनिकेतन में व्यक्ति कलाकार बनता है। वह कलाकार इसी लोहे के अनुरूप अपनी कला का विकास करे तो उसका निस्तार है, अन्यथा वह मरुस्थल में रहे। अजंता की गुफ़ाओं में आप किसी 'राकेट' में बैठकर प्रवेश करें तो वहाँ की चित्र-कारी के अमृत्व की धारा में स्नान कर सकेंगी। वह अपने आप में एक महान् लोक है। अजंता शान्तिनिकेतन से ऊँची दूसरी सीढ़ी नहीं है।"

रजनी ने सिगरेट के घने सारे धुएँ के पीछे अपना मुँह छिपा लिया। वधु सेठजी को देखती रही और लाज में हँसती रही।

रजनी ने और गहरा धुआँ अपने सामने फेंका।

सेठजी वधु के सुहाग की प्रांजलता से धनिक हो गये। हँसकर कहा, "हमारे भारतीय सुहाग में जो क्षय-कीट है, वह यही है। आप इस क्षय के विरुद्ध प्रयोग कर रही हैं तो शुभकामनायें मेरी आपके साथ हैं। मैं कल ही यह विवाह क्रय कर चुका हूँ और यह पत्नी ले आया हूँ। ज़रा देखें, गृहस्थी के अतिरिक्त ये कहीं और श्वास न ले सकेंगी।

रिक्शी के निजी प्रांगण का रहस्य वैसे कुछ नहीं है। सुहाग में जीव है और वह बहुत मृदु है। वह उस जीव को अति मृदुता से ही पोस रही है, पर ये सेठजी

क्या यहाँ हमारे सुहाग-लोक में लोह का संघर्ष और धुआँ उपस्थित कर रहे हैं। उसने अपना तर्क दिया, कुछ अटक-अटककर कहने लगी, "जी, यात्रा में गन्तव्य होने से इंसान का निजी अपमान है। यात्रा में आशय होने से इंसान जानवरों से भी हीन है। टाटानगर पहुँचकर मैं लोह की वह ऊँची दुनियाँ तो देखूँगी, पर यह और देखना चाहूँगी कि उसमें सुहाग के प्रकाश-स्तम्भ कहाँ हैं? (वह कुछ लड़खड़ा-सी गई।) मेरे लिए तो शान्तिनिकेतन वह कविता है जिसका एक छन्द अजन्ता में निहित है और कुतुबमीनार वह दृढ़ प्रकाश-स्तम्भ है जिसकी जड़ें शान्तिनिकेतन की भूमि में उग आई हैं। मकराना वह उद्गम है जहाँ से ज़मीन में गड़े हुए न जाने कितने अतृप्त-तृप्त सुहागों को धवलता पहुँचती रहती है। जबलपुर में यही मकराना प्राकृतिक जल से स्वस्थ हो गया है। यह एक अखण्ड आश्चर्य है कि मकराना के निकट ही साँभरलेक है। जीवन-मृत्यु के बीच हम नमक को अमृत के रूप में लेते हैं। और यह नमक का गुप्त प्रभाव है कि संगमरमर श्वेत है, शीत है और कब्रों पर ढँका जाता है अमृत की आत्मा के रूप में। मैं तो यही समझती हूँ कि हमारे सौन्दर्य-विहार काश्मीर-सुषमा की एक अदृष्ट-गंगा से सम्बन्धित हैं।"

सेठजी ने बिजली का पंखा बन्द किया। शीत की तहें उन पर चढ़ रही हैं। शाल की तहें अपने ऊपर उन्होंने चढ़ा लीं। वधु के असन्तोष को पकड़कर वे आगे बोले, "आपका केन्द्र-बिन्दु ऐसी भक्ति है, जिसका परिणाम अत्यन्त सुन्दर सन्तान होगी। (वधु ने विचार किया कि ठीक है?) इसे स्वातन्त्र्य-विचरण भी कह सकेंगी। भक्ति की भावना सिद्ध होकर आकाश में अपनी दिव्य-दृष्टि फेंकती है। या इसे यूँ कहें कि बिना बाधा आप एक नींद लेना चाहती हैं, जहाँ पृथ्वी का ज्ञान और क्लेश न हो, परस्पर की मृत्यु की विभीषिका न हो। (रिक्शी का मुख श्वेत हो गया, वह निश्चल हो गई।) तो केन्द्र-बिन्दु यह है और इसके चहुँ ओर सुहाग के डैने उड़ते रहते हैं।"

रिक्शी ने सेठजी को संबोधन किया, "न हम लोगों के डैने हैं, न हमारा कोई केन्द्र-बिन्दु है।"—और रजनी से कहा कि भोजन का समय बीत रहा है।

सेठजी इस क्लिष्टता से स्वयं क्लिष्ट हो गये। उठे और उस घूँघट से ढँके प्राणी को भोजन परोसा, कुछ ताज़ा मिठाई इधर रजनी और रिक्शी को दी, कुछ नये मुरब्बे इनसे लिये। भोजन शुरू हो गया। रजनी ने वधु की बर्थ से एक अलबम उठा लया और भोजन करते हुए देखने लगा।

वधु ने सब खाद्य ठीक-ठीक परोसे, पानी रखा। सहसा पूछा, "जी, अजन्ता से लंका कितनी दूर है? वहाँ का रामेश्वरम् पुल क्या दर्शनीय स्थान है?"

रजनी ने हल्के-से गर्दन सेठजी की ओर मोड़ी, मुस्कराकर कहा, "यह सूचना आप दें।"

सेठजी घूँघट में छिपे हुए रहस्यमय प्राणी को कुछ खाद्य परोस रहे थे, या अपने प्राणों का अर्घ्य उसे दे रहे थे ! इस प्रश्न से वे चंचल हो गये । उत्तर दें तो क्या दें, नहीं स्पष्ट अपना अज्ञान जाहिर कर दें। बोले, "इस प्रवास की ऋतु अभी नहीं है।" पर देखा कि जहाँ वे स्वयं शाल में और उनकी पत्नी कम्बल में ढँक चुकी है, रजनी बाबू मलमल की कमीज में और उनकी वधु झीनी पंजाबी लुंगी में सहज बैठी हैं।

वधु ने दुहराया, "ज़रा उस डायरेक्टरी में देखिए न।"

इस बार सम्बोधन मात्र है। न स्पर्श है, न मुस्कान है । पर इन्द्र सृष्टि के आदिकाल में मुस्कराता भी था, अपने बादलों को स्पर्श भी करता था और तब कहता था कि हे बादलो बरसो। आजकल शायद वह भी सम्बोधन ही सम्बोधन करता होगा कि हे बादलो बरसो। और बादल झम-झम बरसने लग जाते हैं। रजनी ने तुरन्त अलबम बन्द किया और डायरेक्टरी देखने लगा। सेठजी को रजनी के भाग्य पर ईर्ष्या नहीं हुई। वे उसके सौभाग्य पर रीझ उठे। उसके सुख में सहयोग दिया कि कहा, "नौ सौ मील से ऊपर है और पाँच दिन का रास्ता है।"

रिक्शी ने मुस्कराकर कहा, "धन्यवाद !" और खाना शुरूकर दिया। रजनी अपने चेहरे पर हल्की हास्य-आभा ही लाकर रह गया और पुनः खाते हुए अलबम देखने लगा।

भोजन चलता रहा। गाड़ी अजन्ता की ओर हाँफती हुई आगे बढ़ने लगी।

सेठजी सोचने लगे कि इस प्रकार यह वधु आकाश-गंगा की ओर तो नहीं बढ़ रही है ? सेठजी भोजन से निबटकर सिगरेट जलाने लगे। जलती तीली को फूँक से बुझाया और बोले, "रजनी बाबू ! समाचार-पत्रों में घोषणायें निकलवाने से मैं संन्यास ले चुका हूँ। आपको अवसर मिले तो मेरी यह घोषणा छपवा देना कि आकाश-गंगा कोई आश्चर्यजनक वस्तु नहीं है। वहाँ जो हमारी नवयुग की नववधुयें बिना प्रवेश पाये पहुँच जाना चाहती हैं, सो उस पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाय, नहीं तो वह भी हमारी गंगा-जमुना की नाईं गन्दी हो जायेगी। आकाश-गंगा तीर्थ-स्थान नहीं है। वह आकाश-पुष्प है जो हमारे समस्त पुष्पों से दुर्लभ है।

रजनी अट्टहास कर बैठा। कुल्ले करते हुए बोला, "सेठजी, आपकी दर्ख्वास्त मंज़ूर की जाती है । वहाँ की प्रवेश-आज्ञा में यही शर्त लगा दी जायेगी कि वे ही वधुयें इस आकाश-गंगा का दुर्लभ स्नान या आकाश-कुसुम का इत्र पा सकेंगी जो अपने पतियों को अलंकृत नहीं करतीं, पर उनसे स्वयं सज्जित होती हैं।"

रिक्शी भी इस अट्टहास में अपना योग दे बैठी और आकण्ठ खिलखिला पड़ी। सेठजी की पत्नी मूर्खा की नाईं घूँघट से तीनों को देखती रही।

९

ग्यारह अगस्त १९४२[1]

प्रियतम ! इस शब्द में ऐसा माधुर्य है, जैसे तो तैराक तालाब के किसी भी कोने की ओर छलाँग मारने की छूट पाकर मिठास अनुभव करता है। इसी प्रकार पत्नी भी प्रियतम के अंग-अंग में तैरने की स्वतन्त्रता पा ले, तो उसकी मिठास तैराक की मिठास से सौ गुनी मीठी हो जाती है। पर आज यह प्रियतम शब्द मुझे इस तरह की दारुण यातना दे रहा है, मानो हज़ारों छुरियाँ मेरे पैरों के नीचे से एक साथ नीचे से ऊपर उठ रही हैं। और मुझे चुभ गई हैं। इस समय खिड़की में बैठी हुई सामने देख रही हूँ। हज़ारों पेड़ हैं। जड़ों में से होता हुआ पोषक-रस तने में पहुँचता है और न्याय-भाव से वह समस्त डालियों में वितरित कर दिया जाता है। दम्पति की सार्थक व्याख्या या परिभाषा तो यही है कि वह आपस में तने के अनुरूप एकाकार हो जाय और इस ज़मीन में मज़बूत जड़ें पकड़कर उससे पोषक-रस ग्रहण कर अपनी सन्तति में एकसां बिखेर दे। पर ऊपर हम में जैसे ही डालियाँ उगी नहीं कि वह पोषक-रस हमारा सड़ने लगा था। आज 'उन्होंने' स्थिति यह बना दी है कि मुझे अपने से झटक कर अलग कर दिया है और मुझे ही अपने शुष्क तने की एक डाली बना रहने दिया है। अन्य डालियाँ भी इस तने में लहराने लगी हैं, पर उनका मेरा व्यवधान काफ़ी अधिक है, सो उन्हें देख नहीं पाती हूँ। बस थोड़ी मात्रा में पोषक-रस मुझे दे दिया जाता है कि मैं जीवित रहूँ और हरी रहूँ। फूल चाहे मुझ में आयें या न आयें। और ऐसे पेड़ भी तो हैं, जिनमें आजीवन फूल नहीं आते। कोटि स्त्रियों में से एक स्त्री ऐसे ही पद पर आसीन हो जाय तो क्या अधिक हानि होगी···

मुझे ठीक याद है कि जिस दिन पहली बार यहाँ आई थी तो इनके पिताजी ने मुझे अपने चरण छूए जाने पर आशीर्वाद देते हुए कहा था कि बेटी ! तू हमारे यहाँ आई है तो मेरी पहली इच्छा यही है कि तुझे ज्यादा से ज्यादा सुख मिले। कालेज में तूने उच्च शिक्षा पाई है और तेरे घर वालों ने तुझे लाड़-प्यार से पाला है। बाद में मुझे पता चला कि मेरे ससुर के इन शब्दों के क्या अर्थ थे। मेरी सास जी में और मेरे श्वसुर में शायद एक दिन भी मन का मेल नहीं हो पाया होगा और सदा ही मेरी सास जी को उनकी कठोर यातनायें सहनी पड़ी हैं। और इन्हीं कठोर यातनाओं में

---

१. माधवी की डायरी से (तारीख़ अंकित नहीं है, पर अगस्त मास के दौरान में यह लिखा गया है)।

उन्होंने अपने इन पुत्र को पाला-पोसा है।

कालेज में इन बातों पर मैं कतई विश्वास नहीं करती थी कि दुखों और क्लेशों की परम्परा वंशानुगत चला करती है। लेकिन यहाँ आकर यह बात सही निकली है कि क्योंकि मेरी सास जी को इस घर में अपने पति का सुख नहीं मिला है, सो मुझे भी नहीं मिल सका है। पर इसका कारण यही है कि हमने जान-बूझकर इस परम्परा के विरुद्ध कभी संयुक्त क़दम नहीं उठाया। हमारी गृहस्थियों में आज दिन जंगली घास के उजाड़ मैदान ज्यादा हैं, क्यारियाँ बने हुए उद्यान कहीं कम हैं। और हमारे समाज ने कभी सोचा ही नहीं कि इस जंगली घास के मैदान को साफ़ कर दिया जाये क्योंकि वह घास हमारी और हमारी नई सन्तति का जीवन-रस आशा से अधिक पी जाती है और हमारे दीर्घ जीवन को अध-कच्चा बना रहने देकर अध-पक्का बना रहने देती है।

जब कभी उनके मित्र यहाँ पर चाय पीने आते हैं तो 'वे' ज़रूर मुझ से एक-आध मीठी बात कर लिया करते हैं, अन्यथा मुझ से बात करते हुए अब उनकी जिह्वा तालू से सट जाती है और उनकी वाणी दही-सी जमकर बहना बन्द कर देती है। यह सिलसिला पिछले दो साल से बन चुका है। ठीक किस बात को लेकर हुआ था, यह ठीक तरह से नहीं कह सकती। पर जहाँ तक याद बन पड़ता है, उस दिन हम निकट के एक जंगल में पिकनिक करने गये थे। कुल मिलाकर हम आठ आदमी थे। इनमें से दो तो हम, तीन उनके मित्र, एक इन मित्रों में से एक की पत्नी, और दो नौकर। हम स्त्रियाँ दाल-बाटियाँ तैयार कर रही थीं, और वे लोग मिलकर जंगल से फल इत्यादि बटोरने गये थे और इरादा था कि हम स्त्रियों के लिए वे बढ़िया और चित्र-विचित्र फूल भी हो सका तो लायेंगे। शाम को जब वे लौटे तो मैं एक पेड़ के तने के नीचे सोई पड़ी थी और आराम से कालेज-जीवन के दृश्यों को दुहरा रही थी कि नाम सुनकर उठी। 'वे' सामने बाटियाँ खाने बैठ चुके थे। और मुझे उनके मित्र हरीश ने उठाया था। वह मेरे लिए पलास और जंगली कनेर और कुछ अन्य जंगली फूल लाया था और चाहता था कि मैं इसी क्षण उनसे अपना शृङ्गार कर लूँ। उसका प्रस्ताव मैंने स्वीकार कर लिया और उधर एक झाड़ी की ओट में जाकर मैंने वनकन्या के अनुरूप उन फूलों से अपने को सजा लिया। जब वहाँ से निकली तो सबने तालियाँ पीटकर मेरा स्वागत किया और प्रस्ताव रखा कि आज मेरा नृत्य भी हो। मैंने उनकी ओर देखा कि उनकी अनुमति मिले। वे मुझे देखकर मुस्करा रहे थे। पर अनुमति उन्होंने नहीं दी और मेरे से नज़र हटाकर जाने कहाँ देखने लगे। निदान, मैंने नृत्य नहीं किया। करना अवश्य चाहती थी। आज तक मैंने इन्हें अपने नृत्य से विभोर नहीं किया है। और शायद वे जानते भी नहीं थे कि मैं नृत्य भी जानती हूँ। एक बहाना बताकर मैं भी बैठ गई और दाल-बाटियों पर टूट पड़ी। हरीश अपनी सफलता पर

बहुत खुश था । वह अकस्मात् बोला, "भाभी, तुम वनकन्या पूरी हो, पर हमारे इन सेठजी में तो जंगली उच्छृङ्खलता नाम को भी नहीं है ।" बस, उनका चेहरा काला स्याह पड़ गया था । और उस रात वे मुझ से खिंचे-खिंचे भी रहे थे ।

नित्य ही सूर्य उगता है । मैं तो यह कहूँगी कि नित्य ही ईश्वर का अन्याय-देवता खिलखिलाकर हँसता हुआ उपर उठता है । और इस ईश्वर के हज़ारों कोटि अन्यायों का लेखा-जोखा लिखते-लिखते थक जाने के बाद जब वह अंधकार में सोने चला जाता है···उस समय तक मेरी दैनिक चर्या अब यह रह गई है कि दो बार खा लूँ, रात के बारह घण्टे के अतिरिक्त चार-पाँच घण्टे और सो लूँ और कभी अन्तर्वेदना खूब-खूब बलवती हो जाय तो उसकी हूबहू छाया-रूपा काली रेखायें लेखनी से काग़ज़ पर उतार लूँ । कौन विश्वास करेगा कि मैं कवयित्री हो गई हूँ, जिसकी कविता के अक्षर स्वर्णिम नहीं हैं, मामूली काली स्याही से स्याह हैं ।

यह दुख की बात तो नहीं है कि पति से परित्यक्ता, सन्तानहीना कवयित्री बन गई है । पड़ौस की एक सखी है । वह एक दिन कहती रही, "स्त्री उस चर्खी-झूले की नाईं है जिसकी लटकती हुई सीटों पर हरेक कोई बैठकर चारों ओर घूमकर झम्मी लेने का आनन्द लेना चाहता है ।" तो वह कौन है जो मेरी कविता-सीट पर बैठकर आनन्द लेगा ? मेरा आशय है कि क्या कवितायें व्यर्थ तो नहीं लिख रही हूँ ? वे किसी को आनन्द दे सकेंगी ? जिन इंसानों के हरेक काम दूसरों में आनन्द का समुद्र उमड़ा देते हैं···वे कितन-कितने धन्य हैं ।

रिक्शी भी धन्य है । और इतनी धन्य है कि मुझ उसके भाग्य से ईर्ष्या है । उसने आते ही रजनी का कायाकल्प कर दिया है । और आज उसने उसे उस विश्वविद्यालय में अनजाने ही भेज दिया है, जिसे महात्मा गांधी ने समस्त विश्वविद्यालयों से महान् कहा है । आज रजनी जेल में है । वहाँ से वह कितना तपकर, निखरकर आयेगा···इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकती । वही रजनी जो हर चौथे दिन कभी खाने से थक जाता था, कभी नौकरी से थक जाता था । आज वह एक लम्बी तपस्या···दीर्घ तपस्या···में समाधिस्थ हुआ बैठा है । कल उसका पत्र मिला तो मेरे हर्ष के अश्रु रोके न रुके ।

अभी अपनी शादी से पहले जब रजनी यहाँ रात को आया था और सुबह होते ही चला गया था, तो दोपहर में भोजन करते हुए उन्होंने मुझसे कहा कि मैं उनके साथ ही भोजन करने बैठ जाऊँ । बात सीधी थी और इस प्रस्ताव पर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता प्रकट करनी चाहिए थी । पर सरल स्वभाव मैं बैठ गई और अनमने कौर लेती रही कि पैनी आवाज़ में बोले, "आखिर ये रजनी महाशय यहाँ क्यों आते हैं ? क्या मेरा यह मकान फक्कड़ों की सराय है । कि जब मन आया चले आये, और जब मन आया चले

गये। कम-से-कम कालेज के होस्टल में भी वार्डन का पहरा रहता है। पर यहाँ तो जैसे किसी का भी पहरा नहीं है।"

मैंने शान्त होकर कहा, "रजनी पागल है, इसमें आपको शक तो रहना ही नहीं चाहिए। वह यहाँ आता है, इसमें आपको आपत्ति कभी रही ही कहाँ है। आज है तो उसका उपाय अपने ही हाथ में है। ऐसा क्यों सोचते हैं कि यह मकान फक्कड़ों की सराय है या कि कालेज से टूटकर गिरे हुए आकाशी छोकरों का बिन-पहरे का होस्टल है। पर इस बात पर आपका इस तरह कुढ़ते रहना कहाँ तक ठीक है। आपने अपना शरीर कितना गिरा लिया है। और आपकी शक्ल काली पड़ती जा रही है। आपके यहाँ आकर मुझे क्या आराम नहीं मिलना चाहिए। नौकरों को मैं आराम नहीं मानती। वे तो सिर्फ़ हमारी दाम्पत्य की सुविधाओं को ज़रा-सा बल देने वाले हैं। आराम क्या है, यह हमने कालेज में किन-किन कल्पनाओं से दिवास्वप्नों में नहीं देखा है।"

वे चुप-चुप खाते रहे। कुछ नहीं बोले। जब भोजन समाप्त हो चुका तो उठें। कि मैंने उनके लिए पान का बीड़ा तैयार किया। पान ले चुके तो कुछ देर खड़े रहे और फिर तेज़ी से निकलकर अपनी 'कार' में चलते बने।

और तभी से 'वे' अब कहीं और रहने लगे हैं। सप्ताह में एक दिन यहाँ आते हैं। रात्रि भर निवास भी यहीं जाने कैसे कर लेते हैं और फिर छः दिन उनके ठौर-ठिकाने का मुझे पता नहीं रहता।

लेकिन रजनी का विवाह होने वाला है, यह सूचना उन्होंने ही बड़े शान्त शब्दों में मुझे दी थी। उस दिन काफ़ी घटाटोप आस्मान में छाया हुआ था। उनके आने की प्रतीक्षा मुझे थी, इसी से मैंने पकौड़ियों की व्यवस्था कर रखी थी। जैसे ही वे आये कि अँगीठी पर मैंने तेल की कढ़ाई रख दी और पक जाने के लिए उसमें तेल ढाल दिया। वह अभी ताव खा ही रहा था, कि यह देखने के लिए कि वह पक्का है कि नहीं, मैंने हल्की-सी गीली बेसन उसमें डाल दी। तेल कच्चा था इसलिए उसमें झाग फूट उठे और तेल उफनकर कढ़ाई से बाहर छलकने के लिए तैयार हो गया। मजबूर मुझे कढ़ाई अँगीठी से नीचे उतारनी पड़ी और उसमें से कुछ तेल खाली करना पड़ा। तब कहीं जाकर पकौड़ियों का पहला घान तैयार होने लगा। वे कनखियों से यह देखते जा रहे थे और चाय पीते जा रहे थे। कि बोले, "अब रजनी का कच्चा तेल पक जायेगा और उसमें जल्दी-जल्दी उफान नहीं आया करेंगे।" क्योंकि रजनी की बात थी, इसलिए मैंने इस पहेली को जानने के लिए कोई उत्सुकता नहीं दिखाई। उसका भूत वैसे ही इस मकान में मँडराता रहता है और उससे मुझे काफ़ी डर लगने लगा है। उसने जाने अपनी अपनी किस अज्ञानता की वजह से हमारा सौख्य अपने ज़हर से विषाक्त कर दिया है। मुझे चुप देखकर वे बोले, "रजनी की शादी हो रही

है। यहाँ से यही अस्सी मील दूर पर एक गाँव है। वहीं पर उसकी बरात जायेगी।"

मैंने सुना और चुप रही। न इस समाचार से मुझे कोई स्पन्दन हुआ। उस जैसे फितूरी आदमी के लिए कुछ भी अकल्पनीय काम कर लेना कोई आश्चर्य नहीं था। शादी तो वह आखिर करता ही। इसमें मुझे रंच भर भी सन्देह नहीं था। विवाह से पहले मैंने उसकी एक-एक नस पढ़ ली थी और मुझे विश्वास था कि उसके साथ प्रणय-डोर में बँधकर मुझे असीम सुख मिलेगा। मुझे चुप देखकर वे बोले "उसे पत्र लिखना कि उसने हमें निमन्त्रण नहीं दिया। कम-से-कम तुम्हें तो उसे बुलाना ही चाहिए था।" इस बात पर मैंने दबे स्वर में कहा, "जी, लिख दूँगी चिट्ठी।"

वे जब चले गये तो आँसुओं को अपने ज़ार-ज़ार ढुलकाती हुई रेणुका मेरी चौखट पर आ खड़ी हुई। मैं ही काफ़ी दुःखी रहती हूँ। यह एक दुखिया आकर और मेरे सिर पड़ी है, वह बाहर खड़ी हुई रजनी के विवाह के समाचार की बात सुन चुकी है। फिर भी मैंने पूछा, "बहन, क्या हुआ ?"

उसने अपनी हिचकियाँ रोकीं। मुझे अपनी ज्योतिहीन पुतलियों से देखती हुई बोली, "तो उनका विवाह हो रहा है। आखिर वह कौन बड़भागिनी है।"

मैं क्षुब्ध थी। रेणुका की इस बात से मेरा रोम-रोम तैश में उखड़ जाना चाहता था। पर बोली, "क्या करोगी जानकर कि वह कौन है।"

रेणुका ने दो ताजा गरम-गरम आँसू ढुलकाकर कहा, "अभी तक तो एक की ही माला जपती हूँ। अब उसकी पत्नी की भी माला जप लिया करूँगी।"

मैं सचमुच आज रेणुका के तमाचा मारना चाहती थी। जाने कहाँ के सड़े हुए संस्कार इसे नसीब हुए हैं। उसी दिन एक पत्र मैंने रेणुका की सखी ललिता और दूसरा पत्र रेणुका के पिता जी को दिया कि वे आकर उसे लिवा जायें। और उसकी आँखों का इलाज कराकर उसकी ज़िन्दगी को इस तरह सड़ने से रोकें।

पाँच दिन बाद रेणुका का छोटा भाई आया और मैंने उसके साथ ज़बरदस्ती उसे वापस भिजवा दिया। उस दिन रेणुका के कमरे को साफ़ करने के लिए जब मैं झाड़ लेकर पहुँची तो उस खाली कमरे में बैठकर सहसा मेरा माथा घूम गया। उस रजनी ने अब तक तीन ज़िन्दगियों के डैने काटकर फेंक दिये हैं और किसी चौथी ज़िन्दगी के डैने अपने में खोंसकर नई दिशा में उड़ने की तैयारी कर रहा है। मुझे ऐसा लगा कि रेणुका की हत्या जान-बूझकर ललिता देवी ने इस तरह की है, कि बिना इस बात का ख्याल किये कि वह अपने प्राण बचा सकेगी कि नहीं, उसे तैरने का पहला पाठ पढ़ाये बिना ही उसे तेज़ नहर के बहाव में धक्का दे दिया है और उसको अपने सामने ही डूब जाने दिया है। यदि अंग्रेज़ी का मुहावरा प्रयोग करूँ तो कहूँगी कि रेणुका की हत्या 'कोल्डहैंडेड' की गई है। ललिता देवी चाहती है तो रेणुका के

प्राण बचा सकती थी। आखिर क्या हक था कि अपनी किसी मनोभावना को विजय-रूप सेहरा बँधाने के लिए वह इस तरह किसी अबोधा लडकी की हत्या कर दे। न तो रजनी मे भगवान् श्रीकृष्ण की मर्यादातीत सामर्थ्य है और न रेणुका कुबडी राक्षसी ही है। रजनी साधारण इसान है और उसके गुस्से को ललिता के पति ने भी ख्वामख्वाह इतना तूल दे दिया कि उसे रेणुका का ट्यटर नियुक्त होने दिया।

जिस दिन रेणुका यहाँ पर आई थी तो वे यही पर थे। रेणुका के साथ उसका छोटा भाई आया था। रेणुका का रूप देखते ही वे करुणार्द्र हो आये थे। पर रजनी की इस क्रूरता पर उन्होने नितान्त चुप्पी ही धारण रखी और कुछ ऐतराज नही किया कि रेणुका यहाँ रहे। रेणुका के भाई को उन्होने खाने के समय अपनी थाली मे ही खिलाया। और तीन दिन तक उसे रोजाना सिनेमा दिखाया। दिन मे भी वे उसके लिए कभी फल मँगवाते रहे, कभी उसके लिए और चीज़े दिलवाते रहे। और, जब वह चला तो वे खुद उसे रेलगाडी मे बैठाने स्टेशन गये थे। और वहाँ पर उन्होने उससे कहा था, "छोटे मुन्ने, अपने पिता जी से कह देना कि वे अपनी जीजी को वापस जल्दी ही बुलवा ले। यहाँ उसे रखने से कुछ भी फायदा नही होगा। कह देना कि माधवी खुद ही उस रजनी से हार मान चुकी है।"

भारतीय युवक इन दिनो क्रान्ति कर रहे है। आज के अखबार मे लिखा है कि इस सप्ताह ३५ हज़ार युवक जेलो मे भर दिये गये है और बहुत से अंग्रेज़ी सार्जेंटो की गोली के शिकार हो चुके हैं। इनमे से कई सौ युवक फाँसी पर लटका दिये जायेगे। फासी पर लटककर व्यक्ति क्या निष्कर्ष अपने पीछे छोड जाता है? कम-से-कम एक अपूर्व चित्र! महान् चित्रकारो की तूलिकाओ को लज्जित करता हुआ एक अपूर्व चित्र! क्या रजनी भी फाँसी पर चढेगा? वह चढ लेगा तो भी ठीक रहेगा। देश की भावी सन्तति ईर्ष्या से उसका नाम स्मरण करेगी। एक मै हूँ जो हर क्षण कटु और तीक्ष्ण मनोभावो मे 'उनके' लिए सुलगती रहती हूँ। क्या 'वे' ऐसी क्रान्ति नही कर सकते कि उन्हे भी आनन्द की चरम अनुभति हो और मै भी घडो दूध पीने वाली जैसी धन्यभागा हो जाऊँ? पर आज का युवक जहाँ मौजूदा समाज की सडी-गली, गाँठो भरी सुतलियो मे स्वय उलझी हुई नारकीय यातना चुपके-चुपके सहता है, वहाँ अपनी पत्नी को भी नाहक और जबरदस्ती अपनी नपुसकता के छतीले रोग से ग्रस्त कर देता है। अरे! इस दुगने अपराध की सजा कोई क्यो नही 'उनको' देता?

उस दिन मै रजनी से भी झुँझला उठी थी और चाहती थी कि उसे भी व्यर्थ मे कुँवारा बने फिरने की सजा मिले। पर आज वह अपने आप, राजी-राजी, काँटो की शैया पर सोने नही चला गया है। वहाँ वह क्षण-क्षण की मर्म-भेदी यातनाओं को सहेगा और स्टील या स्पात्-सा चमकता चलेगा। कितना साहसी निकला रे वह!

जो बात-बात मे छोकरियो की नाई रो देता था। जेल से पहला पत्र उसने मुझे ही लिखा है।

डिस्ट्रिक्ट जेल
दिल्ली
१५ अगस्त, १९४२

"आदरणीय माधवी,

तुम एकबारगी ही रो न पडना कि मै हठात् कहाँ से पत्र लिख रहा हूँ। इस क्षण मै जेल का कैदी नही हूँ। इस क्षण मै उस विराट क्रान्ति का एक क्षुद्र ईंधन हूँ, जो जल रहा है। इस बात से भी मैंने आँखे खोल ली है कि शायद मुझे पूरा जल जाना पडे।

पर यह हुआ ऐसे। मै कोई राजनीतिक व्यक्ति तो था नहीं जो यहाँ सहज ही आता। भारतीय जेलें पिछले पचास वर्षों से भारतीय स्वतन्त्रता की 'नर्स' का काम कर रही है। या मैं यूँ कहूँगा कि ये भारतीय जेले उस राख का कार्य कर रही है जो भारतीय क्रान्ति के सुलगते हुए कोयलो को बार-बार इसलिए ढक लेती है कि वे कतई न बुझ जायें। और पुन· ज्वाला-रूप सुलगने के लिए तैयार रहे। सच समझना, अगडाइयाँ ले रहा हूँ कि बाहर आऊँ तो स्वस्थ और प्रसन्न-चित्त और 'स्मार्ट' बनकर आऊँ।

यह हुआ ऐसे। कि मै एक मोड पर नियति द्वारा ढकेल दिया गया। रिक्शी मेरे जीवन की वह मोड़ है, जहाँ से मै तुम्हारी सीधी पगडंडी से मुड गया था।

अजता से हम लोग लौटकर यहाँ डैडी के पास चले आये थे। वैसे जाना तो रामेश्वर के पुल था। पर रिक्शी कहने लगी कि हम सुहाग-रात्रि की यात्रा पर है, कोई धार्मिक यात्रा पर नही, जो उस तीर्थ के स्पर्श का पुण्य-लोभ हमे हो। सो वह नही ही गई। यहाँ हम १० अगस्त को लौट आये थे। हमे देखकर डैडी के हर्ष-अश्रु उमड़ पडे। बोले, 'भाई! तुम दोनो सचमुच ठीक तिथि को आ गये। देश मे असतोष के बादल उमड रहे थे और मै तुम लोगो की चिन्ता मे बैठा घबराता रहता था।' और दूसरे दिन मै यहाँ चला आया। सुबह डैडी मुलाकात करने आये थे। बच्चो की तरह से मुझे गलबहियो में भरकर रो उठे। बोले, 'रजनी, मुझे यहाँ आना चाहिए था। अब गृहस्थ के आश्रम का सफर मै कर चुका हूँ। सुना है बानप्रस्थ आश्रम बड़ा श्रेष्ठ माना जाता है।'

मैंने उन्हें उत्तर दिया, 'यह केवल युवको का हठ-योगाश्रम है।'

वे चौंके। मुझे सीधे देखते हुए वे आश्चर्य में पड़ गये। मुझे मिठाई खिलाते हुए अंत तक वे आश्चर्य से बोल तक न पाये। पर उनके जाने के बाद अपनी बारक

में आकर मैं रो पड़ा । घंटों चुपके-चुपके रोता रहा । अच्छा ही हुआ कि बाहरी दुनियाँ के आँसू इस तरह मेरी आँखों से बह गये हैं।

११ अगस्त को हम सब छत पर बैठे हुए थे । डैडी तो आफिस गये हुए थे। रिक्शी, पड़ौस की एक वधु, मामी जी (डैडी की श्रीमती) और मैं । रात भर मैं अपनी कविता-पुस्तक के उपोद्घात लिखने में जागता रहा था। इस समय आँखें भारी थीं, पर पड़ौस की वधु अपने मिष्ट परिहास से चुहल कर रही थी और मैं रस ले रहा था कि सामने आकाश में एक घटाटोप छा गया। हम उसे देखने खड़े हो गये। नीचे मुहल्लों और बाज़ारों में परेशानी, घबराहट और भगदड़ दिखाई दी। पता लगा कि 'पीली कोठी' को आग लगा दी गई है। यह रेलवे का दफ़्तर था, पर अपने आप में यह दिल्ली की सबसे बड़ी ऊँची कोठी थी।

कि उस धुएँ के घटाटोप में राक्षसों की जिह्वा की नाईं भयंकर काली-पीली ज्वालायें नग्न-नृत्य करने लगीं। मेरा रोम-रोम, जाने क्यों, रोमांचित हो आया। एक ऐसा आकर्षण मुझे उधर से खींचने लगा कि मैं अपने आप नीचे उतर आया। पड़ौस की वधु ने मुझे रोका, मामा जी ने सौ-सौ कसमें खिलाकर जाने से मना किया, पर मंत्र-मुग्ध देवता की तरह उस ज्वाल-प्रेयसी की ओर मैं शीघ्र गति से बढ़ चला। थोड़ी ही देर में मैं पीली कोठी पहुँच गया । बलवाइयों ने उसे आग लगा दी थी। शहर में अमुक-अमुक सड़क पर गोली चल चुकी है। आह! हम भी देखेंगे कि गोली कैसे चलती है और आदमी के सीने को कैसे पार करती हुई निकल जाती है। वह कराहता हुआ किस भाँति तड़पता है या लोटता है? 'शॉट' करने वाला तो बड़ी शान से फायर करता होगा, जी? यही भावना लिये मैं चला आया था।

पाँच मंज़िल की आलीशान पीली कोठी दहक रही है। आसमान तक शोले पहुँच जाते हैं। अन्दर काग़ज़-ही-काग़ज़ भरा है, जिसमें गवर्नमेंट के न जाने कितने वर्षों का काग़ज़ी हिसाब-किताब चुकता होना है और न जाने कितने वर्षों का हिसाब हो गया है। गवर्नमेंट! उसके विरुद्ध विद्रोह है यह।

मुझे क्रोध हुआ कि यदि यह गवर्नमेंट की बिल्डिंग है तो हमें हक कहाँ से मिला कि इसे जला दें। हम यदि अपने हक सांघातिक ले रहे हैं तो छूट गवर्नमेंट को भी तो दे रहे हैं कि अपनी रक्षा में वे भी सांघातिकता बरतें। तो क्या इन बाग़ियों को विश्वास है कि इस सांघातिक-होड़ में इनकी बाज़ी रहेगी? मुझे विश्वास नहीं हुआ। १८५७ के ग़दर में सब कुछ व्यवस्थित था और उसके नेतृत्व में शक्ति थी। आज हमारा सम्पूर्ण नेतृत्व विद्रोह से पूर्व ही गिरफ़्तार हो चुका है। केवल जनता एक महान् सशस्त्र साम्राज्य से लोहा अंत तक तो ले सकेगी; पर विजय दूसरी ही चीज़ है, जिसमें हमारा अस्तित्व खर्व न होने पाये।

अग्नि के उस मूर्त्त-रूप के अभूतपूर्व नग्न-नृत्य के दर्शनो के मोह से मै पीली-कोटी के निकट बढता चलता गया। खिचता चला गया। कि पीली कोठी की ऊपरी छत पूरी जलकर नीचे बैठी। और भारी शोलो का गुब्बार जलता हुआ ऊपर व्योम मे उठा। मैंने इस भव्य दृश्य पर ताली पीटी......

पुलिस! भगदड...

सचेत-सजग नीचे रेलवे लाइनो पर मै उतर आया। फिर ज्वालाये देखने लगा। ऐसी सुन्दर और आकर्षक होती है ये आग की ज्वालाये!

आह! सस्कृति-बनाम-वर्बरता की ज्वालाओ का यह परस्पर-आलिंगन है या तुमुल-युद्ध? लाखो रुपये के सचित-श्रम-सी यह कोठी और अनधिकार चेष्टाओ में उच्छृङ्खल ये बागी।

झगड उठा मै अपने से। कभी पक्ष सहानुभूति इस संस्कृति को बनाये रखने का लेता कि जो है, वह वैसा रहे और नया निर्माण हम करे तो उस जमीन पर करें जो उजाड ह! किन्तु यह गवर्नमैट क्यों नही युग-वेत्ता बनती? क्यों शोषण और अनाचार पर जिद् है इसे कि भविष्य के इतिहास में अपनी कलुषित व्याख्या के लिखे जाने का भी भय नही है। भय नही है तो क्या यह गवर्नमैट ईमानदार है? पर क्या ये बागी ईमानदार नही है जो अपनी जानो को हथेली पर लिये फिर रहे है?

हठात् पुलिस का पूरा जत्था बन्दूको को लिये आगे बढा। सार्जेट ने पिस्तौल दाब दी। गोली से बच मै एक ओर को झपटा कि पॉच पुलिस वालो ने अपनी बन्दूको की दुनाली मेरी छाती पर धर दी। इस आतक से कलपकर मै चीखूँ कि जमीन पर मुझे लुढकाकर उन्होने अपने भारी बूटो से ठोकरे मारना शुरू किया।

आँख खोलकर देखता हूँ कि मै एक नई दुनियॉ मे हूँ। यह नरक ही होगा। पर पता लगा कि यह जेल है।

तुम्हारा वही पागल
रजनी"

एक रजनी का हठयोगाश्रम है और एक 'इनका' है जो कहाँ रहते है सो पता नही। आज सुबह 'वे' आये तो मैंने रजनी का पत्र उन्हे दिखाया। उधर मूढे पर मेरी ओर पीठकर 'वे' बैठ गये। हल्के-हल्के पत्र पढते रहे। पढकर न जाने क्या सोचते रहे। इस बीच मैंने स्वय चाय तैयार की और उन्हें दी। आधा कप पी चुके तो हठात् चौंके-से बोले, "माधवी, तुम चाय नही पी रही?"

मै चुप खड़ी रही तो अपना कप मेरी ओर बढा दिया कि लो, यह पी लो। इसे लेकर मैंने उनकी झूठी चाय पी ली।

तो बोले, "रजनी निरपराध ही जेल मे ठूँस दिया गया।"

मैंने कहा, "एक रजनी नहीं, करोड़ों निरपराध इसी प्रकार जाने कहाँ-कहाँ जेलें भुगतने पहुँच रहे हैं। अच्छा ही है यह। इससे देखी और अनदेखी क्रान्ति को बल मिलता है और हमारे युवकों की हड्डियाँ मज़बूत होती हैं।"

वे मुझे सीधे देखने लगे। उनको सीधे देखने की शक्ति मुझ में नहीं है। शायद रजनी अपने जेलर को सीधे घूर सकेगा। पर मैं तो अन्दर चली आई। वे उसी क्षण बाहर चले गये।

१०

जेल और क्षीर-सागर

रात ग्यारह बजे रजनी की बैरक में हठात् १०० नये बलवाई-हवालाती और भर दिये गये। वैसे कुल स्थान यहाँ ८० कैदियों का है, लेकिन इस वक़्त पौने दो सौ हवालाती ज़बरदस्ती जेल-अधिकारियों ने ठूँसे हुए हैं। इनमें से ९९ फ़ी सदी निरपराध हैं। किसी की सिर्फ़ पत्नी घर पर छूटी है और उसे पीछे से देखने वाला और उसका पेट भरने वाला कोई नहीं रह गया है। कोई अपने बूढ़े माँ-बाप का इकलौता कमाऊ पूत है, और वे अब कैसे रहेंगे और कौन उन्हें कमाकर खिलायेगा ? एक के गोद में बेचारी ६ वर्षीया एक लड़की है। उसकी माँ मर चुकी है। सो उसे भी वह निरपराध हवालाती अपने साथ यहाँ जेल में ले आया है। और सब अबोध नागरिक रोते रहते हैं और ठण्डी साँसें भरते रहते हैं। नये हवालाती आये, वे तो सब ही रोते हुए, बुरी तरह हिचकियाँ लेते हुए आये। एक बादी से बेहद फूले लाला जी का तो बहुत ही बुरा हाल था। ज़ार-ज़ार रो रहे थे। और आफ़त यह थी कि जब कि उन्हें ऊपर तख्त पर बैठाने में दो आदमियों की सहायता की ज़रूरत पड़ती थी, पुलिस ने उस पर यह तोहमत लगाई है कि वह टैलीग्राफ़-पोस्ट पर चढ़ा था और वहाँ उसने तार काटे थे!

सारी जेल में कुल मिलाकर ८ बारकें हैं और उनमें सिर्फ़ चार में ही क़ैदी भरे हुए हैं। बाकी में सिर्फ़ बलवाई-हवालाती भरे हुए हैं। इन सब पर कब मुक़दमा चलेगा यह तो जेल-अधिकारी भी नहीं जानते हैं। अभी बाहर की दुनियाँ में पुलिस का दानवी शासन अपने चरम रूप में बहशी बना हुआ है। अनेक हवालातियों से जो किस्से सुनने को उसे मिलते हैं, उनसे एक हल्का-सा अन्दाज़ा लगता कि अंग्रेज़ी राज की जालिम पुलिस किस तरह के अनदेखे-अनसुने अत्याचार बाहर की जनता पर कर रही है और ज़रा-ज़रा सी उत्तेजना पर ख़ून की आँखें निकालकर हर किसी को यहाँ जेल में भिजवाती जा रही है। एक ताँगेवाला बतला रहा था कि उसके मुहल्ले में जब पुलिस आई तो पिस्तौलों से लैस और बन्दूक से लदकर आई थी। उनका कहना था कि इस मुहल्ले के लोगों ने एक आदमी को छिपाकर रखा है। उस आदमी ने ओखला और निज़ामुद्दीन के बीच के टेलीग्राफ़-तार काटे थे। और खोज करते हुए पुलिस ने एक घर के काँग्रेसी के बूढ़े पिता को जूतों से इतना पीटा कि वह बेहोश हो गया और उसके बाद उसकी माँ को सड़क पर इतना घसीटा कि उसके सारे कपड़े फट गये और उसके पोशीदा हिस्से भी लहूलुहान हो गये। पर उन कसाइयों ने उस मुसम्मात

पर ज़रा भी रहम नहीं खाया।

इस समय पुलिस की वहशी अकल ज़रा भी भौंटी नहीं हुई है। वह जानती है कि कांग्रेसी नाम का पशु और है, और यह भोले लोग कुछ और तरह के पशु हैं। इसलिए दोनों पशुओं को अलग-अलग रखा जा रहा है। और इन पशुओं पर जेल-अधिकारी इस तरह से ज़ुल्म ढाह देना चाहते हैं कि ये यहाँ किसी तरह भी जिन्दा न रह सकें। लेकिन अपने अंतरमत में अनेक जेल-अधिकारी यह भी कमज़ोरी लिये हुए हैं कि शायद यह अंग्रेज़ी राज ही न रहे।

जेल में जब 'अंग्रेज़ी हुकूमत का सत्यानाश हो' का नारा गूँजता है तो लगता है कि यह जेल अभी इसी दम ढह जायेगी। और लोग हैं कि अपना गला थकाते थकते नहीं हैं कि नारा लगाते ही जाते हैं कि 'अंग्रेज़ो भारत छोड़ो'।

लेकिन जो अबोध और मज़लूम नाहक भेड़-बकरियों से यहाँ बलवा करने के नाम पर भर दिये गये हैं उनकी सर्द-सर्द आहें इन तेज़-से-तेज़ और कटु-से-कटु नारा लगाने वालों की हिम्मत पस्त कर देती हैं और वे ताज्जुब में भरकर सोचने पर आमादा होते हैं कि आख़िर पुलिस को इन निरीहों को इस तरह जेलों में भरकर क्या मिलेगा। क्या उनकी मंशा यही है कि सारे देश में त्राहि मच जाये और लोग कांग्रेस का नाम तक भूल जायें और बग़ावत करने वालों के नामलेवों तक को लोग घर से बाहर निकाल कर फेंक दें, पुलिस की हवालातों में सड़ जाने के लिए...

आज आठ रोज़ हो गये हैं और निरन्तर नये हवालातियों का जत्था पुलिस की ज़बरदस्ती से अन्दर दड़बे में भेजा जा रहा है। न रात का सवाल है और न दिन का ख्याल है। भूखे भेड़िये घड़ी-प्रहरों का ध्यान रखना शुरू करें तो उनमें और पालतू गायों में क्या फर्क रह जाये। अंग्रेज़ी भारत की पुलिस देख रही है कि जाने फिर कभी इस तरह अपने पैने दाँतों की, सान पर, तेज़ धार करने का मौक़ा हाथ लगेगा कि नहीं। इसीलिए तो उसने सब्ज़ीमण्डी के एक लड़के के मुँह पर टट्टी से लथपथ पट्टी बाँध दी थी और बेंतों से पीटना शुरू कर दिया था। वह तड़पकर मर गया तो उसकी लाश जाने कहाँ फेंक दी गई थी। यह बात इसी कोतवाली के एक नये हवालाती ने सुनाई थी...

दृश्य शनैः-शनैः हृदय-विदारक बन गया। रजनी ने जेल का कम्बल ओढ़ा और सो गया। आज दिन भर वह एकान्त में बैठे हुए गवर्नमेंट की निर्दयता पर निष्पक्षता से विचार करता रहा है। इस क्षण वह बाग़ियों के पक्ष में बलि तक दे सकता है, इसी शान्त मनोभाव में वह सो गया। ठीक सिराहने लोहे के जंगले हैं। जिनमें से जेल की ड्योढ़ी-खास दीख रही है। वहाँ वह भारी-भरकम दरवाज़ा खुलने के समय कैसी घृणित अहंकार-ध्वनि से खुलता है कि मैंने इतने क़ैदी अपने में बन्द कर रखे हैं। इतने क़ैदी

न केवल इस द्वार को बल्कि जेल के चप्पे-चप्पे को क्या न उखाड़ सकेंगे ? पर बेड़ियों में पड़े हुए क़ैदी जब ध्वस्त-नृत्य करना शुरू करें तो इन चहारदीवारियों के बाहर भी कोई उस लय और राग का ध्वस्त गीत गाये, तब तो···

रजनी को आदत है कि जूते पहनकर ही कभी-कभी पलँग पर सो जाता है। आज रात भी वह जूते पहनकर ही सोया है। नित्य ही रिक्शी उसके जूते उतारती है। उसने अनुभव किया कि वह जूते उतार रही है। आहट से उनकी नींद टूटी। उसने बोलना चाहा, "रिक्शी एक कप चाय तो बना दो।"

पर आँख पूरी खुल गई और उसका जी धक्क से रह गया। इस क्षण वह जेल की कच्ची खड्डियों पर लेटा हुआ है। चाय तो नहीं, सुबह, बस, चने और गुड़ नाश्ते के लिए मिल सकेंगे। सूर्य काफ़ी ऊपर उठ चुका है। लोग प्रायः सभी निबट चुके हैं। कुछ सुस्त वह हो गया······

उस कोने की खड्डी पर दो अत्यन्त सुन्दर बालक हैं। वे आपस में सगे भाई हैं। वे उसके पास जाने क्यों आ गये और बैठ गये। रजनी ने उनसे मीठी-मीठी बातें कीं। पता चला कि न केवल वे दोनों सगे भाई, पर उनकी माता जी और बहन भी झण्डा उठाकर जेल आ गई हैं, और उधर महिला वार्ड में हैं। पर माँ, बहन और पुत्र-भाई आपस में क्या मिल सकेंगे ? नहीं।

दोनों बाल-युवकों ने बताया कि देखिये, वे जो वृद्ध हैं और उनके पास पाँच वयस्क सज्जन बैठे हैं वे उसी के बेटे हैं और एक साथ ही यहाँ आये हैं। घर पर अब कोई भी पुरुष नहीं है इनके। और कल दो की पत्नियों के एक साथ बच्चे हुए हैं।

रजनी प्रशंसा-भाव में मंत्र-मुग्ध बैठा रहा।

दृष्टि इधर से चंचल हुई तो सामने की कोठरियों पर जा टिकी। तीन जंगलों के पीछे तीन इंसान बैठे हैं। उनके पैरों में बेड़ियाँ पड़ी हैं। हाथों में हथकड़ियाँ हैं। इंसान-इंसान को यूँ भी बाँधता और कसता रहा है ? इन्हें फाँसियाँ होने वाली हैं। अपने भाग्य का निर्णय कब हो, इसी की प्रतीक्षा में इनकी एक रात गुज़रती ह और एक दिन गुज़रता है। और किसी दिन एक इंसान क़ानून की आड़ में इनके गले में रस्सा डालकर इनका गला उस क्षण तक भींचे रहेगा कि ये मर न जायें। उस कल्पना को जाने कौन से लोह-हृदय से ये सोचा करते हैं कि यूँ हमारे गले में रस्सा डाला जायगा और फिर यूँ वह खिंचेगा आर हमारा गला फिर यूँ भिचेंगा और यूँ हमारी साँस रुक जायगी और यूँ हम मर जायँगे······

हठात् रजनी को अनुभूति हुई कि एक गहरे कुएँ में गिर गया है। एक क्षण को वह थर-थर काँप गया। वह जेल में फेंक दिया गया है। कल तक तो वह रिक्शी के संग सुहाग-यात्रा का उपभोग कर रहा था। विधि ने या जो भी अदृष्ट शक्ति है,

उसने मुझे यहाँ जेल में क्यूँ फेंक दिया है कि ये अवर्णनीय और अकथनीय दारुण दृश्य मैं देखता रहूँ। भला क्यूँ देखूँ ?

सचमुच जैसे तो रिक्शी की प्रेम-दृष्टि उसे स्पर्श कर गई हो, एक शीतल वायु-लहरी उसे स्पर्श कर गई। आँख उठाकर उसने देखा कि कौरवों-पाँडवों के किले पर से होकर जलभरी बदलियाँ अठखेलियाँ करती हुई आ रही हैं। क्या ये रिक्शी की छत पर से भी गुज़रेंगी ?

सूर्य बदलियों से अवश हो गया। उसकी तपिश भी जैसे बदलियों के आलिंगन से आर्द्र और स्नात् हो गई। एक गहरी अँगड़ाई लेकर वह बाहर आ गया और बाहरी कठघरे के आँगन में टहलने लगा। वहाँ कठघरे के द्वार पर एक वार्डर पहरा दे रहा है। उस पहरे की लक्ष्मण-रेखा के अन्दर ये सभी कैदी ऐसे दीन भाव से सोते हैं, खाते-पीते हैं, जैसे तो यह जीवित नरक हो और ये यम-राक्षस हों।

मैं भी नरक की भीमकाय ज्वाला में झौंक दिया गया हूँ···एक सर्प-दर्शन-सी कँपकँपी रजनी को चढ़ आई। पर भला क्यूँ ?

आसमान में अब बदलियाँ शोभायमान नहीं हैं। जैसे तो सुन्दरियाँ आगे निकल गई हों और अरूप और कुरूप छोकरियाँ ही रंगमंच पर उतर आई हों। कि एक बूँद उसके मुँह पर आकर गिरी।

रोम-रोम उसका मल्हार राग गा उठा। रोमांच में उत्तेजित होकर उसकी चाहना हुई कि अभी एक ताँगा किराये पर ले वह कुछ क्षणों के लिए रिक्शी से आत्मसात् कर आये। पहरेदार ने दरवाज़े के अन्दर ही उसे रोककर कहा, "बाबू, अन्दर ही घूमें।" जैसे तो पहरेदार ने फूँक देकर उसकी आत्मा में जलती हुई मुन्नी सी स्निग्ध मोमबत्ती बुझा दी हो! वह उसे अवश क्रोध से देखता ही रह गया।

हल्की बारिश शुरू हो गई। प्रायः सभी हवालाती और कैदी बारकों में पहुँच गये हैं। रजनी कुछ गुनगुनाता हुआ भीगता रहा और कठघरे में चहलक़दमी करता रहा। जब ज़ोर की झड़ी लगी तो वह अन्दर आ गया। नीची दृष्टि किये वह अपनी खड्डी पर आ बैठा। एक-एक दृष्टि हरेक हवालाती को देखने की तमा उसमें नहीं है। रजनी को विश्वास नहीं हुआ कि नरक में भी इंसान को मात्र दंड दिया जाता होगा··· चाहे वह निरपराध ही हो ?

आह! नरक का अधिष्ठाता एक देवता है और वहाँ का न्यायाधीश भी एक देवता है। और वे नरक के राक्षस चाहे दण्ड देने के पूर्व भयंकर लगें, पर दण्ड देने के बाद वे स्वयं भी धवल वस्त्रों से सज्जित पवित्र दूत की नाईं दृष्टिगोचर होते होंगे और वह दण्डित मनुष्य पुनः खरे सोने-सा दैदीप्यमान मनुष्य बन जाता होगा। सचमुच नरक ऊपर के स्वर्ग का क्षीर-सागर है, जहाँ इस पृथ्वी की अपवित्रता, गंदगी और धूल

दूध-सी घुल जाती है। नरक का न्याय व्यक्ति को दण्डित कर उसे सर्वोच्च मानव बनाता है।

बाहर एक कर्कश आवाज़ हुई, "रजनी वल्द......"

रजनी ने हल्के से कहा, "जी !"

द्वार में से एक क़ैदी-इंसान ने उसकी ओर टिफन बढ़ाया, "आपका खाना आया है।"

जैसे तो नरक के न्याय का दूत आ गया हो। रजनी बालकों की तरह उस तक दौड़ गया और टिफन को अपने हाथों में लेकर विभोर हो गया। उसने पूछा, "कौन लाया है?"

उस कर्कश क़ैदी ने मानवी-ध्वनि से कहा, "रिक्शी देवी।"

रजनी ने अपनी दृष्टि उस भीम-द्वार की ओर फेंकी, जो पैशाचिक अट्टहास करता हुआ प्रतीत हो रहा था। उसके पीछे रिक्शी इस बरसात में भीगती हुई खड़ी है...। यह गवर्नमेंट राक्षसों से भी अधिक ऐसी दुष्ट है कि नव-पति और पत्नी को भोजन भी एक संग करने की सौजन्यता नहीं दिखा सकती?

जाने कैसे निश्चय की एक कठोर गाँठ उसके दिल में मुड़ाव और तनाव खा गई।

उन दोनों सुन्दर बालकों ने उसे आवाज़ दी, "भाई साहब, यहाँ आ जायँ।"

रजनी उनकी खड्डी पर जा बैठा। उनका खाना भी घर से आया है। तीनों इस जेल की नारकीयता से ऊपर उठकर भोजन करने लगे। बड़े सुन्दर बालक ने कहा, "भाई साहब, हवालात में हम केवल आधे जँवाई ही इस सरकार के रहते हैं। सजा हो जाने पर यह हमें पूरा घर-जँवाई बनाकर रखती है।" इर्द-गिर्द बैठे हवालाती इस कथन पर खिलखिला पड़े।

× × ×

अब नित्य सुबह उठते ही रजनी अपने टिफन की प्रतीक्षा में कठघरे में टहलता रहता। बेचैनी से आकुल वह रिक्शी की पिछली तमाम बातें याद करता और नित्य ही एक-दो अश्रु ढलका देता।

आज टिफन के समय वह द्वार खुला। जैसे तो आसमान फटकर स्वर्ग के दृश्य दिख गये हों। इस अंदरूनी दुनियाँ से कतई अलग, बाहरी दुनियाँ के स्त्री-पुरुष खड़े हैं और उनके पीछे नई दिल्ली जाने वाली सड़क पर मोटरें, ताँगे, साइकिलें अपनी गति से आ-जा रही हैं। यहाँ भी सूर्य-प्रकाश है, पर वहाँ का सूर्य-प्रकाश कितना लुभावना है?

एक क़ैदी-वार्डर ने आकर रजनी को पहचाना और बड़े दरवाज़े की ओर ले चला। बड़े दरवाज़े के बाहर उसने पैर रखा तो जी उसका धक्-धक् करने लगा।

उजले कपड़े उसके कल आ गये थे, सो तो वे पहन रखे हैं उसने। पर मैं क़ैदी जो हूँ। क्यूँ नहीं मेरा हृदय फट जाता? अन्याय के विरूद्ध क्या आत्म-हत्या हेय है? वेश्यालयों में गया हुआ व्यक्ति और क़ैद भुगता हुआ व्यक्ति......दोनों ही मौजूदा समाज के कोढ़ हैं?

रिक्शी अन्दर आ चुकी थी। उसने मुस्कराकर हाथ जोड़ नमस्ते की और अपनी स्निग्धता से उसके समस्त रुदन को आश्वस्त कर दिया। दोनों एक अफ़सर की निगरानी में बैठ गये। रजनी ने देखा कि मुलाक़ातें अन्य क़ैदियों की भी हो रही हैं। कैसे पशु की तरह सभी क़ैदी एक जंगले में बंद कर दिये गये हैं और जंगले के बाहर उनके सगे-सम्बन्धी करुण सजल नेत्रों से कुशल-क्षेम पूछ रहे हैं। अक्षेम और अकुशलता तो यह है कि ये जेल में हैं। यहाँ पर भी कुशलता तो चाहिए न!! कितनी दयनीय मनोस्थिति है? ये सब सगे-सम्बन्धी क्यूँ नहीं बग़ावत कर देते? यह सरकार दमन और शोषण पर तुली हुई है और निरपराधों को जेल में डाले हुए हैं। क्यों नहीं इन निरपराधों के सगे-सम्बन्धी रोने की वजाय एक कठोर हुँकार से इस सरकार को कंपायमान कर देते? पर बेचारे भूखे और दरिद्र!

रिक्शी ने थरमस से चाय निकालकर रजनी को दी। पास बैठे जेल-अधिकारी ने बड़ी बदतमीजी से वह कप छीन लिया। थोड़ी चाय हाथ की अँगुली में लेकर उसने चखी। फिर कहा कि हाँ, यह पी सकता है!

"यह पी सकता है", जैसे तो डैडी के कुत्ते का डाक्टर कहा करता है कि हाँ, यह अब डबल रोटी खा सकता है।

क्या जेल में मनुष्य की गर्वोक्ति जान-बूझकर कुचली जाती है? पर क्रोध में भरे हुए रजनी से रिक्शी ने चुहलकर कहा, "आप तो दार्शनिक हो गये हैं। इसकी पहली निशानी तो यह है कि आपके हल्की फ्रेंच-दाढ़ी उग आई है।"

रजनी रिक्शी की चुहल को अतिरंजित न कर सका। उसका मस्तिष्क सुन्न है। खिन्न है। उस जेल-अधिकारी के साथ सभी जेल-अधिकारियों को, वह अपने जी को फूँकता हुआ, देखने लगा। चाय समाप्त कर ली तो उन अधिकारियों की अहं से सनी हुई हँसी रजनी को वर्षा की हुमस से भी तीव्र विकलदायिनी लगी। अपने को क़ैदियों से अलग वे जैसे पृथ्वी के वास्तविक भाग्यशाली ईश्वर-पुत्र समझ बैठे हैं। किस अकड़ और बदतमीजी से, वे क़ैदियों के रिश्तेदारों से रूखा बरताव कर रहे हैं। क़ैदी अपराधी हैं। उन क़ैदियों के अपराधों के उपचारक और कापालिक ही हैं ये, किन्तु उस अपराध की सीमा को लाँघकर ये बस क़ैदी के मस्तिष्क और उसकी देह को ही अपने विकृत-जीवन का मादक आहार समझते हैं। जितना कशीद इन क़ैदियों के मस्तिष्कों के सड़ने से होता है, उतनी ही तेज़ शराब वह इन जेल-अधिकारियों के लिए बन जाती है!

रिक्शी ने रजनी को सुस्त देखा तो पुनः चुहल की, "आजकल आप ब्रिटिश-सत्ता को उखाड़ फेंकने वाली विद्रोह-कविताएँ रच रहे होंगे ?"

जैसे तो जेल के समस्त क़ैदियों की सड़ती हुई देहों को चीथने और निचोड़ने के लिए एक भारी लोह का दुर्भाग्य चक्र घूम रहा है। उसकी परिक्रमा में इसी क्षण, जैसे रजनी की देह को भी अनिवार्य चिथना पड़ा। उसके तीक्ष्ण दाँतों की चुभन से तड़फ-कर रजनी कराह उठा। जैसे-तैसे बोला, "रिक्शी, मेरे मस्तिष्क के स्खलन की चाहना स्वप्न में भी न करना।"

जेल-अधिकारी से आज्ञा लेकर रिक्शी ने एक सिगरेट रजनी को दी। रजनी का उत्तर उसके जेल के गिने-चुने दिनों की तपस्या की उग्र भावना से कम नहीं है। उसे मन में एक बार चुपके से दुहराकर रिक्शी ने बताया कि आपके पिता जी का बुरा हाल है। वे आपकी रिहाई के लिए निरंतर प्रयत्न कर रहे हैं। आपकी माता जी ने खाना-पीना सभी कुछ छोड़ रखा है। उनके दौरे अब नित्य दुहरा-दुहराकर प्रकट होने लगे हैं। डैडी भी अब चिंतित ही रहते हैं।

कि जेल अधिकारी ने वेहयापने से रिक्शी को रोक दिया, "बस करें, अब तुम अन्दर जाओ।"

आँख मूँदकर, हृदय के सारे आँसुओं की बाढ़ रोककर, रजनी अन्दर आ गया। शीघ्र चाल चलकर वह अपनी खड्डी पहुँचा। छाती में गोड़ों को देकर वह सो गया।

एक साथी-हवालाती ने सरस मज़ाक की कि कहिये, रजनी बाबू, श्रीमती जी से एकांतवास का सुभीता भी मिला कि नहीं ?

पर उसने देखा कि रजनी चुपके-चुपके रो रहा है······वह वहाँ से हट गया।

× × ×

एक पखवाड़ा। खड्डियों पर आधी नींद, खटमलों से देर रात तक हिंसा-अहिंसा मिश्रित युद्ध, कठघरे में उन लोह जँगलों से लेकर इन लोह जँगलों तक चहलक़दमी, नल के नीचे घंटों बैठकर नहाना···कि यही जल उधर रिक्शी को भी स्नान कराने बहता होगा, इस अतिरंजना में घंटों विमुग्ध-मूक नल के नीचे बैठे रहना, टिफन आये तो रिक्शी के प्रति सौजन्य से आर्द्र होकर धीमे-धीमे भोजन का चर्वण करना और उसकी प्रतिछवि को आँखों में मूँदकर दुपहरिया की नींद निकालना। एक पखवाड़ा यूँ बीत गया।

कल शाम ओले बरसे थे। सभी हवालाती अब जेल-परिवार के बलात् सदस्य हो गये हैं। हँसते हैं और आपसी संस्मरण सुनाकर दूसरे की विस्मृत सरसताओं को मुग्ध होकर सुनते हैं। वे भद्र परिवार के लाला जी और ताँगे वाला एक ही खड्डी पर बैठकर गुड़-चने खाने के आदर्श-मित्र बन गये हैं। यह हवालात एक छोटा-मोटा

तालाब बन गया है जहाँ सभी वर्ग-वैषम्य के इंसान एक तल पर स्वच्छ जल की नाईं स्थिर रहने लगे हैं। कोई भावना की लहर उधर से चलती है तो सभी हवालातियों पर समान भावना से होती हुई इधर आकर टकराकर बिखर जाती है। यह वर्ग-वैषम्य यदि जेल में तोड़ा जा सकता है तो भगवान्! तू सारे भारत के नर-नारियों को यहाँ जेल में भेज दे। जेल का कितना भव्य-सात्विक उत्कर्ष न हो उठेगा।

ओले बरसे तो रजनी जेल के सात्विक-उत्कर्ष की मधुर अभिव्यंजना से कटघरे के नीम के नीचे आँख मूँद जेल की चहारदीवारी के ऊपर पंख लगाये उड़ रहा था। ओले पड़े तो कई ओले उसने जिह्वा पर रखकर चूसे और धीमे से बड़बड़ाया, "भारतीय क्रान्ति कौन से युग में शुष्क हो सकी है। वह सदैव सरस रही है, और उसमें निःसंकोच भाव से हिमपात भी इसलिए हुआ है कि क्रान्तिकारी अतिरिक्त-रूप से रोमांचित बने रहें······"

चिट्ठीरसां क़ैदी वार्डर ने एक लिफ़ाफ़ा रजनी को आकर दिया। देकर वह बाहर चला गया। एक स्वर्गीय दूत-सा वह कुरूप क़ैदी रजनी को इस क्षण मोहित कर गया। देर तक उसे सामने पथ पर जाते हुए देखता रहा। इस जेल के सरोवर में सभी क़ैदी पारस्परिक वेदना और सहानुभति से एक नई दुनियाँ वसा सकते हैं। यह दुष्ट सरकार क्यों नहीं वह नव-संसार निर्मित होने देती? क्यों इसने हर क़ैदी के बीच शंका और विषाक्त द्वेष और धूर्तता के छिद्र चिन दिये हैं कि ये सब भी आपस में छिद्रित हो गये हैं। मैं उस क़ैदी से नहीं बोल सकता, इस जेल का ऐसा नियम है। कोई भी जेल-अधिकारी किसी क़ैदी से हँसकर बात न करे, यह यहाँ का प्रथम नियम है।

लिफ़ाफ़ा खोला। रेवती का पत्र है। रेवती रिक्शी के परिवार की ओर से मित्र है। विवाह के समय वह गाँव आया था और उसने सुहाग-यात्रा के दौरान में दो पत्र लिखे थे। अब लिखता है—

"रजनी, रात मैं बाहर टहल रहा था। उधर बग़ीची में एक छोटी-सी तलैया थी। ऊपर चाँद मृदु अट्टहास कर रहा था और उसका प्रतिबिंब उस तलैया की तलहटी में नीचे दूसरे चाँद के प्रतिरूप पर अट्टहास दरशा रहा था। इसी प्रकार तुम उस जेल के कुएँ में जाकर नहीं गिर गये हो। केवल तुम्हारे चाँद का प्रतिबिम्ब ही वहाँ जेल की चहारदीवारी में जा घुसा है। मुझे विश्वास है तुम्हारा व्यक्तित्व और उस व्यक्तित्व की समस्त यौवनिक उत्तेजनायें मुक्त रहेंगी। बिना किसी भ्रम के वे बाहर पूर्ववत् तूफ़ानी वेग से विकसित होती रहेंगी और उनके चन्द्रिका-प्रतिबिम्ब से तुम सारी जेल को प्रकाशित रखोगे।

"रिक्शी से कल मिला था। वह अत्यन्त शान्त थी। उसने मुझ से केवल स्वेटर

के ऊनों के सम्बन्ध में चर्चा की। शायद वह तुम्हारे लिए एक नया स्वेटर बुनना चाहती है।

—तुम्हारा रेवती"

हवा के तीव्र झोंकों के साथ पानी की वेग-शीला रेखाएँ अब रजनी को भिगोने लगी थीं। उठकर वह अन्दर आ गया और अपनी खट्टी पर बैठ गया। दूसरे साथी प्रसन्नचित्त हैं और ऐसी सुहावनी रिमझिम के समय गरमागरम पकौड़ियों की याद कर रहे हैं।

रेवती का पत्र इतना संकुचित क्यों है? वह तो पाँच पृष्ठ से कभी कम लिखता ही नहीं है। जैसे तो कछुआ अपनी पीठ के नीचे सिकुड़कर अर्द्ध-निद्रित हो गया हो, इस पत्र के नीचे रेवती को उसने अर्द्ध-विक्षिप्त पाया।

शनैः-शनैः जैसे वह कछुवा सचेत हुआ और उसके हाथ-पैर और गर्दन बाहर आते ही वह द्विगुणित हो गया हो, उस पत्र में निहित रेवती ने अँगड़ाई ली और रजनी के सामने आकर खड़ा हो गया। वैसे ही अल्हड़पने से हँस रहा है। रजनी ने उससे बातें करने की चेष्टा की, तो उँगली उठाकर उसने उसे चुप कर दिया। बस, हँसता रहा और फिर अन्तर्धान हो गया। पर वह अन्तर्धान नहीं हुआ। रजनी की तीक्ष्ण दृष्टि उसकी पीठ के पीछे चुपके-चुपके पीछा करती चली। अनेक गलियों और बीहड़ मार्गों से होकर रेवती एक राजद्वार के अन्दर प्रविष्ट हुआ। वहाँ चारों ओर खंडहर ही खंडहर हैं और जो अवशिष्ट राजमहलों के बचे हैं, वे भी तड़क-तड़ककर टूट-टूटकर गिर रहे हैं। सर्वत्र युद्ध की विभीषिका नग्न हुई कराह रही है। उन खंडहरों के बीच कुछ स्त्रियाँ सिसक-सिसककर चीखती हैं और थककर मूक रुदन करती हैं। रजनी की तीक्ष्ण दृष्टि ने देखा कि ताज़ा लहू इधर-उधर बह रहा है। ताज़ी हड्डियाँ बदबू फैला रही हैं। रजनी कुछ गुनगुनाता हुआ उन खंडहरों को लाँघ गया और हठात् न जाने कहाँ छिप गया·········

यूँ ही, उस जेल के कम्बल में लिपटकर रजनी एक कसक से तड़पकर उकडू होकर बैठ गया। आँखें उसकी सजल हो आईं। उसने उन ताज़े मानवी-खंडहरों को नमस्कार किया। धीमे से मुस्कराकर रजनी बड़बड़ाया, "रेवती, आखिर तू नटखट कब तक बना रहेगा? यहाँ जेल में इस रक्त और अस्थि-दूषित माँस को हस्तामलक-सा दिखाने का तेरा प्रयोजन क्या है?"

दूर से रेवती ने उसे क्षीण उत्तर दिया, "दुनियाँ के इंसान और उनकी नारियाँ आज दाम्पत्यिक-सौख्य नहीं ढूँढ़ रहीं, वे उस सौख्य को उजाड़-वीरान करने वाले बवण्डर से संघर्ष कर रहे हैं और तू उस 'शून्य-सी कीमत की' रिक्शी के जीवित-चर्म के भोग के स्वप्नों में मदांध हो रहा है। तू तो जीवित चर्म का भोग नहीं, आज क्रान्ति

का भोग कर। उस क्रान्ति से असख्य रिक्शियाँ उत्पन्न होगी और वे तुझे इन्द्र-सभा की परियों से भी अत्यधिक.........."

रेवती की आवाज़ को उन खडहरो के रुदन ने कतई अस्पष्ट कर दिया......

उन दो सुन्दर बच्चो ने रजनी को जगाया कि आपका टिफन आ गया है। बडी देर तक रजनी की महानिद्रा नही टूटी। तब नीद मे ही हँसकर उसने कहा, "बस, तुम दोनो ही उसे खा लो।"

और रजनी क्रान्ति के भोग के राज-मार्ग पर दौडने लगा......

× × ×

स्वप्न मे रजनी रेवती के पत्र पर विचार कर रहा है :

पत्नी और क्रान्ति।

पत्नी युवक के लिए प्राणदायिनी-शक्ति है। क्रान्ति भी युवक के लिए प्राणदायिनी शक्ति है। दोनो ही क्रीडाभूमि-सी है। सगम-जीवन के लिए यात्री के अतिरिक्त यौवन की आत्मा की कोई पोपिका भी होनी चाहिए। इसका अपना रहस्य है। सगम-जीवन मे धात्री की छाती का दुग्ध कब तक व्यक्ति को मादक बनाये रखेगा ? धात्री-दुग्ध सिर्फ शिशु को जीवन की मादकता दे पाता है। यौवन मे जीवन की मादकता तप्त लोह-शलाका-सी होनी चाहिए कि अतडियो के साथ वह हृदय और मस्तिष्क को भी सुर्ख करती हुई समूचे व्यक्ति को इस तरह उफ़ान दे कि उस उफ़ान को कोई सँभाले तो सँभाल न पाये......

आज 'गिनती' होनी है सो रजनी को उठना पड़ा। उन सुन्दर बच्चो ने आकर उसे उठाया।

आँख खुलते ही रजनी धक् से रह गया। वह अभी तक इसी हवालात मे पडा हुआ है ! या तो वह पत्नी और क्रान्ति से, पेड की डाल की तरह काटकर यहाँ अलग फेंक दिया गया है, या पत्नी और क्रान्ति के जीवित चित्र, जिन्हे वह अपनी तूलिका से चित्रित कर पाता, उसकी पुस्तक से फाडकर दूर फेंक दिये गये है......

गिनती हुई। कौन जेलर आया और उसने क्या प्रश्न किये, इन सबसे रजनी ने आँखे मीचे रखीं ? उसकी आँखों के आगे रेवती हँसता हुआ बार-बार आता है और उसे उसी राज-मार्ग के अन्दर ले जाता है......

लगभग नौ बजे वह पुराना कैदी पुन. उसे बड़े फाटक की ओर ले चला। सुस्त, रजनी का अन्त. आज दुपहरिया की तरह से प्रकाशित है। फाटक की खिड़की को लाँघकर वह मुस्कराया। आज एक नये जेल-अधिकारी ने उसका ज़िम्मा लिया और बताया कि तुम्हारी माता जी और पिता जी आये है। लपककर रजनी उधर आफिस के कोने मे पहुँचा। पिता जी पीठ किये सी-क्लास के कैदियो की मुलाकात

देख रहे थे। माता जी घूँघट में बैठी हुई भयभीत, जेल की वस्तुओं पर अपनी दृष्टि न टिका पा रही थीं। रजनी ने माता जी के चरण छुए और उनके निकट बैठ गया। चाहता तो यह था कि वह उनकी गोदी में बैठ जाय। माँ ने काँपते हाथों उसे आशीष दी, उसके सिर पर हाथ फेरा। रजनी के खिले मुखड़े को देखकर उसे तसल्ली हुई जी को चैन मिला। माँ ने बोलने की कोशिश की, पर उसका गला भर आया। पर माँ ने अपने को सँभाला।

रजनी ने थोड़ा ज़ोर से हँसकर पूछा कि माँ, घर का क्या हाल-चाल है?

माँ ने बताया कि तेरी भाभी के लड़की हुई है।

रजनी ने माँ के चेहरे को बारीकी से देखा कि कोई शिकन ऐसी तो नहीं दीख पाती कि माँ ने पिछले सवा महीने से खाना न खाया हो।

माँ ने पूछा, "तू तो ठीक है रे!"

रजनी ने कहा, "माँ, मैं ऐसा ठीक हूँ कि बस तुम्हारा, पिता जी का और ईश्वर का आशीर्वाद हर क्षण मेरी रक्षा करता है।"

रजनी ने देखा कि माँ की वक्ष का उतार-चढ़ाव अधिक स्पष्ट हो गया है। कुण क्षण वह उसे देखता रहा यूँ ही। उसका जी चाहा कि माँ का दुग्ध-पान करे। इसी स्थल का दुग्ध पान कर वह बड़ा जो हुआ है।

पिता जी इधर आ गये तो रजनी ने उनके चरण छुए, पर पिता जी कुछ न बोले। शायद अपने आँसुओं को सँभालने के लिए वे सिगरेट पीने लगे और पुनः उन्हीं सी-क्लास के क़ैदियों की मुलाक़ातें देखने लगे।

अब माँ शान्त होकर घर और पड़ौस और रिश्तेदारों के हाल-चाल सुनाने लगी। किसी के लड़की हुई है। किसी का विवाह हुआ है। किसी की सगाई हुई है। और किसी को तीन-चार महीने में प्रसव होने वाला है।

और भी निश्चित माँ हुई, तो पल्ले में छिपी हुई कुछ मिठाई निकालकर माँ ने दी। रजनी मिठाई खाने लगा तो मुर्गी के चूज़ों-की-सी बेफ़िक्री की मिठास उसे लगी जो अपनी माँ के चौड़े-चौड़े पंखों की साया में दाना चुगा करते हैं। ओह! माँ का साया कितना बृहत् है कि उसके नीचे न सिर्फ़ शिशु, बल्कि उस शिशु के भी शिशु-क्रीड़ा करने के लिए समा सकते हैं……

समय पूरा हुआ तो माँ चली गई। पिता जी ने सिर्फ़ यही कहा कि जेल के सब नियमों की पाबन्दी रखना।

अन्दर आते ही वह महा-द्वार चर्र-चूँ की ज़बरदस्त आवाज़ करते हुए बंद हो गया। १० मिनट के लिए माता जी पिता जी का साक्षात्कार और पुनः चारों ओर ये बारकें, वह जेल-हास्पिटल और वह हमारी हवालाती दुनियाँ का रैन-बसेरा!

रिक्शी के परिचित हाथों से बनी रसोई का टिफन आया तो वह शिथिल होकर बैठ गया। माँ अभी तक जैसे बैठी हुई है। उसके सामने वह पत्नी से इस क्षण कतई बात नहीं करना चाहता।

माँ की वक्ष का उतार-चढ़ाव। उस ज्वार-भाटे में छिपी हुई चट्टान के सदृश वे दुग्ध के दो अक्षय-स्रोत ! ये सब इंसान-रूप बीज माँ के इसी क्षीर-सागर में पनपते हैं और तब बड़े होकर, युवा बनकर, इस पृथ्वी को सुशोभित बनाये रहते हैं।

दृष्टि सामने फाँसी के क़ैदियों की बारक पर टिककर फाँसीघर पर फिसल गई और वहाँ से जेल की चहारदीवारी पर कुछ बैठने का सहारा पाकर बैठ गई।

क्षीर-सागर में भगवान् लक्ष्मी के साथ रहते हैं। पति-पत्नी रूप। अरे नहीं, जग-पिता रूप !! पर नहीं,······कि रजनी उलझ गया।

माँ के क्षीर-सागर में हम रहते हैं, गृहस्थी के अन्य सदस्य रहते हैं। और हाँ, पिता जी भी उसी माँ के क्षीर-सागर में रहते हैं !

रजनी की आँखें दीप्त हो आईं। माँ के उसी क्षीर-सागर में माँ की पुत्र-वधु रिक्शी भी रहती है।

स्पष्ट रूप से एक अमर-ज्योति की परछाईं रजनी की पुतलियों में हिलने लगी।

एक शीतल पवन का झोंका आया और रजनी को विभोर कर गया। रजनी ने देखा कि उस चहारदीवारी के भीतर जो यह जेल है, यह हमारी भारत माता का क्षीर-सागर है। भाग्य ने मुझे यहाँ जो ला रखा है सो······

आँख बन्दकर रजनी इसी सुखानुभूति में डूब गया·········

११

रेवती के गुब्बारे

दिल्ली के घण्टाघर पर पाँच सड़कें आकर मिलती हैं। उधर चावड़ी बाज़ार से नई सड़क, इधर फौवारे से और इधर फतहपुरी से चाँदनी चौक की सड़कों का संगम, इधर स्टेशन से दुमुँही सड़कें दुमुँही साँप की तरह घण्टाघर पर अपने जबड़े खोले रहती हैं।

रेवती सुबह छः बजे स्टेशन की बांई सड़क से घूमने आता है। घण्टाघर से अपनी घड़ी मिलाता है। बम्बई-रेस्टोराँ में चाय पीता है और स्टेशन-सड़क से होकर वह सुम्मो के घर जा बैठता है। सुम्मो की माँ से बात करते हुए कभी सुम्मो से भी बातें करने का अवसर पा जाता है।

वह घण्टाघर से घूमकर ग्यारह बजे सैंट्रल बैंक के सामने फैड्रल कोर्ट के एक बैरिस्टर की सुपुत्री की ट्यूशन करने जाता है। ठीक दो बजे घण्टाघर पर आकर फिर वह अपनी घड़ी मिलाता है और नई सड़क पर बढ़ जाता है। यहाँ एक प्राईवेट फ़र्म है। रेवती दो घण्टे इसी फ़र्म में टाइप करता है। अन्दर फ़र्म-मालिक की बेटी और पत्नी अवसर उसे झगड़ती मिलती हैं, तो रेवती दौड़कर अन्दर जाता है। बेटी का पक्ष लेकर वह उसकी माँ को समझाने में कभी-कभी उसे एक घण्टे तक लगा रहना पड़ता है। और इसलिए उसे यहाँ एक घण्टा ज्यादा ठहरना पड़ता है।

शाम पाँच बजे फतपुहरी की मस्जिद का घुमेर खाकर रेवती घण्टाघर की ओर बढ़ता है। ठीक बिल्लीमारान के सामने के मकान के जीने पर चढ़ता है। यहाँ उसका कॉलेज का एक दोस्त है, और उसकी एक बहन है। घर में बस दो ही जने हैं। शाम की चाय वह यहीं पीता है। बैठकर दोस्त की बहिन से गप्प लड़ाता है। दूसरे-तीसरे दिन दोनों या तीनों सिनेमा देख आते हैं।

घण्टाघर आँख फाड़कर रेवती की इन हरकतों को हर क्षण देखता रहता है। हज़ारों मनुष्य के हज़ारों रूप इस घण्टाघर ने देखे हैं। पर यह कैसे सम्भव होगा कि एक मनुष्य कुछ घण्टों नारी से खेले, फिर कुछ घण्टों नारी-रूपी समुद्र में जलक्रीड़ा करे और शाम को नारी-रूपी अग्नि की दहकती हुई लपटों में शान्त-चित्त से झुलसने बैठ जाये······

एम. ए. परीक्षा पास किये एक साल हो चुका है। तभी से घण्टाघर को केन्द्र-बिन्दु बनाकर वह उसकी परिधि में यह क्रम चला रहा है। इस क्रम में कोई

रुकावट नही है। वह स्वय चाहे तो इस श्रम को ब्रेक लगाकर रोक सकता है। पर रोक नही पा रहा है ··जाने क्यो ?

नित्य देखना भी है कि मोटरो, साइकिलो और ट्रामो मे ब्रेक न हो तो न जाने रोज़ कितने एक्सीडेंट हो और इन दुर्घटनाओ से कितनी लाशे सडक पर बिखर पडे · पर अभी रेवती को ब्रेक लगाने की जरूरत ही नही पडी है। इन चारो नारियो के दृढ स्निग्ध-कौमार्य पर उसकी स्केटिंग सरस तौर पर आनन्दमय हो रही है।

रात वह घर लौटा तो पिता जी और ममी डिनर-टेबल पर उसकी प्रतीक्षा मे बैठे थे। सामने मटर-पुलाव की डिश देखते ही उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। कुर्सी पर झपटकर बैठते ही उसने खाना शुरू कर दिया। ममी ने भी छुरी और काँटे सँभाले, पर पिता जी बैठे रहे बोले, "रेवती !"

रेवती ने मचलकर कहा, "पिता जी, रेवती नही, रमाकान्त।"

उसने देखा कि पिता जी गम्भीर बैठे है। उनका भोजन अभी अनछुआ पडा है। वह रुका तो ममी पहला ग्रास उठाकर वापस नीचे ला रही है।

पिता जी ने कहा, "मुमताज सिह आज सख्त बीमार है। दुख है तुम रोज़ मुम्मो से मिलने जाते हो, पर अभी तक कर्ज़ के पैसे वहाँ से न पटा सके।"

रेवती चुप रहा। उसका मटर-पुलाव का स्वाद जैसे पिघल चला। उससे कुछ नही खाया गया। उत्तर मे उठा और अपने कमरे मे जाकर रोशनी बुझाकर सो गया।

सुबह उठकर बम्बई रेस्टोराँ तक पहुँचते-पहुँचते उसने दो पैकेट सिगरेट फूँक दी। चाय पी चुका तो सुम्मो के घर की तरफ चला पडा।

चौखट के अन्दर पैर रखते ही रेवती का पैर जैसे किसी खडी कील पर पड़ गया·· सामने सुम्मो की माँ बैठी रो रही है और सुम्मो अस्त-व्यस्त-सी रसोई के भीतर और बाहर एक पाँव दौड रही है।

मुमताज़ सिह सच मे सख्त बीमार है, बहुत सख्त। उनकी नब्ज़ देखकर रेवती भागा हुआ डाक्टर के यहाँ गया। ताँगे मे उन्हे दौडा लाया। फिर दवाई ले आया और दिन भर भिन्न-भिन्न दवाइयो के लाने मे खडे पैरो बाज़ार भागता रहा। शाम तक वह मरीज़ की खाट से चिपका रहा। रात सिर पर उतर आई तो भी वह अपनी जगह पर बैठा ही रहा। सुम्मो को धैर्य देता रहा, सुम्मो की माता के बचपने को झिडकता हुआ उसके मातृत्व के दायित्व को उकसाता रहा।

रात का दूसरा पहर खतरे की तरह ढल चला। मुमताज सिंह ने आँखें खोली, सुम्मो पर से पुतलियाँ समकोण मे मुड गई, तो रेवती पर जा ठहरी।

रेवती ने पूछा, "अब कैसी तबीयत है ?"

वे उसे रमणीय दृष्टि से देखते हुए बोले, "बाबू रमाकान्त ! आज मैं जा रहा हूँ......"

सुम्मो की माँ ज़ार-ज़ार रो उठी।

वे आगे बोले, "यह सुम्मो है। यह इसकी माँ है। हम जब दिल्ली में आये थे, तो तुम्हारे पिता जी देवता के रूप में हमें मिले थे। उनके कर्ज़ से हम यहाँ बस सके थे। मुझे भरोसा है, आप मेरे बाद सुम्मो को अपने ही आश्रय में रख लेंगे, तो सुम्मो की माँ भी इस ज़ालिम दुनियाँ के गर्म-सर्द थपेड़ों से बच जायेगी। फर्म जो अब मेरी चल रही है, वह आपकी ही है। इसमें से अपने पिता जी का रुपया भी......"

वे यकायक रुक गये। खाँसी आ गई थी। रेवती चुप रहा। उसने उन्हें इशारा किया कि वे चुप सोते रहें। उठकर एक घड़ी आँख झपकाने को वह सुम्मो की खटिया पर अभी लेटा ही था कि सुम्मो और सुम्मो की माँ छाती पीट-पीटकर रोने लगीं।

अंत्येष्टि-क्रिया में रेवती से घण्टाघर की परिक्रमा तेरह दिन तक मुँह मोड़े रही। तेरहवें दिन जब ब्राह्मण जीम चुके तो सुम्मो की माँ ने हृदय के अन्तिम आँसू उँडेलकर कहा, "बेटा, तुम भी खा लो।"

रेवती अन्दर कमरे में जाकर गुमसुम बैठ गया। सुम्मो थाली परोसकर लाई। रेवती खाने बैठ गया। उसे लगा कि सुम्मो कुछ कहना चाहती है। रेवती ने कहा कि सुम्मो मुझे कुछ और नहीं चाहिए। तुम बाहर काम करो। लाचार सुम्मो बाहर चली गई।

दूसरे दिन मौत की भयावह चीख से साँस लेकर वह घूमने आया। घण्टाघर पर अपनी बन्द घड़ी ठीक की। बम्बई रेस्टोराँ में चाय पी।

आज इतवार को ग्यारह बजे बैरिस्टर साहब घर पर ही मिले। शिमी उन्हीं के पास कोच पर बैठी हुई ज्यॉमेट्री के हल निकाल रही थी। रेवती को देखकर बैरिस्टर साहब ज़ोर से हो-हो-कर बोले, "आइये रेवती बाबू। मुझे बड़ा रंज हुआ कि आपके पिता जी के एक कर्ज़दार दोस्त चल बसे। आओ बैठो। शिमी अन्दर से दो गिलास 'स्क्वेश' लाओ।"

शिमी रेवती की मुस्कराहट से मुस्कराकर अन्दर चली गई। बैरिस्टर साहब ने कहा, "क्या ख्याल है, शिमी मैट्रिक की 'लाँग-जम्प' कूद जायेगी ?" और अपने होठों में फिर खिलखिला दिये।

रेवती ने कहा, "ज़रूर ! वैसे भी शिमी प्रखर बुद्धि है। महीना भर

रह गया है परीक्षा का। दो-तीन बार सारा कोर्स 'रिवाइज़' करा ही दूंगा।"

बैरिस्टर साहब ने शिमी की पुस्तकें उठाईं। जगह-जगह शिमी ने अपने हाथों से 'रेवती' लिख रखा है। एल्जेबरा की किताब में एक चित्र मिला जिसमें रेवती और शिमी धूप के चश्मे लगाये हुए ओखला के बाँध पर खड़े हुए हैं। बोले, "आप अबकी बार इतवार को शिमी को कुतुबमीनार ले जायें। वहाँ ऐतिहासिक खंडहरों में आप दोनों के चित्र बड़े सुन्दर आयेंगे।"

शिमी अन्दर आई अपने दो गोरे हाथों में दो पीले स्क्वेश के गिलास भरकर। रेवती को लगा, जैसे दो पीली मोमबत्तियों के प्रकाश में कोई स्वप्नमयी जाग उठी हो।

शिमी ने अपना वह रहस्यमय चित्र पिता जी के हाथ में देखा; पिता जी की बात सुनकर वह सहम गई। हँसकर वोली, "पापा, आप इनसे कहिये न कि महीने भर अब ये पूरे आठ-दस घण्टे रहकर मेरा कोर्स रिवाइज़ करा दें। फिर नौ-दस साल के परीक्षा-पत्र हल करने हैं अभी तो।"

वैरिस्टार साहब का रोम-रोम आह्लादित हो गया। बोले, "रेवती साहब, यह ठीक कह रही है शिमी, आज से ही आप दिन भर यहीं रहा करें।" फिर उठे और कहते गये, "शिमी, यह 'स्क्वेश' तुम पीना। मैं अन्दर पी लूँगा।"

रेवती मुग्ध-दृष्टि मुग्धा शिमी को देखता रहा। और 'स्क्वेश' की चुसकियाँ लेता रहा। धीरे से पूछा, "महीने भर तक पूरा दिन तुम्हारे पास ही रहना होगा? इसकी 'ट्यूशन-फ़ी' कितनी मिलेगी?"

शिमी 'आमीन' करती हुई रेवती के चरणों में नत्मस्तक हो गई। दोनों ही खिलखिला पड़े। तो शिमी कोच पर बैठी। रेवती की 'टाई' अपने हाथों से खोलती हुई बोली, "परीक्षा में मैं उत्तीर्ण हो जाऊँ तो धन्य हो जाऊँ। आजीवन आपके चरणों में······" और लाज में गड़कर आगे कुछ न बोल सकी।

रेवती ने पुस्तक खोलकर महत्त्व-भरे अंश समझाने शुरू कर दिये।

और अब रेवती सुबह घूमने के बाद सुम्मो की गोद में सिर रखे लेटा रहता और उससे पंजाबी गीत सुनता। दस बजे से शाम तक शिमी की स्टडी में दिवा-दीप-सा प्रकाशित रहता। शिमी इस प्रकाश में भविष्य का स्वप्न देखती। उन स्वप्नों से वह नित्य आकण्ठ तृप्त हो जाती, पर रात भर में वे स्वप्न खो जाते और सुबह दस बजते ही वह रेवती की प्रतीक्षा में अधीर हो जाती कि आज पुनः उन स्वप्नों का साक्षात् आकण्ठ पान करेगी······

महीना भी बीत गया और परीक्षा आ गई। बैरिस्टर साहब ने रेवती का रात को ठहरने का प्रबन्ध शिमी के 'स्टडी-रूम' में ही कर दिया। सुबह 'कार' में बैठकर

वह शिमी के साथ परीक्षा-हॉल तक जाता। 'कार' में ही रात की नींद निकालता। शिमी पर्चे कर लौटती, तो वह उसकी परीक्षा अपने ढँग से लेने बैठता तो शिमी नटखटपने से उत्तर देती कि मैं तो बस आपके पेंसिल-स्केच खींच आई हूँ ...

परीक्षा हो चुकी और बीस दिन बाद वह सुम्मो से मिला तो वह आँसू छलछलाकर काफ़ी देर तक सिसकियाँ लेती रही। वह सोचती रही कि जाने क्या हो गया है रेवती बाबू को ?

रेवती दुलार से उसे एक चपत लगाकर बोला, "पगली सुम्मो !"

और ग्यारह बजे शिमी से 'स्क्वेश' पीकर, सवा दो महीने बाद, जब नई सड़क की फ़र्म में टाइप करने गया तो वहाँ का मालिक बेतहाशा प्रसन्न हुआ। उसने अन्दर आवाज़ दी कि रमाकान्त बाबू शाम यहीं खाना खायेंगे। काम बहुत इकट्ठा हो चुका है। वह दो-तीन दिन में ज़रूर निपटा देना है। इन्कमटैक्स की तारीख़ पास आ रही है।

रेवती जमकर टाइप पर बैठ गया। घण्टा एक गुज़र गया तो उसने महसूस किया कि सत्तो अपनी माँ से आज नहीं झगड़ रही है। हाँ, उसकी माँ ने ज़रा ज़ोर-ज़ोर से सत्तो को कहा कि दाल भिगो दे रेवती के लिए। सौंठ की पकौड़ियाँ बननी चाहिएँ।

एक घण्टा और बीता तो रेवती ने सत्तो को आवाज़ दी कि ज़रा नीचे से सिगरेट मँगवा दें और पैसे ले जायें।

सत्तो इंटर पास हो चुकी है। वह रेवती की गुस्ताख़ी नहीं बर्दाश्त करेगी। वही सिगरेट पीने की मुमानियत करे और उसी से सिगरेट मँगवाई जाय। रेवती ने देखा कि सत्तो अभी मैली साड़ी पहने बगल के कमरे में आई है। वहाँ से नई साड़ी पहनकर बाहर गई। लौटी तो उसके हाथ में सिगरेट का पैकेट था। रेवती ने मुस्कराकर उसे नमस्ते कहा। वह नहीं बोली। नीची पलकें कर, तुनककर, पैकेट रखा और बाहर चली गई। रेवती को जैसे वह निर्दयता से चिकोटी काट गई। सत्तो तो सिगरेट से वैसे ही झिझकती है, जैसे 'लीक' करता हुआ बिजली का पंखा हाथ लगते ही दाहक झटका मारता हो।

शाम साढ़े चार बजे सत्तो फिर अन्दर आई। हाथ में उसके चाय की छोटी ट्रे थी। रेवती को लगा, मानो ट्रे में फानूसें जल रही हों और उनकी कपनुमा शमाओं के बीच में कोई रंगीनी वाला झूम उठी हो। सत्तो के माथे पर जड़ाऊ टीका रहस्य-दर्पण बना हुआ रेवती को देखने लगा। रेवती ने अब दुबारा 'नमस्ते जी' की। पर सत्तो चुप रही और उसने एक कप चाय बनाई। और उसे रेवती के आगे पेश कर दिया। रेवती ने देखा कि एक कप ट्रे में और रखा हुआ है। यह अपनी माँ

फ आग्रह से लाई है। रेवती ने केटली उठाकर उस कप में चाय उँडेली और उसे सत्तो के आगे पेश कर दिया। रेवती ने अपना कप उठाया तो सत्तो ने अपना कप। रेवती ने जान-बूझकर अपना कप उसके कप से टकरा दिया, मस्तक नत् किया और पीने लगा। सत्तो की लाज मीठी फुहार की हँसी में फूट पड़ी। बोली, "क्या हम दोनों निगोड़ी शराब पी रहे हैं?"

रेवती ने कहा, "इस वक़्त तुम साक़ी-बाला से कम नहीं जँच रही हो।"

सत्तो ने दो बिस्कुट उसकी प्लेट में रखकर कहा, "चलो, ढीठ न बनो। मुझे तुम्हारी ऐसी ट्यूशन की ज़रूरत नहीं है। अपनी उन बैरिस्टर की राजकुमारी जी को ही ऐसा पाठ कण्ठस्थ कराओ।"

दोनों हँस पड़े। चाय पी चुके तो आज सत्तो ने पहली बार अपने हाथों से माचिस सुलगाकर रेवती की सिगरेट जलाई।

शाम को भोजन परोसा गया तो थाली में इतनी कटोरियाँ विभिन्न सब्ज़ियों और पदार्थों से भरी पड़ी थीं कि रेवती उन्हें गिनने का साहस न कर सका। सत्तो ने इस क्षण सुनहरी शबनम की साड़ी पहन रखी थी। रेवती ने महसूस किया कि सत्तो के माता-पिता कमरे की दीवारों को भेदकर उसे देख रहे हैं और सत्तो के प्रति उसके व्यवहार का लेखा-जोखा ले रहे हैं।

पूरे सात दिन तक रेवती ने साँस नहीं ली। रात-दिन एक कर फ़र्म का दो मास का काम ख़त्म किया। हर थकान की साँस को सत्तो ने कभी सिगरेट से, कभी चाय से, कभी शरबत से और सुबह-शाम उत्तम भोजन से उत्तप्त रखा। शिथिल न होने दिया। अब सत्तो अपनी अम्मा से नहीं झगड़ती है। वह तो अब हज़ार कैंडल-पावर का तीक्ष्णतम प्रकाश बनकर रेवती की आँखों पर हावी हो रही है···

काम जब तीसरे पहर समाप्त हुआ और रेवती चलने लगा तो सत्तो बोली, "कल का काम आज ही कर लो।"

रेवती ने उत्तर में 'टा-टा' की, और नीचे ज़ीने से उतर आया। सीधा ट्राम में बैठकर हौज़क़ाज़ी से फतहपुरी घूमा और बिल्लीमारान पहुँचा। दूर घण्टाघर से अपनी घड़ी मिलाई। इधर देखा कि गुब्बारे वाला अपने थैले से रबड़ की एक पतली थैली निकालता है···मुँह से उसमें सहेजकर फ़ूँक भरता है···उँगलियों की सुघड़ता से उसे फुलाकर चमकीला गुब्बारा बनाता है···और झट उसे किसी ग्राहक के हाथों में थमा देता है। रेवती एकटक उसके श्लाघनीय कार्य-व्यापार को देखता रहा। हल्के से गुनगुनाया, "गुब्बारे!"

नीचे से ही दोस्त को पुकारा और ज़ीने पर चढ़ा। कोई उत्तर नहीं। चौक में कोई नहीं बोला। कमरे में घुसा कि दवाइयों और मरीज़ की आहों का एक अम्बार

उसे पसीना दे गया। खाट पर मिस पुरी पड़ी हुई है। कमरे में झाड़ू शायद महीने भर से न लगी हो। तकिये के सहारे राजेन्द्र म्लान-मुख दाढ़ी बढ़ाये बैठा है। रेवती को देखकर दोनों ने अपनी आँखें नीचे कर लीं। रेवती टैम्परेचर-चार्ट पर झुका। तो मिस पुरी महीने भर से एक सौ एक और एक सौ तीन डिग्री बुखार के बीच हिचकोले खा रही हैं? मोतीझरा है। दवाई का परचा देखा; ऐसे ही किसी अप्रसिद्ध डाक्टर का है। रेवती नीचे उतरा। ताँगा कर वह दिल्ली के सबसे प्रसिद्ध डाक्टर के पास गया और दूसरी साँस में उसे ले आया। फिर दवाई लाया। एक ख़ुराक मरीज़ा को देकर उसने राजेन्द्र को उठाया और नये बिस्तर पर सुला दिया। थोड़ी देर बाद दोनों को दूध पिलाया। महीने भर का पागल राजेन्द्र निराश होकर घबड़ा गया है। मिस पुरी दवाई पीती रही और रेवती से दूसरी करवट लेकर कठिन साँस लेती रही।

रेवती रात भर जागा। सुबह उसने कमरा धोया। झाड़ू दी। रसोई में राजेन्द्र के नहाने को पानी गरम किया। गरम पानी से मिस पुरी के हाथ-मुँह धुलाये, दाँत साफ़ कराये। गरम मुनक्का का एक-एक दाना उसके मुँह में डाला। फिर अँगीठी पर चाय बनाई। राजेन्द्र चाय पी चुका तो जैसे अब उसके कण्ठ में ध्वनि मुखरित हुई, बोला, "रेवती, तुमसे ऐसी आशा नहीं थी कि दुख का पहाड़ टूटने से पहले ही तुम भूल जाओगे।"

रेवती ऐसी हँसी हँसा कि मिस पुरी भी खिल गई। हँस चुका तो उठा और राजेन्द्र के चरणों में साष्टाँग प्रणाम करने लेट गया। और फिर मिस पुरी के केशों को सहलाता हुआ बोला, "राज, तू कालेज में भी एक डाँट से ही रोने लगता था। अब मैं डाँट दूँगा तो फिर रोने बैठ जायगा। लो यह पैसे, होटल में भोजन करो और जाओ अपने दफ़्तर। तुमसे शाम को बात करूँगा। कितने दिन से ग़ैरहाज़िर हो?"

"तेईस दिन से।"

"तो शाम को मुझे बेच आना, तुम्हें तेईस दिन के पैसे नसीब हो जायँगे।"

मिस पुरी अब ज़रा ज़ोर से हँसी।

शनैः-शनैः यह हँसी कली की तरह खिलती गई और पूरे देशी गुलाब की नाईं मुकुलित हो गई। मिस पुरी के गालों पर सुर्ख़ी लौटने लगी। खाट से भी वह एक दिन उठी। बैठने भी लगी और हफ़्ते बाद नीचे ज़ीने भी उतर सकी। तो दूसरे दिन से रेवती उसे अपने साथ कम्पनी बाग़ घुमाने ले जाने लगा सुबह-शाम।

डाक्टर ने कहा है कि मरीज़ा की खाँसी तभी दूर होगी जब कि वह पैदल घूमने जाया करे। रेवती मिस पुरी की अनिच्छाओं को क्रूरता से इन्कार करता है और उसे नियम से घुमाने ले जाता है।

आज कम्पनी बाग़ में वह मिस पुरी को अपने कंधों के सहारे ले जा रहा था।

मिस पुरी ने कहा, "ईश्वर के ऊपर असंख्य ग्रन्थ रचे जा चुके हैं। पर एक बात उसके बारे में किसी ने नहीं लिखी है। मैं चाहती हूँ कि इस पर मैं एक ग्रन्थ लिखूँ कि ईश्वर न तो भाग्य बनाता है, न बिगाड़ता है। वह केवल हृदय और मस्तिष्क में रक्त संचालित कर देता है। यही रक्त पवित्र होता है तो भाग्य चमकता है, दूषित हो जाय तो भाग्य का पतन होने लगता है······"

वे इधर निकुंज से मुड़े कि सामने सुम्मो और उसकी माता जी भी इधर मुड़ीं। रेवती ने माताजी को पालागन किया। सुम्मो से कहा कि देखो ये मिस पुरी हैं। मरते-मरते बची हैं। इन्हीं की दौड़-धूप में पच्चीस रोज़ से लगा हूँ। आपके यहाँ भी नहीं आ सका।

सुम्मो एक करुण हँसी ही उत्तर में दे सकी। बड़ी कठिनाई से वह मिस पुरी से 'नमस्ते बहन जी' कह सकी।

मिस पुरी ने कहा, "बहन जी, ये रेवती साहब ही सब की बीमारियों की जड़ हैं। जिधर नहीं जाते हैं, उधर ही बीमारी फूट पड़ती है।"

सुम्मो अपने आँसुओं को रोकने में झगड़ उठी, पर वे छलछला ही आये, तो वह आगे बढ़ गई।

रेवती इन आँसुओं का मूल्य जानता है। पर रेवती अपना भी मूल्य जानता है। वह उसकी माता जी से बोला, "जी, इस प्रकार नादानी से तो जीवन नहीं क़टने का।"

उसकी माता जी भी एक सूखी हँसी रेवती को प्रत्युत्तर में देकर आगे बढ़ गई।

मिस पुरी पास की बेंच पर खिन्न होकर बैठ गई। रेवती भी बैठा तो बोली, "मैं कह रही थी भाग्य के पतन की बात। पर नारी भाग्य का पतन और उत्थान नहीं जानती। मैं स्वयं नहीं समझ सकी हूँ कि क्यों नहीं जानना चाहतीं हम? बस, हमारे तो ये आँसू हैं। इन आँसुओं को बहाकर हम चाहती हैं कि इसी क्षण ईश्वर हमारे हृदय और मस्तिष्क के रक्त-संचालन को रोक दे। जब हम प्रसन्न रहती हैं तो जैसे यह चाहती हैं कि ईश्वर हमारे रक्त-संचालन को दुगनी गति से तेज़ कर दे।"

रेवती मिस पुरी की दार्शनिकता तन्मय हो सुनता रहा।

मिस पुरी ने कहा, "तुम्हारी सुम्मो की आँखें क्यों छलछला आईं?"

रेवती ने दुखी होकर कहा, "जैसे आप पहली रात मुँह फुलाये थीं और मुझ से नहीं बोली थीं।"

मिस पुरी ने कहा, "तो एक म्यान में दो तलवारें रख लो, मुझे मंजूर है।"

रेवती ने सिगरेट के धुएँ में अपना चेहरा छिपा लिया। बहुत देर तक वह धुआँ उड़ाता रहा। मिस पुरी कोई नवीन कविता गुनगुनाती रही, जिसका भावार्थ

था—"तुम आसक्त नहीं हो रहे हो; यह मैं जानती हूँ। तुम मुझे आनन्द और सुख नहीं दोगे, यह मैं जानती हूँ; पर तुम मुझ से दूर भी नहीं होओगे, यह मैं जानती हूँ; पर यह मैं नहीं जानती कि मैं कौन से नक्षत्र से उतरकर यहाँ, पृथ्वी पर, आई हूँ और क्यों तुम्हारी परिधि बन जाना चाहती हूँ?"

धूप सिर पर चढ़ आई तो रेवती मिस पुरी को घर ले आया। डाक्टर ने अंडे की लुगदी खाने को दी है। मिस पुरी ठेठ शाकाहारी है सो रेवती को चार दिन और लगे मिस पुरी के यहाँ। अनेक बहानों से पूरी लुगदी खिलाने में वह सफल हो सका।

घर चलने के लिए आज मिस पुरी ने छुट्टी दे दी। नीचे उतरा तो वही गुब्बारे वाला खड़ा गुब्बारे बेच रहा है। उसके बाँस में लटके हुए नीले, लाल, पीले, हरे गुब्बारे हवा में उड़ रहे हैं। देर तक वह गुब्बारों को देखता रहा। उनसे हटकर उसने सड़क पर चलती चटकती-मटकती तरुणियों को देखा......

घर पहुँचा तो माता जी चाय डाल रही थीं। पिता जी के हाथ में एक काग़ज़ था। रेवती भी बैठ गया।

पिता जी रेवती के जीवन-क्रम में न खड़े होना चाहते हैं, न उसके बारे में सवाल करते हैं। बोले, "रेवती, आज सुम्मो की माँ आई थी। कर्ज़ का सारा रुपया लौटा गई है। जहाँ सुम्मो की सगाई हुई है, उन्होंने यह रुपया दिया है।"

रेवती की इच्छा तो हुई कि वह रोने लगे। सुम्मो जैसी बाला-सुन्दरी की गोद में उसे अब सोने का हक न रहेगा। चाय पी तो कप में उसे गुब्बारे उड़ते हुए नज़र आये। देखा कि रेवती का एक गुब्बारा एक ग्राहक ने ख़रीद लिया है......उठा और आकर सो गया। पीछे से माता जी की आवाज़ उसके कानों में पड़ी कि पिता जी ने कहा है, तुझे साल भर के लिए कलकत्ता जाना है।

सोने दे तो कोई सोये। किसी ने झकझोड़कर उसे उठा दिया। रेवती ने आँखें खोलीं तो शिमी जैसे साक्षात् अवतरित हो गई हो।

"चलो सिनेमा," शिमी ने कहा और बड़ी फुर्ती में उसे कार में ला घसीटा। 'कार' शिमी चलाती रही। घण्टाघर आई तो रेवती ने 'कार' फतहपुरी की ओर मुड़वाकर बिल्लीमारान पर रुकवाई। झपटकर मिस पुरी को ऊपर से लाया। उसे शिमी के पास बैठाकर ख़ुद पीछे बैठा। दोनों ने आपस में 'नमस्ते बहन जी' की।

कार चली और सिनेमा पहुँच गई। टिकट लिये गये। खेल शुरू हो चुका था। हाल में दाखिल हुए तो गेट-कीपर टार्च लेकर इन्हें सीट देने चला। रेवती ने टार्च के प्रकाश में देखा, सत्तो एक युवक के साथ बैठी हुई है। दोनों की दृष्टि समानांतर है और पर्दे की ओर उठी हुई है। सत्तो की उँगलियाँ युवक की मुट्ठी में दृढ़ता से बन्द हैं।

दोनों बैठीं तो रेवती सत्तो की पिछली सीट पर आ बैठा। वह युवक कह रहा था, "तो तुम्हारे उन रमाकान्त बाबू को क्यों नापसन्द किया गया?"

सत्तो ने कहा, "माता जी तो उन्हें ही चाहती थीं। पिता जी को पता लगा कि पहले वे दो सप्ताह तक एक लड़की के यहाँ रहे क्योंकि उसका पिता मर चुका था जो उनके पिता का कर्ज़दार था। फिर महीने भर से भी अधिक दिनों तक वे एक बैरिस्टर की लड़की की ट्यूशन में रहे। फिर एक हफ़्ता हमारे यहाँ रहे। अब वे अपने किसी मित्र की बहन की बीमारी में लगे हैं। पिता जी को यह बात पसन्द नहीं आई और उन्होंने झट आपके टीका कर दिया।"

युवक ने पूछा, "पर तुम तो उन्हें चाहती थीं?"

सत्तो ने स्पष्ट ध्वनि में कहा, "हाँ, यदि प्रेम मुहर की छाप जैसी चीज़ नहीं है जो स्त्री के हृदय को सीलबन्द कर दे, बल्कि मुक्त भावना है तो अब भी मैं रेवती से प्रेम करती हूँ।"

बड़ा-सा एक सुर्ख़ गुब्बारा सामने पर्दे पर प्रकट हुआ और एक ओर को उड़ गया।

रेवती उठा। शिमी और मिस पुरी के पीछे चुपके से आकर बैठ गया। वे दोनों चुप थीं कि मिस पुरी ने पूछा, "आप रेवती को प्रेम करती हैं?"

शिमी ने राजकुमारी जैसी शिष्टता से कहा, "जी हाँ।"

फ़िल्म की कहानी आगे बढ़ती गई। दोनों चुप बैठी रहीं। अब शिमी ने कहा, "क्या आप भी रेवती से प्रेम करती हैं?"

मिस पुरी ने शिमी को अल्हड़ कन्या जैसा जाना। उत्तर दिया, "जी हाँ, क्योंकि रेवती मुझ से प्रेम करते हैं।"

फ़िल्म की कहानी आगे बढ़ती गई। हीरोइन एक दर्द-भरा गाना गा रही थी। जब गा चुकी, तो शिमी ने कहा, "एक रात मैं पढ़ते-पढ़ते थक चुकी थी। सख़्त नींद आ रही थी। उस क्षण रेवती ने कहा था कि शिमी इस परीक्षा में तुम्हें ज़रूर पास होना है, नहीं तो मेरा हृद्यन्त्र फट पड़ेगा। इसीलिए आँखों में मिर्चें झौंक लो, पर सोओ मत।"

फ़िल्म की कहानी आगे बढ़ती गई। थोड़ी देर बाद मिस पुरी ने कहा, "मेरा बुख़ार शान्त हो चुका था। उस दिन रेवती मुझे गरम मुनक्का के दाने खिला रहा था। अचानक वह बोला, "मिस पुरी, आज तुम्हारा ज्वर हट गया है तो मुझे ऐसा लग रहा है जैसे तुम किसी अन्य युवक के प्रेम-शिकंजे से मुक्त हो गई हो।"

रेवती उठा और हाल के बाहर आ गया। चाय के बहाने वह स्टॉल पर बैठ गया। बाहर एक गुब्बारे वाला गुब्बारे फुलाकर हाथों-हाथ बेच रहा था।

'इंटरवेल' हुई तो शिमी और मिस पुरी उसे खोजती हुई बाहर आईं।

हँसकर उसने चित्र की अच्छाई पूछी। दोनों को शरबत पिलाया। सर-दर्द का बहाना कर वह लौट आया। शिमी से कह आया कि वह मिस पुरी को ठीक-ठिकाने पहुँचाकर अपने घर लौटे। दोनों खिन्न थीं, पर प्रसन्न थीं।

घर लौटकर रेवती आराम से पलँग पर लेट गया। मिस पुरी और शिमी उसे प्यार करती हैं। पर शिमी अब मैट्रिक पास कर चुकेगी और उसे कॉलेज की शिक्षा के लिए एक नया क्षितिज चाहिए। वह क्षितिज रेवती के पास नहीं है। न उसे यह हक़ है कि वह उस क्षितिज को धूमिल कर दे। यौवन को कठिन रखा जाये, तभी तो यौवन का वरदान जीवन को मिलता है। शिक्षा आज हमारी तरुणियों को उच्च मिले, यह जैसे एक नई मानवता का नया प्रश्न है। लेकिन इसके विपरीत आज हमारी तरुणियाँ ज़रा-सी उच्च शिक्षा लेते ही अपने यौवन का मूल्य इतना चंचल और अस्थिर कर लेती हैं कि दुःख होता है। शिमी की वह प्रवृत्ति इधर परीक्षा से पहले से ही विस्फोट करने पर उतारू हो गई थी। बड़ी मुश्किल से प्यार का आश्वासन दे-देकर उसने उसका परीक्षा का मूड और उसका टैम्पो उठाये रखा है। नहीं, शिम्मी ऊँची शिक्षा पाये इसके लिए यह ज़रूरी है कि वह उसके रास्ते से हट जाये और उसे प्यार के स्वप्नों से निर्ममतापूर्वक धक्का देकर उठा फैंके। कच्ची उमर में प्यार से देवता अपने स्वर्ग में दिया करते हैं। इस पृथ्वी का प्यार तभी ठीक रहेगा कि पहले हम अपने दायित्वों को सँभाल लें···

मिस पुरी कवयित्री है, सिर्फ़ कवयित्री। लेकिन जिसका काव्य धन-सम्पन्न ऐश्वर्य के बीच ही साँस ले सकता है। ऐसी कवयित्रियाँ क्या हमारे संघर्षशील राष्ट्र को चाहिएँ? रेवती ने, यह ठीक है कि, उसे प्यार का आश्वासन दिया है। पर मिस पुरी को वह आज तक अपने इस अवांछनीय काव्य के मार्ग से हटाकर शाश्वत काव्य के मार्ग की दिशा मुड़ने की प्रेरणा नहीं दे सका है। उस हालत में वह कैसे भविष्य का प्रकाश इस मिस पुरी के संग अपने जीवन के चौबीस घण्टे व्यर्थ में व्यतीत करने का जोखिम लेकर ले? ओह! तरुणाई अपने आप में कितनी जोखिम है।

जोखिम! मिस शिमी की आयु सिर्फ़ सोलह वर्ष है। मिस पुरी सत्रह की है। और दोनों इस जोखिम से अनभिज्ञ हैं कि अभी सन्तान का बोझा उठाने का अर्थ व्यापक जीवन में कितना दुरूह है और वह आगे चलकर कितना क्लेश खड़ा कर सकता है।

रेवती पलँग पर सरककर ज़रा खिड़की के निकट लेट गया। यहाँ से सड़क का नज़ारा साफ़ दूर तक दिखाई पड़ता है। उसने देखा कि उस कोने पर एक गुब्बारे वाला आराम से खड़ा है। न सिर्फ़ बच्चे ही उसके गुब्बारे खरीदते हैं, कुमारियाँ और

तरुणियाँ भी खरीदती हैं। गुब्बारे! रबड़ के फूले हुए रंगीन रुई के गाले। इन्हें आस्मान में छोड़ दें तो जैसे हमारे दिल के रंगीन आसान ही किसी अज्ञात दिशा की ओर उड़े जा रहे हों। बच्चों को गुब्बारे भला क्यों प्रिय हैं? रेवती ने उमँग से मचलकर गुनगुनाया—

"गुलाबी अधरों की मुस्कान,
गुब्बारों की रंगीन मुस्कान।"

उसने ज़रा गुँजाकर प्रश्न किया कि कितनी ओछी मनोवृत्ति है यह कि नारी प्रेम के दायरे के अतिरिक्त संगी-साथी के मायनों में जीवन को हस्तामलक-सा नहीं देख सकती। ज़रा आँखों को कोई तरुणी भा जाये तो बस वह प्रेयसी हो ही जानी चाहिए? और उससे विवाह हो ही जाना चाहिए? अन्यथा दुर्बलता विवश कर दे, तो उसे बहन कहकर तसल्ली कर ली जा सकती है। या वह माँ के इन्द्रपद पर बैठ सकती है। अन्यथा, फिर कोसों मील दूर की गन-बन्दूक की गरजती हुई ध्वनि हो सकती है। विचित्र समाज है, और विचित्र मानव-सन्तति है और विचित्र समस्या है।

राष्ट्र की तरुणियाँ इन लाल, पीले, नीले, हरे गुब्बारों की तरह स्वच्छन्द गति से उड़ती फिरें और मुक्त समाज में साथी-मित्रों की तरह से स्वस्थ दान देती फिरें, क्या यह अनिवार्य नहीं हो सकता? सामाजिक रिश्तों की सुकड़ी हुई नालियों को सहेजकर, उन्हें फुलाकर उन्हें सुन्दर गुब्बारों में परिवर्तित कर क्यों न बदल दिया जाये।

दूसरे दिन जब वह कलकत्ता चला तो उसने मिस पुरी को और शिमी को खबर तक न दी। मेरे प्रेम की निराशा के बीच से वे एक नया मार्ग खोजें, यही उनकी तरुणाई के लिए शुभ रहेगा, ऐसा उसने सोचा।

१२

भारत माता के घाव

देव और दानव !

राम और रावण !

कृष्ण और दुर्योधन !

ऋषि और नर-राक्षस !

गृहस्थ और दुष्ट पापी साधु !

सदाचारी राजा और व्यभिचारी राजा !

सती और पापाचारिणी !

ब्रह्मचारी और लुटेरा !

धर्मनिष्ठ भारतीय और चंगेजखाँ और उसके अन्य जीवित पद्‌चिह्न !

न्यायोचित भारतीय विद्रोही और आक्रांता अंग्रेज़ !

अबोध जनता और सड़ा हुआ क़ानून !

निरपराध इंसान और रक्तपिपासु पुलिस······

रजनी हथकड़ी में बँधा हुआ 'समरी ट्रायल' के खेमे में बैठा था। कल उसके प्रोज़ीक्यूशन इन्सपेक्टर ने २०० रुपये रिश्वत के माँगे थे कि वह छूट सकता है। रिक्शी के भैया उन रुपयों का लोभ कर गये। अन्य निरपराध क़ैदियों का फ़ैसला मजिस्ट्रेट ने सुना दिया तो रजनी को उसने डेढ़ वर्ष की सजा सुना दी।

उधर डैडी खड़े थे। उनकी आँखें छलछला आईं। पहले वह स्तब्ध खड़ा रहा, पर रजनी की छाती उन्हें देखते ही ज़ोर से धड़क उठी। वापिस जेल में उस बृहत् द्वार में वह घुसा तो उसे सामने बैरकें नज़र नहीं आईं। पलकें खूब खोल लेने से आँखें जल उठीं। उसे सब-कुछ मटमैला-श्वेत दीख रहा था। उस श्वेत शून्य के एक कोने में ख़ून झर रहा था···

अब रजनी क़ैदी बन गया था। जेल के अधिकारी उसे लोभनीय-दृष्टि से देखते हुए हँस रहे थे। अन्य पुराने क़ैदी ख़ुश थे कि रजनी भी क़ैदी बन गया है। उसके परिचित हवालाती उसे भय की दृष्टि से देख रहे थे। पर रजनी उस टपकते ख़ून को देख रहा था जो न जाने कितना झरेगा······

पठान क़ैदी-वार्डर ने अत्यन्त क्रूरतापूर्वक एक चक्की में उसे बन्द कर दिया। वहाँ दो गज़ लम्बा और डेढ़ ग़ज चौड़ा एक कच्चा चौंतरा है: यह सोने के वास्ते खड्डी।

यह पेशाब के लिए बदबूदार पतरा और पठान क़ैदी-वार्डर के कंधों पर भारी तालियों का गुच्छा। पठान क़ैदी-वार्डर ने उसे बन्द कर बेहद ख़ुशी से आँखें मिचमिचाईं। बोला, "बाबू, आज इस चक्की से दोस्ती कर लें। कल १८ सेर नहीं पीसा तो मेरी चाबुकें आपका ख़ून और खाल उधेड़ लायेंगी।"

पर रजनी अन्दर-ही-अन्दर रो रहा था कि अपराध किसी ने किया है और उसके एवज में डेढ़ साल सख़्त क़ैद में इसलिए भुगतूँगा क्योंकि हमारा क़ानून अंधा हो चुका है।

उसकी नसें कुछ शीतल पड़ गईं। धम्म से वह जँगलों के पास बैठकर बाहर घूरने लगा। एक नये क़ैदी-की-सी असली शकल उसके सुन्दर चेहरे पर उतर आई। उसे याद आया, उसके कुछ साथी क़ैदियों ने पिछले दिनों तड़प-तड़पकर, हृदय-विदारक रुदन कर सरकारी वकील से नम्र निवेदन किया था कि हम बेक़सूर हैं। पर किस तरह वह उन्हें काट खाने को दौड़ता था। और चीख़कर कहता था कि हाँ, तुम्हारा बेक़सूरपन जब फाँसी पर लटकेगा तो पता चलेगा···आख़िर उन्होंने श्राप दिया था कि जा, तेरा बड़ा बेटा मर जायेगा।

कल उस सरकारी वकील का बड़ा बेटा सचमुच मर चुका है। पर आज भी उसकी बेहूदी शेखी उसके व्यक्तित्व पर बेढंगेपन से कसी हुई थी। घोड़े पर ज़ीन की तरह सचमुच वह सरकारी वकील ज़ुल्मी सरकार के घोड़े की ज़ीन था।

हृदय की धड़कन ने रजनी को अर्द्ध-मूर्च्छित कर दिया। विवश, उसे अस्पताल के एक पलँग पर निर्दयता से ले जाकर पटक दिया गया। वहाँ हैडवार्डर उपस्थित हुआ। पठान-वार्डर ने कसाई की तरह रुक-रुककर कहा, "हरामज़ादा, चक्की से घबराता है। पर बेटा! डेढ़ साल तक तो यह अस्पताल तुझे घर-जँवाई बनाकर नहीं रख सकता। आयेगा, तो मेरे ही पास चक्की पीसेगा।"

पास कुछ क़ैदी खड़े हुए थे। हैडवार्डर हँस पड़ा। डाक्टर हँस पड़ा। क़ैदी भी हो-हो करते गये।

मूर्छित रजनी बड़बड़ाया नहीं। अपनी अर्द्ध-चेतना में वह बड़ी बेचैनी से करवटें लेता रहा। घर होता तो माँ उसका सिर दाबती, भाभी भी उसके तलुवे सहलाती। उसे चाय दी जाती। पिता जी उसके लिए डाक्टर के पास दौड़े जाते।

रात ढलने लगी तो दूर कहीं मन्दिर में घड़ियाल बजने लगे। दर्द से वह कराहना चाहता था। घड़ियाल के साथ आरती की घण्टी टुनटुनाने लगी। इस नीरव निस्तब्धता में वह आरती की घण्टी मन्दिर से उड़ती हुई इधर आ गई और रजनी के कान के पास आ बजने लगी। आँखें खोलकर वह छत घूरने लगा। उसके कर्ण-पटल ढोल की खाल की तरह थिरकने लगे। उस दिव्य लय के साथ रजनी का हृदय

जैसे-जसे उठा······उस लय के अनुरूप उसने अपनी पग-ध्वनि सँजोई और वह नृत्य करने लगा···

नृत्य करते-करते रजनी थक गया तो वह लड़खड़ाया। पर किन्हीं मृदु माँसल बाहों ने उसे सँभाला। रजनी उसकी बाहों में समा गया। अर्द्ध-निमीलित आँखों से उसने देखा, साक्षात् भारत-माँ की गोदी में है वह। एक दीर्घ निश्वास उसने ली और भारत-माँ की वक्ष से लगकर वह पुनः सो गया।

ज़ोर से एक पैशाचिक किटकिटाहट हुई, "ओ रे चार सौ बीस! चक्की पीसने के लिए तैयार हो जा। हरामज़ादा पलँग पर पड़ा हुआ हूर-परियों के ख्वाब देख रहा है। साला खड्डियों के लायक तो है नहीं।"

रजनी ने कराहते हुए भय की कँपकँपी ली। भारत-माँ की वक्ष के गाढ़े चिपक गया। पर ओह! वह तकिये में गहरा धँस गया है और सामने वही पठान क़ैदी नम्बरदार खड़ा हुआ है।

सूर्य चमक चुका है। वह घण्टी की टुन-टुन भी जैसे इस जेल की चहार-दीवारी में बन्दिनी बनने से दूर कहीं अब खिसक रही होगी। रजनी ने उठना चाहा, पर न उठ सका। कम्पाउँडर आया तो उसने देखा कि रजनी तेज़ बुखार की आड़ में बेहोश पड़ा हुआ है। उसे चक्की पीसने को न मिलेगी। वार्डर से वह बोला, "बादशाहो! आज तुम्हारी चक्की तो इसका बुखार चलायगा।"

अस्पताल के सभी क़ैदी रोगी खी-खी कर हँस पड़े। क़ैदी-वार्डर भी पठानी हँसी हँसता हुआ अपनी चक्की में बन्द हवालातियों को खोलने चला गया।

दिन भर रजनी बेहोश पड़ा रहा। उसकी बड़बड़ाहट कोई कुछ न समझ सका। डाक्टर ने उसे दवा पिला दी थी सुबह ही। फिर उसकी परिचर्या के लिए कोई नहीं आया। एक क़ैदी से बात करते हुए कम्पाउँडर साहब कह रहे थे, "जेल के अस्पताल में वही क़ैदी मरता है, जो हिजड़ा होता है। वरना क़ैदी बेहयाई से ही बीमार पड़ता है और बेहयाई से ही भला-चँगा हो जाता है।"

रजनी की पुतलियों के आगे एक श्वेत आभा छा गई। रजनी का ज्वर-दाह हठात् शीतल पड़ गया। हठात् वह श्वेत-आभा सिमट गई, उसने देखा, भारत-माता पुनः उपस्थित हो गई है। मातृ-मुस्कान उसके अद्वितीय मुख पर चपला-सी बनी हुई है। बोली, "रजनी, ज़रा-सी जेल-पीड़ा से दुखी न होओ। मेरे तो अनगिनत घाव हैं। फिर भी मैं वर्ष में एक-दो बार ही रोती हूँ।"

रजनी तुरन्त उसकी वक्ष में सिमट गया। बच्चों-सा तुतलाकर बोला, "माँ, तुम भी रोती हो?"

भारत-माँ असीम स्नेह-दायिनी बनकर बोली, "हाँ रे, रोना बुरी बात तो नहीं

है। पर वही रोना अच्छा जिससे मन और देह स्वस्थ हो जायँ। देख न, इस दूसरे विश्व-युद्ध में मेरे सभी पड़ौसी बहन-भाई घाव पर घाव खा रहे हैं। पर सिसकी तक नहीं लेते; तो मैं ही क्यों रोऊँ ?"

रजनी ने ऊपर मुँह उठाकर पूछा, "तुम्हारे पड़ौसी बहन-भाई ?"

भारत-माँ ने कहा, "रजनी, तू इतना बड़ा हो चला है, पर कब तक बाल-बुद्धि रखेगा ? ईश्वर और देवताओं की कल्पना मनुष्य-मूर्ति के रूप में करना एक दुर्लभ साहस है। इसी तरह राष्ट्रों का किसी सुगम कल्पना-मूर्ति के रूप में ध्यान करना कोई अच्छी कला नहीं है। राष्ट्र पुरुष की तरह बलवत्तर अवश्य होता है, पर नारी की तरह वह अन्दर ही अन्दर घुलने वाला रहस्यमयी प्राणी भी होता है जो अपनी वेदना किसी और को कभी बताता ही नहीं। राष्ट्र पक्षी की नाईं मुक्त उड़ान कभी नहीं भरता; वह तो एक तपस्वी की मानिंद कठोर तपस्या आँख मूँदकर इसलिए करता है कि कोई उसके अवयव और अंग-अंग भौतिक रोगों से अछूते रहें। उसकी आत्मा अपने आप में दूरदर्शी 'सर्चलाइट' बनने का कठिन स्वाध्याय रचती रहती है।"

रजनी ने कुछ समझा; कुछ उलझन में माँ के गम्भीर गहन भावों को न पहुँच सका, सरलतम शिशु बनकर बोला, "सर्चलाइट बनने के लाभ ?"

माँ जाने कैसे मिठास-सी हँसी। बोली, "तू दिव्य-दृष्टि तो समझेगा। सर्चलाइट, इसी दिव्य-दृष्टि का पर्याय है। युगों से हर राष्ट्र ने हर सदी में अपने तर्ज़ की और आत्मविश्वास की दिव्य-दृष्टि को संचित करने का प्रयास किया है। पर सब राष्ट्रों की दिव्य-दृष्टियाँ जब किसी केन्द्र-बिन्दु पर इकट्ठी होती हैं तो भूकम्प आता है, दिशायें थर्रा उठती हैं, दावानल कुपित हो जाता है और दुनियाँ के नर-नारी उस अग्नि का सूखा ईंधन बनने लगते हैं। क्या तुम जानते हो, ऐसा क्यों होता है ?"

रजनी सकुचा गया। पलकें नीचे झुकाकर बोला, "नहीं तो।"

एकाएक भारत माता के हाथों में एक तीव्र स्वर्ण-अस्त्र आ गया। बोली, "यह अस्त्र इंसान ने बनाया। स्वर्ण-हीरों से जड़ित यह बहुमूल्य सम्पत्ति है। पर इसका उपयोग जघन्य कार्य के लिए होता है।" वह अस्त्र लुप्त हुआ और उसके स्थान पर स्वर्ण की एक सिंह-प्रतिमा आ गई। बोली, "यह सिंह है। रक्त-जन्य जघन्य कार्य यह भी करता है। पर अपनी सृजित सन्तान की बलि यह कभी नहीं लेता। इससे उल्टे इंसान अपनी ही सहजात सृष्टि बच्चे-स्त्री-बूढ़ों को कत्ल करने में गौरव अनुभव करता है।"

रजनी मुग्ध-शिशु की नाईं बोला, "तो ?"

भारत-माता हँसी। उसके केश स्वर्ण-तारों जैसे दीप्त हो गये। बोली, "तो, बात ठीक समझ लो। राष्ट्रों की दिव्य-दृष्टियाँ आपस में क्यूँ संघर्ष करती हैं और इंसान

क्यूँ उन संघर्ष-ज्वालाओं का ईंधन बनने लगता है ? और क्यूँ इंसान अपने दूर-स्थित भाई-इंसान और बहन-नारी का हल्के जी से ख़ून बहाने में नहीं हिचकता ? राष्ट्र इस पृथ्वी की मणिमाला की एक-सदृश मणियाँ नहीं हैं। विभिन्न राष्ट्र इस पृथ्वी पर विभिन्न दाम्पत्य-जीवन की विभिन्न अनुभूतियाँ हैं। जब राष्ट्र दिव्य-दृष्टि की साधना में अपने-अपने रास्ते चलते हैं, तो वे मनुष्यों के जन्मसिद्ध अधिकारों को गौण मानने लगते हैं। उनके समक्ष सिर्फ़ शासन ही प्रमुख रह जाता है। यदि राष्ट्र खटाई की फाँकें हैं तो यह पृथ्वी पीतल का कटोरा है। शासन की कठोरता से राष्ट्रों की दिव्य-दृष्टियाँ इतनी अधिक तीव्र हो जाती हैं कि वे पृथ्वी की प्राकृतिक मर्यादा का अतिक्रमण करने लगती हैं। उस खटाई-क्रिया में जो पोषक तत्त्व हैं वे पितलाने लगते हैं। उस खटाई-क्रिया में राष्ट्र के नर-नारी गलने-सड़ने लगते हैं। मोटी दृष्टि से ऐसा ही लगता है कि इंसान इंसान को युद्ध में मारता है। पर सच्चे मायनों में वह राष्ट्रों की दिव्य-दृष्टियों की दाहक-क्रिया ही है।"—और भारत-माँ एक करुण हँसी हँसकर रह गई।

रजनी को इस करुण हँसी से पीड़ा हुई। वह बोला, "दिव्य-दृष्टि भी दाहक होती है ?"

"अवश्य !" भारत-माँ ने कहा, "युग-युगों से कितने महारथियों, राजनीतिज्ञों और सन्तों ने दिव्य-दृष्टि उपलब्ध नहीं की ? पर उनका तामसिक उपयोग ही हुआ। राजनीति, धर्म और समाज की दिव्य-दृष्टि में जैसे ही सात्विकता क्षीण हो जाती है, वैसे ही वह दाहक बन बैठती है। अन्यथा दिव्य-दृष्टि तो कड़कती हुई बिजली के सदृश होती हुई भी इस अखिल पृथ्वी पर सलिल धारा की रिमझिम वर्षा को बरस पड़ने के लिए बाध्य करती रहती है।"

रजनी ने पूछा, "माँ, तुम्हारे कितने घाव हैं और वे कैसे हो गये ? मैंने तो सुना था कि तुम अमृत-पेयी हो।"

भारत-माँ रजनी पर प्रेमाश्रु झारती हुई एकाएक लोप हो गईं।

इस सुखद अनुभूति में रजनी का एक पखवाड़ा बीत गया। बुखार उतरा तो सही, पर ख़ूब कष्ट देकर उतरा। रिक्खी की याद कई बार उसके हृद्पटल पर उतरी, पर भारत-माँ की इस अनुभूति पर तैरकर बह गई।

रोज़ाना फ़ैसले सुनाये जा रहे हैं। दो वर्ष और डेढ़ वर्ष। क़ैदी बना-बनाकर सबको मुलतान, रावलपिंडी और लायलपुर जेल भेजा जा रहा है। कल रजनी ने देखा था कि इन अबोध नागरिकों को क़ैदी बनाकर ही विदेशी सरकार को राहत नहीं मिली है। चालान के वक़्त सबके पैरों में डण्डा-बेड़ी जकड़कर भेजा जाता है। शनैः-शनैः पूरे पखवाड़े में जेल के हृदय की धड़कन शान्त हो गई। चौखाने की वर्दी के बीच में बन्दी

क़ैदी ख़ून की साधारण हरकत की तरह ज़िन्दा रहने लगे।

जेल के डाक्टर से २० साला क़ैदियों ने बार-बार ज़ोर दिया कि रजनी को अस्पताल से बर्ख़ास्त करें ताकि उससे भी चक्की पिसवाई जाय। जब तक रजनी का बुख़ार नहीं उतरा, डाक्टर ऐसा साहस नहीं कर सका!

आज रजनी स्वस्थ हो गया है। कम्पाउण्डर ने रजनी को सूचित किया कि डाक्टर तुमसे क्रुद्ध हो उठा है क्योंकि तुम्हारे घर वाले अभी तक उसे कुछ रुपये नहीं दे गये हैं।

रजनी ने पूछा, "कैसे रुपये ?"

कम्पाउण्डर रजनी की अज्ञानता पर हँसने लगा। बोला, "अब जेल के डेढ़-साला क़ैदी बन गये हो, तो कुछ वैसे रंग-ढंग सीख लो। अस्पताल में तुम्हें मक्खन और फल बीमारी के दौरान में जो मिले हैं वे इस शर्त पर कि तुम्हारे घर से इनके एवज़ में २०-३० रुपये डाक्टर साहब की नज़र किये जायेंगे। इसी से आज डाक्टर ने लिख दिया है कि तुम चक्की पीसने के क़ाबिल हो गये हो।"

चक्की! रजनी भावुक नहीं बन सका कि वह चक्की की मीमांसा करने बैठे और चक्की के अर्थ ढूँढ़े या कबीर ने चक्की पर कौन सी उक्ति लिखी है यह याद करे।

बर्ख़ास्त होकर वह अपनी बैरक में आ गया। कल वह भी चौखाने की वर्दी पहनेगा। इसी ध्यान में तपड़ी बिछाकर लेट गया। सारे क़ैदी अपने-अपने कामों पर चले गये हैं। फाँसी की कोठरियों पर से अभी पहरा बदला है। मृत्यु की चौखट पर बैठे हुए उन ज़िन्दा-मुर्दों ने अभी-अभी खाना खाया है कि इस पृथ्वी पर आज और ज़िन्दा रहें और मनुष्य-मनुष्य के बीच प्रवंचनाकारी न्याय की प्रबल-पीड़ा से तड़पते रहें।

रजनी सोयेगा, सो, सो गया। उठा तो मालूम हुआ कि उसे उठाया गया है। इस क्षण वह डाक्टर के रवैये से अपना मनोविनोद कर रहा था। अवश्य यही हालत भारत की सभी ८०० जेलों की होगी और उनमें नारकीय ढंग से रहते हुए क़ैदी जेलर, जेल-डाक्टर, वार्डर और अन्य जेल-अधिकारियों को पैसे न देने के सबब से अपना अपराध तिगुना बढ़ा लेते होंगे और बढ़ा लेते होंगे अपनी मशक्कत भी तिगुनी ?

भारतीय अदालतों का प्रवंचनाकारी-न्याय और उस न्याय की भारतीय जेलों में प्रवंचनाकारी-परिणति क्या भारतीय जनता को स्त्री-पुरुष न मानकर महज पशु मानती है? क्या रजनी भी अब डेढ़ साल तक पशु-योनि में रहेगा? और कल से चक्की पीसने लगेगा, फिर मूँज कूटेगा······

बाहर खड़े हुए क़ैदी नम्बरदार ने आवाज़ दी कि आपकी मुलाक़ात है।

रजनी को स्फुरण हो आया, 'आप !' रजनी उठा और बोला कि जी, आप ठहरें, मैं चलता हूँ। ज़रा मुँह धोलूँ।

'आप' सुनकर वह क़ैदी भी इंसानियत की रोशनी से रौशन हो गया।

मुलाक़ात से वापिस आकर रजनी तपड़ी पर धम्म् से लेट गया। ख़बर ख़ुशी की लाया था रिक्शी का भाई, पर रजनी उस ख़ुशी से इतना विह्वल हुआ कि उसका मस्तिष्क चकराने लगा। रजनी की बी-क्लास हो गई है। इसी वक़्त वह बी-क्लास में चला जाने वाला है। सम्पत्ति और धन भारतीय न्यायालयों में न्याय ही नहीं ख़रीद सकते, न्याय को मनचीता तीव्र और हल्का भी बना सकते हैं। क़ैदी बनकर भी सम्पत्ति और धन से अपराध की असह्य पीड़ा भी सुखानुभूति में परिवर्तित कर सकते हैं। डैडी ३ लाख इन्कमटैक्स सरकार को देते हैं, सो रजनी को बी-क्लास मिल गई है। ओह: कैसे स्वस्थ होगा इस भारत-राष्ट्र का न्याय और इसकी जेलें ?

रजनी बी-क्लास में पहुँच गया। एक छोटा-सा बँगला, बिजली का पंखा, फ्लश की टट्टी, सोने के लिए पलँग, रजाई-गद्दे, एक नौकर, जी-चाहा भोजन, चाय-बिस्किट, सिगरेट,...' दो मिनट में वह पठान-क़ैदी और सभी २० साला क़ैदी वहाँ आये। चक्की वाला वह पठान-क़ैदी नम्बरदार सबके पीछे खड़ा रहा। रजनी को 'जरामजी' की, औरों ने 'बाबू जी' और 'सलाम बाबू जी' किया। बधाई दी और पूछा कि साढ़े वास्ते कोई सेवा दस्सो ?

रजनी ने क़हक़हा लगाकर कहा कि बादशाहो, सानूँ सख़्त अफ़सोस है कि थ्वाडी चक्की पीसने को नहीं मिली।

कुछ अपमानित, कुछ शर्मिन्दा सबने रजनी की हँसी में ज़ोर से हँसकर रजनी को सम्मान दिया।

रजनी ने देखा कि जेल की जलालतें भी बेहया बनकर हँस सकती हैं।

बी-क्लास वार्ड जेल के एकान्त कोने में है। वैसे बीचों बीच में है। इधर क़ैदियों की मशक्कत के लिए कारखाना है। इधर क़ैदियों की बारकें हैं। बी-क्लास वार्ड की बाईं लाइन में नये और बेहया क़ैदियों के लिए एकांत कोठरियाँ हैं। रजनी को यहाँ आकर, चैन मिला। उसने सोचा, इधर क़ैदी सख़्त मशक्कत करते हैं और उधर वे निष्क्रिय रहकर सोते हैं और अपनी सुबह-शाम बिताते हैं। इनके बीच में रहकर मैं तसल्ली से मानसिक संघर्ष कर सकूँगा।

काँग्रेस-बैरक से एक क़ैदी उसे दैनिक पत्र दे गया। एक साँस वह उसे पढ़ गया। समाचारों की प्रतिक्रिया से शाम तक रजनी कुछ उखड़ा-उखड़ा रहा। पास में ही चहारदीवारी है और बाहरी दुनियाँ की पगध्वनि साफ़ सुनाई दे रही है। उधर खिलाड़ी फ़ुटबाल खेल रहे हैं। 'गोल' होने पर उनका हर्ष-चीत्कार रजनी को भी अपनी

मैंने खुशियाँ मनाई थीं। आज इस पापाचार से मेरा हृदय फटा जा रहा है। मैं खिन्न हूँ। मेरा सर्वनाश मेरे सिर पर बोल रहा है। और पूरा हिन्द भी मुझ से प्रतिशोध लेने को उतावला है। चाहे जो हो, मैं प्रसन्न हूँ कि मुझे आत्म-ज्ञान हो गया है…"

अब रजनी सिंध की ओर उड़ा। यहाँ धरती सिंधी भाषा में गा रही थी, "मेरे प्रदेश की राजनीति देवी महामारी-रूप से मुझे आहत कर रही है। मेरे घावों पर अरब महासागर नमक बुरका रहा है। सिंधु ने भी मुझे शीतलता देने से इन्कार कर दिया है। नित्य-प्रति मैं पंगु बनती जा रही हूँ।"

यहाँ से होता हुआ रजनी पश्चिमी तट को लाँघ गया। सिंहल-द्वीप की परिक्रमा भी उसने शीघ्र की। जहाँ किसी समय भगवान् राम ने सेतु बाँधा था, वहाँ मछुओं की एक कन्या गुनगुना रही थी, "मुझे विश्वास है, राम पुनः हमारे यहाँ आयेंगे। इस बार वे चढ़ाई न करेंगे। इस बार तो वे प्रेम का आलिंगन देने आवेंगे। यदि उनकी सीता न होगी तो मैं अग्नि-परीक्षा देकर उनकी सीता बन जाऊँगी।" सम्पूर्ण भारत का तट सिंहल-द्वीप के समुद्री किनारे के साथ गा उठा, "भारत इस हिन्द महासागर में एक तपता हुआ ताम्र-पत्र है, जो इस सागर-जल को शुद्ध कर रहा है।"

पूर्वी-घाट से होता हुआ रजनी बंगाल पर उड़ने लगा। उसने महसूस किया कि एक प्रबल वेगवती वायु उसकी दिशायें निर्धारित कर रही है। बर्मा पर से होता हुआ वह मलाया के तट पर विहार करने लगा। यहाँ समुद्र-तट से एक रागिनी उठ रही थी, समुद्रजल चट्टानों से टकराकर वाद्ययन्त्र बजा रहा था। रजनी ने वह गायन सुना, "हज़ारों वर्ष पहले भारत के शिरोमणि पुरुष मेरा उद्धार करने आये थे। आज मैं अतृप्त हूँ, अधीर हूँ। प्रतीक्षा कर रहा हूँ कि पुनः भारत के शिरोमणि पुरुष मेरा उद्धार करने आयेंगे। अपने प्यार का दान देने आयेंगे। अपनी ओर से उन्हें नव-प्रभात के नव-सूर्य की सुकोमल किरणों को गूँथकर हार पहनाऊँगा……"

वहाँ से लौटकर रजनी आसाम पर उड़ने लगा। एक वेग से बहकर वह बिहार पर आ गया। मध्यभारत के ऊपर से उड़ा। राजपूताने के क्षितिज पर कुछ क्षण भ्रमण किया। संयुक्त प्रान्त पर से अपने पंख फैलाकर रजनी हिमालय की कन्दराओं में उतरकर विश्राम करने लगा।

हठात् एक भयंकर गर्जन उठा। करुण क्रन्दन में तरल होकर वह कन्दराओं में गूँजने लगा। रजनी आशंका से अधीर हो उठा कि यह करुण क्रन्दन कन्दराओं की शीतलता से टकराकर शीतल जल के रूप में बरसेगा या खौलते हुए पानी की दाहक छींट बनकर गिरेगा ?

रजनी ने सुना, उधर एवरेस्ट पहाड़ी की चोटी गा रही है, "मैं! एवरेस्ट चोटी! मैं उसी प्रकार हूँ, जिस प्रकार स्त्री के वक्ष में उसके उरोज। लेकिन उरोजों

में दुग्ध होता है। उससे वह अपनी संतति का पोषण करती है। मैं चाहती हूँ कि भारत-माँ के अक्षय उरोज बन जाऊँ और उसके अर्द्ध-प्राण नागरिकों को आकण्ठ दुग्धपान कराऊँ……।"

पर कंदराओं में करुण क्रन्दन की गुँजाहट ने रजनी को एवरेस्ट की आत्मा का संगीत नहीं सुनने दिया। रजनी तुरन्त वहाँ से उठा और अपनी जेल पर आ गया। वह उत्तेजित हो उठा था। उसने अपने दीर्घ-भ्रमण अतिरंजना पाई है। वह जेल के बाहर खड़े संगीनधारी पहरेदार को सम्बोधित कर बोला, "अरे ओ संगीनधारियो! रोग-कीटाणु की तरह तुम भारत की समस्त रक्त-धमनियों में विचरण कर रहे हो। मुझे देखो, मैं तुम्हारी संगीनों को धन्यवाद देना चाहता हूँ। तुमने पिछले आठ महीनों में कई सौ सपूत गोली से भूने हैं। फाँसी पर चढ़ाये हैं। कई हज़ार जेलों में बन्दी किये हैं। पर क्या तुम जानते हो कि ऐसा कर तुमने महज़ भारत-माँ की देह में संजीवनी बूटी के इंजेक्शन दिये हैं। और तुम्हारी संगीनें शीघ्र अणु-अणु होकर छिटकने वाली हैं।"

सुबह रजनी की आँखें खुलीं। भोजन की थाली टेबल पर रखी है। सामने एकान्त कोठरियों के क़ैदियों को खोला जा रहा है। वार्डरों के पहरे बदल रहे हैं। रजनी का नौकर चाय बनाकर लाया है। उधर सूर्य उषा का घूँघट उठाकर चुम्बन कर रहा होगा। रजनी ने शरमाकर अपनी आँखें बन्द कर लीं। उसके मन में उमँग उठी कि वह भी चुम्बन करे। पर ऐसा चुम्बन कि उसके आँखों की चरबी गलकर बह जाये और वह अपने देश की नग्नता और भी सही-सही देख सके।

रजनी गुनगुनाया…"मैं जीवित शहीदों की श्रेणी में बैठा दिया गया हूँ। मुझे किसी क्रान्तिकारिणी के रक्तिम अधर इसी क्षण चाहिएँ। अरे, इसी क्षण चाहिएँ।"

सामने एक जेल-अधिकारी आ खड़ा हुआ। उसने कर्कश आवाज़ में कहा कि बड़े बदतमीज़ हो, जो मुझे सलाम करने खड़े नहीं हुए।

रजनी मुस्कराता हुआ उठा। उसने जेल-अधिकारी को नमस्कार कर, पूछा, कि क्या आज्ञा है?

आज से तुम्हें चर्खा कातने को मिलेगा। और रजनी को तरेरकर देखता हुआ वह चला गया।

रजनी के स्वप्न की मिठास खण्ड-खण्ड हो गई।

नौकर ने आजिजी से रात को भोजन न करने का कारण पूछा।

रजनी के स्वप्न की मिठास के सूत्र पुनः संगठित होने लगे। वह नौकर का परिचय पूछने बैठने गया। और चाय पीता रहा।

दस बजे एक क़ैदी चर्खा रख गया। कुछ रुई रख गया। एक महीने तक यही क्रम चलता रहा। शाम को नित्य ही जेल के अधिकारी आते। अशिष्टता से बातें करते। रुई खराब करने पर रजनी को ताड़ना देते और चले जाते। नौकर से कुछ पूछना बाकी न रहा था। दिन एकान्त, रात एकान्त। स्वप्न की चेष्टा वह करता, पर स्वप्न की बात स्वप्न होती है। बीते दिन के स्वप्न आते तो रजनी उन्हें देखने से इन्कार कर देता। समूचा राष्ट्र क्रान्ति की विशाल लहरों पर तैर रहा है। उसका भी सौभाग्य है कि वह क्रान्ति का भागीदार ज़बरदस्ती बनाया गया है और जेल में बन्दी है। वह सिर्फ़ क्रान्ति के स्वप्न देखना चाहता है। क्रान्ति के स्वप्न लोमहर्षक और रोमाँचकारी होते हैं। कितना दुख है कि क्रान्ति के स्वप्न उसे कताई नहीं आ रहे हैं। अरे, उसे यहाँ बन्द जेल में कोई क्रान्ति के सन्देश सुनाये। आज तक वह आवारा रहा है। आज वह एकमन क्रान्ति का ताज़ा पाठ चाहता है।

रजनी खिन्नमना रहने लगा। बेमन चर्खा कातना दिन भर। रात अधपेट थोड़ा-बहुत खाता और सो जाता। क़ैद का एक दिन उसका यूँ व्यतीत हो जाता।

आज रजनी ने ध्यान किया कि अभी उसे क़ैद एक वर्ष और साढ़े चार महीने और काटनी है।

एक वर्ष! एक दीर्घ निश्वास उसने ली। उसकी दृष्टि सामने पीपल पर रखे चील के घोंसले में अटकी की अटकी रह गई।

"जी नमस्ते!"—पीछे से एक खद्दरधारी युवक ने नमस्ते की।

रजनी ने उसे सम्मान-सहित पलँग पर बैठाया। नौकर को चाय लाने का हुक्म दिया। और प्रश्न किया, "आप?"

युवक ने बताया कि वह काँग्रेस-बैरक का एक नज़रबन्द बन्दी है। मुलाक़ात थी, सो सोचा, आपसे भी परिचय करते चलें।

रजनी ने धन्यवाद सहित इसका आभार माना।

युवक ने नई ख़बर दी कि ख़बर आई है, काँग्रेस-हाई-कमाँड को फाँसी होने वाली है।

रजनी खिन्न-हृदय से मुस्करा दिया। बोला, "भाई साहब, जिस देश में १०१ शहीद हो जाते हैं, उसकी फकत गुलामी की ज़ंजीरें ही नहीं टूट जातीं, वह देश सबल भी हो जाता है। सो १०१ शहीद तो हिन्द में हो चुके। हिन्द का काँग्रेस का हाई-कमाँड भी अगर शहीद हो जायगा तो हमारी यह सबलता और सबल हो जायगी। इसमें चिंता की क्या बात है?"

युवक ने जिज्ञासा की, उत्तर के लिए।

पर रजनी ने कहा, "इस द्वितीय विश्व-युद्ध में करोड़ों कब्रें लगातार बिछ

रही हैं और चहु ओर श्मसान की भयंकरता फैल रही है। भारत के इन शहीदों की कब्र से एक अत्यन्त सुगंधित पुष्प-वृक्ष पैदा होगा।"

युवक ने पूछा, "आप कवि हैं ?"

रजनी ने कहा, "कवि मैं नहीं हूँ। हाँ, इतना जानता हूँ कि जो ख़ून हमारे भारतीय युवकों ने आज़ादी की जंग में बहाया है, वह द्वितीय विश्व-युद्ध में बहाये जा रहे ख़ून से कहीं अधिक कीमती है।"

बाहर से एक कर्कश आवाज़ आई, "बस जी, चले आय, वरना मेरी नौकरी हराम हो जायगी।" विवश, वह युवक चला गया। बाहर उस पर निगरानी के लिए साथ में वार्डर था। वह दोनों को व्यर्थ की बातें नहीं करने देगा।

पुनः एकान्त।

रजनी ने शाम तक चर्खा तो काता, पर हल्के-हल्के, कलपता रहा। क्यों वह यहाँ बंदी है ? क्यों वह चर्खा काते ? क्यों उस पर सख़्त निगरानी बैठाई गई है ? क्यों वह जेल में घूम-फिर नहीं सकता ?

शाम ताला लगते समय वार्डर ने बतलाया कि कल एक फाँसी होनी है। उसने अपनी बहन का कत्ल कर दिया था। वह बदफैल थी।

बहन के कातिल को फाँसी ? काँग्रेस हाई-कमांड को फाँसी ?

संध्या के इस एकान्त में रजनी का हृदय बैठने लगा। फाँसी, क़ैद, चक्की, मूँज और यह चर्खा। क्यों यह विदेशी शासन उसी डाली को काट रहा है जिस पर वह टिका हुआ है ? देश-देश की स्वतन्त्रता मानवता का चरम प्रश्न है। निरर्थक अन्याय से समूचे राष्ट्र की आत्मा की हत्या कर विदेशी शासन आख़िर क्या चाहता है ? अपहरण, बलात्कार और कुटिल राजनीति से क्या ब्रिटेन और यहाँ के शासक सचमुच धन्य-धन्य हो जायँगे ?

हाई-कमांड को फाँसी ?

रजनी हाई-कमांड के नाम जानता है। समाचारपत्रों में उनका अध्ययन करता रहा है। हाई-कमांड का लक्ष्य देश की स्वतन्त्रता है। फाँसी का लक्ष्य तो यही हुआ कि हिन्द की स्वतन्त्रता की पुकार बन्द कर दी जाय।

"ओह!" रजनी बड़बड़ा उठा—"फाँसी का अर्थ तो पशुता का घृणित प्रदर्शन होना चाहिए, पर फाँसी का अर्थ इंसानी सभ्यता का श्रेष्ठ-दण्ड करार दिया जा चुका है।"

रजनी और कुछ न सोचा सका। रिक्त-मस्तिष्क वह लेटा रहा······और जाने कब सो गया। शिथिल···बेहद शिथिल······

एक शाम ताले में बन्द होने से पहले अपने वार्डर से फाँसी के क़ैदी, टाट-वर्दी

क़ैदी की बात होते-होते रजनी ने ईश्वर से साक्षात्कार-प्राप्त उस हवालाती पागल-युवक की बात जाननी चाही। वार्डर व्यंग्य से मुस्कराया, "अच्छा, वह चार सौ बीसिया! साले को पाँच महीने मक्खन और दूध मिला। यह थी उसकी भूख-हड़ताल। आख़िर दो साल की सख़्त क़ैद की सज़ा हुई उसे और छः महीने भूख-हड़ताल करने की। और रही वही सी-क्लास। बेटे का परसों ही चालान हुआ है। अब भूख-हड़ताल तो क्या, ख़ुद ही रोटी माँगकर खाता है। एक दिन यहाँ उसने चक्की भी पीसी।"

श्मशान भी कभी किसी को मुग्ध कर सका है? पर जेल की इस क्रूरता से यह वार्डर मुग्ध था। उसे सुनकर रजनी को लगा कि जैसे कोई लक्ष्य दीखते-दीखते रह गया हो। सुनता आ रहा है कि ईश्वरीय परिधि में भी दण्ड-विधान की अलग दुनियाँ नरक-नाम से बसी हुई है। यदि यह सत्य है, तो रजनी ईश्वर की आस्था को, समस्त तर्कों और शास्त्रों के बावजूद, इन्कार करता है। क्योंकि दण्ड एक वासना है। ईश्वरीय परिधि में यदि वासना साक्षात् है तो वह ईश्वरीय परिधि कृत्रिम है! झूठी है सरासर!!

यह तो जेल में साधारण बात है कि प्रायः सभी हत्यारों, डाकुओं, दुष्टों और ठगों को सज़ा होते ही सबसे पहले ईश्वर याद आता है। वह अपनी सज़ा के पहले दिन से ही प्रार्थना, याचना, प्रायश्चित्त, इबादत और नमाज शुरू कर देता है। किन्तु आज पाँच महीने बाद रजनी को वह आत्म-मुखरित पागल-अपराधी महत्त्वपूर्ण जँचने लगा। एक ओर वह ईश्वर से साक्षात्कार यदि कर नहीं सका है, तो उस चेष्टा में एकनिष्ठ परिश्रम कर रहा है। दूसरी ओर 'अपराध के अधिकारी' उसकी देह और मस्तिष्क को ब्रह्मज्ञान से दूर, सर्पज्ञान की परिधि में मूँदकर रखना चाहते हैं।

रात तीसरे पहर 'या ख़ुदा!' की कराहट ने उसे चौंका दिया। वह उठा। वायु तेज़ चल रही है। सूखे पत्ते उड़कर अँधियारे को असह्य बना रहे हैं। हर बारक से 'सब अच्छा' की अपमानजनक आवाज़ें आ रही हैं, जब कि जेल का हरेक क़ैदी एक तड़प, एक कसक, एक कटु वेदना लिये सो रहा है या करवटें बदल रहा है। पड़ौस की बैरक में कोई नया हवालाती आया है। जोरों से 'या ख़ुदा', 'या परवरदिगार' चीख रहा है और अपने गुनाहों की माफ़ी माँग रहा है······

रजनी पुनः सो गया······

उसके केशों पर कोई हाथ फेरने लगा। हल्के से उनींदी आँखों रजनी ने पलकें उठाईं। ओह! भारत माता की गोदी में लेटा हुआ है वह। उसके चरण छूने वह उठने लगा तो भारत-माँ ने उसे लेटे रहने को बाध्य किया। बोली, "रजनी, जेल में साहस सीखो। तुम्हारे शिथिल लेटने से मुझे दुख होता है।"

रजनी रो पड़ा। बोला, "माँ, मेरा कौन सा अपराध है जो मुझे क़ैदी बना

दिया गया है।

भारत-माँ ने उसे पुकारा। बोली, "तुम अपने सौभाग्य (!) पर आँसू न बहाओ। तुम क़ैद में नहीं आये हो। तुम युग का सबसे बड़ा सबक अध्ययन करने आये हो। तुम तो कवि होना चाहते थे। क्या अभी तक तुम्हारी वेदना से एक भी कविता नहीं झरी?"

रजनी सकुचाकर रह गया।

तुमने पूछा था, "मेरे कितने घाव हैं?"

"जी!"

"अब तो सिर्फ़ चार बड़े-बड़े घाव रह गये हैं?"

"कौन-कौन से?"

"पहला तो पिछले डेढ़ हज़ार सालों से मुझ पर थोपा हुआ शासन है। इस घाव से मुझ में पंगुता, सिर-दर्द और रक्त की ख़राबी हुई है। दूसरा घाव विदेशी अधीनता है। इस घाव से निरन्तर मैं कृश होती जा रही हूँ। सम्भवतः संक्रामक क्षय भी फट पड़े। तीसरा घाव है घर-घर के दाम्पत्य का क्लेश। इस घाव से मुझे रक्तातिसार तक हुआ है और ख़ून की क़ै तो ख़ूब हुई हैं। और चौथा घाव है, मेरी भविष्य-दृष्टि का स्खलन। किसी से तुम पूछ देखो कि कल एक साल बाद क्या होने वाला है, तो वह उत्तर देगा कि मैं क्या जानूँ? या कहेगा कि जो होना है वह ही होगा। इस घाव ने तो मुझे मृत-प्रायः-सा कर दिया है।"

चन्द क्षणों तक रजनी ने मनन किया। एकाएक बोला, "पर तुम तो इस क्षण भी असीम साहसिनी और सुहासिनी दीख रही हो।"

माँ खिलखिला पड़ी। बोली, "रे, तू एक मास में ही बहुत आँख खोल-खोलकर देखने लग गया है। मैं हूँ भी तो अमृत-पेयी। मेरा अमृत है अपनी कोटि-कोटि जनता के सुख में दृढ़ विश्वास। पर मैं शीघ्र स्वस्थ न हुई, तो मेरा यह अमृत भी खर्व हो चलेगा।"

"माँ, ऐसी अपशकुनी बात तो न कहो।"

रजनी सोता रहा। सुबह उसे उठाया गया। सूचना दी गई कि तुम्हारा चालान लाहौर सैन्ट्रल जेल हो गया है। तैयारी करो।

१३

निर्जन सेनाओं की निर्जन पगध्वनि

पुलिस के दो कांस्टेबल रजनी को हथकड़ी डालकर जब जेल के अन्दर ले जा चुके, तो डैडी ने रुमाल से अपनी आर्द्र आँखें सोखीं। चश्मा ठीक किया। शून्य-दृष्टि न्यायाधीश को देखते रहे और 'कार' में बैठकर लौट आये।

अन्दर नहीं गये। पोर्च से उतरकर दालान के सोफे पर बैठ गये। मुँह का पाइप बुझ चुका है। उसे उठाकर अलग रख दिया। दृष्टि सामने के नये-ताज़े लहलहाते पुष्पों पर टिकी रही।

ज़ीने से उतरकर रिक्शी आई। वह उन्हीं की प्रतीक्षा में बैठी थी। डैडी को खिन्न देखा, तो लौट गई। वापिस हाथ में चाय की ट्रे लेकर लौटी।

डैडी ने सीधे रिक्शी को देखा। बोले, "बेटी, सरकार ने तय किया है कि रजनी राज्य-विद्रोह का अपराधी है, इसलिए उसे डेढ़ वर्ष की सज़ा दी गई है।"

रिक्शी ने सुनकर चाय का कप बनाया और उनके आगे बढ़ाया। दूसरा कप स्वयं पीने लगी। हल्के-से बोली, "आप सरकार को दोष क्यूँ देते हैं? देश के हज़ारों रजनी आज सरकार के अपराधी हैं।"

डैडी ने रिक्शी का स्वस्थ चेहरा देखा और एक दीर्घ साँस ली। बोले, "बेटी, मेरा मन बड़ा खराब हो चला है। एक अर्से से गोरखपुर नहीं गया हूँ। वहाँ अपनी ब्रांच-ऑफ़िस की देख-भाल करता आऊँगा और कुछ तब्दीली हो जायगी। ५ महीने हो गये। न रात नींद आती है, न दिन आँखों की जलन मिटती है।"

रिक्शी ने कहा, "जी, देश की राजनीति मन-पसंद की रसोई तो होती नहीं कि मन चाहे खायें या न खायें।"

डैडी ने सुना और चुप रहे। फिर कहा, "बेटी, रजनी खुद जेल में जा बैठा है, पर उसका एक जिम्मा मुझे पूरा करना होगा।"

"वह क्या?"

रिक्शी की निगाह बचाकर डैडी ने कहा कि समय पर बताऊँगा।

और एकटक वे देखते रहे कि एक भौंरा और कुछ तितलियाँ उन ताज़ा फूलों पर मँडरा रही हैं। यूँ ही वे बड़बड़ाने लग, "क्यूँ यह इंसानियत मनहूस पतझड़ बन गई है।"

शाम की गाड़ी से डैडी गोरखपुर के लिए रवाना हो गये। रिक्शी की इच्छा

घर लौटकर अपनी सास की सेवा करने की थी। डैडी ने विद्रूप में कहा, "सेवा! तुम सास की सेवा में अपना सत्यानाश कर लोगी। घर से निकलो और जरा दुनियाँ देखो। तुम्हारी सास की सेवा तुम्हारे ससुर क्यूँ नहीं करते ?"

रिक्शी को इन शब्दों की प्रत्याशा नहीं थी। दीवारों को लाँघकर या उचककर झाँकना उसने नहीं सीखा है। विवाह हो गया है तो सास की सेवा उसे करनी चाहिए। पर, अवश, उसे डैडी के साथ गाड़ी में बैठना पड़ा।

गाड़ी की भीड़! इंसान पर इंसान लदा बैठा है। एक यात्री दूसरे यात्री को खा जाना चाहता है। उधर तीन सिपाही एक पूरी बेंच रोके बैठे हैं। अभी वे एक जगह की याचना के एवज़ में एक यात्री को बूटों की ठोकर मार चुके हैं। और वह दयनीय पीड़ा से मर्माहत खिड़की के बाहर लटक रहा है। जाने कहाँ तक जाना है उसे। यूँ ही वह लटकता हुआ जायेगा? देश की रेल-यात्रा कितनी दुरूह हो उठी है इस लड़ाई के ज़माने में।

डैडी ने रिक्शी को प्लेटफार्म पर जगह-जगह खड़े सैनिकों को उँगली दिखाई व युद्ध में आमंत्रण देने वाले पोस्टरों का अर्थ समझाया। बोले, "हिन्दुस्तान की सीमा से बाहर लड़ाई चल रही है। तुम कल्पना तो कर देखो कि वहाँ के नागरिक अपने प्राणों का मोह लिये जीवन के कौन से संकीर्ण आश्रय में एक-एक दिन, एक-एक रात गिन रहे होंगे। एक राष्ट्र के युवक दूसरे राष्ट्र के युवकों का संहार कर रहे हैं। स्त्रियाँ और बच्चे बिन अपराध बिना कब्रों और चिताओं के सड़ रहे हैं। उस समस्त लोमहर्षक हत्याकाण्ड से हमारे ये देश के सैनिक भयभीत नहीं हैं, बल्कि उद्धत हैं और यहाँ इन अबोध सगे भाई जैसे नागरिकों को बूटों की ठोकरें मारने में इन्हें कैसा स्वाद आता है। क्या समझती हो, ये बेशऊर और उजड्ड सैनिक स्वतन्त्र भारत के गौरव हो सकेंगे?

सुनकर रिक्शी देखती रही कि डिब्बे खचाखच भर चुके हैं और फिर भी प्लेटफार्म पर एक भारी भीड़ यात्रियों का स्थान पाने के लिए बिलख रही है।

उसका ध्यान बँटा और ध्यान स्टेशन से ऊपर उड़ता हुआ दिल्ली-जेल पर जा टिका। अँधेरे में उसकी दृष्टि न ढूँढ़ सकी कि रजनी अब कौन सी बारक में बैठता जागता है। वहाँ बस एक कठोर अन्धकार छाया हुआ है······

डैडी ने उसका ध्यान बँटाया। बोले, "बेटी, रजनी की बात सोच रही हो? लेकिन यह बड़ी चिन्ता की बात है क्या? आज हमारा देश एक बड़ा जेलखाना बना हुआ है। रजनी अन्दर बन्दी है। हम बाहर बन्दी हैं। हमारे पग-पग पर सींखचे लगे हुए हैं।"

रिक्शी-जान बूझकर भी नहीं मुस्करा सकी। वह सैनिकों को देखती रही।

वलि के वकरों की नाईं सरकार इन्हें कितनी सुविधा और किस शान की भोजन-सामग्री खाने को देती है। नागरिकों के संतुलन में इनकी एक अलग विचित्र दुनियाँ है। इस दुनियाँ में सैनिक चिन्तन नहीं करते। अपनी काया मात्र पुष्ट और बलिष्ठ बनाते हैं, दिमाग़ को दुर्बल नहीं होने देते और लोह-मशीनों की तरह धुले-पुँछे बंदूक चलाने को हर क्षण तत्पर रहते हैं।

गाड़ी चल दी। और प्लेटफार्म की पीछे छूटती हुई भीड़ से उठकर उसकी दृष्टि पुनः अंधकार में भटकने लगी।

कोटि वर्ष पहले देवता और दानवों में युद्ध हुआ करते थे। और प्रायः दानवों की विजय होती थी। शनैः-शनैः वे दानव ही देवताओं के नागरिक जीवन में हिल-मिल गये। कालांतर में उन्होंने देवताओं के स्वस्थ चिंतन का संरक्षण प्राप्त किया और उनके तत्वावधान में सैनिक बन बैठे। सभ्यता इसी मिश्रण का सात्विक रूप है। पर सभ्यता अधिकतर अपनी निर्मल बदलियों से गँदला जल बरसाती रही है!!

गाड़ी जमुना-पुल को पार कर चुकी तो हठात् गाड़ी ठहर गई। इंजन ने ज़ोर की सीटी दी। सब बाहर खिड़कियों से झाँकने लगे। डैडी ने भी उठकर बाहर झाँका।

१० मिनट तक सभी आशंका में रहे कि क्या दुर्घटना घटित हो गई है?

उनके कम्पार्टमैंट का दरवाज़ा खुला। एक अंग्रेज़ सार्जेन्ट पिस्तौल हाथ में लिये ऊपर चढ़ा। दूसरे हाथ से टार्च का प्रकाश मुँह पर डालकर हरेक यात्री के चेहरे को वह देखने लगा। ऊपर-नीचे, लदपद, ऊँघते-जागते, गठड़ी-बने यात्रियों को देख चुका तो बड़बड़ाया "डैमिट!" और टट्टी का द्वार खोल अन्दर टार्च फैंकी। वह खाली थी। तो वह उतर गया।

डैडी सब बात समझ गये। किसी क्रान्तिकारी की खोज हो रही है। शायद इन सरकारी प्रहरियों को आहट लगी है कि कोई इंसान, जो खूँखार इसलिए है क्योंकि वह देश-भक्त है, इस ट्रेन से एक नगर से दूसरे नगर जा रहा है। क्रान्ति के उपासकों का असली सुरक्षित स्थान फाँसी का तख्ता है। या वह जेल में बन्द रहे। यों असुरक्षित ट्रेनों में न घूमता फिरे।

ब्रिटेन की सरकार जनतन्त्र की सुरक्षा के लिए युद्ध लड़ रही है। दूसरे शब्दों में, मित्र-राष्ट्र एक विश्वव्यापी क्रान्ति के नव-कोढ़ की चिकित्सा में लगे हुए हैं। तीसरे शब्दों में, धुरी-राष्ट्र अपनी क्रान्ति को पूरी करने की ज़िद्द पर डटे हुए हैं। इस तरह क्रान्तियों के बीच आज भी देशीय लक्ष्मण-रेखाएँ खिंची हुई हैं। रावण उस रेखा के अन्दर चला जाय तो भस्म हो जाय। और सीता बाहर आ जाय तो अपहरित। विश्व-व्यापी क्रान्ति की लक्ष्मण-रेखा और हर देश की राष्ट्रीय क्रान्ति की लक्ष्मण-रेखा!

डैडी की आँखों के आगे एक दैवी-विद्युत का प्रकाश हुआ और उन्होंने देखा कि दोनों लक्ष्मण-रेखाएँ बहुत दूर जाकर मिल रही हैं। पर नहीं, वे मिल नहीं रही हैं। वे समानान्तर दौड़ रही हैं। और इन समानान्तर रेखाओं पर कोई रेल प्रचण्ड वेग से अन्तरिक्ष की ओर जा रही है। सच, विश्व-क्रान्ति और देश-देश की राष्ट्रीय-क्रान्ति आधुनिक जाग्रत विश्व के लिए संतुलित और सरल पथ है···अगरचे कि···

कि दो पिस्तौलों का धमाका हुआ। सब यात्री साँस रोककर बैठ गये। नीचे सिपाहियों की भगदड़।

दुबारा दरवाज़ा खुला और नीचे से राक्षसी हुक्म हुआ कि दोनों सीटें खाली कर दी जायँ। रिक्शी भयातुर ऊपर की बर्थ पर जा बैठी। डैडी खड़े हो गये। उधर की सीट भी खाली हो गई और उन दोनों पर ख़ून से लथपथ दो लाशें लेटा दी गईं। एक भारतीय युवक है; शायद बँगाली है। दूसरा पुलिस सार्जेंट है जो अभी इस डिब्बे की तलाशी लेकर गया था।

गाड़ी चली और शाहदरा पर जाकर रुक गई। वहाँ वे दोनों लाशें उतार ली गईं। यहाँ तक रास्ते भर दोनों की छातियों से ख़ून बहता आया है, सो तुरन्त पूरा डिब्बा धोया गया। तब गाड़ी आगे चल पड़ी।

कुछ सुस्ताकर, होश ठीक कर डैडी ने रिक्शी की ओर आँख उठाकर देखा। रिक्शी की आँखें सजल हैं। वह ढीले हाथ-पैर नीचे उतरी और अपना सिर उनकी गोदी में रखकर फैल गई। अन्य यात्री किंकर्तव्य-विमूढ़ बैठे बाहर अँधेरे को चीरकर देख रहे हैं। और नहीं जानते कि क्या बात करें।

पिस्तौल! डैडी को याद आया, सन् '२० में वे अपने कालेज-जीवन में क्रान्तिकारी दल की ओर आकर्षित हुए थे। पिस्तौल भी उन्होंने एक ग़ैर क़ानूनी ख़रीदी थी। फिर एक डाका भी डाला था। पर उसे एक अर्सा हुआ। अब तो याद भी नहीं है कि वहाँ से वे कैसे इधर व्यापार में घुस आये?

आधे घण्टे पहले दो पिस्तौलों की धाँय-धाँय। जैसे तो किसी ने एक गहरे कुएँ में आवाज़ फेंकी और वह गूँजकर प्रतिध्वनित हो लौट आई। पिस्तौल की या बन्दूक की गोली या तोप का गोला निश्चित रूप से अपने संदेश का उत्तर-संदेश लेकर लौटता है। दुख यही है कि हम उन लौटे हुए संदेशों का संपादन नहीं करते, अन्यथा ये राजनीतिक कलह इतने दारुण-भीषण न होकर रचनात्मक और सृजनात्मक हो चलें।

दो व्यक्तियों की हत्या हो गई और दोनों शान्त हो गये। यदि दोनों जीवित रहते तो वह सार्जेंट न्याय का स्वाँग रचता और क़ानून की दुहाई देकर उस बंगाली युवक को फाँसी पर लटकाकर दम लेता। इस तरह या उस तरह मरकर कौन से

विचार या सिद्धान्त को आंच आई और कौन सा तथ्य सरल हो गया ?

रिक्शी ऊँघते-ऊँघते सो गई। अन्य यात्री भयभीत मुर्दे-से आँखें मीचे पडे है। मेल घड़घड़ाता हुआ आगे बढ रहा है। डैडी ने पाइप सुलगाया और पीने लगे। रिक्शी को शाल उढा दिया।

मेल की स्पीड आवश्यकता से अधिक बढती जा रही है। डैडी नें खिडकी के बाहर मुँह निकाल लिया। शिशु की तरह अँधेरे मे कुछ खोजने लगे। कुछ क्षणो में देखा कि सामने के मैदान मे अनार्यों की विचित्र हथियार थामे हुए सेना उधर बढ रही है। वह अदृश्य हो गई तो दीखा, तुर्क-मुस्लिम आक्रान्ताओ के दस्ते 'अल्ला हो अकबर' की बर्बर चीत्कार करते हुए एक गाँव को लूट रहे है। गाडी आगे बढी, और दृष्टि-क्षितिज पर पूरी मुगल सेना दक्षिण-विजय के लिए धूल उडाती हुई भागती नज़र आई। ऊँटो पर उनकी लदी हुई तोपे स्पष्ट दीख रही है। गाडी और आगे बढी और फिरगियो की एक पूरी कम्पनी अबोध नागरिको को पिस्तौल से भूनते हुए हठात् आँखो से ओझल हो गई······

डैडी के नीचे का बिस्तरा कुछ हिलने लगा। पैर उठा उन्होने बिस्तरा हटा-कर देखा। देखा कि वहाँ सीट के नीचे एक युवक तुडा-मुडा बन्दर के बच्चे सी पलकें झपक रहा है। डैडी से नज़र मिली तो वह पत्थर की तरह स्थिर हो गया।

एक सुन्दर भले घर का युवक। डैडी ने तुरन्त कुछ समझा और मुस्करा-कर कहा कि भैया, ऊपर आ जाओ और आराम से बैठो।

वह युवक बड़ी कठिनाई से नीचे से निकला। कपडे धूल से झाडकर डैडी के पास बैठा और जल्दी से एक हाथ कुर्ते की जेब मे दिया।

डैडी ने कुछ मुस्कराकर कहा, "नही, पिस्तौल की ज़रूरत अब नही पड़ेगी। लो, सिगरेट पियो।"

उसने सिगरेट ली और उसे जलाकर कम्पार्टमेंट के यात्रियो के चेहरो को रुक-रुककर देखने लगा।

डैडी ने पूछा, "भूख लगी हो, तो खाना निकलवाऊँ।" और देखा कि भूख के लिए उसकी वक्ष मे और उसके मस्तिष्क में कोई सीधा तारतम्य शेष नहीं रहा है।

डैडी मुस्कराये। हल्के से उन्होने रिक्शी को अपनी गोदी से उठाकर सीधा सुला दिया। उठे और ऊपर के टिफिन से खाना निकालकर उसको पेश किया। उसने नजरें एक असीम कृतज्ञता से नीची की और भोजन करने लगा।

डैडी सहसा रजनी को याद करने लगे। वह अब बैरक मे सीखचों के पीछे बन्द होगा। उद्रेक उन्हे हुआ और आँखें उनकी सजल हो गई। इन भारतीय

क्रान्तिकारी युवकों की ज़िद्द। और विदेशी सरकार की दमन की ज़िद्द।

वह भोजन कर चुका तो शून्य-भाव से बोला, "जी, एक सिगरेट और दे दीजिये।"

डैडी ने पूरा सिगरेटों का डिब्बा उसके आगे सरका दिया। पुतलियों को स्थिर कर वह धूम्रपान करने लगा।

"कहाँ तक जाओगे?"—डैडी ने पूछा।

"जी?"—जैसे तो उसका ध्यान किसी और नगर में भ्रमण कर रहा हो, चौंककर बोला वह।

"जो युवक आज मारा गया है, वह तुम्हारा साथी था?"—डैडी ने पहले प्रश्न को छोड़कर अगला प्रश्न किया।

"जी, वह मेरा सगा भाई था।"—आवाज़ उसकी आर्द्र न हो जाय, इससे वह रुक गया और खाँसकर उसने अपने को सँभाला।

डैडी का रोम-रोम सहम उठा। रजनी की याद से द्रवित आँसू अब छलछलाये। रूमाल से उन्हें सोखकर उन्होंने युवक की पीठ पर हाथ रखा। हल्के-हल्के वह सहलाई, तो बोले, "लेकिन यह हुआ कसे?"

युवक डैडी के आँसुओं से पिघल नहीं गया। सख़्ती से वह जल्दी कशें खींचता रहा। कुछ क्षण चुप रहकर उत्तर दिया, "भला, यह भी कोई सवाल है। कोयले से कहीं कभी सफ़ेद लीक खींची जा सकती है?"

डैडी उसके उत्तेजित उत्तर को न समझ सके। उसकी सिगरेट ख़त्म हो चुकी थी। उधर एक सिगरेट बढ़ाकर दूसरी उन्होंने अपने होठों में सुलगाई। बोले, "बेटा, आज तुम्हारी उम्र के एक बेटे को मैं भी जेल पहुँचाकर आया हूँ। यह देखो, उसकी बहू सो रही है।"

उसने रिक्शी की ओर नज़र तक न उठाई। स्थिर पलकें सिगरेट पीता रहा। कुछ कड़ाई से बोला, "क्रान्तिकारियों को विवाह करना ही नहीं चाहिए।"

डैडी चुप बैठे रहे और उसके ख़ुशनुमा भोले चेहरे को देखते रहे। पूछा, "तुम इस रास्ते पर कब से चल रहे हो?"

"जो आज शहीद हुआ है, वह पिछले ग्यारह साल से इस मार्ग पर था। मैं तो इसी ९ अगस्त को जबरदस्ती घसीटा गया हूँ।"

"सो कैसे?"

"हमारे गाँव के मुखिया सरकार-भक्त थे। उनके जवान बेटे ने काँग्रेस का झंडा उठाकर जेल जाने की बात कही, तो बाप ने उसे खम्बे से बाँधकर लाल तप्त सलाखों से दाग़ दिया। निर्दयी ज़ालिम! बस, उसी रात मैंने क्रोध में उस

मुखिया को पिस्तौल से ठंडा किया। और उसके दो घण्टे बाद थानेदार की छाती को गोलियों से छान दिया। छः रोज़ तक तहसील पर हम सब युवकों का पूरा अधिकार रहा। पर फिर वहाँ फ़ौज आ गई। मुझे वहाँ से जान बचाकर भागना पड़ा।"

कि एक लम्बी सीटी देकर मेल जंगल में रुक गया। सिगनल नहीं हुआ है। स्टेशन यहाँ से दो मील दूर है।

युवक जल्दी से उठा। डैडी के उसने चरण छुए। बोला, "क्षमा करना।" और चुपके से नीचे उतर गया। और तुरन्त झाड़ियों में लुक गया।

सिगनल हो गया तो तत्क्षण गाड़ी आगे बढ़ गई। डैडी अँधेरे में आँख फाड़कर देखते रह गये। उनकी हृद-गति का वेग शीघ्र-शीघ्र होने लगा। उन्हें स्पष्ट स्फटिक-मणि की एक चिलक ज्योतित होती दीखी और देखा···एक अकेला सैनिक इस दिशा से उस दिशा में दौड़कर अन्तर्धान हो गया। वह जान बचाता हुआ हुमायूँ है? वह दुर्द्धर्ष राणा प्रताप है? वह कोई युद्ध-क्षेत्र से भागता हुआ अपराजित राजपूत राजकुमार है? वह तांत्या टोपे है? या, वह यही बंगाली युवक है······?

टप् टप्···घोड़े की टाप-ध्वनि और प्यासी-थकी हिनहिनाहट···

एकटक देखते-देखते डैडी की आँखों में जलन होने लगी। आँखें बन्द कीं और एक अपूर्व अनुभूति में वे डूब गये। स्फूर्त स्वर में निःध्वनि बोले, "निर्जन सेनाओं की पग-धूलि ध्वनित होकर विराट रेगिस्तान के असंख्य रोमों को रोमांचित कर देती होगी!"

···प्रातः डैडी स्वप्न देख रहे थे। एक मुर्दे की आँखों को कुछ गिद्ध अपनी तीक्ष्ण चोंच से छेद रहे हैं···वह बंगाली युवक तीव्र ज्वर में एक उजाड़ जंगल की झाड़ी में पड़ा हुआ पानी-पानी चिल्ला रहा है···हिटलर की सेनायें रूस की भूमि से पराजित हो पीछे हट रही हैं और जो कुछ रूसी जनता की सभ्यता के अवशिष्ट चिह्न हैं, उन्हें अग्नि की लपटों से राख बना दे रही हैं···एक भारतीय ग्राम में अंग्रेज़ी फ़ौज का एक दस्ता पहुँचता है। वहाँ की बहू-बेटियों के साथ बलात्कार शुरू कर देता है, पूरा गाँव सतीत्व के अविरल रुदन से सहमकर साँस-तोड़ विलाप करने लगता है··

पसीने से तर-बतर डैडी को एक यात्री ने झकझोर कर उठाया कि देखिये, आपकी लड़की नींद में रो रही है। हड़बड़ाकर उन्होंने होश किया। रिक्शी सो रही है। आँसुओं से उसका मुख आंतरिक भर्त्सना से कुरूप हो गया है। सुबकियाँ ले रही है और रो रही है।

डैडी ने उसे बाहों में भरकर बैठाया और कहा, "बेटी, होश करो।" रिक्शी ने आँख खोलकर देखा कि वह इस क्षण ट्रेन में यात्रियों के बीच बैठी हुई गोरखपुर जा रही है। और देखा कि सब राहगीर उसे घूर रहे हैं। सकुचाकर लाज में डैडी

की गोद में मुँह छिपाकर फिर लेट गई। डैडी मिश्रित-उत्तेजना में उसके सिर पर उँगलियाँ सहलाने लगे।

जिस यात्री ने डैडी को जगाया था, करुणा-भरे शब्दों में बोला, "शादी हो चुकी है कन्या की ?"

डैडी जी भरकर रो लेना चाहते हैं। आँसुओं को अन्दर ही अन्दर पीकर बड़ी कठिनाई से बोले, "हाँ, शादी भी हो चुकी है और अब अपन पति को जेलर के पराये हाथों में सौंपकर आ रही है।"

"इस बलवे में गिरफ़्तार हुआ वह ?"

"जी।"

"ओह!"—यात्री ने जैसे किसी आर्तनाद की सूचना दी हो। उसके आँसू छलछला आये। धोती के छोर से पोंछते हुए बोला, "बाल सफेद हो गये हैं, पर भाग्य का रोना नहीं छूटा है। मैं भी आपकी बेटी की तरह से अनाथ हूँ। अपना बेटा, बेटी, पतोहू और घरवाली को अपनी आँखों के सामने रंडी-भडुवों-की-सी जिल्लत-भरी मौत मरते देखी और उनकी चिताओं में आँच दिखाने का हक तक न पा सका।"

"इसी पिछले अगस्त में ?"

"हाँ।"

"आप गोरखपुर चल रहे हैं ?"

"मैं बलिया से ४० कोस दूर गाँव का एक महाजन हूँ। अभी गोरखपुर जा रहा हूँ।"

"लालाजी, आप तो इस 'बलवे की रामायण' के एक दुखी देवता हैं, जिसे राक्षसों ने सताया है। मैं प्रार्थना करूँगा, अपनी पूरी गाथा सुनायें। आपके चित्त को तो ज़रूर कष्ट पहुँचेगा।"—डैडी ने दोनों हाथ जोड़कर कहा।

प्रौढ़ यात्री की कनपटी से एक रेखा उभरी और नथनों तक एक क्रोध की लहर दौड़ गई, पर तत्क्षण उसके आँसू फिर झर आये। कहने लगा, "९ अगस्त की सुबह हमारे सारे ज़िले में 'अंग्रेज़ो भारत छोड़ो' के नारों से आकाश भर गया और इस शोर से उड़कर सारे पंछी अपने घोंसले छोड़-छोड़कर आकाश में काली प्रेतात्माओं से छा गये। जवानों ने लाठियाँ उठाईं, बच्चों ने कुल्हाड़ियाँ सँभाल लीं। मूसल, चिमटे और बेलन औरतों के हाथों में जैसे खुद पहुँच गये। मेरी बेटे की बहू को और कुछ न मिला तो चटनी पीसने की लोढ़ी उठाकर मजमे में शामिल हो गई। बस, तुम यह समझ लो, गोया सन् '५७ की कब्रों के पाट खुद गये हों और ग़दर की सूखी नदियाँ फिर हरी होकर उमड़ पड़ी हों। पहिले सब गाँवों की कोतवालियों पर हुक्म जमाया गया। तीन थानेदार और ८०-८५ कांस्टेबल अपनी ज़िद्द से मरे। या गुलामी ने उनकी

छाती का चुल्लुओं खून पिया। फिर सब गाँवों के बलवाइयों ने कस्बे में जाकर तहसील पर हक किया और तहसीलदार को बेदखल। युवकों ने आपस में तहसीलदार चुना, थानेदार चुने और ज़िले की निज़ामत स्वदेशी के रंग में चलने लगी। वह ११ दिन का स्वराज्य···आह! मैं तुलसीदास होता तो इस नई जवानी की पूरी रामायण की चौपाइयाँ गढ़ने में भवसागर तर जाता।"

रिक्शी भी स्वस्थ होकर उठ बैठी। उसके नव-मुख पर एक ज्योत्सना का सूर्य-मण्डल लहराने लगा। अब महाजन ने रुककर कहा, "बस, हजूर! आगे कहना इस छाती को अपने नाखूनों से चीरना है। हनुमान जी ने अपनी छाती चीरकर भगवान् राम को अपने हृदय-राम के दर्शन कराये थे। मैं एक क्षुद्र जीव···!" और उसने एक सुबकी ली।

सब यात्री और डैंडी नई कोंपल की नाईं हल्की बयार के स्पर्श से फरफराने लगे। सजल आँखों महाजन की करुणा-मूर्ति को उनका बस चलता, तो इसी क्षण पुष्पों की ढेरी से लाद देते।

पर महाजन ने डैंडी को चौड़े-चौड़े नेत्रों से ग्रसित कर कहा, "आठ दिन बाद फ़ौज ने हमारे गाँव को घेर लिया। एक हवाई जहाज़ ऊपर से उड़कर ठीक नीचे आया और धाँय-धाँय गोलियाँ बरसाकर चला गया। जो घर के बाहर था वह वहीं भुन गया। मेरी घर वाली बाहर गोबर के कंडे थाप रही थी। उसकी खोपड़ी का भेजा खुल गया। ख़ून से लथपथ वह वहीं ढेर हो गई। सारे गाँव में कुहराम छा गया। युवक एकाएक नहीं सोच सके कि क्या करें। मेरा बेटा मेरे गाँव का थानेदार चुना गया था। वह कोतवाली से भागा आया और माँ की ख़ून से सनी लाश से चिपटकर चीत्कार करने लगा। बेटी और बहू छातियाँ पीटने लगीं। मैं रो रहा था। सोच रहा था कि मातमी में मैं किसको बुलाऊँ। आज तो सभी के यहाँ यम के दूत ख़ून का नाच नाच रहे हैं···कि गाँव पर पूरब की ओर से तड़-तड़-तड़ गोलियाँ आईं और देखते-देखते लाशें बिछने लगीं। मैंने बेटे को उसकी माँ की लाश से छुड़ाकर अन्दर घसीटा। बेटी के बायें गाल में गोली घुसी···वह हाय दैया! चीखी और वहीं पड़ी तिलमिलाने लगी। बहू घर से निकलकर अपनी ननद को लाने चली तो मैंने उसका हाथ पकड़ लिया। देखते-देखते एक लारी आई और धड़-धड़ करते हुए उसमें से संगीनें लिये सिपाही उतरने लगे। जो बच्चे बाहर मौत के मायनों को न समझकर अबोध खड़े अद्भुत खेल देख रहे थे, उन्हें इन सिपाहियों ने किर्चों से भेदकर ऊपर उछाला और घर की छतों पर फेंक दिया। एक मुसलमान सिपाही हमारे घर में घुसा। मुझे उसने ज़ोर से एक तमाचा मारा तो लड़खड़ाकर मैं लुढ़क गया। एक करारी जूते की ठोकर मुझे मारकर उसने बेटे की बहू को बाँहों में भर लिया। वह 'अम्मा री!' चीखी तो

उसने उसे धड़ाके से जमीन पर लिटा दिया। मैं असीम पीड़ा से चेतना पाकर करवट लेने लगा तो वहीं पत्थर बन गया···वह नराधम उस अबला बहू को नंगी कर उसका सतीत्व लूट रहा है। बेटा उस पर झपटा कि बहू को छुड़ाये तो उस सिपाही ने बन्दूक की किर्च से बेटे की अंतड़ियाँ चट बिखेर दीं।"

महाजन के ढेर सारे आँसू ढुलक पड़े और सुबकियाँ लेकर वह कलप-कलपकर रोने लगा। पर वह बात पूरी करके रहेगा। रुदन-भरे शब्दों में उसने आगे कहा, "हजूर, उस राक्षस ने बहू का सतीत्व लूट लिया तो उठा और उसे टाँगों से घसीटकर बाहर ले गया। मैंने बाँहों से नज़र बचाकर हिम्मत की और देखा, उस कसाई ने बन्दूक की संगीन उसकी जाँघों में घौंपी और उसे चीरता चला गया। बहू थोड़ी देर तो कलपी और फिर शान्त हो गई।"

महाजन का मुख अत्यन्त विकृत हो चुका है। डैडी ने कहना चाहा कि बस जी! अब शान्त होओ। पर उसने अंतिम वाक्य पूरा किया, "और इसके बाद उस नराधम ने मेरी तड़पती हुई बेटी को बन्दूक की गोली से शान्त किया।"

गले में उसके थूक इकट्ठा हो गया है। उसे गले में ही निगलकर उसने अत्यन्त दयनीय मुद्रा में कहा, "हजूर, मैं वहीं पड़ा रहा। कानों ने सब कुछ सुना कि पास-पड़ौस में क्या हुआ, पर आज तो मुझे कुछ याद नहीं है। अच्छा है कि वह याद नहीं रहा। अपनी घर की लाशों के बीच शाम तक मैं औंधा पड़ा रहा। अँधेरा हो चुका तो मैं उठा। साहस नहीं हुआ कि बेटे का मुँह तकूँ या घर वाली का मुँह आखिरी बार देखता चलूँ। सारे गाँव में निर्जन श्मशान बना हुआ है। शायद मैं अकेला ज़िन्दा बचा था। चुपके-चुपके गाँव के पिछवाड़े पहुँचा और सारी रात, सारा दिन चलकर भूखा-प्यासा एक गाँव में पहुँचा। वहाँ भी ऐसा ही हत्याकाण्ड हो चुका था, फिर भी सौ एक जमींदार वहाँ ज़िन्दा बचे थे। मेरी दास्तान सुनकर उन्होंने मुझे रोटियाँ खिलाईं। वहीं मैं एक महीने तक अपने खून के आँसूओं को पी-पीकर रात में दिन की राह देखता और फिर दिन के घंटे जैसे-तैसे काटता।"

अब महाजन चुप हुआ। कोई बड़ा स्टेशन आ गया था, सो यात्री मुँह धोने और कुल्ला करने प्लेटफार्म पर उतर गये। डैडी ने उसे सांत्वना दी और कहा, "लालाजी, आज दुनियाँ-जहान के असंख्य बेटे और सैकड़ों बहू-बेटियाँ लुटे और बिन लुटे सतीत्व से जाने किन-किन हालतों में मर रही हैं। पर लालाजी, आपकी घरवाली और आपकी औलाद कुत्ते की मौत नहीं मरी है। वे सब शहीद हुए हैं और हमारी आगे आने वाली पीढ़ियाँ उन्हें बड़ी इज्ज़त और श्रद्धा से याद करेंगी।"

शायद इस सांत्वना का असर महाजन पर नहीं हुआ। वह तप्त साँसें लेता हुआ जाने क्या प्लेटफार्म पर एकटक देखने लगा।

डैडी ने इधर घूमकर रिक्शी को देखा। शून्य-भाव में वह सजल नेत्रों लम्बी-लम्बी साँसें ले रही है। उसे कहा, "बेटी, खड़ी होकर चाय वाले को बुलाओ और कोई डबलरोटी या पेस्ट्री वाला हो तो उसे भी आवाज़ दो।" और खुद पानी वाले को बुलाया, "अजी महाराज जी, एक लोटा पानी दे जाओ।"

चाय में लालाजी भी शरीक हुए। पेस्ट्रियाँ उन्होंने नहीं खाईं, तो रिक्शी ने उन्हें घर की नमकीन मठरियाँ पेश कीं। नाश्ता समाप्त कर डैडी पाइप पीने बैठे और रिक्शी अंग्रेज़ी का दैनिक पढ़ने लगी। ऊपर ही लम्बा-चौड़ा शीर्षक था—'पोलैंड में २० हज़ार नागरिकों की हत्या।' रिक्शी नित्य दैनिक पढ़ती है। नित्य युद्ध में मृत व्यक्तियों के आँकड़े प्रकाशित होते रहते हैं। वह उन्हें एक नजर पढ़ती है और तुरन्त भूल जाती है। आज उसने पढ़ा और दृष्टि २० हज़ार पर अटक गई। रिक्शी के ज़िले की आबादी बीस हज़ार है। एक, दो···निन्यानवे···नौ सौ···तीन हज़ार···बीस हज़ार। रिक्शी का मस्तिष्क ठीक जोड़ न कर सका तो उसकी स्थिर पुतलियों के सामने महाजन की पुत्र-वधु नग्न अवस्था में कलपने लगी। उसने अख़बार मोड़ा और तकिये के नीचे दबाने लगी।

डैडी ने इस क्रिया को लक्ष्य किया, तो बोले, "क्या बात है आज? अख़बार पढ़ो और हमें भी समाचार सुनाओ।"

रिक्शी ने प्रथम पृष्ठ डैडी के सामने फैलाकर २० हजार की संख्या पर उँगली रखी। डैडी ने समाचार पढ़ा और रिक्शी का मूक प्रश्न समझा। तो मुस्कराकर बोले, "ओह! समझा। बेटी, हम नागरिक इन लम्बी-चौड़ी मृत संख्याओं को समझ तो क्या सकेंगे, इनकी कल्पना तक न कर सकेंगे। आज तुमने चार व्यक्तियों की हत्या का वर्णन सुना, वह जितना समझी होगी, उस सारे गाँव के हत्याकाण्ड को उतना न समझ पाई होगी। उतना समझने से पहिले ही तुम्हारा दिल-दिमाग़ जवाब दे बैठेगा। ये आँकड़े समाचार-पत्र प्रकाशित करते हैं तो सच जानो, इनके प्रसिद्ध सम्पादक तक नहीं जानते कि वे ये समाचार क्यूँ प्रकाशित करते हैं। न्याय और क़ानून के बाहर सम्पादकों की यह प्रथम नीचता है।"

रिक्शी डैडी के सामने कतई तर्क या प्रश्न-उत्तर नहीं करती। चुपके से उसने पत्र उठाया और शेष समाचार पढ़ने लगी। पढ़ चुकी तो वह आनुमानिक जोड़-बाकी करने बैठी कि इतने रूसी सिपाही और नागरिक मरे और इतने नाज़ी सिपाही और नागरिक मरे और इतने फ्रेंच और इतने इटाली, जापानी, अमरीकी और इतने भारतीय सैनिक। इतने अबोध नागरिक सन् '४२ की अकेली क्रान्ति में मरे। वह सोचने लगी कि कौनसी संख्या में से कौनसी घटाये और कौनसी जोड़े? क्या धुरी-राष्ट्रों की एक ओर जोड़े और मित्र-राष्ट्रों की एक ओर। और तब घटाकर देखे? तो अगस्त-क्रान्ति की

मृत संख्या को किस में जोड़े या किस में घटाये ? लेकिन संख्या वटाने-जोड़ने से निष्कर्ष क्या निकलेगा ? धुरी-राष्ट्र अधिक नृशंस है या मित्र-राष्ट्र ? या धुरी-राष्ट्र अपने आदर्श पर अधिक बलि भेंट कर चुके हैं या मित्र-राष्ट्र ? या कि इस जोड़-बाकी से यह पता चलेगा कि अब प्रलय कितने वर्षों बाद इस समूल जगती को जल-मग्न करने वाली है ·····

रेल की नृत्य-पीठिका पर हिलोरें लेती हुई रिक्शी सो गई। उसका मस्तिष्क बेहद थक चुका है, सो वह इस क्षण थककर चकनाचूर हो गई है।

डैडी बीस हज़ार संख्या पर जब कह चुके और रिक्शी ने कोई नया समाधान नहीं माँगा तो उन्हें बड़ी पीड़ा पहुँची। दिली बेचैनी में जी उद्विग्न हो गया। उन्हें अपने उत्तर से ही असंतुष्टि और बदमजगी-सी हो गई। बीस हज़ार नागरिकों की यौद्धिक हत्या और बीस हज़ार देशभक्तों की विदेशी शासन द्वारा हत्या। देश-देश की सेनायें और देश-देश के नागरिक। उनका रक्तपात। क्यूँ मेरे हृदय में तीन अबोध नागरिकों की हत्या से आत्म-हत्या करने की प्रबल इच्छा हो रही है और क्यूँ रोज मैं विरक्त भाव से हज़ारों मृत व्यक्तियों के समाचार पढ़कर निर्द्वंद रहता हूँ। भारतीय सैनिकों का रक्त बहाकर हमारी जालिम विदेशी सरकार को युद्ध में कितनी प्रतिशत विजय मिली है और इन अबोध देशभक्त नागरिकों का रक्त बहाकर वह विजय कितने प्रतिशत चरम हो गई है ? देशभक्तों की हत्या इस द्वितीय विश्व-युद्ध की अन्तर्लहर है या महाजन के परिवार का रक्त नाज़ियों के रक्त के समकक्ष था और इसलिए निर्लज्जता और नीचता और जलालत और बेहूदगी से बहा दिया गया ?

उनके मस्तिष्क ने आगे चिंतन करने से इन्कार कर दिया तो उनकी पुतलियों के आगे एक गर्भिणी-सर्पिणी प्रकट हुई। उसने अनगिनत अंडे दिये···फूटकर उनसे शिशु-सर्प प्रकट हुए। सर्पिणी कुंडली मारकर अपने शिशु-सर्पों का भक्षण करने लगी शीघ्र···शीघ्र···शीघ्र···शीघ्र। सिर्फ़ चार शिशु-सर्प उसकी कुंडली को लाँघ सके और मौज से उसकी देह से सटकर लहरें मारने लगे। सर्पिणी ने उनका भक्षण नहीं किया। उन्हें प्यार किया और मातृभाव में उन्हें अपनी पूँछ में उलझाकर खेलने लगी······

तो सर्पिणी-माँ की यह शर्त है कि जो उसकी कुंडली लाँघ जाय, वही अपनी माँ का प्यार पा सकेगा ? कुंडली याने मृत्यु-मुख। सर्पिणी और सर्प-शिशु। इंसान और इंसान-संतति। एक दूसरे का भक्षण ! तो यह इंसान-रूप सर्पिणी की कुंडली कितनी मील लम्बी-चौड़ी है ?

एक झपकी आई और डैडी सो गये।

गोरखपुर पहुँचकर दोनों प्लेटफार्म पर उतरे और देखने लगे कि कौन उन्हें लेने आया है। गाड़ी चली गई, प्लेटफार्म भी खाली हो गया, पर कोई उन्हें लेने नहीं आया। हारकर रिक्शी ने कुली को आवाज़ दी। सामने एक लड़का खड़ा है। वह पास आया तो रिक्शी ने पूछा कि सामान उठाओगे ?

उसने कहा, "नहीं, मैं तो डैडी को लेने आया था। वे दिल्ली से आयेंगे।"

डैडी स्तम्भित रह गये। गौर से लड़के को देखा। लड़के के दोनों हाथों की उँगलियां कटी हुई हैं। एक आँख से वह अंधा है। कुछ क्षण लगे और उन्होंने लड़के को पहचाना और वे एक दुर्दमनीय दर्शन से सहम गये। ज़ोर से आर्द्र कण्ठ-भरे स्वर में बोले, "तुम राजू हो ना ?"

राजू ने डैडी को देखा और वह उनके चिपट गया। "डैडी !" और कुछ न बोल पाया आगे।

पूछा, "राजू, यह क्या हुआ तुम्हें ?"

राजू ने उनके पेट में मुँह छुपाये ही कहा, "सरकार ने मुझे अगस्त-क्रान्ति में भाग लेने की सज़ा दी है।"

बन्द आँखों डैडी साँस रोककर खड़े हो गये। इस अंग-भंग बच्चे को अंक में समेटे हुए वे निःसहाय खड़े रहे। जी चाहा कि यहीं ज़ार-ज़ार रोने लगें।

रिक्शी को पकड़कर जैसे किसी ने हिला दिया। उसने उस १८ वर्षीय बालक को अपनी गोदी में खींचा और एक विचित्र आलिंगन के स्पर्श से वह भींग उठी।

कुली ने ताँगे में सामान रखा। डैडी ने राजू को अपनी गोदी में बैठाया। पूछा, "राजू, जल्दी सुनाओ अपनी दास्तान। मेरा जी बाहर उल्टा आ रहा है।"

राजू ने अपने कटे हाथों को हवा में हिलाना शुरू किया। मानों कोई बुद्ध की महाकाय खण्डित-मूर्त्ति बोलने लगी हो। राजू ने कहा, "डैडी, ११ अगस्त को सब सरकारी दफ़्तरों पर काँग्रेस ने राज जमा लिया था। रोज़ जुलूस निकलता तो मैं ही झंडा उठाता था। बड़े मजे आते थे। एक दिन तो मैंने ख़ुद एक पुलिस कांस्टेबल की देशी सरकार से सज़ा मिलने पर बेंतें लगाई थीं। पर १५ दिन बाद मिलिट्री की सरकारी अदालत बैठी। उस पुलिस वाले ने मेरा नाम लिया था। मैं भी गिरफ़्तार किया गया। रात भर तो मुझे ख़ूब पीटा गया। पर डैडी मैं तनिक नहीं रोया। दूसरे दिन सरकारी अदालत ने हुक्म दिया, 'इस लौंडे के दोनों हाथों की उँगलियाँ काट दी जायँ और इसकी सीधी आँख फोड़ दी जाय।' बस, डैडी उसी शाम मेरी उँगलियाँ एक फर्से से काट दी गईं, और बीच बाज़ार में मेरी आँखों में चर्खे का ताकू घुसेड़ दिया गया। ताकि मुझे याद रहे कि मैं चर्खे का स्वराज्य चाहता था।"

राजू इसके आगे क्या कहे, सो चुप रहा और एक नेत्र से डैडी का मुख ताकने

लगा। उन्होंने उसका मुख चूम लिया। और उसे अपनी छाती से चिपका लिया।

रिक्शी से नहीं रहा गया। बोली, "इतनी जुल्मी सरकार है यह।"

डैडी चौंके। तुरन्त बोले, "न रिक्शी, इस ढंग से न सोचो। ब्रिटिश सरकार हमारा एक अबोध नागरिक मारती है तो उनका एक अबोध नागरिक नाज़ियों द्वारा मारा जाता है। ज़ुल्मों का केन्द्र कहाँ है, यह हम-तुम न समझ सकेंगे जो आराम की ज़िन्दगी विताते हैं और दो समय भोजन कर चैन की बंशी बजाते हुए ६ घण्टे रजाई-गद्दों में सोते हैं। ज़ुल्मों का केन्द्र तो यह राजू बड़ा होने पर समझेगा। अभी खेल पूरा देख-समझ लो। तब कुछ कहना।"

ताँगा आधे रास्ते पहुँच चुका तो राजू ने स्वतः कहा, "डैडी, मेरे तीन दोस्तों में से एक की दाईं टाँग काटी गई, दूसरे के दोनों पैरों की उँगलियाँ काटी गई हैं और तीसरे की दोनों आँखें फोड़ दी गई हैं।"

एक-एक शब्द ने डैडी के मस्तिष्क पर हथौड़े की चोट की। वे कहना चाहते थे, 'बस बेटा, चुप रहो!' कि उन्हें अपने ऊपर धिक्कार देने की लज्जा आई कि अरे, मैं इतना हिजड़ा हूँ कि इन ज़िन्दा शहीदों की वीरगाथाएँ सुनने तक का माद्दा नहीं है मुझ में।

ताँगेवाला चुपचाप सुनता आ रहा था। बोला, "हज़ूर, परवरदिगार के यहाँ इन्साफ़ नहीं है। एक ओर इन मासूम लौंडों को यूँ ज़िन्दगी के पाक एहसासों से मंसूख रखा गया है, तो दूसरी ओर इस शहर के बड़े-बड़े सेठों ने अपनी बहू-बेटियों की अस्मत अंग्रेज़ी साहबों के यहाँ गिरवी रखकर बड़ी-बड़ी ठेकेदारियाँ वसूल पाई हैं। एक ओर बाग़ियों के घर फूँककर धूल-मिट्टी कर दिये गये, दूसरी ओर ये आलीशान कोठियाँ तैयार हो रही हैं। गेहूँ एक रुपये सेर मिलता है हमारे यहाँ और उस मुनाफ़े से कोठियाँ हमारी छातियों पर मूँग दलने बेकाबू घोड़े की तरह हिनहिना रही हैं, चिंघाड़ मार रही हैं।" रिक्शी की ओर नज़र उठाकर आगे बोला, "बहू रानी, ज़ुल्मी यह अंग्रेज़ी राज नहीं है। हम ख़ुद आदमख़ोर बन गये हैं। कहे देता हूँ, देख लेना, दो साल में ऐसा क़हर पड़ेगा, ऐसी क़यामत अकाल की वर्षा होगी कि सारा देश तोबा कर उठेगा। पर उस वक़्त भी ये ही सेठ-साहूकार गुलछर्रे उड़ायेंगे। क्या आप समझते हैं, पिछले साल के बलवे का सिलसिला ख़त्म हो चुका है? नहीं सरकार, मैं नहीं मानने का। इन मासूम बच्चों की अभी उँगलियाँ काटी गई हैं। अब इनकी पेट की अंतड़ियाँ नोच खाने की बारी आ रही है।"

शायद आगे भी बहुत कुछ ताँगे वाले ने कहा, पर डैडी ने नहीं सुना। रुद्र बनकर वे एक-दृष्टि देखने लगे, पहाड़ों की घाटियों में निर्जन सेनायें टूटे पैरों चल रही हैं। उनकी पगध्वनि भी टूटकर निर्जन हो गई है।

इस मदान्ध विश्व-युद्ध में देशभक्ति की सेनायें आज निर्जन और दरिद्र हैं, और अपमानित हैं।

ताँगेवाला कह रहा था, "सवाल ज़ालिम कौन है, यह नहीं है। सवाल यह है कि ज़ुल्मों का मुंतज़िर कौन है? आज एक रोटी हमारे पास है, पर फ़िज़ूल में हम दूसरी रोटी के लालच में ख्वामख्वाह सुजाक तक खरीदने को तैयार हैं..."

सचमुच डैडी और रिक्शी का मन और मस्तिष्क नितान्त शून्य हो गया।

१४

कोख का अंग-छेदन

रजनी से मिलकर माँ अपने शहर लौट आई तो घर पहुँचकर गोड़े पकड़कर बाहर चौंतरे पर बैठ गई। उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा रहा है। गोडों का दर्द अब तो चौगुना हो गया है। बड़ी बहू आई। सास जी की ओढ़नी खूँटी पर टाँगी। सहारा देकर उन्हें अन्दर चौबारे में ले गई। माँ ने सोचा, कैसे फूटे कर्म की हूँ कि वहाँ रजनी से मिली और उसे गोद में उठाकर न ले आई। अरे, वही रजनी तो है वह, जो कल तक उसकी छाती का दूध खूब-खूब पिटने पर भी न छोड़ता था।

बहू ने एक गिलास पानी उन्हें थमाकर पीढ़ा दिया कि वे बैठें और हाथ में पंखा लेकर उन्हें झपकने बैठी। पूछा कि लाला जी ठीक हैं!

माँ जेल से ही अपने आँसुओं को रोके आ रही है, सो अब बाँध तोड़ बैठी। फफककर रो-रो उठी और बोली कि हाँ, ठीक है। पर हाय, वह अन्दर बन्द है और मुझे मौत नहीं आती।

बहू सास को क्या सांत्वना दे। भगवान् ने क्या विपत्ति ढाई है इन सास जी की इस उम्र में, कि जवान बेटा क़ैद में बिन-कसूर बन्द है। एक तो लाला जी वैसे ही क्लेश करते रहते हैं। आज तक उन्होंने अपने माँ-बाप को सुख ही क्या दिया है? जब देखोगे, दहाड़ेंगे···चिंघाड़ेंगे। ससुर जी वैसे ही बुढ़ापे के मारे हैं। अब जैसे उनकी पीठ की हड्डी टूट चुकी हो। हे हनुमान जी महाराज! तू लाला जी को जेल से जल्दी छुड़ा दे तो मैं तेरे सवा रुपये का प्रसाद चढ़ाऊँगी।

बड़े भैया घर में आये और माँ के गोड़ों के पास बैठ गये। पूछा, "माँ, रजनी कब तक आयेगा अब?"

बहू घूंघट निकालकर पीठ फेरकर बैठ गई। माँ अपने बड़े बेटे के सामने नहीं रोना चाहती, सो चेष्टा में चेहरे की पेशियाँ विकृत हो गईं। पिछले तीन सालों से माँ का चेहरा काला पड़ता जा रहा है, अन्यथा अपने गाँव की वह प्रथम सुन्दरी थी। और इतनी स्वस्थ···हट्टी-कट्टी कि गाँव के चौधरी रजनी के दुबले-पतले पिता जी को देखकर हाय खा बैठे थे कि गुलाब-सी बेटी किस मरियल के मत्थे मढ़ दी गई है। उस गुलाब से चेहरे में हथिनी के पेट-सी झुर्रियाँ उमड़ीं और वही माँ नोची निगाह करके धीमे-से बोली, "ठीक ही है रे!"

बड़े बेटे ने अपनी बहू को हुक्म दिया कि माँ के लिए ताज़ी रसोई तैयार

करो और पिता जी के नहाने को गर्म पानी चढ़ा दो ।

वह बाहर चला गया तो माँ ने रुके आँसुओं को ढुलकाकर पूछा, "बड़ी बहू, रजनी की बहू की तो चिट्ठी नहीं आई कोई ?"

बहू ने घूँघट ऊपर सरकाकर इधर पीठ की । बोली, "नहीं तो," और देखने लगी सास का मुँह कि बात क्या है । जैसे लाला जी, वैसी उनकी बहू । चार अक्षर अंग्रेज़ी के क्या पढ़ लिये हैं, लाज-शर्म चूल्हे में जला चुकी है । राँड ऐसी सायत में आई है हमारे घर पर कि आते ही पूत को जेल भिजवा दिया । क्या पत्थर सुख देगी उसे ज़िन्दगी भर । अब तो भगवान् ही मालिक हैं, लाला जी के । बनी फिरती है शाहज़ादी और कर्म हैं दरिद्रों-से गये-बीते ।

बहू ! कितने-कितने क्लेश हुए घर में और तब रजनी की बहू आई है ! रजनी तो इतने साल तक घर से भागा-भागा फिरा कि मैं शादी न करूँगा । भगवान् भी तो साथ नहीं देता उसका । और तक़दीर में उसके चढ़ी तो यह दो कौड़ी की रिक्शी । बेकार की नीम-गिलोय । जंगली कहीं की । शऊर नहीं माथे पर पल्ला ढँकने का । जाने क्या-क्या जादू किया है जादू-बँगाले का कि वह उसके वशीभूत हो गया । माँ ने रजनी के पिता जी से कहा था कि बहू से मिलती चलूँ तो वे नाराज़ हो उठे । बोले, "हम ऐरे-ग़ैर नहीं हैं । उसे ही फिकर नहीं है कि मुझे कहाँ रहना है तो हम क्यों जूतियाँ चटकाते डोलें ।" सो उसके घर नहीं गये ।

पर बात कुछ और है । माँ जो कहेगी, रजनी के बाप उसी का उल्टा करेंगे । पूरे छः साल हो चुके हैं । बोलते तक नहीं मुझ से । घर आते हैं और बाहर बैठे रहते हैं । बैठक में खाना परोस दो तो खा लेंगे, नहीं तो भूखे बैठे रहेंगे । और भूखे बनकर छोटी-मोटी बातों पर बड़बड़ायेंगे, चीखेंगे, दहाड़ेंगे । भला यह क्या बात हुई ? उम्र पक रही है और आदतें बना ली हैं भंगी-चमारों-सी । बोली, "बहू, पहले उन्हें एक कप चाय दे जा और फिर गरम पानी । तब रसोई चढ़ाना ।"

उधर तिवारे में बहू चूल्हे से चिपट गई । माँ की दृष्टि तिवारे पर गई और टँगी हुई तोरन पर झूलने लगी । यह रजनी की बड़ी बहन की तोरन है । ११ साल हो गये । जँवाई जी कैसे ज़री के चोगे में हट्टे-कट्टे घोड़े पर चढ़कर चटखाने आये थे । यहाँ पौली में मिठाई की भट्टियाँ चढ़ी थीं । अब तो मरी के दो बेटे हो चुके हैं । सुना है, पूरी मेम बन गई है अब तो वह भी । क्या मरी हवा चली है, क्या नाम के कि सबके मुँह ऊपर ही उठते जा रहे हैं । क्रिस्तानों की नक़ल करेंगे राम के मारे सबके सब ।

फिर ध्यान हुआ कि मेरी सुहागरात भी इसी तिबारे पर मनी थी । कितने साल हो गये । ११ और क्या नाम के, १५, और साल बड़े की उम्र की २५, सो

३६ साल । हाय ! एक क्षण को माँ देखती की देखती रह गई । ३६ साल बीत गये । वह गाँव की चुनरी में लिपटी हुई आई थी । पड़ौस की एक भाभी थी । मर गई अब तो । वह उसे रजनी के बाप के पास छोड़ने आई । कितनी मना की थी माँ ने कि ना, मैं नहीं जाऊँगी । सो ज़बरदस्ती उसे छोड़कर गई धक्का देकर और बाहर सांकल लगा गई । अन्दर रजनी के बाप ज़री का कुर्ता पहिने, हाथों में मेंहदी रचाये बैठे थे । बस, उसी रात यह बड़ा बेटा पेट में आ गया था ।

माँ का रोम-रोम तर हो गया । उसे पसीना आ गया है । जल्दी-जल्दी वह पंखा झलने लगी ।

बहू गिलास में चाय भर लाई । सास जी से बोली कि ससुर जी को दे आओ ।

बहू तो यह है करीने की ! कैसी मिठास है बोली में और आँखों में हया है । उठी और अन्दर के कोठे से होकर बैठक में गई । वे बैठक में आँख बन्द किये आराम-कुर्सी पर पड़े हैं । दो महीने से गर्दन की हजामत नहीं हुई है। ससुरा वह ठोड़ी छीलने का लोहे का पत्ता भी एक नया बवाल बनकर खड़ा हो गया है। रोज़ घिस जाता है । क्या मुँह छील-छीलकर सिलबट्टा बना लिया है । कमीज़ें सब फट चुकी हैं । सबकी कालरें उधड़ गई हैं । शादी के शुरू के दिनों में कैसा शौक़ था उन्हें नेकटाई बाँधने का। अब तो अपनी सुध ही भल बैठे हैं। बोली, "लो चाय पी लो ।"

पं० हरसहाय जी ने आँखें खोलीं । घर वाली को एक नज़र देखा और बाहर देखने लगे । फिर बोले, "रख दो और बैठो ।"

माँ अचरज में आ गई । मुझे बैठने को कह रहे हैं । छः साल बाद आज कह रहे हैं, 'बैठ जाओ ।' पूछा, "जी ?"

पण्डित जी ने बड़ी कठिनाई से जबान खोली, "वह कुर्सी लेकर बैठ जाओ ।"

पर माँ कुर्सियों पर बैठकर क्या शोभा पायेगी, सो दरी पर बैठ गई । पण्डित जी कटोरी में दो-दो घूँट डालकर चाय पीने लगे । दिल धड़क-धड़ककर दुख रहा है । जी खराब ऐसा-ऐसा हो चुका है कि अफीम खाकर सो जायें । सारे कुल पर कालिख पुत गई है···जवान बेटा जेल क़ी हवा खा रहा है ।

पूछा, "कोई नई बात तो नहीं हुई पीछे से ?"

माँ ने कहा, "नहीं तो ।"

पण्डित जी चाय की घूँट लेते रहे। जाने कैसा स्वाद है चाय का । शायद बहू ने सब्ज़ी बनाने के भगोने में बना दी है, सो नमक-मिर्च का स्वाद आ गया है । खैर, भगवान ऐसी सेवा-परायणा बहू सब घरों में दे ।

माँ ने पूछा, "आपने रजनी की जन्म-पत्री दिखाई थी, सो क्या कहा पण्डित जी ने ?"

"कहते थे कि शनिग्रह है। छः ब्राह्मणों को जिमाने को कहा है, फिर रजनी घर आ जायगा।"

सुनकर माँ चुप रही।

"इसका अर्थ यही हुआ कि ब्राह्मण-भोज से शनि की शान्ति होगी और उससे सरकार को सुबुद्धि आयगी और वह रजनी को छोड़ देगी।"

पण्डित जी कुछ और सोचने लगे। मुक़दमा लड़ना चाहिए, मुक़दमा। पर रुपया लेगा वकील। डेढ़ सौ से कम क्या लेगा। पोलिटिकल मुक़दमा है। डेढ़ सौ! घर में तो दो दाने भी नहीं हैं। इस महीने दूध वाले के पैसे नहीं गये हैं। महतरानी तक का एक रुपया नहीं दिया गया। दिल्ली आने-जाने में व्यर्थ के २२ रुपये ९ आने का टैक्स और लग गया। तो डैडी को चिट्ठी लिखी जाय। उनकी साँस रुकने लगी। हम बड़े रिश्तेदार हैं। उनके सामने हाथ नहीं फैलाना चाहिए। पर यह हाथ फैलाना नहीं है। कर्ज़ है। सगा रिश्तेदार दुख में काम नहीं आयेगा, तो कौन आयेगा? बाद में लौटा देंगे कर्ज़।

माँ ने कहा, "तो साइत निकलवा लाओ पण्डित जी से। ब्राह्मण जिमा देते हैं।"

पण्डित जी ने गृहिणी को तरेरकर देखा और तेज़ी से बोले, "घर में तो फूटी कौड़ी भी नहीं है।"

माँ पति के क्रुद्ध भाव को देखकर काँप उठी। हल्के से बोली, "मेरी एक पछेली रखी है। उसे न दे आओ सुनार को?"

पण्डित जी का दिल मोम-सा पसीज गया। और सोचते रह गये कि घर से सब जेवर तो बिक चुके। एक पछेली बची है। बड़ी बहू बाहर आने-जाने लायक भी नहीं रही कि कान और नाक में दो टूम चिलकती रहें।

उठकर आले में से एक बीड़ी लाये। आधी गाड़ी में फूँकी थी। आधी बची है। सिगरेट पीये तो···हो गये ९ साल। बस, दिल्ली जेल पर दिखावे को दो खरीदी थीं। जब से बड़े बेटे की शादी हुई है, घर में भुखमरी छा गई है। दफ़्तर से रुपया कर्ज़ लिया था। वह तनख्वाह से कटता था। फिर रजनी की शादी में लिया। बस, कुल तनख्वाह ६० रुपये मिलती है। कई-कई दिन तो बीड़ी भी नहीं मिलती। नाहक मैंने शादी की रजनी की। नहीं करता था वह, मैं ही उसके गले में जूड़ा डालने लगा। न कर्ज़ लेता, न घर में एक आदमी और बढ़ता। कुँवारा रहकर झक्ख मारता बीस साल जेल में, तो दुख तो न होता।

अन्दर बहू साँकल खड़खड़ा रही है। माँ उठी और अन्दर गई। वहाँ से गरम पानी की पतीली रख गई। तौलिये सब फट चुके हैं। धोती लीर-लीर हो रही है। कहाँ तक पेबन्द लगाऊँ। सो किवाड़ उढाल गई। दोनों दरवाज़े बन्द कर नंगे हो नहा लेंगे और फिर वही धोती लपेट लेंगे।

पण्डित जी ने अन्दर से साँकल चढ़ाकर कपड़े उतारे। थक गये हैं और नहाने की इच्छा नहीं है। एक समय था, तालाब में नहाने जाया करते थे। अब तो घण्टों रजाई मे दबे पड़े रहने का जी चाहता है और यह कमबख़्त रजनी यूँ घर से भाग-भाग कर न जाता, कहीं नौकरी कर लेता, तो क्यों मुझे आज आठ घण्टे की मज़ूरी करनी होती। तो क्या वह सुख देने का नहीं मेरे इस जीवन में ?

नग्न होकर उनकी दृष्टि हठात् सामने के बड़े दर्पण में पड़ गई। उन्होंने अपने को देखा···पूर्ण। आज उनकी काया कुन्दन की नहीं रह गई है। ज़माने ने उनकी सब सुर्खी सोख ली है। वरना रजनी की माँ अक्सर कहा करती थी, 'तुम मेरे से ज़्यादा गोरे हो।'

रजनी की माँ ! हो गये ९ साल। ऐसी फूहड़ और बेअकल है कि कभी पास आकर नहीं बैठती। रात-बिरात चुपके से आकर तो मेरे पास सो सकती है। और घरों की गृहिणियाँ हैं। बन-ठनकर रहती हैं और अपने आदमियों की पूरी सेवा करती हैं और पूरा सुख देती हैं। एक तो घर में बड़ी बहू आ गई है। बेटा बड़ा हो गया है, सो दाम्पत्य का एकांत नसीब नहीं होता।

इच्छा हुई कि अभी किसी बहाने रजनी की माँ को बुलाऊँ।

बाहर से बड़े बेटे ने आवाज़ दी कि जल्दी नहा लीजिये, भोजन तैयार है।

उनकी नसें तुरन्त शिथिल पड़ गईं। दो लोटे पानी खुल-खुल किये सिर पर और नहा लिये। फटी धोती से बदन पोंछा और उसी का तैमद बाँधकर गायत्री की माला जपने बैठे। पर ध्यान उचटकर रजनी की बहू पर जा टिका। उँगलियाँ मंत्रों की संख्या पोरवों पर गिनती रहीं उस रिक्शी को क्या वहाँ रहना चाहिए ? यहाँ घर में आकर सास की सेवा क्यूँ नहीं करती ? कैसे फूटे करम की आई है ? आते ही रजनी को जेल भिजवाया। जाने और क्या-क्या बंटाढार करेगी ?

ज्यूँ-त्यूँ माला पूरी हुई तो खड़े हुए। किवाड़ों की साँकल खोली। फटे गलीचे को झाड़कर बिछाया कि भोजन करना है। दर्पण की चमक सब धुल चुकी है। बस, उसमें मोटी रूप-रेखा दीख जाती है। बिलँगनी पर मैली-फटी सरकारी वर्दी की पतलूनें टँगी हैं। पेबन्द लगातार लगकर वे पाजामा बन चुकी हैं। पर क्या करें, उन्हें पहनकर काम चल जाता है। इन्हीं में खप गई इतनी ज़िन्दगी और बाकी भी यूँ ही खप जायगी

बड़े बेटे ने थाली लाकर गलीचे पर रखी। उधर खिड़की की देहली में मटका रखा है। उसमें से एक गिलास पानी भरकर रखा। थाली के किनारे मुड़-तुड़कर ऐतिहासिक खंडहर-से बन गये हैं। गिलास के किनारे फट गये हैं और उसमें सिर्फ़ आधा गिलास पानी ही टिक सकता है।

खिन्न, सुस्त और थकित पण्डित जी भोजन करने बैठे। एक कौर मुँह में लेकर चबाते हुए ख़्याल आया कि रजनी की माँ ने तीन महीने से भोजन का त्याग न कर रखा है। जब से रजनी जेल गया है, उसका अन्न भी जैसे क़ैद हो गया है। रास्ते में गाड़ी के पूरे रास्ते उसे समझाते आये हैं कि विधि का लेखा कौन मेट सकता है। पर इसका अर्थ यह थोड़े ही है कि हम भूखे रहकर अपनी आत्मा का हनन करते फिरें। और फिर तू महात्मा गांधी थोड़े ही है कि तेरी भूख-हड़ताल से सरकार रजनी को छोड़ देगी।

बड़ले को आवाज़ दी। दूसरा कौर मुँह तक ले जाकर लौटा लिया। वह आया तो पूछा, "तेरी माँ ने रोटी खाली ?"

बड़ले ने अन्दर जाकर पूछा, "माँ, चाचाजी पूछते हैं कि तुम ने रोटी खाली।"

सुनकर माँ बड़ले को सीधे देखने लगी। गाड़ी में उन्होंने समझाया तो था कि मुझे रोटियाँ खा लेनी चाहिएँ। पर तीन महीने हो गये, रोटियाँ न निगलने से मुझे कष्ट ही क्या है ? और खालूँ, तो मैं कैसे खालूँ ? रजनी वहाँ यमदूतों के बीच नरक भुगते और मैं यहाँ स्वाद ले-लेकर रोटियाँ चबाऊँ ? पर रजनी के बाप का क्रोधी स्वभाव वह जानती है। बोली, "अरे अभी नहाई कहाँ हूँ ? पहले नहाऊँगी।"

बड़ले ने चाचा जी से जाकर कह दिया कि अभी तो वे नहाई कहाँ हैं ?

सुनकर पिता जी ने खाना शुरू किया। रसोई में कुछ स्वाद नहीं आया। बड़ली बहू भी बेचारी क्या करे ? न गरम मसाला आया इस महीने और न हल्दी। शुद्ध घी के दर्शन तो अब ईश्वर के दर्शन हो गये हैं। बस, खाये जाओ बन्दर ब्रांड घासलेटी और सुखाये जाओ अपनी हड्डियाँ। ससुरे बाज़ारू मसाले आते हैं तो सब में आटा मिला होता है। लड़ाई क्या शुरू हुई है, बेईमानी बीच बाज़ार रंडियों-सी नाचने लगी है।

फिर सोचा कि मेरे ख़ून से उपजकर भी रजनी एक नई नसल कैसे हो गया। याद आया जिस वर्ष रजनी अपनी माँ के पेट में आया, वे बदली होकर राजपूताना के एक छोटे-से स्टेशन पर काम करते थे। इधर से उधर वे घूमते रहते थे और उन्हें घुमक्कड़पने में मज़ा आता था। और हाँ, उन दिनों रजनी की माँ से, उनका प्यार कुछ कम हो चला था। गाँव की बेटियों को कितनी तमीज़ सिखाओ, अच्छा उढ़ाओ-पहनाओ, वे गाँव की बेटियाँ ही रहती हैं। पर आश्चर्य है, अपनी माँ का कुछ प्रभाव

रजनी में नहीं आया। पर आया कैसे नहीं, उन दिनों वे रजनी की माँ को कितना-कितना डाँटते थे और वह रोती रहती थी। ससुरा रजनी भी तो बात-बात में रो देता है।

खाना पूरा हो चुका पर जी न भरा। गिलास से जिह्वा की चरचराहट को शान्त कर, वे उठे। एक बीड़ी ढूँढ़ी तो न मिली। मन मारकर फटे गूदड़े पर तीन महीने की पुरानी चद्दर फैलाई और टूटी रुई का गूदड़ा अपने ऊपर ओढ़ लिया। सोचा, इस ज़िन्दगी से तो एक तोला अफ़ीम खाकर सो जाना भला। कल से दफ़्तर जाना है और रजनी के बारे में न मैं वकील करने की छुट्टी पा सकता हूँ, न उसके मुक़दमे की तैयारी करने १०-१५ दिन दिल्ली में रह सकता हूँ।

दिमाग़ उनका एक मूक क्रोध में उबलकर भन्नाने लगा। मुट्ठियाँ उनकी अकड़ीं और जी चाहा कि अभी किसी की मरम्मत कर दें।

मुक़दमा! आख़िर क्यों मुक़दमा? क्या इन्साफ़ हुआ यह? मुक़दमे में मान लो रजनी छूट गया तो अच्छी-ख़ासी सज़ा तो हम सब घर वालों को मिल गई। वकील की फ़ीस अपने आप में कितनी बड़ी सज़ा है!!! दो पैसे की सब्ज़ी रोज़ाना चूल्हे-आगे नहीं बन सकती। पर उस हरामखोर, रंडियों के भडुवों-से वकील को डेढ़ सौ-पौने दो सौ ज़रूर देने पड़ेंगे। अरे, सत्यानाश जाय इस अंग्रेज़ी सरकार का। होगी किसी के लिए यह अन्नदाता सरकार। मेरे लिए तो इस सरकार ने मेरी ज़िन्दगी में सिर्फ़ सूखी रोटियाँ और फटे वस्त्र ही मुहैया किये हैं।

न्याय! हे प्रभु! तू न्याय कर! रजनी बेकसूर है। जिन टुकड़ेखोर कांस्टेबलों ने उसे आँख मींचकर गिरफ़्तार किया है, तू उनके बेटे-पोतों को मौत दे। उनकी चमड़ी में कीड़े डाल।

सुनाई दिया कि रजनी की माँ हल्के-हल्के रो रही है। पास-पड़ौस की बूढ़ियाँ और बड़ी बहुएँ उससे मिलने आई हैं। रजनी का हाल पूछती होंगी। और बस इस हरामखोर औरत-जात के पास सिवाय रोने के कुछ काम नहीं है। रजनी जेल क्या चला गया, जैसे तो प्रलय आ गई या कोई ४० मील लम्बी पूँछ का सितारा टूट गया।

सोचा, पण्डित जी के पास चलकर ब्राह्मणों को जिमाने का शकुन पत्रे में दिखा लाऊँ। पर जैसे उन्हें किसी ने सख़्त गाली दी हो और उनकी आँखों में ख़ून उतर आया हो। ज़लील कुत्ते ब्राह्मण! दुष्ट! सालों को घर में सूखे चने नसीब नहीं होते और यहाँ बदज़ात औरतों की तरह अदा दिखायेंगे कि हम दूध-सने आटे की पूरियाँ खायेंगे, पिश्ता डली मूँग का हलवा ही बनना चाहिए। जैसे तो उनके बाप कमाकर मेरे यहाँ धरोहर रख गये हैं। फूहड़, बेपढ़ी, धर्म-भीरु औरतों को उल्टी-सीधी पढ़ा

कर ये ईश्वर के बेईमान दलाल-पुजारी हर चौथे दिन बाद ब्राह्मण-भोज का मुहूर्त निकालते रहते हैं। अरे, दान की महिमा उस वक़्त ज़रूर थी जब देश में दूध की नदियाँ और शहद के फव्वारे थे। आज भुखमरी के ज़माने में दान भी भुखमरी-सा हो तो मुझे क्या आपत्ति है। आने दो उस हिजड़े पुजारी को इस चौखट के अन्दर। साले की टाँग तोड़ दूँगा। मैं उससे चीखकर कहूँगा कि भिष्टा-टट्टी खाने वाले सूअर पुजारी! तेरा धर्म आज त्राण नहीं करता। वह भूखों का खून पीता है। और अकाल फैलाता है। ओह! आज धर्म अकाल का रावण बन गया है!!!

पं० हरसहाय जी सोकर उठे तो शाम के छः बज गये थे। चारों ओर की टूटी-फूटी हवेलियों पर अँधेरा छा गया था। बिजली तो शायद इस शहर में इस जन्म आयगी नहीं। तेल की लालटेन जलानी बन्द कर दी है। ससुरी फख-फखकर फट बुझ जाती है। बड़ी बहू दबे पाँव आकर दिया जला गई है। पर दिये की ज़रूरत ही क्या है? एक दिन दिवाली और ९९ दिन अँधेरा रहे घर में, ऐसी बेवकूफ़ी क्यों की जाय? पिछले महीने पंसारी के तीन रुपये रह गये थे कड़वे तेल के। इस महीने भी नहीं दिये गये हैं। उठे और दिया बुझा दिया। घर में १०० दिन अमावस रहे तो कौन क़हर पड़ जायगा।

अन्दर जाकर देखा, रजनी की माँ उस टूटी खटिया पर फटे कंबल में लिपटी पड़ी है।

जाकर पूछा, "रोटी खा ली तुमने?"

माँ की आत्मा सूख गई। यूँ ही कुड़-मुड़ाकर कहा, "आज जी ठीक नहीं है। सो इच्छा नहीं है।"

हरसहाय जी ने स्वर को ऊँचा किया, "यों क्या मरना है भूखे रहकर? जी ठीक कहाँ से हो भूखे रहकर? उठकर रोटी खाओ।"

माँ ने रुआँसे स्वर में कहा, "नीचे सुट्टे हो गये हैं और खून आता है। और रोटियाँ खाऊँगी तो ज़्यादा टट्टी आयगी और ज़्यादा तड़पूँगी।"

पण्डित जी ने अब स्वर कर्कश किया, "अरी बवासीर भूख की गर्मी से हो गई है। कहता न था कि रोटियाँ खाती रह। पर मैं बकवास करने वाला रह गया हूँ इस घर में एक। कहे की मानता कौन है? वह कुत्ता रजनी क्यों पंख लगाकर उड़ा फिरता था और कहना न मानता था। सब लक्षण तो माँ ने जो सिखा दिये थे। माँ कहना माने, तो बेटा माने। मैं कहता हूँ, खड़ी होकर खाना खाओ।"

यूँ ही आधी करवट लेटकर माँ ने कहा, "अच्छा, खा लूँगी।"

पण्डित जी को तैश आ गया। आगे बढ़े झपटकर, झपटकर रजनी की प्रौढ़ा माँ के एक थप्पड़ दिया और दूसरा थप्पड़ मारने को हुए कि अनजाने हठात्

रुके। सामने बड़ी बहू का लिहाज़ किया और झपटकर बैठक में घुस गये।

माँ क्षण भर को न जान सकी कि क्या हो गया ? बड़ी बहू आई और सास जी का सिर गोदी में जो लेकर बैठी तो माँ कसाईखाने में घुसने के क्षण वाली लम्बी चीख मारकर रो उठी। सारी हवेली की दीवारें और छतें माँ के इस असह्य रुदन से तड़क उठीं, फट उठीं। पास-पड़ौस तक सचेत हो गया कि रजनी की माँ ही रो रही है!

पड़ौस की बड़ी बहुएँ जानती हैं कि जब रजनी पैदा हुआ था तो माँ ने सारे मुहल्ले को गुड़ बाँटा था और छोटे बच्चों को खीर बनाकर खिलाई थी। और जब रजनी की जनेऊ कराई थी तो रजनी के पिता जी ने अपने दफ़्तर से उधार लेकर पूरे दस ब्राह्मणों को जिमाया था। और मुहल्ले भर की औरतों को जीमनवार के समय गीत गाने के लिए बुलवाया था। और जब रजनी दसवीं पास कर स्कूल से आया था तो शहर के बाहर के बड़े हनुमान जी के यहाँ पूरे दस हरे नारियल चढ़ाये थे। और दस रुपये के लड्डू बाँटे थे। पर, आज उसकी माँ नहीं जानती कि कैसे अपने उस रजनी को उस यमपुरी जेल से छुड़ाकर लाये और उसे अपने आँचल में छिपा ले... पर करम के आगे सब कुछ बेमानी है। यह करम तो अच्छे-अच्छे राजा-महाराजाओं को धूल-मिट्टी चटा देता है......

ज़लील अंग्रेज़ी हुकूमत ने माँ की कोख पर सांघातिक लात मारी है। और अपनी कोख के फट जाने पर माँ इतनी ज़ोर से रो रही है कि उससे ज़्यादा कोई भी माँ न रो सकेगी......

१५

रेवती की नई परेशानी

तारकोल की सड़क बरसाती नदिया-सी तेज़ी से आगे जा रही थी। उस पर तैरती हुई रेवती की साइकिल विरक्त, शिथिल, निस्सहाय भाव से आगे बढ़ रही थी। आध घण्टे पहले आसमान की बदलियाँ बरस चुकी हैं। ठीक तो यह है कि वे ऐसे बरसीं, जैसे सुबकियाँ ले-लेकर रो चुकी हों। अब वे भद्दी-काली इधर-उधर छितरी-छितरी करवटें ले रही हैं कि कोई सुन्दरी रो चुकी हो और अब अस्त-मुखी हो।

सड़क एकदम ढलवाँ हो चुकी है। रेवती ने ब्रेक कसी और झट उतर पड़ा। एकदम नीचे से ऊपर चढ़कर सड़क घाटी की छाप छोड़ गई है। इसी घाटी में बगल से एक क्रोधित बरसाती नाला बहकर उधर किसी पर झपट पड़ना चाहता है। धुँधले उजियाले में रेवती गंदे नाले की ओर देखता रह गया। गंदला पानी है, जभी तो तेज़ी से बह रहा है। अभी यह धीर गति से बहने लगे तो गंदगी इसकी तलछट हो जाय और स्वच्छ पानी नितरकर चमकने लगे···

इधर राहगीरी-मंज़िल का पत्थर लगा हुआ है, तीन मील। साइकिल स्टैंड पर खड़ी कर वह पत्थर पर बैठ गया। बैठते ही उसका दिल धक्क कर गया। किसी ने दिल में उसके सम्बोधन किया, "तू अब २६ बरस का हो चुका रे!"

लेकिन मेरी आयु पूरी क्षय हो जाये तो क्या हानि होगी किसी की? माँ-बाप कुछ चन्द दिन रो लेंगे और बस। आयु के क्षय की हानि तो बड़े चाचा जी की है, जहाँ लाखों का कारबार है और जिस कारबार से सरकार की नीतियाँ संशोधित होती हैं।

एक मास हो गया यहाँ कलकत्ता आये। उसी शाम···इस समय गुब्बारे उड़ते हुए स्पष्ट दीख रहे हैं···रेवती दिल्ली से प्रस्थान कर चुका था। गाड़ी में उमंग यह थी कि रेवती देश के सबसे अधिक सांस्कृतिक प्रान्त की संगत पाकर धन्य हो जायगा। पर, कुछ जीवन के नये दृष्टिकोण पाकर महामहिम बन आने के तीन दिन बाद ही उसके बड़े चाचा जी ने तारकोल से पोतकर उसकी सब आशायें अपाठ्य बना दी हैं।

बड़े चाचा जी की युद्ध से पहले मामूली-सी तिजारत थी। जिस दिन लड़ाई की घोषणा हुई उसी दिन उनके सुपारियों के तीन जहाज़ कलकत्ता पहुँच गये। और बस, वे चार महीने में चुपके-चुपके करोड़पति बने, रायसाहब बने, दानवीर सेठ बने और आज अलीपुर में उनकी अपनी भव्य अट्टालिका है। सिर्फ़ चार वर्ष में युद्ध का हाहाकार उनके यहाँ देवताओं की पुष्प-वर्षा के रूप में परिवर्तित होकर मुखरित हुआ है।

नहीं, रेवती चाचा जी के व्यापार में एक रत्ती काम नहीं कर सकेगा। अभी आधा घण्टा पहले उसने लैटर-बक्स में पिताजी को अपनी सूचना डाल दी है।

पश्चिम में बिजली कौंधिया गई तो रेवती कुछ स्वस्थ हुआ। हल्की फुहार शुरू हो गई है। यहाँ से वहाँ तक जंगल है। सामने धानों के खेतों की भुजायें निश्चल पड़ी हुई हैं। पूरा व्योम वर्षा से आतंकित रूप से श्याम हो गया है। उधर वह नदी उफन पड़ रही है। हठात् रेवती ने अनुभव किया कि वह स्वयं इस व्योम की लम्बाई-चौड़ाई के विस्तार में फैल गया है। उसके अन्तः में भी बड़े-बड़े खेत-खलिहान, पर्वत, भीमकाय नदियाँ हैं, विशाल जंगल हैं और आज उसका अन्तःव्योम हाहाकार करता हुआ अथाह प्रलयंकारी वर्षा बरसा देना चाहता है।

पहिले दिन वह आया तो चाचा जी ने उसके सम्मान में अपने उद्योगों और दुकानों पर काम करने वाले सब बड़े मुनीमों और अधिकारियों को बुलाकर चाय का भोज दिया और उनसे परिचय कराया। एक संक्षिप्त भाषण में चाचा जी ने अपनी इच्छा प्रकट की कि शीघ्र से शीघ्र रेवती को व्यापारिक-व्यवस्था के भीतरी रहस्यों से परिचित करा दिया जाये।

…सिर पर बादल बड़े वेग से गहरे और गरजे और गड़गड़ाये। उठा और ऊपर बादलों को देखने लगा। इन्हीं काले-काले बादलों को देखकर सखियों का स्फुरण जागता है, पर आज तो वह खुद इन्हीं काले बादलों-सा भयंकर और भीतदायी हो जाना चाहता है।

एक सप्ताह तक उसने चाचा जी के व्यापार का सूक्ष्म निरीक्षण किया। उफ़! चाचा जी इन वज्रपात करने वाले बादलों से भी कई लाख गुना भयंकर और भयदायी हैं। उसने देखा कि चाचा जी अव्वल नम्बर के व्यापार-पटु इस मायने में हैं कि एक आने का दो रुपया बनाना जानते हैं। और उस दो रुपये को तुरत-फुरत तीन जगहों में विभक्त कर पुनः इसी अनुपात से गुणित और फलित करते हैं। सम्पत्ति का अनुपात इंसानी-हित से अलग जड़ें फैलाता है तो उसका नियन्त्रण कहाँ है? वह देश और उसके समाज में विषाक्त क्रिया के अतिरिक्त क्या लाभ करेगा? चाचा जी का धूमधाम का व्यवसाय आज बंगाल में कम से कम ८ हज़ार अबोध नागरिकों का अन्न अपने जबड़ों में छिपाये बैठा है।

लौटा। चर्च के घण्टे ने रात्रि के बारह की सूचना दी। अब चाची सो चुकी होंगी। चाचा जी क्या आज भी चाची जी के साथ ही शयन करेंगे?

पूँजीपतियों का अनैतिक व्यापार और उसका कुल जमा परिणाम? एक व्यक्ति पूरे ५० वर्ष बेईमानी कर रुपया कमाये (यह निश्चित है कि बिना बेईमानी व्यक्ति लखपति या करोड़पति नहीं हो सकता) और अपने जिन्दगी के अन्तिम वर्षों में

उस रुपये को अनाश्रित छोड़ जाये, इससे बड़ा अभिशाप पूँजी का पूँजीपतियों के प्रति क्या हो सकता है ?

व्यापार का एक हज़ार रुपयों का लाभ भूखी-नंगी जनता से सख़्ती से, बेदर्दी से चूसा जाता है। और उस लाभ के साथ हम शत-प्रतिशत उन भूखे-नंगों की इंसानियत भी अपहृत कर लेते हैं। और उस अपहरण के साथ हम उन भूखे-नंगों की प्रतिनिधि सरकार के ईमान पर डाका डालते हैं और उसके न्याय को नग्न कर 'राजनीति के ज़री के वस्त्र' महँगे भाव पर इच्छित ग्राहक को बेचने की नृशंसता दिखाते हैं।

चाचा जी का रात्रि-शयन आज एक समस्या बन गया है। उसका कारण जैसा है, उसे देखते हुए यह समस्या कितने घोर पाप से नहीं छलछला रही है। पिछले वर्ष चाचा जी ने अपनी दो दुकानों की पाँच दुकानें बनाकर सरकार के डेढ़ लाख रुपये के टैक्स की चोरी की। जो मुनीम चाचा जी को यह दक्ष राय देता है, चरित्र का स्वयं दक्ष नहीं है। उस पूँजी से अहं में नित्य नई क्रिश्चियन लड़कियाँ चाचा जी के बाग़ की कोठियों में आने लगीं···और इधर चाची जी के अन्दर अपमान और प्रपीड़न का घुन लग गया। ६ महीने हुए डाक्टरों ने उन्हें तपेदिक की घोषणा कर दी थी।

देर से सूझ आई कि क्रिश्चियन लड़कियों से उत्पन्न दत्तक-औलाद कैसे उनके शानदार व्यापार की अधिकारिणी हो सकेगी ? सो, बड़े से बड़े डाक्टरों का इलाज, उस प्रायश्चित्त में, अब चाची जी का हो रहा है ताकि उनकी कोख स्वस्थ हो और उसमें एक पुत्र जन्म ले सके।

बड़ी चाची जी या मेम सा'ब ! कुल अ···आ···इ पढ़ी हुई पाश्चात्य भूषा की अनुपम पारखी। उनके पति ने जब-जब उन पर आघात किया है तो वे बदले में आघात करती रही हैं छोटी चाची पर, जो पूँजी के स्वर्ग से दूर, अपने सुहाग के स्वर्ग तक से धक्के देकर किसी बियाबान नक्षत्र में पतित कर दी गई हैं।

मेम सा'ब ! चाचा जी की कुल पूँजी पर इस समय ६० अधिकारी, मैनेजर और मुनीम तनख्वाह इसलिए पाते हैं कि वे झूठ और बेईमानी की इति कर दें और अधिकतम लाभ कमायें। उस अधिकतम लाभ का दस प्रतिशत ये मेम सा'ब चाची जी व्यय करती हैं अपनी सूखी चूसी हुई काया पर, अपने शुष्क चेहरे पर और अपने बेशऊर पर ऐय्याश दिमाग़ पर। एक क्रीम की शीशी आयेगी तो तीन मील दूर 'कार' से। ड्राइवर कहेगा मेम सा'ब इधर तो मिलता नहीं है, चौरंघी से लाये हैं, अर्थात् ६ मील दूर और इस अन्तर का जो पैट्रोल संचित होता है, उसे वह ब्लेक मार्केट में बेच देता है, पर मेम सा'ब ड्राइवर को बेहद नेक और ईमानदार मानती हैं। ओह ! ईमान कितना सापेक्ष शब्द है। सरकार का टैक्स चुराने वाला अभियुक्त हैड मैनेजर

सेठ जी का विश्वासपात्र, ईमानदार और नेक आदमी है। इस नेक दुनियाँ में थोड़ी-सी अपेक्षित चोरी करने वाला ड्राइवर भी नेक आदमी है।

क्रीम और उस पर ड्राइवर, पैट्रोल की कीमत। यही दो आने का आयेगा, पर उस पर भी ड्राइवर व पैट्रोल की कीमत। और कोटे का पैट्रोल नहीं, तो महँगे भाव का चोरबाजारी पैट्रोल ही सही। यह पैट्रोल नहीं तो दुगने महँगे भाव की टैक्सी ही सही।

अच्छा-ख़ासा बया का घोंसला है चाचा जी का व्यापार और उनकी गृहस्थी।

घोंसले का हर तिनका बेईमानी और जलालत से सराबोर है। इस घोंसले में चाचा जी और चाची जी किस शान और ठाठ और रौब और जग-प्रसिद्धि से रहते हैं।

क्षण भर को चाँदनी मूर्खा फूहड़ की नाईं खिलखिला फैलकर गई। रेवती ने ऊपर देखा। मैले-भद्दे बादलों के बीच में चाँद नाहक अपनी रूप-पिपासा का खेल खेल रहा है। आज तो बिजली ही सत्य है और यह बिजली ही शोभनीय है। उसकी इच्छा हुई कि अभी इस क्षण बिजली गरजे और यहीं गिर पड़े। क्या बिजली का गिरना तपेदिक से कुढ़-कुढ़कर मरने से कहीं बेहतर नहीं होगा ? मैं तो इस बया के घोंसले में तपेदिक खाये बिना नहीं रह सकता।

कल की बात है। चाचा जी रेवती को 'कार' में लेकर उस अंग्रेज़ मिलिट्री अफ़सर से मिलने गये थे। सूखे आलुओं और गरम कमीज़ों का टेंडर देना था। बैठकर बात की, फिर चाचा जी ने उसे अंग्रेज़ी सिनेमा दिखाया। वहाँ से निकलकर वे एक शानदार होटल में गये, जहाँ दोनों ने डटकर सुरा-पान किया। वहाँ से निकले, तो बाग़ की कोठी पहुँचे। पहले से वहाँ एक क्रिश्चियन सुन्दरी बैठी थी। उसको आज्ञा हुई कि वह मेजर साहब को उधर ग्रीन-रूम में चाय-पान कराये। क्या सच ! सुन्दरियों का जीवित-चर्म जिह्वा से चूसने पर चाय-पान जैसा लगता है इन समाज के क़ानून-भुक्त डाकुओं को ?

घर की राह छोड़कर वह श्याम बाज़ार की ओर मुड़ गया। वहाँ का घिराव खाकर वह मिस कौल की कोठी की ओर बढ़ा।

कौल साहब। चाचा जी के सम्पूर्ण व्यापार के मुख्य प्रतिनिधि। मासिक डेढ़ हज़ार। जितना भारतीय सरकार के सिविल सर्विस अधिकारी को मिलता है। चाचा जी नग्न क़ानून से स्वयं उत्तेजित होकर काष्ठ-शासन के चौखटे के प्रहरी ! तो कौल साहब सम्पत्ति के अंग-प्रत्यंग को सुरा-सुन्दरी के समकक्ष मानते हैं और सम्पत्ति की शोख़ अदा को हर क़ीमत से वसूल करना जानते हैं। सुन्दरियों में क्षणिक वासना होती है और दीर्घकालीन अदायें होती हैं। ओह, यह क्या ? भारतीय पूँजी में सिर्फ़

खोखली अदायें मात्र ही अवशिष्ट रहेंगी ?

कौल साहब ने सर्वत्र रेवती की प्रशंसा के पुल बाँध रखे हैं। कहते हैं बहुत शीघ्र रमाकान्त बाबू प्रान्तीय गवर्नर को भोज देंगे। अपने घर का शिशु रेवती यहाँ कलकत्ता महानगरी में बाबू रमाकान्त हो गया है।

रोज़ाना रेवती की शाम की चाय मिस कौल के यहाँ प्रबन्धित हुई है, क्योंकि बड़े दफ़्तर के निकट है वह।

आज सहसा कौल साहब बाहर चले गये हैं। एक फोन आया था। कुछ कारणों का पता नहीं चला। चाचा जी शाम को कहते थे कि कुक्कू बेटी (मिस कौल) से पता कर आना।

चाँदनी की आहट पाकर माली ने रेवती बाबू की आहट ली। इशारा देकर अपनी ओर बुलाया। बोला, "बाबू, आज तो लौट जायें।"

रेवती ने अपने क्रोध को बलात् रोका और उसे घूरता रहा। माली ने हुक्के की गुड़गुड़ का समा बाँधते हुए कहा, "आज बाबू जी बम्बई चले गये हैं और मालकिन अपने नैहर जा पहुँची हैं।"

मालिक और मालकिन। कौल साहब के मालिक चाचा जी। माली के मालिक कौल साहब। परसों कौल साहब रेवती को लेकर इन्कमटैक्स अफ़सर के यहाँ कोठी पर मिलने गये थे। अन्दर बैठक में मोशाय बाबू तीन रमणियों के साथ ब्रिज खेल रहे थे। बात-बात में जम गये कौल साहब भी। पहुँचे हुए खिलाड़ी हैं पर वहाँ जान-बूझकर दो हज़ार रुपया नक़द हार आये। कितना बेहतरीन तरीका है रिश्वत का!

रेवती ने साइकिल वहीं छप्पर के सहारे छोड़ दी। छलाँग भरकर वह पिछवाड़े पहुँचा। दरवाज़े पर दस्तक दी, "कुक्कू, बारिश भीगने के लिए होती है। अन्दर सूखी क्यों बैठी हो? मैं अपनी शाम की चाय पीने आया हूँ।"

उत्तर में उसने अन्दर से एक-दो सुबकियाँ सुनीं। बोल्ट घुमाकर उसने द्वार खोला और अन्दर जा पहुँचा। मिस कौल अन्दर आराम-कुर्सी पर पड़ी हुई रो रही हैं।

ठीक इसी तरह बड़ी चाची की जली-कटी बात सुनकर छोटी चाची रोया करती हैं।

टेबल पर चाय बिन-पी प्याले में शान्त स्तब्ध है। उधर खाने की मेज़ पर रसोई डिशों में अशान्त जाग रही है।

कुक्कू ने पलकें उठाईं और उसे देखा। रेवती ने हीटर जलाया और चाय की केटली ताज़े पानी की भरकर रख दी। बिजली के चूल्हे को दहकाकर उसने तवा रखा और रसोई के परांठे गर्म करने शुरू किये।

खिड़की में से माली ने कहा, "कुँवर साहब, बिटिया के आँसू चाय और गरम तरियों से न बुझेंगे।"

कुक्कू ने अपनी साड़ी ठीक की। सतर होकर बैठी और बोली, "बाबा जी, अब सोओ।"

बूढ़ा माली चला गया तो कुक्कू उठी और गुसलखाने में चली गई। नहाकर बाहर आई तो चाय तैयार थी और रसोई गरम हो चुकी थी।

कुक्कू नाहक मुस्करा पड़ी, "आप तो मुझे भिगोने ले जा रहे थे? यहाँ गरम होने क्यों बैठ गये?"

रेवती न हँस सका। कुछ स्निग्ध होकर बोला, "आँसुओं से भीगने के बाद क्या और भीगने की गुंजाइश बाकी रह जाती है?"

कुक्कू ने चाय का प्याला उठाकर पीना शुरू कर दिया। साहस उसका नहीं हो रहा है कि रेवती को ठीक सामने देखे। रेवती चाय नहीं पियेगा। वह परांठों पर टूट पड़ा। फिर आज आलू का हलवा भी है और रेवती विवाह के पहले, वधु से अधिक, आलू का हलवा अधिक चाहता है।

चुप, दोनों ने व्यालू किया। सामने की आलमारी से कुक्कू के पिता जी का कीमती सिगार निकालकर रेवती ने सुलगाया और बोला, "चप्पल पहनो, अभी घर चलना है?"

"घर चलना है?"

"या, कह लो, कसाईखाने चलना है, जहाँ रोज़ वह छोटी चाची जिबह होने से रह जाती है ताकि रात भर मौत से थर-थर काँपती रहे।"

कुक्कू की आँखें चमक उठीं। बोली, "रेवती जी! कसाईखानों को आप वर्षा-आश्रम के चरम रूप क्यों नहीं मान लेते?"

रेवती ने आँखें नीची कर लीं और बाहर आकर साँकल चढ़ाई। माली को सचेत किया कि मकान सूना है। दोनों सड़क पर आ गये।

जैसे तो डाह ने पद्मिनी को कुण्ठित कर दिया हो, काले बादलों ने चाँदनी को स्याह कर दिया। फुहार गिरने लगी। कुक्कू ने अपनी जनानी छतरी खोल ली। रेवती भीगता हुआ चलने लगा। कुक्कू ने हाथ ऊपर उठाकर चेष्टा की कि उसे भी अपनी छतरी में ले लें। रेवती ने कहा, "जी, इन जनानी छतरियों में पुरुष की माँस-हड्डियाँ बिन भीगे रह सकेंगी?"

कुक्कू ने छतरी बन्द कर ली और खुद भी भीगती हुई चलने लगी। एक फर्लांग तक दोनों पानी में छप्-छप् करते हुए चलते रहे, कुक्कू नहीं जानती कि कल से क्या कैसे होगा? वह नहीं जानता। अभी कुक्कू छोटी चाची का हाल सुधार सकेगी या

नहीं ? घर से भागना ही पड़ा तो क्या चाची को वह यह राय देता जाय कि ज़हर ही उसका आख़िरी इलाज है ?

कुक्कू के साथ रेवती का असंतोष अतिक्रमण नहीं कर पाता। दोनों की मुलाक़ात भी अभी ताज़ा ही है। कुक्कू की रुलाई रेवती के संसर्ग से मूक-मिष्ट व्यथा हो जाती है। अब वारिश तेज़ पड़ने लगी तो दोनों एक पेड़ के नीचे फ़ुटपाथ की रेलिंग पर बैठ गये। कि एक मोटा मेंढ़क कुक्कू के पैर पर फुदककर 'टर्र' चीख गया। कुक्कू इस गुदगुदी में हड़बड़ा उठी। रेवती हँस दिया। क्षणिक, कुक्कू भी हँसी। पर तत्क्षण क्लान्त हो आई। बोली, "अभी तो भूखे रह गये होंगे ?"

रेवती ठण्ड में ठिठुरना चाहता है। लेकिन घर की उसकी विशिष्ट १० सेर रुई की रजाई में वह कैसे जा सोये ? वहाँ तो क्लेश की आग दहक रही है। आश्चर्य है उस आग से छोटी चाची जल क्यों नहीं मरती। कुक्कू की बात से हँसते हुए भी हँस न सका। बोला, "और आपका तो आकण्ठ पेट भरा हुआ है ?"

कुक्कू ने अब सीधे उसे देखा। उसने भी अपनी दृष्टि कुक्कू की पलकों पर रख दी। ऊपर ज़ोर से गड़गड़ाहट हुई, और गूँज दोनों के कर्ण-पटलों को गुंजायमान कर गई। कुक्कू उसके पास सरक आई। बोली, "हम दोनों ही आज भूखे हैं।"

रेवती चाहता है कि पहले कुक्कू के आँसुओं की कहानी सुन ले तो अपनी बात कहे। उसके कंधों को थपथपाकर उसने आगे चलने का संकेत किया। बारिश कुछ हल्की होली है। उसके हाथों से छतरी लेकर खोली और उस पर तान दी। आगे बढ़े कि सड़क पर घुटनों-घुटनों पानी मिला। रेवती ने कुक्कू को गोदी में भरकर उठा ही तो लिया और बीच पानी में घुसकर उसे उधर ले जाकर खड़ा किया। आज कुक्कू रेवती की गोदी में सहमी नहीं। उसने देखा कि आज कुक्कू अपने आपे में कतई नहीं है। बोला, "कुक्कू, मैं तो इसलिए भूखा हूँ कि मेरी बड़ी चाची चाचा जी के हाथों कसाइन बनती जाती हैं।"

"आपने अमरीका तार दिया तो था।"

"हाँ, उसका कोई उत्तर नहीं।"

"तो ?"

"यह 'तो' की लगाम तुम अपने हाथों थाम लो न।"

कुक्कू ने उत्तर में एक लम्बी आह ली और अँधियारी चाँदनी में पानी के कीचड़ से बचती हुई आगे बढ़ती रही।

रेवती की कोठी आ गई। 'पोर्च' में पहुँचकर कुक्कू ने जानना चाहा कि तुम्हारी बड़ी चाची जी कहाँ है ?

"तो इधर आओ।" और उसकी उँगली पकड़कर उसे इधर की खिड़की के पास

ले आया। अन्दर रोशनी जल रही है। पर्दे के दो पल्लों की दरार में रेवती और कुक्कू ने आँखें लगा दीं। बड़े चाची जी चाचा जी को अपनी गोदी में बैठा चुके हैं। इस क्षण वे उसके उपभोग की आज्ञा की अनुनय कर रहे हैं और चाची जी मानिनी बनी हुई हैं। चाची जी एकदम सर्पिणी-सी उठीं। अपना फन चाचा जी पर तानकर बोलीं, "कल चाण्डालिनी को घर से बाहर निकाल दोगे ?"

चाचा जी का अर्द्ध-चेहरा किन भंगिमाओं में कुण्ठित हुआ, यह न जाना जा सका। वे हँसे, और बोले, "रानी, ज़रूर-ज़रूर !"

जाने सर्पिणी सर्प को अपनी कुँडली में उलझाकर हर्षित होती है या नहीं, पर चाची जी हर्ष से विह्वल हो गईं। चाचा जी के वस्त्र वह अपने हाथों उतारने लगीं।

रेवती और कुक्कू इधर हट गये। 'पोर्च' में आये। ठहरकर कुक्कू ने रेवती को देखा। बोली, "तुम छोटी चाची को जबरदस्ती ज़हर पिला···"

ज़ोर की एक आर्त-चीख़ ने कोठी के अँधियारे पल्ले को बेदर्दी से चीर दिया। यह तो छोटी चाची की आवाज़ है ! रेवती लपककर उसके कमरे की ओर भागा। बरांडे में उसे सन्न-सन्न सुनाई दी। भागकर रेलिंग पर चढ़ गया। चिल्लाया, "कुक्कू होशियार, साँप !"

उसके दिमाग़ पर मृत्यु-रेखा का 'निगेटिव' अंकित कर साँप सीधा बरांडे के पश्चिम में रेंग गया। कुक्कू ने भी उसे देखा। अब वह भी रेवती के निकट भागी। छोटी चाची बाहर फटी चटाई पर बैठी हुई थी कि तिलमिलाकर लेट गई और छटपटाने लगी। रेवती ने कमरे की रोशनी जलाई और बड़बड़ाया, "ओह ! बल्ब फ्यूज़ है।" रेवती ने चाची की मुट्ठी टखने से हटाई और देखा कि सर्प अपना घातक प्रतिशोधक चुम्बन एड़ी पर कर गया है।

ओह ! सर्प ने अपने चुम्बन के लिए कोई विशिष्ट अंग निश्चित् नहीं किया है ?

रेवती चीखा, "चाचा जी, छोटी चाची को सर्प ने काटा है। बड़ी चाची जल्दी चलो।" लपककर वह टेलीफोन पर पहुँचा···खराब। माली को आवाज़ दी, नदारद। कि उधर कुक्कू ने आवाज़ दी, "इधर आओ।" लपककर उधर गया। चाची नीली जर्द पड़ चुकी हैं।

चाची ने आँखें खोलीं। रेवती के सिर पर कठिनता से हाथ रखा और उसके केशों को सहलाने लगी। रेवती के आँसू आज पहली बार बहने लगे।

बोली, "कुँवर जी, वे ही मुझे लेने आये थे। परसों मुझे सपना आया था। वे दीखे थे। बोले थे, मैं तुम्हें लेने आ······"

और चाची शान्त हो गई।

बरांडे के बाहर जोर की मूसलाधार बारिश शुरू हो गई। रेवती और कुक्कू उठे। छतरी खोलकर बाहर आये। चाचा जी के कमरे की बत्ती अब गुल हो गई है।

बीच बारिश में भीगते हुए कुक्कू ने कहा, "सुबह तक न रुकें ?"

रेवती के आँसू बह रहे हैं। निरुत्तर वह बाहर सड़क पर आ गया और कुक्कू के घर की ओर हो लिया। झमाझम बारिश में दोनों का हाहाकार दुगना सुलग रहा है।

कुक्कू के कमरे में पहुँचकर रेवती ने भीगे कपड़े उतारे। कुक्कू की पुरानी साड़ी का तहमद बाँधकर वह चाय बनाने बैठा। कुक्कू भी कपड़े बदल आई। तो भीगे स्वर में बोली, "अब क्या चाय पियोगे ? सुबह चाची जी को श्मशान पहुँचाने तक तो रुको।"

"सुबह तक ?" रेवती के आँसू फिर छलछलाये।

"जी !"

पर चाय तैयार हो गई और उसने छानी। कुक्कू ने चीनी मिलाई और दोनों पीने बैठ गये।

कुक्कू स्वयं ही बोली, "दो महीने से मेरी ममी और पापा में झगड़ा चल रहा है। पापा शीघ्र ही एक पुत्र चाहते हैं और ममी अपनी तपेदिक की आशंका में इस माँग को इन्कार कर रही हैं। रात खूब हाथापाई हुई। थोड़ी मार-पीट भी। ममी ने पापा पर जूता खेंचकर मारा, यह मैंने शीशे से झाँककर देखा था। आखिर सुबह दोनों ही अपने-अपने रास्ते चले गये हैं। पापा बम्बई और ममी अपने मायके।"

रेवती चाय की चुस्कियाँ लेता रहा और गीली पलकें झपकता रहा। अब कुक्कू की आँखें भी उद्वेलित हो गईं। कि सुबकी लेकर रो पड़ी। साड़ी के छोर से आँखें पोंछकर पूछा, "तुम्हारे छोटे चाचा जी अमरीका कब चले गये थे ?"

"हो गये नौ साल।"

"पर आखिर क्यूँ चले गये और गये तो इन छोटी चाची जी को साथ क्यूँ नहीं ले गये ?"

"पड़ौस की उन भाभी ने एक दिन मुझे बताया था। छोटे चाचा जी के विवाह को मुश्किल से पाँच महीने ही हुए थे कि अचानक एक दिन वे चाची जी के कमरे में रात को गये। उस रात चाची जी तीव्र ज्वर में बेहोश पड़ी हुई थीं। चाचा जी कोई सिनेमा देखकर यौन की ईर्ष्या से कुढ़े हुए आये थे। उन्होंने बेहोश चाची जी को जगाना चाहा। वे न जागीं तो लात-घूसों से उसकी खूब मरम्मत की, और उसके

साथ बलात्कार (!) किया। सुबह तक चाची जी की हालत उग्र हो गई और रक्त-स्राव शुरू हो गया। शाम तक चाचा जी अपनी अतृप्ति के असंतोष में सुलगते रहे। चाची जी की चिन्ताजनक हालत की उन पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई और वे घर से ग़ायब हो गये। आठ महीने बाद उनका एक पत्र चाची जी के नाम से अमरीका से आया था। उसमें लिखा था, 'तुम प्रसन्न होगी। मेरी आज्ञा है कि तुम पुनर्विवाह कर सुखी रहो।' पर उस पुनर्विवाह के सुख की जगह उन्हें आठ वर्ष तक इन बड़ी चाची जी की भर्त्सना, ताड़ना और अत्याचार ही मिलता रहा।"

कुक्कू ने एक लम्बी साँस ली, "ओह! छोटी चाची जी, कितनी सुन्दर थीं!"

चाय ख़त्म हो गई तो रेवती ने अँगड़ाई ली। कुक्कू के पिता जी का नया सिगार सुलगाया और खिड़की के पास आकर खड़ा हो गया। बाहर अब बादल छँट गये हैं। स्निग्ध-चाँदनी सावन की छटा को विभूषित कर रही है।

रेवती का हृदय व्योम की भीषण विशालता से सिमटकर सामने फैली हुई सूक्ष्म छवि में अंकित हो गया।

कुक्कू हठात् बोली, "मैं चाची जी को शहीद मानती हूँ।"

रेवती ने कटु कहा, "हाँ, जीवित शहीद तो तुम्हारी ममी और मेरे बड़े चाचा जी भी हैं!"

१६

देश-व्यापी आँधी[1]

कुछ वर्ष हुए मेरी एक सखी ने कहा था, 'दुनियाँ चिल्लाती है, हमें देश-भक्त होना चाहिए, हमें देश पर मर मिटना चाहिए। पर सच जानों बहिन, चाहे गिरिस्ती हो, चाहे देश-भक्ति के मैदान हों, हम औरतें तो भय से ही त्रस्त रहती हैं। दोनों ठौर पर या तो हमें किसी आदमी का सहारा चाहिए या हम बिन सहारे पतित हो जायेंगी।' यह बात उसने बारह वर्ष पहले कही थी और तब वह काँग्रेस के आन्दोलन में जेल से लौटी थी।

जाने क्यूँ, कड़वी बातें भयावने काले बादलों-सी होती हैं जो छाती फाड़ गर्जना तो करती हैं, पर वर्षा का शीतल जल भी खूब-खूब झारती हैं!

आज छः महीने हो गये। उस दिन रजनी के प्रथम जेल-पत्र को पढ़कर वे एकदम चले गये थे। उसके बाद नहीं लौटे। और एक महीने बाद हरीश ने बताया कि वे लड़ाई के मैदान पर फ़ौज में चले गये हैं। मेरे से बिन-कहे ही उन्होंने 'इमरजेंसी-कमीशन' ले लिया था। दो महीने तक तो अपना दिल थामे अनेक तरह की आशंकाओं से रो-रोकर मैंने अपने दिन बिताये, पर उनका कुछ पता न चला। पहले वे हर हफ़्ते आ जाते थे। उस 'मिलन' को ही मैं अपना भाग्य समझती थी। क्या अब मेरा भाग्य यही समझूँ कि बिन पति-मिलन के जीवित रहूँ, जब कि पति ज़िन्दा हैं। मैं कौन सी प्रकार की विधवा हुई? परित्यक्ता तो एक अपशब्द है, गाली है। और कालेज में शिक्षा पाकर आखिर मुझे जीवन का कौनसा लाभ मिला?

इस अर्से में मैंने कुछ कवितायें रची हैं। पर ज्यादातर अपना मन देश में घट रही घटनाओं में लगाती हूँ। मुख्य दैनिक अख़बारों को गला वायसराय के रोज़ नये आर्डिनेंसों ने घोट रखा है। सारे देश में रात्रि के तीसरे पहर-सी एकान्त वायु दिलों में दहशत भरती हुई बह रही है। लड़ाई के दुनियाई नक्शे पर, उधर, हिटलर के मोहरे बराबर शह दिये जा रहे हैं; इधर जापान एशियाई अबोध जनता का खून इसलिए आसानी से बहा रहा है क्योंकि वे निःशस्त्र हैं और ग़ुलाम हैं किसी अन्य ताकत

---

१. माधवी की डायरी से। १९४३ के जनवरी और मार्च के बीच। इसमें अनेक संशोधन स्वयं लेखिका ने अपने हाथ से अनेक बार विभिन्न स्याहियों से बाद में किये हैं।

के। 'दुश्मन' और 'मित्र' इन दो खूनी कसाई-कैम्पों में दुनियाँ की अबोध जनता इच्छा व अनिच्छा से बँट गई है। जिस मोर्चे पर लड़ाई चलती रहती है, वहाँ की दूर-पास की जनता मरती-चिथती रहती है। जैसे ही वह मोर्चा फतह हुआ, अगले मोर्चे के पास-पड़ौस की जनता का नम्बर आता है कि अब वह अपनी निरपराध आहुति दे। इस देश में सभी बेबस हैं और विभ्रम हैं। शृङ्खलायें टूट रही हैं। राजनीति के सूत्र ध्वस्त हो रहे हैं। धर्म की गहरी नींव में जमे हुए स्त्री-पुरुष बाल-वृद्ध ही उखड़ गये तो उनके मस्तिष्कों में सख्ती से जमे हुए राजनीतिक-सामाजिक-धार्मिक आदर्श कहाँ अटके रह सकते हैं? मुझे यह सब-कुछ ऐसा लग रहा है, जैसे अचानक एक मक्खियों के छत्ते के नीचे आग सुलग गई हो। कुछ मक्खियाँ उस दाह से जल गईं, बाकी दूर उड़ जाने को मजबूर हो गईं। उसके बाद उसका मोम पिघलकर उस आग में चूता रहा और थोड़ी देर में सारा मधु भी उसी में झरकर स्वाहा हो गया……

युद्ध हो रहा है। खूब सरगर्मी से चल रहा है। जनतन्त्र की रक्षा के लिए भारत भी इस सरगर्मी के पास ज़बरदस्ती तपने के लिए बैठा दिया गया है। देश के चेता इंसान देश की स्वतन्त्रता के नाम पर जेलों में हैं। देश के एक-तिहाई इंसान देश की रक्षा के नाम पर फ़ौजों में चले गये हैं। बाकी के कुछ निर्बल चेता बचे हैं, वे चोर-बाजारी के घुन बन गये हैं…और शेष हैं जो फटे दूध के चीथड़े बने हुए असहाय साँसें ले रहे हैं……

देश के समाचार-पत्र 'मृत' हो चले हैं। आकाश में केवल मात्र 'वार फण्ड' का ही घोष गुँजित हो रहा है। पर यह घोष जनता का नहीं है, देश के विदेशी शासकों का है।

चीज़ों के भाव चढ़ रहे हैं। चीनी बाज़ारों में दुष्प्राप्य हो गई है। गेहूँ के दर्शन नहीं होते। मैं स्वयं बाजरे और मक्का से अपने आहत प्राणों की धमनियों को चला रही हूँ।

चारों ओर गवर्नरी राज्य है। पुलिस निरंकुश भाव से सुनसान युद्ध-क्षेत्र की वह गिद्ध बन गई है, जिसे नर-माँस से ही अन्तिम तृप्ति नहीं होती, मुर्दों की आँखें निकालने में ही जिसे मज़ा आता है।

उधर सामने चौराहे पर हमारे नगर की कोतवाली है। हमारे पिछवाड़े मुहल्ले के एक कुलीन घराने का लड़का देश की आज़ादी की लड़ाई में पुलिस से मोर्चा न ले सका तो फरार हो गया। फरारी को आज पाँचवाँ महीना हो चला है। पहिले तो पुलिस उसके घर पर धरना दिये रही। बीस-पच्चीस दिन गुजर चुके, और उस लड़के का पता न चला तो उसके प्रौढ़ पिता को खूब जूतों से मारा गया। रात भर उसे उल्टा टाँगकर रखा गया। होना-जाना क्या था इस तेज-तरारी से ! एक पखवाड़ा

और बीत गया। एक दिन दुपहर में लड़के की माँ को कोतवाली बुलाया गया। वह कुलीन घराने की प्रौढ़ा बिना पर्दे के कभी घर से बाहर नहीं निकली थी। कोतवाली का नाम सुनते ही रो पड़ी। सिसकियाँ भरती हुई कोतवाली पहुँची। वहाँ उसकी सिसकियाँ दीवारों ने भी नहीं सुनीं। कोतवाल ने अश्लील शब्दों में उसका स्वागत किया और जाने क्या-क्या गालियाँ बकीं। बची-खुची गालियाँ खड़े हुए सिपाहियों ने दीं। उन्हें सुनकर वह प्रौढ़ा भी संज्ञा-शून्य हो गई। वह जड़वत् हो बैठ गई। कोतवाल ने कहा, "बता री ! कहाँ छिपा रखा है तूने अपना पूत ?"

वह बेचारी क्या जाने ? थर-थर काँपने लगी। कोतवाल ने एक बार पूछा, दो बार पूछा। उत्तर नहीं मिला। वह क्रोध से थर-थर काँपने लगा। उठा, उसमाँ हाथ कठोरता से पकड़ा और ले गया अन्दर अँधेरी कोठरी में। वहाँ उसकी जूतों से ठुकाई की। उसके साथ व्यभिचार किया। उस नराधम को इससे भी शान्ति न मिली, उसने बाहर से मेहतर बुलाकर उसके गुह्य अंगों में मिर्चें भरवा दीं। वह माँ अब तक बेहोश हो चुकी थी। जब तक होश रहा, चाहते हुए भी वह न रोई, न चिल्लाई। शाम को दो पुलिस वाले उसे उसके घर पटक गये।

आज हिटलर नई व्यवस्था की नई नींव चिनने का दंभ भर रहा है। साथी-राष्ट्र चतुःस्वतन्त्रता की शंखध्वनि बजा रहे हैं। लेकिन इन घोषणाओं से अछूती वह भारतीय नारी दिन भर अपमानित और पतिता होकर बेहोश हो जाती है। रात उसे चेतना आती है। दिन भर में बीती अमानुषिकता से उसकी यातना असह्य हो रही है। चुपके से उसने अपने हाथों की चूड़ियाँ फोड़ीं। उन्हें बारीक पीसा। आँख मींच कर एक गिलास जल के साथ फंकी ले ली और सो गई। सारा घर शर्म से माथा झुकाये इस अन्याय के आगे चुप था।

सुबह उस माँ ने प्राण तज दिये।

पर वह लड़का फिर भी पुलिस के हाथ न लगा।

एक महीने तक कोतवाल चुप रहा। एक दिन उसने उस लड़के की बहू को बुला भेजा। उसके साथ भी वही अश्लील गालियों से बात शुरू की गई। जब वह भी अपने नवपति का कुछ ओर-छोर न बता सकी तो पहले कोतवाल ने उसके साथ व्यभिचार किया। वह थक गया, तो कोतवाली के सिपाहियों ने शाम तक उसके साथ निरंतर व्यभिचार किया। जब दो पुलिस वाले उसे घर पटकने ला रहे थे, तो रास्ते में उस नवयौवना अबला ने अपनी साँस तोड़ दी।

कोतवाल का ख्याल था, इन घटनाओं से वह लड़का ज़रूर एक बार घर आयगा। उसके घर के चारों ओर सख्त पहरा बैठाया गया। रोज़ ही वह रिपोर्ट माँगता। रिपोर्ट यही उत्तर देती कि नहीं, अभी कोई नहीं आया।

इस बार कोतवाल ने अपनी दानवी पिपासा का शिकार उसका छोटा भाई बनाया। शर्म से मेरा हाथ काँपता है। फिर भी लिखूंगी। उसके साथ कोतवाल ने और अन्य सिपाहियों ने पशु-व्यभिचार किया।

अब उस नवयुवक से न रहा गया। वह घर आया पिता से क्षमा माँगने कि मेरे कारण सारे घर की बलि, एक के बाद दूसरे की, ली जा रही है। घर से जैसे ही वह बाहर निकला, कोतवाल ने अपनी पिस्तौल से उसे वहीं ढेर कर दिया।

एक ओर ये सितम और ऐसी विडंबनायें। दूसरी ओर सबको मजबूर किया जा रहा है कि वे हर स्थान पर V लगायें। यह विजय-चिह्न है। खून को जला डालने वाली शायद यह अन्तिम विराम-पंक्ति थी, उक्त लोमहर्षक कहानी की, कि कोतवाल ने उस युवक के बाप को छः महीने के लिए इस कारण क़ैद दिलवाई कि उसने घर पर V चिह्न नही लगवाया था। इस प्रकार सारा घर बरबाद होते ही वह छोटा भाई पागल हो गया है। चार रोज़ हुए सुना था कि वह टट्टी तक खाने लग गया है!!

दिल इन घटनाओं को देखकर विद्रोह करना चाहता है। मैं जानती हूँ कि विद्रोहियों के साथ क्या बीत रही है। मेरे साथ क्या बीत सकती है, इसकी कल्पना करना अधिक कठिन नहीं है। जब मस्तिष्क विद्रोह की उत्तेजना से शान्त होने लगता है, उन क्षणों में मैं सोचती हूँ, इस प्रकार की जो हत्यायें क़ानून, न्याय, अहं, दम्भ की कसौटी पर हठात् बिन-सूचना दिये हो जाती हैं, सो कैसे हो जाती हैं। और इन हत्याओं का मूल्य क्या है? अन्य कवि मेरी जगह होते तो उक्त परिवार के बलिदान और उसकी देश-भक्ति के गीत रचते। मैं चाहकर भी ऐसा नहीं कर पाई हूँ। रोज़ाना युद्ध के दोनों पक्षों से लगातार रेडियो-घोषणा होती है कि हमने अमुक पक्ष के इतने आदमी मारे हैं। मारे क्या हैं, हत्या किये हैं। अधिकतम हत्या से ही जैसे विजय-लाभ होगी। तो क्या हमारी भारतीय पुलिस भी इसी कारण अधिकतम हत्यायें जान-बूझकर कर रही है कि आज़ादी बनाम ग़ुलामी की लड़ाई में आज़ादी-पक्ष विजयी न हो सके। किन्हीं भी शर्तों पर!

दमन और शोषण! संस्कृति और जन-सुरक्षा के अंकुर जिन घड़ियों में फूटे थे, उन्हीं घड़ियों में इतिहास साक्षी है, शासक की ओर से दमन और शोषण पीढ़ी-दर-पीढ़ी जनता को बपौती में मिलते चले आ रहे हैं। आज जनता की आज़ादी की भावना को दमन करने के लिए जो दूसरे प्रकार का अस्त्र भारतीय पुलिस ने सँभाला है उसका व्यौरा यह है:

मेरी एक सखी उसी मुहल्ले में रहती है। पिछले पखवाड़े रोती हुई मिलने आई थी। उसका फुफिया भाई मर गया था। जहाँ महामारी में हज़ारो औरतें और इंसान मर जाते हैं, वहाँ इस स्वतन्त्रता की महामारी में कोई मरता है तो दिल

लोकाचार-प्रदर्शन के लिए रोना नहीं चाहता । उससे मैंने पूछा कि कैसे मर गया। उस फुफिया भाई की कहानी सुनकर मेरे हर्षाश्रु उमड़ आये । डाकखाने, थानों, स्टेशनों में आग लगाने वालों में पुलिस के हत्ते वह भी चंगुल में आ गया था । कोतवाली में रखकर छः-सात रोज़ तक सारी-सारी रात उसे यह पूछने के लिए उल्टा टाँगे रखा गया कि अगर उसने आग नहीं लगाई है तो किसने लगाई है ? वह महज एक दर्शक था । ज़बरदस्ती किस का नाम बतला दे । रो-रोकर, हाथ जोड़कर, कोतवाल के पैरों पड़कर उसने यही कहा कि मुझे नहीं मालूम । कोतवाल तंग आकर चिढ़ गया। दहाड़ने लगा कि यों सीधी उँगली घी न निकलेगा । उस अबोध को नंगा किया और बरफ की सिल्ली पर बलात् लेटा दिया । तड़प-तड़पकर आध घंटे में उसका दम ही तो खुश्क हो गया । मर ही गया, तो उसकी लाश रात को हल्के हृदय से गाँव बाहर के नदी-किनारे फेंकवा दी गई ।

कोतवाल के लिए यह कितनी शान की बात थी कि ब्रिटिश साम्राज्य के शत्रुओं में से एक निहत्था सिपाही यों आसानी से मारा गया है ।

जो असली सिपाही होते हैं वे, विजयोल्लास में, सचमुच मरने-मारने से नहीं डरते । इसीलिए पहले जो लड़ाइयाँ होती थीं, वे नगरों से दूर खुले मैदानों में होती थीं । शनैः-शनैः राजनीति जितनी कुटिल से कुटिलतम बनती गई, युद्ध-क्षेत्र जनता के निकटतम बढ़ते गये । राजनीति की कुटिलता के इस षड्यंत्र में यही भावना सर्वोपरि थी कि जनता माया-मोह के भावनात्मक बंधन में चिपटी हुई रहती है । उसके परिवार का एक व्यक्ति किसी व्याधि से मर जाता है, उस दुख से दुखी सारा परिवार छाती पीट-पीटकर रोने लगता है । इसी को देखते हुए युद्ध की घड़ियों में अगर जनता के सौ दो सौ आदमी जबरदस्ती मार दिये जायें तो जनता का सामूहिक रुदन शत्रु-पक्ष को अवश्य कमज़ोर बना डालेगा । तभी मैं देख रही हूँ, पहली बड़ी लड़ाई में और इस द्वितीय महायुद्ध में भी शत्रु एक दूसरे की जनता पर बड़ी गहरी रुचि में बमबारी कर रहे हैं । यह मृत्यु-संहार ही इन दिनों वर्तमान और भविष्य का संयोग बना हुआ है । हम अगर जीवित बच भी जायँगे तो इस मृत्यु-संहार के जो प्राकृतिक परिणाम होंगे, उन्हीं की बपौती के वातावरण में साँसें लेकर हमें ज़िन्दा रहना होगा । सारी दुनियाँ में बड़े पैमाने पर चल रहे नर-संहार के संतुलन में भारतीय युवकों और बालकों और चन्द देवियों का बलिदान कितना नगण्य नहीं है । सचमुच नगण्य है और कोई शोभा की बात नहीं है; एक-दो की मौत से सारा देश भला कहाँ काँप उठा है ! अब जैसे हमारे विदेशी आक़ा हमें हुक्म देते हैं, उसी हुक्म के मूजिब हमारा देश घुटनों के बल रेंग रहा है······

पिछली पूनम को भरी-पूरी चाँदनी से मेरा असंतोष भर उठा था । थोड़ी देर

तक बैठी आँसुओं की धार बहाती रही । ये आँसू बहाना किसी खण्डहर के गीत से कम नहीं होते । जब ठंड बढ़ चली तो उनकी स्टडी में चली आई । पहली पुस्तक जो छुई, वह १८५७ के ग़दर की थी । उसे सुबह चार घड़ी तक पढ़ती रही ।

पहला विश्व-युद्ध और द्वितीय विश्व-युद्ध ! पहली भारतीय बग़ावत और यह दूसरी भारतीय जंगे आज़ादी । पहला विश्व-युद्ध सब दृष्टियों से असफल रहा । सन् '५७ का ग़दर भी सभी दृष्टियों से असफल रहा । यह द्वितीय विश्व-युद्ध नई व्यवस्था और स्थायी विश्व-शान्ति की प्रतिज्ञायें लेकर लड़ा जा रहा है । सन् '४२ का यह भारतीय विद्रोह एशिया के नव-सूर्य के उदय की सूचना ज़ोर-शोर से दे रहा है । सुबह चार घड़ी की रात्रि जैसी क्लेशदायिनि, आशंकामयी और विषादमयी होती है, उस जैसी ही एक घृणित प्रतिक्रिया इस नव-सूर्य के उगने से पहले मुझे और सुनने में आई है—

बिहार के एक ठाकुर 'अंग्रेज़ो भारत छोड़ो' का नारा लगाते हुए जेल चले गये । वहाँ के कमिश्नर ने उस गाँव की उत्तेजना को शान्त करने के लिए कई-कई उपाय काम में लिये, वे कारगर नहीं होने थे सो नहीं हुए । बौखलाकर उसने ठाकुर की स्त्री और उसके जवान बेटे को कोतवाली में बुलाया । दोनों से कहा गया कि वे गाँव के लोगों को शान्त करें । दोनों ने कहा कि हम कैसे किसी को शान्त कर सकते हैं । कमिश्नर गुस्से में दोनों पर झपट पड़ा । फुल बूटों से दोनों को दे ठोकर, दे ठोकर घायल कर दिया । मूक-चुप वे माँ-बेटे पड़े कराहने लगे । रोने की जो उनकी छातियाँ थीं, वे तो फट ही चुकी थीं । उधर गाँव में शोर बढ़ रहा था । हमले का भय था । पड़ौस के गाँव के थानेदार को बलवाइयों ने कत्ल कर दिया था । कमिश्नर ने सिपाहियों को बन्दूक से लैस होने का हुक्म दिया । वे तैयार हो गये । इधर घूमकर उसने उस ठाकुर के बेटे को कुछ हुक्म दिया । वह अधमरा अब कहाँ हुक्म सुनने के क़ाबिल रह गया था । कमिश्नर के हुक्म से दो सिपाहियों ने ज़बरदस्ती उस बेटे से उसको माँ के साथ व्यभिचार कराया । यह जघन्य कृत्य जब पूरा हुआ तो पहिले कमिश्नर ने दोनों माँ-बेटों के मुँह में पेशाब किया । इसके बाद सब सिपाहियों ने अपने अफ़सर का अनुसरण किया···और बारी-बारी से उन्होंने भी उनके मुखों में पेशाब किया······

१८५७ में अमानुषिकता घृणित और जघन्य इसी के संतुलन में थी । पेड़ों पर टाँगकर अबोध नागरिकों को संगीनों का निशान बनाना, गिर्जाघरों में झाड़ दिलवाकर कत्ल कर देना, समूह का समूह तोप से उड़वा देना, सरे बाज़ार की सड़कों पर पेट के बल रेंगवाना और शाम को उनसे पैनी संगीन की अग्रनोंक से खिलवाड़ करना । इन दोनों विद्रोहों में एक एक ही सूक्ष्म-अन्तर मैंने पाया है । १८५७ में दमन के क्षणों में

यही दैत्य-भावना काम कर रही थी कि अलख हत्यायें कर विद्रोह को कतई शान्त कर देना, विद्रोह को शान्त कर हिन्दुस्तान में अंग्रेजी सल्तनत की नींव पक्की जमा देना, १९४२ में···८५ वर्ष पश्चात्···वही अंग्रेज़ी सल्तनत कमज़ोर पड़ चुकी है। हत्या, नरमेध, संहार और हाहाकार से जिस साम्राज्य का श्रीगणेश हुआ था उसने इन ८५ वर्षों में बबूल के पेड़ ही बोये, आम की बौर वह नहीं उपजा सका। आज हर अंग्रेज़ अधिकारी भारत में घृणा का पर्याय बन गया है। उसकी संगीन अबोध नागरिकों का कत्ल करते-करते भौंटी हो चुकी है। उसके पैर अब इस देश में लड़खड़ाने लगे हैं। आज इस विद्रोह में अंग्रेज़ अपने आखिरी सांघातिक हमले अबोध जनता में इसी आशा पर कर रहा है कि भयभीत होकर वे द्वितीय विश्व-युद्ध में साथी राष्ट्रों को योग दें। हिटलर के क़दम यूरोप में बढ़ चुके हैं। इंगलैंड की जनता ज़बरदस्ती बमबारी का मज़ा चख रही है। पिछले १०० वर्षों में सारा ग्रेट-ब्रिटेन फूला नहीं समाया है कि उसने हर अधीन उपनिवेश से कोटि-कोटि धन अपहृत किया है। खेद है वह धन आज धूल-कोयला हो गया है। क्योंकि ब्रिटेन दुनियाँ में प्रथम श्रेणी से हटकर अब महज तीसरी श्रेणी का राष्ट्र रह गया है···आत्मा के श्राप और आत्मा की हाय कबीर की दृष्टि में सिर्फ़ लोह को भस्म कर सकते थे। सौभाग्य हमारा है कि साक्षात् हम देख सके हैं कि ये दोनों समूचे साम्राज्य को भी रुग्ण और क्लान्त बना सके हैं···

आज सुबह उनका पत्र आया है। धन्य भाग ! तीन बार तो इसे पढ़ चुकी हूँ। बहुत थामे अपने आँसू। ढुलने से वे बाज़ नहीं ही तो आये। थोड़ी देर हल्के-हल्के रो ली, अन्दर का सारा अम्बार बह गया। नहा-धोकर रसोई बना-खा चुकी हूँ। अब इसे चौथी बार पढ़ती हूँ—

प्रिय माधवी,

अपने विवाहित जीवन में तुम्हें पहली बार पत्र लिख रहा हूँ। इसकी मुझे खुशी है। ये पंक्तियाँ बर्मा के सीमान्त पर लिखी जा रही हैं। यहाँ सरगर्मी खूब रहती है। भोजन भी अच्छा रहता है। बदन में चुस्ती में खूब-खूब अनुभव करने लगा हूँ। ऐसा याद आ रहा है कि तुम्हें घर-खर्च और जेब-खर्च के लिए एक लम्बे अर्से से कुछ नहीं दिया गया है। पत्र के साथ ३०० रुपये का चैक भेज रहा हूँ। इन्हीं में अपने कपड़े भी सिलवा लेना।

तुम प्रसन्न रहना, ऐसा मेरा आग्रह है। अपनी कुछ नई कवितायें भेजना। मेरे एक मित्र हैं। वे भी बड़े अच्छे कवि हैं। उन्हें तुम्हारी कवितायें दिखाऊँगा।

रजनी के समाचार देना।

कुशलता के पत्र की प्रतीक्षा में। तुम्हारा प्रियतम

'जी'

युद्ध में अनेक विरोधी आभास फूटते हैं। यह भी एक विरोधाभास ही है कि युद्ध के मोर्चे पर वे सरस हो उठे हैं और अपने को मेरा प्रियतम पहचानने लगे हैं। किसे धन्यवाद दूँ ? इस युद्ध को ?

इस युद्ध को तो पूंजीपति धन्यवाद देते रहते हैं। उनके घरों में, उनके कल-कारखानों में, उनकी मिलों में लाखों के वारे-न्यारे हो रहे हैं। एक-एक पूंजीपति का हिसाब ७-७ बैंकों में भी मर्यादा का उल्लंघन करने लगा है और वे रोज़ नई बैंक नये हिसाब का खाता खोलने के लिए ढूँढ़ा करते हैं। युद्ध को वे भी धन्यवाद दिया करते हैं जिनके मस्तिष्क में यौद्धिक योजनाओं के अलावा दुनियाँ की और कोई रुचिकर बात समाती ही नहीं है। फ़ौजियों को नागरिक जिन्दगी में रस ही नहीं मिलता। जाने, कब हम विश्व-शान्ति की योजनाओं में इन फ़ौजियों के मानसिक उपचार का सवाल मुख्य बनाकर अमल में लायेंगे ?

अब मैं उन्हें यह उत्तर लिख रही हूँ—

मेरे प्रियतम 'जी',

पत्र मिला। पढ़कर हर्ष से देर तक रोती रही। आपने ३०० रुपये का चैक भेजा है, सो सँभालकर रख दिया है। अभी मुझे कुछ ज़रूरत नहीं है। कपड़े अभी हैं। कुछ पैबन्द लगकर पाँच-छः महीने चल जायेंगे।

क्या आप यहाँ से जाते हुए मुझसे मिल जाते तो आपकी अधिक हानि हो जाती ? इतने दिनों बाद भी यदि आप अपने को मेरा प्रियतम पहचानने लगे हैं तो मेरा हाथ जोड़कर आग्रह है, जल्दी छुट्टी लेकर मुझ से मिल जायँ। आप देर करेंगे तो शायद मैं न मिलूँगी। इस घर की चाभी शायद आपको डाक के जरिये भिजवा दूँ।

मेरे अपराधों को क्षमा करते रहिये। आपके लिए एक जर्सी वुनी है, वह अलग पार्सल से भिजवा रही हूँ।

आपकी प्रिय,
माधवी

मन में बहुत कुछ है, यह लिखूँ, वह लिखूँ। उनके लिफ़ाफे पर सेंसर्ड पढ़कर साहस नहीं होता। यही उनके पत्र से भी लगता है, वे काफ़ी लिखना चाहते थे, विवश नहीं लिख पाये।

सेंसर ! युद्ध का यह भी एक उत्कर्ष है। अपने जीवन की बाज़ी लगाये हुए सिपाही को आज्ञा नहीं है कि वह अपने मन का उद्वेग और युद्धक्षेत्र की प्रतिक्रियायें अपने स्वजनों को लिख-पढ़ सके। सिर्फ़ 'मैं कुशल हूँ और प्रसन्न हूँ' की सूचना भेजने का हक उसे मिला हुआ है। अर्थात्, अभी मृत्यु के राजमहल में वह जीवित है !

आत्मा पर बन्धन ! हृदय पर बन्धन ! मस्तिष्क पर बन्धन ! समूची देह पर

बन्धन! चाहे हम युद्ध-क्षेत्र के सेनानी हों, या कायरता से प्रकृति की कटुताओं से आँख मींचकर नगरों और गाँवों में बेमायने की ज़िन्दगी बिताते रहे हों हमारा निस्तार, हमारा बचाव इस युद्ध से नहीं है। इसलिए कि आज दुनियाँ के सीमान्तों का दायरा टूट रहा है। इसलिए कि इंसानी मसले परस्पर के खिंचाव से पास सरक रहे हैं। इसलिए कि इंसान के मष्तिष्क अपनी पुरानी केंचुलियाँ उतार फेंक रहे हैं...

बेमायने ज़िन्दगी! उस बेमायने ज़िन्दगी से कुछ हैं, आँख छिपाकर ज़िन्दगी बिताने में कुशलता और चातुरी समझते हैं। ऐसे कुशल और चतुर नागरिकों की फ़ी-सदी संख्या ८० प्रतिशत है। कुछ हैं जो इस बेमायने ज़िन्दगी से विमुख होकर ऐसे रास्तों पर भटक जाते हैं जहाँ इससे भी शतगुनी बेमायने की ज़िन्दगी मिलती है, पर जिस ज़िन्दगी को वे भविष्य का नवप्रकाश मान बैठने का भ्रम खा जाते हैं। यह युद्ध अत्यन्त बेरहमी और निर्ममता से इन दोनों को ही अपने विकराल जबड़ों में ग्रास बनाये चला जा रहा है।

मैं किन्हीं भी हालतों में युद्ध का ग्रास नहीं होना चाहती। वे होना चाहते हैं और जान-बूझकर वहाँ चले गये हैं। उनका व्यक्तिगत जीवन है, उस पर उनका स्वत्व है। मेरे अपने जीवन के क्या स्वत्व हैं? ...

उनकी चिट्ठी डाकखाने में 'एयर मेल' करने गई थी। वहीं पोस्टमास्टर ने मुझे एक पत्र दिया। यह रजनी का पत्र था।

प्रिय माधवी,

डेढ़ वर्ष की सज़ा मुझे क्या मिल गई है, एक दीर्घ सुप्त अनुभूति के पट मेरे सामने खुल गये हैं। उसी में घुसकर विचरण मैं कर रहा हूँ अबाध गति से। और यह मुझे सौभाग्य मिला है, कि एक छोटे-से घरौंदे-नुमा ज़िन्दगी के दायरे से निकलकर मैं देश के प्रथम कोटि के दायरे में आ सका हूँ।

यह पत्र तुम्हें लाहौर सैन्ट्रल जेल से लिख रहा हूँ। दिल्ली जेल से चालान करने के लिए दो सिपाही मेरे साथ किये गये थे। काफ़ी आराम से ट्रेन की यात्रा भी कट गई। सुबह जब फिरोजपुर गाड़ी पहुँची, मुझे हल्का ज्वर चढ़ चुका था। लाहौर तक पहुँचने में तबियत मेरी भारी हो गई। एक तीव्र नशे में मदान्ध हुआ लाहौर के प्लेटफार्म पर मैं पैदल चला। बाहर आकर ताँगे में बैठ गया......

वहाँ मुझे एक स्वप्न दीखा।

इस बीसवीं सदी में रोमांटिक-युवा, बजाय स्त्री-मात्र के सुहाग की रक्षा करने की कल्पना करे, मीठे-गोरे रक्ताभ सुहाग का ही स्वप्न देखा करते हैं कि वह कैसे खाने को मिले?

मैंने ज्वर से पीड़ित क़ैदी-रूप में उस ताँगे में जाते हुए विचित्र सुहाग-स्वप्न देखा···

"भारत एक राष्ट्र है। यहाँ की ऋतुयें नाना वेषों को धारण कर भारतीय युवा-युवतियों को मुग्ध करती हैं।

मेरे 'गार्ड' के सिपाहियों की बातचीत से मैंने जाना कि आज रक्षा-बन्धन है। आह! इस वर्ष रक्षा-बन्धन स्वयं एक ऋतु के रूप में आया है। आज बहनें गोटे-जरी-रेशम की राखियाँ अपने भाइयों को न बाँध सकी होंगी। कुछों के भाई आज आज़ादी के मोर्चे पर बन्दी हैं, कुछेकों के भाई युद्ध के मोर्चे पर होंगे। राष्ट्र के विरुद्ध राष्ट्र सशस्त्र हमले कर रहे हैं। ऐसे विश्व-युद्ध के दावानल के क्षणों में भारत-माँ के संपूण सुहाग की रक्षा का प्रश्न है। माँ का सुहाग। दो सौ से ज़्यादा वर्ष हो चुके, भारतीय युवक अपनी पत्नी के सुहाग की रक्षा तो जानते हैं। खेद! भारत-माँ के सुहाग की याद भर उनके मस्तिष्कों में नहीं है। यह वर्ष शुभ घड़ी समझो कि इतने सहस्त्र युवक और प्रौढ़ एक स्वर में दृढ़ निश्चित हुए हैं कि माँ के सुहाग की धर्म-बलि हम सबकी अपेक्षा रखती है। इस एक माँ के सुहाग की रक्षा हम कर सकें तो हमारी समस्त कन्याय अपने-अपने सुहाग को सुरक्षित समझें। पूरे राष्ट्र के सुहाग के आँचल में कितने कोटि दम्पत्तियों का सुहाग चैन की साँस लेता है, भला इसका कुछ ठिकाना है।

आज मेरे हाथों में हथकड़ियाँ रूपी राखी बँधी हुई हैं। मैं सहसा मन मे गुनगुनाया, 'रक्षा-बन्धन आई सखे!'

मुक्त दुनिया में बहनें, सहोदरायें, भगिनियाँ अपने भाइयों के हाथों में स्नेह-प्रेम का डोरा बाँधकर कुछ प्रत्याशा में रहती हैं। अवश्य मेरे हाथों में लोह राखी बाँध कर कोई भगिनी रूपा (?) शक्ति मुझ से कुछ प्रत्याशा रख रही है?'

माधवी तुम्हीं बताओ, वह कैसी प्रत्याशा है? मुझे उसका प्रति-उत्तर कैसे देना चाहिए?

एक दिशा से जो अंधड़ पूरे देश में कुछ महीनों पहिले चल पड़ा था, उससे सारे राष्ट्र का व्योम अन्धकारमय हो गया है। जीवित, एक भयंकर स्वप्न देखते हुए, मैं भी बन्दी कारागृह में ले जा पटका गया। माधवी, अब मैं महसूस करता हूँ, मुझे पुलिस ने निरपराध बन्दी नहीं बनाया है। गुलाम राष्ट्र के रक्षा-बन्धन के दायित्व में तो म बाहर भी बन्दी ही रहूँगा। पुलिस ने मुझे यहाँ भेजकर महज़ उस दायित्व का ज्ञान कराया है। उस सार्जेन्ट को कोटिशः धन्यवाद और मेरे उस जीवन की कृतज्ञतायें अर्पित जिसने मुझ पर गोली चलाकर भी मुझे जीवित रखा और यहाँ भेज दिया।

जेल पहुँचकर मुझे एक 'स्ट्रेचर' पर लिटाया गया। यहाँ हल्का चेत मुझे हुआ। उन सिपाहियों ने एक राखी मेरे हाथ में बाँधते हुए कहा कि शहर में महिलाओं का

एक जुलूस जा रहा था। उनमें से एक बहन ने यह राखी ताँगे में फेंकते हुए कहा था कि इसके हाथ में बाँध देना।

जेल हस्पताल पहुँचकर शाम तक मैं पूरे होश में आया। वह राखी मेरे हाथों में बँधी थी। हठात् उत्तेजना हुई कि इस राखी की अधिकारिणी वह अज्ञात बहन अभी इसी क्षण यहाँ आनी चाहिए, मैं अपना जीवन उसके चरणों में भेंट चढ़ा दूँगा ··

पर वहाँ जेल में कहाँ भेंट रखी थी ?

धीरे-धीरे संध्या उतरी। उसके पीछे सकुचाती हुई रात्रि आई। दो घड़ी रात्रि पीछे मेरी खुली आँखों के सामने एक ज्योति प्रकट हुई।

मैंने देखा, उस ज्योत्स्ना में कुछ कमल खिल रहे हैं। अवश्य ये सुहाग-कमल होंगे। इनका अर्थ उस क्षणिक अनुभूति से यही जान सका कि आज इस द्वितीय युद्ध में व्यक्तिगत बहनों, बंधुओं और माताओं के सुहाग की रक्षा का प्रश्न अत्यन्त क्षुण्ण है। हमारी जो अज्ञात बहनें हैं, जिनसे हमारा सम्पर्क कभी न होगा, उन्हें अपने कृत्यों से रक्षा-वचन हम अवश्य दे सकते हैं। अपनी आज की अज्ञात बहन के प्रति मैं गुनगुना उठा।

"सखि ! पथ तुम्हारा कंटकाकीर्ण।
आशीष दो, हो जाऊँ न जीर्ण॥"

इन पंक्तियों को लिखते हुए मेरी आँखें गीली हो उठी हैं।

माधवी तुम्हारे पिता जी, माँ, तुम्हारे 'उन' और सभी रिश्तेदारों के लिए मैं अब भी निरा पागल ही हूँ। तुमने उस दिन कहा था कि मैं विवाह क्यूँ नहीं कर लेता ? विवाह तो मैंने कर लिया। विवाह हो चुकने पर मेरी आधी आत्मा प्रसन्न थी और आधी आत्मा तुम्हारे प्रति अपराधी थी। पर आज मेरी वह अपराध-भावना नष्ट हो गई है माधवी। यह व्यर्थ का वाग्विलास ही हमारे युवकों में भ्रम बना हुआ है कि बिना विवाह के हम किसी कन्या के सुहाग से सान्निध्य नहीं रख पाते। माधवी, अपना कल रात्रि का स्वप्न देखकर मुझे एहसास हुआ है कि मुझ पर तुम्हारे सुहाग की रक्षा का प्रश्न भी है।

इस पत्र के सारे शब्दों को गूँथकर तुम अपनी कलाई में बाँध लेना। तुम्हारी ओर से न सही, मेरी ओर से ही सही एक राखी !

एक बात और लिखूँगा। मैं अब स्वस्थ हूँ। डाक्टर अभी दो दिन मुझे और यहीं जेल अस्पताल के बिस्तरों पर रखेगा। रोगियों को अपना मित्र बनाते हुए मेरा दिल झिझकता है। वैसे बेचैन हूँ अपने नये क़ैदी-मित्रों से मिलने के लिए। जाने कौनसी बैरक में रखा जाऊँगा। जब तक उनसे नहीं मिलता, यही मन में है, बैठा-बैठा तुम्हें एक पुस्तक जित्ता लम्बा पत्र लिखता रहूँ।

दिल्ली जेल में एक ऐसे पागल युवक से परिचय हुआ था, जिसे वहीं जेल में ईश्वर से साक्षात्कार हो चुका है। उसे ४२० के अपराध में सज़ा दी गई है। उसका चालान काफ़ी पहले यहीं लाहौर सैंट्रल जेल में हो गया था। जब कल दिल्ली जेल के परिचित एक हकीम साहब से शेर सुनने के दौरान में उसी युवक की बात चली तो पता लगा कि वह यहीं है, और पता लगा कि जिस दिन से वह यहाँ आया है, उसने कोई मशक्कत नहीं की है। चुप रहता है। मन में आई तो चौथे-पाँचवें रोज़ खा लिया, अन्यथा आँखें बन्द कर खड्डी पर लेटा रहता है। मैंने उनसे कहा कि वह मेरा मित्र है। तो कल शाम को ही जेलर साहब मेरे पास आये। मुझ से बोले कि तुम चक्कियों में जाओ। तुम्हारे लिए ख़ास इजाज़त मैंने दे दी है (बिना आज्ञा के हम क़ैदी इंच दो इंच भी इधर-उधर नहीं जा सकते) वहीं वह तुम्हारा मित्र है। उसके पागलपन का कुछ हल निकाल सको तो निकाल आओ।

मैं ख़ुश हुआ। ईश्वर की साधना का प्रदीप किस प्रचंड-प्रकाश से दहक रहा है और मैं यह हल निकालूँ कि वह दुनियावी दण्ड-व्यवस्था के अनुसार प्रदीप्त न हो, मद्धिम-मद्धिम सुलगता रहे। चला और तुरन्त वहाँ पहुँच गया। सब चक्कियाँ निर्जन थीं। और वह निर्जनता भयावह थी। सिर्फ़ एक क़ैदी नम्बरदार पहरे पर बाहर मिला। उसने कहा, "बाबू, यह भी कोई ज़िद है। भगवान् ने सज़ा दी है दो साल की। वह क्या ऐसे कटेगी? राज़ी-ख़ुशी हँसकर काटने से तो दो साल दो दिन में कट जायेंगे। मुझे देखें, यहाँ जेल में सात साल हो चुके हैं। परसों परेड पर साहब ने इससे कहा कि चलो तुम मशक्कत मत करो, पर बात तो करो। बीड़ी चाहिए बीड़ी माँगो, डबल रोटी माँगो, मक्खन माँगो, जो चाहे सो माँगो, पर जबान से तो बोलो। ऐसा भी दानिशमन्द साहब जेलों में होना था। पर वह नहीं बोला। आख़िर गुस्सा होकर इसे चक्कियों का हुक्म (एकान्तवास) दिया है।"

अन्यत्र भी मैंने अदृष्ट के विचित्र विधान देखे थे, यह भी अदृष्ट का ही विधान था। एकांतवास दण्ड-स्वरूप दिया गया था, पर इस कठोर मौनी को तो यह एकांतवास नित नई कठोर यंत्रनाओं से एक श्रेष्ठ अवकाश मिला है।

मैं उसके पास अन्दर गया। चक्की में पैर रखते ही सन्नाटे में आ गया। सिर घूम गया। आँखों के अन्दर की जैसे ज्योति बुझ गई। आख़िर दो आँसू मेरे ढुलक ही तो पड़े। वह बैठा था···नंगा, सिर घुटा हुआ, जीवित शुष्क माँस का लुँज-पुँज-सा घुटनों में सिर दिये हुए। दो फुट दूरी पर एक मिट्टी के बर्तन में उसका पाखाना पड़ा था। शेष चक्की में मातमी छाई हुई थी। मैंने आवाज़ें दीं···एक, दो, तीन, चार। वह अपनी महान् समाधि में, जो पिछले चार महीने से अबाधित रही है, कठोर मौन बैठा रहा। तो मैंने अपने हाथों से उसका मुख ऊपर उठाकर उसे अपना नाम बतलाया।

चेहरा सिर्फ़ हड्डियों और रक्त धमनियों का मिश्रण-मात्र था। मेरा नाम सुनकर क्षणिक-सी मुस्कराहट उसके मुख पर आई और विलीन हो गई। पूर्ववत् घुटनों में मुख देकर वह बैठ गया।

मैं चुप चला आया। हकीम साहब ने जेलर को आश्वासन दिया था कि मैं उसके अन्तर के हंस को चुहल देकर जेल की आम ज़िन्दगी के मायने समझा सकूँगा। हकीम साहब ने कहा था कि हो सकता है, वह निर्दोष हो और इसीलिए चुनौती भरी ज़िद्द में कोई मशक्कत न करने की मंशा से भूख-हड़ताल और चुप्पी-सी अख्तियार कर रखी हो। पर मेरे मायूस चेहरे को देखकर वे कुछ न बोले और अपनी क़ुरान की आयतें पढ़ने में मशगूल हो गये।

कल शाम मैंने चाय नहीं पी। असहायपूर्ण अधीरता में निराहार रहा कि आखिर क्यों वह शख्स पिछले महीने से बराबर कठोर मौन है और ज़ेल के सब क़ानूनों की अवज्ञा करते हुए ईश्वर के अटल आवास की दीवारों से सर टकरा रहा है। क्यों नहीं वह गीता-धर्म पालन करता और अपने जेल-जीवन को धन्य-धन्य कर अपने ईश्वर की जय-जयकार करता? रात उसकी नग्नता भीषण होकर मुझे एक स्थायी कँपकँपी दे गई।

आज सुबह कुछ बीमार क़ैदी साथियों से रब्बा (ईश्वर) की बातचीत चल रही थी और हकीम साहब इस बहस में खास हिस्सा ले रहे थे।

हाय! ईश्वर, तेरी परिभाषा आगे के कितने हज़ारों वर्षों तक नित नवीन और रहस्यमय होती चली जायगी?

मैंने उस युवक का ज़िक्र किया। तुरन्त एक सज्जन ठहाका लगाकर बोले, "ओह! वह आज सुबह पागलखाने भेज दिया गया है।"

मुझे जैसे १० हज़ार सर्पों ने डस लिया। तिलमिला उठा। अधूरा खाना छोड़कर मैं उठ आया। बाहर बेचैनी से टहलने लगा। सामने जेल की चहारदीवारी से सटा हुआ कोई पागलखाना है। शायद वह कहीं अन्दर उसी पागलखाने के एक कोने में समस्त जेल की कठोर यातनाओं से सुरक्षित उसी अखण्ड ध्यान में मग्न, नग्न, पड़ा हुआ होगा!

हठात् मेरे हाथ हिले। मैंने दूर से ही अपूर्व श्रद्धा में उसको नमस्कार किया। पर यह उलझन अभी नहीं सुलझा सका हूँ कि वह नमस्कार मैंने उस युवक को किया था या उसके ईश्वर को?

ईश्वर किसी के लिए वासना है, किसी के लिए दान है, किसी के लिए मोह है, किसी के लिए प्रचंड प्रकाश है। पर उस भारतीय युवक के लिए तो वह ऐसा गोपनीय मधुर रहस्य बन गया कि जिसकी अगम्य मिठास में मकोड़े-चींटे की तरह से उसने

इस तरह दाँत गोद दिये कि आप उस चींटे को पेट से तोड़कर उसके दो टुकड़े कर दें, पर वह अपने दाँत मीठे में से न उठायेगा।

'ओह! ईश्वर!' आज दुपहर सोने से पहिले मेरे मुख से बरबस निकला, 'तू भी किसी ४२० से कम नहीं है, क्योंकि तेरा उज्ज्वल स्वरूप तो मुझे एक ४२० में ही देखने को मिला है। पर तू किसी वन्य-सुन्दरी से भी कम सरस नहीं है, जिसका ध्यानमात्र ही अगम्य रूप में मीठा है।'

वह युवक जाने कब तक अपनी कठोर तपस्या में मुग्ध, उसी पागलखाने में अपने मन का स्वराज्य भोगता रहेगा, या जल्दी ही मर जायगा, किसी को कोई भी सूचना दिये हुए···

माधवी! मेरा विवाह तुमसे न होकर, रिक्शी से हुआ है। विवाह भला क्या है? आज का हिन्दू समाज विवाह के जो अर्थ लगाता है, मैं उन्हें मानने से इन्कार करता हूँ। रिक्शी से अपनापा जोड़कर केवल मात्र एक कन्या के सुहाग की रक्षा का ज़िम्मा मैंने लिया है, न कि किसी को अपना आश्रित बना लिया है। यदि रिक्शी पूरमपूर मेरे आश्रित रहने की भ्रान्ति में रहेगी सिवाय धोखा खाने के उसे कोई सुख न मिलेगा।

सुहाग की रक्षा कैसे होती है। इस पर मैंने सोचा है। सुहाग की रक्षा की तुलना में उद्यान-वाटिका की रक्षा करने से करता हूँ। बाग-वाटिका की रक्षा यथेष्ट दुर्लभ इसलिए है कि उसमें नये कुसुमित, नूतन उद्भासित और मनोरम मुकुलित पुष्पों को दुलार से पुचकारा जाय, सहलाया जाय, उनकी परवरिश की जाय। बाग की रक्षा आततताइयों से या पशुओं से करना अधिक सहज काम है। विवाह रचकर मुझे उस सुन्दर सुकोमल नवांगना रिक्शी के सुहाग की रक्षा समाज के पराये व्यक्तियों से ही नहीं करनी थी। हमारे राष्ट्र के निमित्त उत्तम सन्तति को वह जन्म देगी, जिसे भली प्रकार हमें पोसना है। मैं कोई गल्ती नहीं करता हूँ, यदि यह कहूँ, विवाह का परम सुख सन्तति है, न कि सुन्दर पत्नी, तो कुछ अतिशयोक्ति न समझ बैठना। इसी निमित्त मैं रिक्शी के विवाह-मण्डप तले समाज के पंचों को साक्षी कर उसे ले आया था। विवाह-मण्डप तले वे समाज के पंच-साक्षी हाजिर न हुए होते तो कितना अनर्थ न हो गया होता? दुनियाँ यही कहती कि मैं रिक्शी का अपहरण कर लाया हूँ? यह मूर्ख दुनियाँ और ये ज़लील समाज के पंच। ये समाज के पंच इंसान हुए होते, मेरा विवाह तुम्हीं से होना चाहिए था।

खैर, मैं रिक्शी को वधु की सज्जा में विभूषित घर ले आया था। शीघ्र ही मैंने निश्चय किया था कि रिक्शी के सुहाग-बसन्त की पूर्णिमा की स्निग्ध शीतल चाँदनी भरी रात्रि में हमारे नव-दाम्पत्य का दीपमालिकोत्सव काश्मीर की केशर-क्यारियों में

और देश के अन्य सौन्दर्य-विहारों में मनाऊँगा। दीपावली लक्ष्मी देवि (युवति ?) की पूजा के निमित्त है। कालेज में ही मेरा निश्चय था कि मैं अपने नव दाम्पत्य की दीपावली का उत्सव अपने नूतन सौन्दर्य (उस रिक्शी) पर अपने अन्त:मधु का अर्घ्य देकर पूरी रात्रि मधु के गीत गुनगुनाऊँगा और विहार करूँगा। रिक्शी की रक्षा इस प्रकार विचित्र प्रकार से नैसर्गिक तौर पर सुचारु और नियमित होती रहेगी···

परन्तु इस सुहाग-यात्रा के दौरान में जगत्-विधना ने मुझे ज़िन्दगी के नये मुड़ाव पर लाकर जेल भेज दिया है। निरपराध ही सही, पर सोद्देश्य। उस उद्देश्य की खोज अभी बराबर कर रहा हूँ।

राजनीतिक क़ैदी
रजनी"

निरा बच्चा! अपनी शादी की साफ़गोई कर रहा है मुझ से। मैं तो बहुत ख़ुश हूँ उसके विवाह से। रजनी को यह पत्र लिखने की क्यों सूझी? और इसका उत्तर मैं क्या दूँ? रजनी दुर्बुद्धि जैसा पहले था, वैसा ही अब भी है। विवाह का अर्थ वह नारी-पुरुष की चरम सिद्धि नहीं मानता। सुहाग को विवाह का केन्द्र मान बैठा है। जेल को ज़िन्दगी का नया मुड़ाव लिख रहा है। और समाज के पंचों को जलील।

द्वितीय विश्व-युद्ध की दाहक लपटें राष्ट्र के किसी अंग या तत्त्व को अछूता नहीं रख रही हैं। समाज के पंचों की जलालत से एक रजनी है जो विवाह को सुहाग की रक्षा समझता है और भारतीय आज़ादी की क़ैद को ज़िन्दगी का नया मुड़ाव सोद्देश्य मानता है। दूसरी ओर मेरी एक सखी का देवर कैप्टेन अधिकारी है। वह भी समाज के पंचों की दुष्टता का और उनके विषाक्त व्यंगों का शिकार हुआ है। शायद, इसी के विरुद्ध विद्रोह उसने यही किया है कि वह विवाह की कोई मर्यादा ही नहीं मानने लगा है। अब उसके लिए उसके मोर्चे पर स्त्रियाँ 'विह्स्की की बोतलें' बन चुकी हैं। एक खाली की और दूसरी उठाकर अपने सामने टेबल पर रख ली। आज इस देशव्यापी आँधी में भारतीय युवकों का मस्तिष्क विभिन्न दिशाओं में उद्वेलित हो रहा है। यह मैं अभी से कैसे कह सकती हूँ कि इस युद्ध की छाप उस मस्तिष्क पर स्थायी रहेगी, या कि हमारी इस भारतीय आज़ादी की लड़ाई की?

अधिकारी के मामले को लेकर ही, मैंने जब यह सोचा कि हम सभी ज़रा-सी उत्तेजना आने पर समाज के पंचों के विरुद्ध विष-वमन करने लगते हैं, सो भला ये समाज के पंच लोग कौन हैं? तो कम से कम अपने ऊपर ही मुझे ग्लानि हो आई। हमारे राष्ट्रीय चरित्र में यह एक पहली नम्बर की दुर्बलता और निष्क्रियता घुस आई है कि हम ऐसी शक्तियों को तो कोसने लगते हैं जो कि सिर्फ़ काल्पनिक होती हैं,

लेकिन उन शक्तियों का मुक़बला कभी भी नहीं करते जो कि जीवित होती हैं और हमारी आँखों के सामने बनी रहती हैं। अरे, आज तो हम सभी किसी-न-किसी अंश I समाज के पंच बने हुए हैं और हैं। पर जहाँ दुहाई देने से काम चल जाता हो और जल्दी ही फ़ुर्सत मिल सकती हो, वहाँ संघर्ष कौन करे ? करे वह, जिसके सिर में फ़िज़ूल का जुनून चढ़ा हुआ हो ! रजनी तक ने तो अपने समाज के पंचों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए अपने घुटने शिथिल कर मोड़ दिये हैं और बैठ गया है···

तीसरा सोमवार हुआ, एक मातमी में अपने फुफिया ससुर के गई थी। पड़ौस के दूसरे मकान में ही बचपन की एक सखी मिल गई। अब वह विधवा है। एक दिन उसके यहाँ भी ठहरी थी। उसका यह देवर कैप्टेन अधिकारी फ़ौज में है। सबसे पहले उसने एक प्रसिद्ध हिन्दी-लेखिका की बहन से प्रेम किया था। पर वह उसकी निजी जाति की न थी और बस, अधिकारी के नाते-रिश्तेदारों ने मुँह बिचकाना शुरू कर दिया था। मजबूरन उसने उससे सिविल-मैरिज कर लिया था। लेकिन ओर-पास के समाज के पंचों का विष उस नव-दम्पत्ति पर यह क़हर ढहा गया कि उन दोनों की मानसिक शान्ति भंग कर गया और दोनों एक-दूसरे को ही ग़लत समझने लगे। उनकी दशा उन क़ैदियों-की-सी हो गई जो कि जेलर के विष-संचरण के कारण आपस में एक-दूसरे के ख़ून के प्यासे हो जायें। उस प्रतिशोध-अग्नि में सुलगते हुए वे मिलकर जेलर के खिलाफ़ कभी भी डटकर मुक़ाबला करने की नौबत सोच भी नहीं सकेंगे। अधिकारी का यह सिविल-मैरिज इसी वजह से ज़्यादा नहीं चल सका था। दो-चार हफ़्ते बाद ही रसोई के चिमटे-बेलन पर और स्नानगृह के मैले तौलिये पर और 'हाटशावर' के रिक्त रहने पर कुछ बिन चाहे तेज़ बातें होने लगी थीं। दोनों पति-पत्नी के मन का क्लेद ऐसा फफूँद उठा था गोया कि दोनों एकदम गँवार हों, और नकली नक़ाब पहनकर इस शानदार कोठी में ज़बरदस्ती तमीज़दारी के और नये फ़ैशन के दावेदार बने बैठे हों। और, क्योंकि उन दोनों ने कभी भी यह नहीं सोचा था कि वे आपस में मिलकर उनमें ईर्ष्या का विष फैलाने वालों के ख़िलाफ़ डटकर मोर्चा लें, आपस में ही वे अपना स्थायी विछोह कर बैठे थे। अब वे पहली पत्नी साहिबा विलायत चली गई हैं और वहाँ उच्च विद्याध्ययन कर रही हैं। लेकिन सिर्फ़ अपने दम्भ का। न कि इस बात को समझने का कि उनका स्थायी विछोह उनके जीवन की कौन सी दुर्बलता और नासमझी के कारण हुआ। अरे, इस विलायत के विद्याध्ययन ने कब हमारे देश को एक स्वस्थ चिन्तन दिया है कि हमारे वे इंगलैंड-रिटर्न्ड छात्र सरस सामाजिक जीवन बिता सके हों आजीवन !!

इधर अधिकारी पर भी इस विछोह की प्रतिक्रिया उल्टी ही हुई। उसने यही सोचा कि उसमें आत्मभ्रम रेशे भर भी नहीं है कि विलायत में विद्याध्ययन करती

हुई एक भारतीय छात्रा का वह नियमित पति है, सो अपने फ़ौजी मन में छुटपना दिखलाये, दुर्बलता लाये और अभिमानिनी नाजिनी छात्रा टाइप की गँवार लड़की से समझौता कर ले। उसने तो सोचा कि सिविल मैरिज किया ही इसलिए था कि वह किसी भी तरह सूखी लकड़ी की तरह से दो टूक तोड़ा जा सके किसी भी क्षण ! उसे ख्याल आया कि सिविल-मैरिज से पहले, उस शोख लड़की ने जब अधिकारी का मन मोह लिया तो प्रस्ताव किया था कि वह उसके घर बाक़ायदा बारात लेकर आयगा। लेकिन तभी उस प्रस्ताव को सुनते ही अधिकारी के मन में संशय उठा था, जो कि असली में महज उसके मन में उसके साथी रिश्तेदारों का विष-संचरण मात्र था, कि कहीं विवाह के बाद भी यह मूर्ख लड़की ऐसी ही बदतमीजी की बातें यदा-कदा करने लगेगी तो कैसे चलेगा। फिर भी उस वक़्त तो वह रोमांस की नशीली तेज़ी में मुस्करा दिया था और यही मज़ाक कर बैठा था, "ओह ! बरात ! ख्याल तो सचमुच एकदम सोडावाटर के उफान-सा है। लेकिन भई बुरा न मानना, बरात के वे गाजे-बाजे और बरात के वे बराती और बरात के वे टीमटाम क्या गोबर के कंडे-से नहीं होते जो चूल्हे में ज़रा तसल्ली से जलते हैं और तसल्ली से ही घर-भर में अँधेरा फैलाने वाला धुवाँ भर देते हैं। बरात ! (और भी खिलखिलाकर उसने कहा था) यह बरात तो वह बदबूदार हुक्का है जिसे हमारे-तुम्हारे बापदादा काफ़ी गुड़गुड़ा चुके हैं और उसे हमें ताक पर रख देना ही बेहतर है। मैं इस बरात का कफन मिलिटरी-सैल्यूट के साथ दफनाना चाहूँगा।" सुनकर वह बरबस इतने ज़ोर से हँस उठी थी कि अधिकारी को उस समय फिर कैसा भी गँवारपने का संशय उस शोख लड़की में नहीं रहा था······पर समाज के पंच तो उसके इर्द-गिर्द भूत की तरह से पीछे पड़े हुए थे। विछोह के बाद अधिकारी ने इन लाइनों पर सोचा कि सिविल-मैरिज को भला देशी विवाह में परिवर्तित किया जा सकेगा ? अन्यथा, उस घमंडी औरत से किस शर्त पर समझौता कर ले ? समझौते का सीधा परिणाम यही, कोई भी समझदार, निकालना चाहेगा कि वह औरत नकेल पहन ले और मेरे घर में पतिव्रता बनकर रहे और बिना बात खूँटा तुड़ाकर न भागे ! नहीं, वह अपने घर में जानवराना तर्ज़ के खूँटे नहीं चाहता हरगिज़। वह लड़की इंगलैंड क्या अमरीका भी पढ़ आये, वह उससे तभी मेल करेगा कि वह तमीज़ सीखे उसके मन के मुताबिक ! उसके विछोह से अपने सूखे मन को, व्यर्थ की नैतिकता से सींचकर, न तो वह हरा करेगा, न इंगलैंड पत्र लिखकर वह उस बड़े घर की लाड़ली बेटी को मनाने बैठेगा। और उसे झुकाने के लिए न स्वयं ही झुकेगा······

'फ्रंट' पर उसे अनेक मिसों से बलात् और हठात् मित्रतायें करनी पड़ी हैं। अपने से नीचे और अपने से ऊपर के अफ़सरों की पत्नियों से मौक़े-मौक़े की हर तरह

की मजाक करने का मौक़ा मिलता रहा है। जवान 'आया' और दाइयों से मसखरी करने का मामला भी अक्सर आया है और मिलिटरी अस्पतालों में तो प्रायः ख़ूबसूरत नर्सों से न जाने कैसी-कैसी सैक्स्युल हँसो की खुमारी के दौर चलते रहे हैं। उन दौरों का नतीजा क्या होना चाहिए था, यह बात अलग है। उन दौरों का सिलसिला मन को कितनी शान्ति और तृप्ति देता है, इससे अधिकारी को सबसे ज़्यादा मतलब है। वरना मिलिटरी का जीवन ही नीरस हो जाय······

लेकिन अधिकारी ऐसा मूर्ख नहीं है कि वह इन मिलिटरी की मिसों और नर्सों से मिलकर एक सामूहिक नारी की व्याख्या बना लेता कि नारी इन मिलिटरी की मिसों की तरह स्वच्छंद रहे, मुक्त रहे, और इस प्रकार चौबीसों घंटे सरस-रति बनकर रहे। और, न उसने यही कभी तय पाया है कि वह इस प्रकार मधुर काल्पनिक जीवन बिताये, जिस में जितना भी यथार्थ रहे, बस वह मधुर और स्वादि ट ही रहे। तिक्तता और कटुता कल्पना में भले ही आ ले······यथार्थता में कतई न आने पाये। ऐसा सम्बन्ध नारी और पुरुष में हो तो जीवन है, अन्यथा जीवन न हो तो बहतर। पर नहीं। अधिकारी जानता है कि इन फ़ौजी औरतों में और गार्हस्थिक नारियों में बन्दूक की गोली और पिस्तौल के कारतूस-का-सा अन्तर है। बन्दूक की गोली बिन-बाधा लम्बे व्यवधान तक उड़ान भर सकती है। पिस्तौल के कारतूस का दायरा सीमित होता है। गृहस्थी का गृहस्थ उन औरतों से ही बसेगा, चाहे वे फ़ौजी गृहस्थियाँ ही क्यों न हों, जो कि चूल्हे की तपिश को बरदाश्त करने का माद्दा रखती हैं और पति के क्रोध का पसीना चुपके से छाती की खाई में बहा देने की तमा रखती हैं। पर, उसके कथनानुसार, यह भी सौ फ़ी सदी सच है कि सेना का स्वर्ग फ़ौजी औरतों पर ही टिकेगा।

इस लिहाज से, यह सब बातें देखते हुए, इस जवानी को कितने आश्रमों में वर्णित और विभक्त किया जा सकेगा भला? इस बात पर अधिकारी ने अपने आरामगाह के शिविर में पड़े-पड़े ख़ूब सोचा है कई-कई घंटे और जो तनिक-सा निष्कर्ष वह अपने चिन्तन का निकाल सका है, उसी के आधार पर, पिछले साल के चार महीनों की छुट्टियों में वह नैनी को विवाह लाया था। यद्यपि इंगलैंड में पढ़ रही छात्रा को तलाक नहीं दिया गया है। उसकी ज़रूरत इसलिए नहीं पड़ी है कि शायद वह मगरूर लड़की किसी दिन शाम को वापस लौट आये।

लेकिन इस बार अधिकारी जब घर लौटा है तो उसने एक नया प्रश्नवाचक चिह्न न सिर्फ़ अपनी भाभी के सामने बल्कि मेरे सामने भी खड़ा कर दिया है। इस चिह्न को देखते ही नैनी तो ख़ूब ही ख़ूब रो ली है। अधिकारी चाहता है कि वह अपने फ़ौजी मोर्चे पर जब कभी भी सुविधा अपनी फेमिली को रखने की पायगा तो

वह मिस कुसुमलता को ही अपने साथ रखेगा, न कि मिसेज नैनी को !!

अधिकारी ने यह नई आगबबूले-सी बात अपने चेहरे को खूब तमतमाकर भाभी से कही थी ताकि वह उससे कोई बहस न करे और नैनी कैसा भी सवाल करने का हौसला न लावे। वह मुट्ठी दिखाता हुआ बोला था, "भाभी, अभी मेरी मुट्ठियों की ताकत नैनी ने नहीं छीन ली है, जो मैं यह बात कह रहा हूँ कि नैनी को मैं घर से नहीं निकालना चाहता। नैनी के आँचल में कसकर और उसकी मुट्ठियों में जकड़ कर बँधने की तारीख़ अभी मेरी नहीं आई है। सवाल सिर्फ़ यह है कि नैनी की सखी नैनी की म्यान में रह सकती है कि नहीं ?"

उसकी भाभी ने तपाक से पूछा था, "लालाजी, नैनी उस साहबज़ादी की म्यान में रह रही है या वह विलायत से लौटकर नैनी की म्यान में रहेगी ?"

अधिकारी ने जवाब दिया, "वह साहबज़ादी क्या खाकर अपनी कोई म्यान रखेगी। उसकी अक्ल तो मैंने खूब ठोक-पीटकर ठिकाने ला दी है।"

भाभी मन के आह्लाद के अनुरूप चुहल रखती है और देख रही है कि उसके देवर जी कितनी निपुणता से अपनी तीसरी बहू के लाने का षड्यंत्र रच रहे हैं। इसलिए उसने मज़ाक में पूछा, "नैनी बीबी जी की म्यान में मेरे लिए भी ठौर है क्या ?"

तो अधिकारी ने अपना सवाल मुख्य रखते हुए कहा, "अरे इन गिरिस्तियों की छोकरियों की म्यान में कुल तीन बित्ते ही तो जगह रहती है, जिसमें ब-मुश्किल वे खुद ही रह पाती हैं। हाँ, कुसुमलता का सवाल हल करके ही मैं जाना चाहता हूँ। यह सच है कि मैंने कल इसी बात पर नैनी को तमाचा मारा था। पर यह झूठ है कि अभी मैंने कुसुम को विवाह का वचन दिया है। मैंने कुसुम से केवल यही कहा था कि मेरा ठीक-ठिकाना क्या है, यह तुम जानती हो। आज फ़ौज में जाने कहाँ-कहाँ घूमना पड़ता है। और न जाने कब तक यह लड़ाई चलती रहे और उस वजह से तुम को अपने साथ एक लम्बे समय तक मैं अपने साथ न रख सकूँ। मेरे से विवाह कर तुम अपना ठीक-ठिकाना निश्चित करना चाहती हो, तो तुम्हारी भूल है। नासमझी है। दुनियाँ में अब किस देश में विवाह का ठीक-ठिकाना रहा है। विवाह तो बस, अब भूलभुलैयाँ का केन्द्रबिन्दु-सा रह गया है, जहाँ पहुँचकर हज़बेंड-वाइफ़ आपस में पूछते हैं कि अब हम लोगों को किधर चलना है ? मैंने कुसुमलता से साफ़ कहा है कि मुझे तुम से चूल्हा जलवाना नहीं है, न अपने पैर दबवाने हैं, न अपने कमरे की सजावट करवानी है। सो, कुसुम, पहले तुम अपना ठीक-ठिकाना तय कर लो, उसके बाद ही हम आगे का रास्ता तय कर सकते हैं।"

इधर वह अपनी साफ़गोई दे रहा था, उधर नैनी ज़ोर-ज़ोर से रो रही थी। अधिकारी ने गुस्से में अब कहा, "देख लिया इस पगली को, भाभी ? यह भला क्यों

रो रही है। फौज में छोकरियाँ यों रोने लगें तो लड़ाई शायद दिन भर में पानी-पानी हो जाय। इसे मैं घर से तो नहीं निकाल रहा। अगर यह हमारी फ़ौजी ज़िन्दगी देख ले तो शायद ज़हर खाकर मर जाय। वह कुसुमलता तो आज तक नहीं रोई है। उल्टे उसी ने इससे मेरा परिचय कराया था। इससे जब मैंने विवाह किया तो वह तो नहीं रोई थी। उल्टे उसने हँसकर मुझ से यही कहा था कि कहिये, हमारी सखी को मौज में कहाँ उड़ाये लिये जा रहे हैं ?"

भाभी को नाहक क्रोध बढ़ रहा था। वह पूछ बैठी, "पर क्या तुम्हारी उस नई-नवेली सांडनी कुसुम की म्यान में १० वित्ते जगह है जो वह तुम्हें भी रख लेगी और उसमें ख़ुद भी रह लेगी। नैनी की बात ख़ैर तुम छोड़ो।"

इस पर अधिकारी गरज उठा था, "पर कुसुम कोई ठेका नहीं लेना चाहती कि वह मुझे भी रखे और इस नैनी को भी। ठेके की बात सोचकर न मैं इस नैनी को लाया था, न उस नवाबजादिन को! फिर क्यों नैनी ठेके की शर्तों की बाजी लगाकर मुझे अपने चूल्हे के दायरे में बन्द करना चाहती है। ठेके के मायनों में विवाह करने से इंसानियत तो गिरती ही है, औरत जात भी अपना पतन करती है।" और फिर हल्के स्वर में वह पिछले तीन दिनों से लगातार नैनी को रोते हुए देखकर बड़बड़ाया था, "यह हमारी देशी गिरिस्तीयाँ क्या सदा ही रो-रोकर जीवित रहेंगी!"

नैनी को लाने में उसकी भाभी ने इसलिए कोई एतराज नहीं उठाया था क्योंकि उसे भी विश्वास था कि वह विलायत वाली नवाबजादिन क्या लौटती दीखती है। लेकिन अब तो वह नैनी की सौत लाने का डटकर मुक़ाबला करेगी। सो पूछा, "लाला जी, तुम शायद फ़ौज में जो कैप्टेन हो, सो बिना शर्तों के हो ?"

कुछ परेशानी में अधिकारी ने उत्तर दिया, "नहीं तो।"

तो भाभी ने ज़रा डाँटते हुए कहा, "तो लाला जी, विवाह भी पुरुषों का इकतरफ़ा शर्तों वाला स्वार्थ नहीं, जो आप अपनी तरह से बनाकर चलायें। और न विवाह रेलगाड़ी में चलते हुए अनजान यात्रियों का हल्का-फुल्का परिचय ही है। तुम नैनी को जब घर में लाने लगे थे, तभी मैंने साफ़ कह दिया था कि ख़ूब सोच लो कि नैनी के बाद किसी दूसरी छोकरी को और लाने का जनून तुम्हें न चढ़ जाय। इससे अच्छा तो यही है कि पहले तुम उस छोकरी को ही ले आओ। वरना, बाद में कहीं तुम्हें शराबियों-सी हूक उठे और तुम दौड़-दौड़कर नैनी की ज़ंजीर तुड़ाना चाहो। तब तुमने साफ़ कहा था कि नहीं, नैनी मुझे आख़िरी शान्ति देगी और मैं कोई तीसरी शादी न करूँगा। तुम नैनी को जब वर कर लाये थे तो मैंने यही समझा था कि जैसे बस, तुम लड़ाई की ही विजय वर लाये हो और अब सब जगह शान्ति छा जायगी।"

अधिकारी ने इन बातों को काटते हुए टोका, "मैं भाभी उन पुरानी बातों

को भूलना चाहता हूँ।"

मेरी सखी जानती थी कि वह कुसुमलता नैनी से कहीं बदशक्ल है। वह उसकी दूसरी सौत-देवरनिया हरगिज नहीं बन सकती। इस कैप्टेन लाला जी-जैसी अगर सब की चल जाय, तो सारे घरों में फ़ौजी नर्सों वाला राज हो जाय। और हम नागरिक औरतें अपनी बन्द म्यानों की जंग खाई हुई तलवारें ही बस रह जायँ। इसीलिए उसने कड़ाई से उत्तर देते हुए कहा, "तुम तो न जाने क्या-क्या भूल जाना चाहते हो ? इसीलिए कहना पड़ता है। सारी दुनियाँ में शोर मच रहा है कि यह लड़ाई बन्द हो। और तुम कुसुम को लाने का डंका बजाना चाहते हो। याद रखो, कुसुम इस घर में साक्षात् कलह की देवी बनकर आयगी। और, उसके बच्चे यदि तीसरी लड़ाई की न सोचेंगे, तो कम से कम इस घर में एक छोटा-मोटा भारतीय गृहयुद्ध ज़रूर मचा देंगे। मैं नहीं चाहती कि नैनी के पेट से जो मेरे भतीजे हों, वे एक दिन भी तीसरी लड़ाई की सोचें। और, मैं यह तो एकदम नहीं चाहती कि हमारी नई गृहस्थियाँ फ़ौजी शिविर या पड़ाव बन जायँ।"

अधिकारी कुछ अपना तर्क इसके जवाब में पेश करना चाहता था। पर उसकी भाभी ने ऐसी डाँट बताई कि वह लपककर चार दिनों से रोती हुई नैनी को सान्त्वना देने के लिए अन्दर चला गया। देखें कब तक उसमें यह समाधान स्थायी रहता है।

भारतीय गृह-युद्ध ! सखी ने कितना चरम सत्य कहा है ! जब तक हमारे भारतीय समाज के छोटे-मोटे गृह-युद्ध शान्त नहीं होंगे, तब तक कैसे हमारा देश सार्वभौतिक शान्ति भोग सकता है ?

× × ×

फ़ौज के शिविर-पड़ाव, एक लम्बा समय हो चुका है। भारत में बाहरी हमलों का और आन्तरिक अव्यवस्था का क्रम टूटे नहीं टूटा है। इतनी लम्बी अशान्ति में अनेक प्रसिद्ध कत्लेआम भी हो चुके हैं। समाज की कछुवे-की-सी पीठ पर कई सहस्र कठिन हथौड़े की चोटें भी पड़ी हैं। देश में गहरे भूकम्प भी आये हैं। वर्षा की अनेक प्रलयों ने भी अपने को गहरी जड़ों में धँसाये हुए भारतीय समाज की कसौटी पर कसा है। इन सबके बावजूद १८५७ में नवाबी नपुंसकता की जड़ को काटकर कराल-काल भारतीय समाज को ठेठ पश्चिमी परतन्त्रता के कुहरे में धक्का दे देता है। भारतीय समाज इन परीक्षाओं में इतना तो शिथिल हो जाता है कि जैसे काला जवान नाग (सर्प) सपेरों के हाथों में एक झटका खाते ही अर्द्ध-मृत होकर गिर पड़ता है। घंटों नहीं, वर्षों गिरा रहता है। देश की इस अर्द्ध-चेतना में भारतीय समाज की नैतिकता भी कुछ यहाँ, कुछ वहाँ पतित होती है। पर भारतीय गृहस्थियाँ फ़ौज के शिविर-पड़ाव कभी नहीं बनतीं। आज वे बन सकेंगी, मुझे सन्देह है।

गृहस्थियाँ विवेक से जीवित नहीं रहा करतीं। गृहस्थियाँ अपने पड़ौस की पीठिका पर अवलम्बित होती हैं। यह पीठिका लिखते हुए अत्यन्त लाज में गड़ी जा रही हूँ, आज के हमारे समाज में केवल मात्र यौन होता है। या सीधे शब्दों में लिखूँ, गृहस्थियाँ अपने सृजनशील-यौन के विकास पर विकास पाती हैं। इसके विपरीत युद्ध इन्हीं गृहस्थियों के स्वच्छ विकसित यौन को गँदला कर एक-दो गृहस्थियाँ नहीं, समूचे राष्ट्र की गृहस्थियों को विवेक-शून्य बना देता है और अपनी नई सड़क के बनने के लिए पत्थर की टूक-टूक गिट्टियाँ !!!

रजनी, अधिकारी और 'वे' वर्तमान भारतीय-यौन के तीन विभिन्न प्रतिनिधि हैं। इन तीनों में से इसी यौन का प्रशस्त मार्ग जिसका होगा, वही अपने राष्ट्र के भविष्य-भाग्य के बन्द द्वार खोल सकेगा। क्योंकि मैं यह मानने लगी हूँ, यौन धातु की वह अन्दरूनी चमक है, जो धातु के कटते ही अपना प्रतिबिम्ब उज्ज्वलतम रूप में देती है। राष्ट्र, समाज और गृहस्थियों की अन्दरूनी चमक यही यौन है।

× × ×

प्रायः सब ने ही दूर से आती हुई आँधी देखी होगी। धूल और तिनके और कूड़ा-करकट पेड़ों के सिरों पर और मकानों की छतों के ऊपर साँय-साँय करता हुआ दूर से ही चारों ओर अँधेरा-सा फैला देता है और आगे बढ़ता हुआ सबकी आँखों में धूल भरता जाता है। और आगे बढ़ता जाता है। यह आँधी या अंधड़ सदा ही जंगलों की ओर से आते हैं। पैर से पिटी हुई धूल जब सिर पर चढ़कर बोलती है तो हानि उससे ज़्यादा नहीं होती। लेकिन जब जंगल की अपमानित धूल सिर पर चढ़कर अपना विध्वंस खेलती है तो क्या टूटेगा और क्या गिरेगा इसका अन्दाज़ा पहले से नहीं होता है।

देश में जो आँधी इस समय चल रही है, वह किन जंगलों से उठी है और उसमें कहाँ-कहाँ का कूड़ा उड़ा हुआ चला आ रहा है, इसका हिसाब आज एकदम तो होना मुश्किल ही मालूम पड़ता है। इस आँधी में हमारे दिमाग़ों के न जाने कौन-कौन से कंगूरे ढह गये हैं, और न जाने हमारे दिलों के कितने बाग़ उजड़ गये हैं। कल तक जो इरादे हमने बड़ी सँभालकर रखे थे, वे आज हमारे बस के नहीं रहे हैं। इतना सब कुछ विस्फोट हो रहा है, फिर भी सब लोग अत्यन्त निश्चित हैं और परेशान नहीं। और जो भी घटता रहता है, उसे इस तरह से हथेली पसारकर लेते जा रहे हैं, जैसे तो हमारा दुर्भाग्य भी हमें कुछ चीज़ें दान में बाँट सकता है खुलेआम !!

राशन ! था कोई युग जिस में दानी राजा लोग रोजाना हज़ारों गायों का दान करने के उपरान्त ही अन्न-जल ग्रहण किया करते थे। और उस समय ब्राह्मण लोग कतार बाँधकर वह दान स्वीकार किया करते थे। आजकल भी कतारें लगती

हैं। और उस कतार में जो दान मिलता है वह गाय के रूप में दूध का अक्षय भण्डार नहीं होता है। आज हमारे नागरिक अनाथ और असहाय बने हुए उन कतारों में खड़े रहते हैं और सड़ा-सड़ाया जो भी अन्न और अन्य खाने की मुख्य वस्तुएँ उन्हें दी जाती हैं, वे ठण्डी साँस भरकर ले लेते हैं और किसी से शिकायत नहीं कर सकते। यह राशन हमारी पेट की सूखी हुई अंतड़ियों का असंगत गान बन गया है और सब इसे गाने के लिए मजबूर हो गये हैं।

"क्यू !" रेल के टिकट ख़रीदने के लिए 'क्यू' लगाइये। राशन के लिए 'क्यू' लगाइये। सिनेमा का टिकट लेने के लिए 'क्यू' लगाइये। अरे, कहीं-कहीं तो यह स्थिति है कि विवाह-शादी के लिए चीनी या अतिरिक्त अन्न ख़रीदने के लिए भी 'क्यू' लगाइये। और यह 'क्यू' वहाँ तो एकदम नग्न हो जाती है कि जब लड़की वाले किसी धर्मशाला में अपनी बेटी की शादी करने या वहाँ अपनी बारात ठहराने के लिए 'क्यू' लगाये खड़े रहते हैं। यह 'क्यू' हमारे समाज के पंचों को अँगूठा दिखाकर एक बिना-पंचों की पंचायत बन चुका है। लेकिन जिस पंचायत में हमारी पशुवत् वासनायें दबने के बजाय और भी अधिक उफ़नती जा रही हैं। जब मैं इन 'क्यूओं' में भद्र और शील परिवारों की स्त्रियों को खड़ी हुई देखती हूँ तो कैसा ही विरस मन मेरा हो जाता है। इस 'क्यू' में लोगों की ऊँची-नीची निष्टायें एक भाव तुलती हैं और बड़ी निष्ठुरता से लोगों के झूठे स्वाभिमान नीलामी मोल बेच दिये जाते हैं!!

परमिट! जहाँ राशन और 'क्यू' ने हमारे छोटी-छोटी कोठरियों में बन्द सामाजिक वर्गों को बलात् बाहर खींचकर एक लाइन में खड़ा कर दिया है और एक नये जन-जीवन का श्रीगणेश देशव्यापी पैमाने पर शुरू हुआ है, वहाँ परमिट ने जन-जीवन के इस आन्दोलन को गहरी क्षति पहुँचाई है। परमिट सीधे मायनों में हमारी शासक-नीति का वह खुला शराबख़ाना है, जहाँ कि सिर्फ़ वे ही खुली और सस्ते दामों शराब पा सकते हैं जो कि इस नव-जीवन के ऊपर क़ैदी-वार्डर-का-सा काम निःशुल्क करने को तैयार रहते हों!! परमिट हमारी सामूहिक बदनीयतों का वह ताज़ा प्रमाणपत्र है, जिससे आप एक व्यापक नारकीय यंत्रणा व्यापारिक भाव पर बेचने की छूट पा सकते हैं!!!

महँगाई! जब खून का दबाव बढ़ता है तो दिमाग़ में सरदर्द हो जाता है और दिल की हरक़त बढ़ जाती है। आज सारे देश के ख़ून का दबाव बढ़ गया है। दूषित खून का दबाव सारे देश में है, इसी का पक्का सबूत यह महँगाई है। इस महँगाई से आज हर नागरिक का सरदर्द तेज़ी पर है। और उसके दिल की हरकत बढ़ी हुई है। लेकिन, यह कहते हुए मैं विनम्र हूँ, कि इस देशव्यापी ख़ून के बढ़ाव का रोग कैसे अच्छा हो, जब कि हमारे भाग्य-विधाता एक सामूहिक षड्यन्त्र किये बैठे हैं कि

यह रोग बना रहे और उसी की क़ीमत पर ऊपर लाखों के वारे-न्यारे कमा लिये जायँ। महँगाई हमारे जन-जीवन की वह कच्ची छत है, जिससे उस जन-जीवन का संरक्षण किसी भी क्षण नहीं है, बल्कि भयातुर रहकर वह एक जुट कभी नहीं हो पायेगा !!

आज घर-घर में, मुहल्ले-मुहल्ले में, नगर-नगर में, सब ठौर, सब मुहल्लों में एक बात एक-सा, एक स्तर पर फैली हुई है। हमारे रुपये का मूल्य गिरता जा रहा है। वह सिर्फ़ चार आने भर रह गया है। पर, क्योंकि आज भी उसका नाम रुपया है, इसलिए सभी उसे रुपया मानकर यही चाहते हैं कि किसी भी भाव पर, किसी भी क़ीमत पर, किसी भी षड्यन्त्र से, किसी भी बदतमीजी से, किसी भी धोखा-धड़ी से, किसी भी तरह की बेईमानी से, किसी भी तरह की नीचता से हाथ के एक रुपये को फैलाकर उसके चार-पाँच रुपये बना लिये जायँ। रुपये कमाने का सत्र आज हरेक के दिमाग़ से गन्दे नाले-सा बह पड़ा है। और सभी यह नहीं जानते हैं कि वे इस तरह अथाह सम्पत्ति कमाकर क्या करेंगे ? लोगों का यह कुत्सित लोभ चारों ओर एक नयी तरह की महामारी की शक्ल में छाता चला जा रहा है और हमारे देश पर टिड्डी-दल-सा टूट पड़ा है।

देशव्यापी आँधी में और भी अनेक तरह के तिनके, कूड़े-करकट और घास-फूँस उड़े चले आ रहे हैं।

विश्व में भी एक आँधी चल रही है। लेकिन यह देश-व्यापी आँधी ही हमारी आँखों में धूल झौंक रही है। और इस आँधी में हम आधे इंसान रह गये हैं, आधे हिटलरी नाज़ी बनते जा रहे हैं। अतिशयोक्ति यह नहीं है। देश के ४४ करोड़ इंसानों पर यह लागू होती है !!! न जाने कौन अदृष्ट राक्षस ये ४४ करोड़ दुमुँही-नक़ाबें चुपके से हर इंसान को बाँट गया है।

× × ×

कल रेणुका के घर से लौटी हूँ। पिछले सप्ताह उसका छोटा भाई मुझे लेने आया था। उसके पिता जी ने बुलाया था। और साथ ही ललिता देवी ने भी एक छोटा-सा पुर्जा लिखा कि मैं ज़रूर आऊँ। लाचारी वैसे जाने की नहीं थी। लेकिन मैं समझ गई कि रेणुका की ज़िन्दगी किसी अकल्पित खतरे में झूल रही होगी। उसके छोटे भाई ने तो सिर्फ़ यही बताया कि वह बड़े अस्पताल में पड़ी हुई है और उसकी हालत नाज़ुक है। अपने बड़े मुनीज जी से आज्ञा लेकर मैं चली गई थी।

गाड़ी में बैठकर मेरा चित्त एकदम उद्विग्न हो गया। देश भर में कितनी स्त्रियाँ असली मायनों में सुखी होंगी ? रजनी का कसूर रेणुका के प्रति क्या है, यह न्याय से बताना ज़रा टेढ़ी खीर होगी। पर यह सच है, कि आज का हमारा घर-घर

का स्त्रोगत क्लेश किन्हीं भी दो घरों में एक-सा नहीं है। अशिक्षित और गँवार और अशिक्षित और फैशनेबुल और सोसायटी लड़कियों-छोकरियों का क्लेश और सन्ताप उतने ही नामरूपों का होगा, जितने नाम ईश्वर के वेदों में वर्णित हैं ! ! और, इस पर तुर्रा यह कि हर लड़की वाला शादी से पहले एक पढ़ा-लिखा लड़का ढूँढ़ता है, ताकि उसकी लड़की को आराम मिले। पर आराम हमारी भारतीय स्त्रियों के भाग्य में जैसे किसी ने राशन ही नहीं किया है !

दुपहर में पहुँची तो स्टेशन पर ही ललिता देवी मिलीं। मुझे लेने आई थीं। उनका आग्रह था कि मैं उनके यहाँ ठहरूँ। पर साथ में रेणुका के पिता जी भी आये थे। वे बोले कि मेरे लिए तो वैसी रेणुका वैसी माधवी जी और वैसी ही ललिता जी। कार में बैठकर मैं सीधे अस्पताल गई। रेणुका की आँखों का ऑपरेशन हुआ था और अभी उसकी आँखों पर पट्टी बँधी हुई थी। क्योंकि रेणुका ने ही मुझे बार-बार याद किया था इसीलिए डाक्टरों की राय से मैं बुलाई गई थी। बाज़ार से मैंने मुश्किल से ढूँढ़कर कुछ गुलाब के फ़ूल खरीद लिये थे। जाते ही मैंने वे फूल रेणुका के हाथ में थमा दिये और 'नमस्ते रेणुका जी' कहकर उसके सिरहाने बैठ गई। रेणुका चुप पड़ी रही। वह काफ़ी गम्भीर थी। उसे देखकर मेरा दिल भर आया और मैंने अपने को काफ़ी सँभाला। मुझे लगा कि इस पलँग पर हमारे उद्धत और उच्छृङ्खल किन्तु शिक्षित युवकों की छूत की बीमारी एक जगह इकट्ठी होकर पड़ी कराह रही है। कि रेणुका के पिता जी ने गम्भीरता तोड़ी और हँसकर बोले, "बिटिया रानी माधवी जी एक निश्चय लेकर यहाँ आई हैं। भला बताओ तो, वह क्या निश्चय है ?" और खुद ही जल्दी से बोले, "ये बाबर की तरह से तुम्हारी खाट की परिक्रमा कर इसी क्षण ख़ुदा से इबादत करने वाली हैं कि रेणुका का सारा रोग तू मुझे दे दे। बोलो मंज़ूर है तुझे ?" सुनकर हम तीनों हँस पड़ीं। शायद रेणुका की आँखों पर पट्टी न होती तो उसकी आँखों में मैं प्रेमाश्रु भी देख पाती। और यह हँसी बस उसी समय सरस वातावरण में बदल गई। रेणुका के पिता जी ने मेरे लिए फल मँगवाये और वे मेरे घर के अनेक समाचार पूछते रहे। फिर उन्होंने सिलसिला चलाया कि नगर में कौन से सिनेमा चल रहे हैं। उन्होंने बारी-बारी से पूछा कि मैं कितने सिनेमा देखती हूँ ? ललिता जी से उन्होंने सवाल किया। और खुद ही बताया कि रेणुका महीने भर में बस दो या तीन सिनेमा ही देखती है। मैंने अब कहा कि मुझे तो पूरे तीन साल हो गये हैं एक भी सिनेमा देखे हुए। तो रेणुका के पिता जी ज़ोर-ज़ोर से हो-हो करते हुए कहने लगे कि शाबास माधवी जी। और उन्होंने कहा कि मैं ऐसा अभागा बाप हूँ जो कि अपनी औलाद को सिनेमा जाने से कभी भी रोकने का पक्षपाती नहीं रहा हूँ। पर एकदम हँसकर बोले कि लो, आज से हमने कसम खाई कि अब हम भी कभी

सिनेमा नहीं देखेंगे ।

जब वे चले गये तो ललिता देवी जी ने रेणुका से कहा कि लो, तुम्हारी बहन जी आ गई हैं । पर मेहरबानी कर आप मेरी कोई भी शिकायत इन मेहमान से न कीजिये । मैंने हँसकर कहा कि आपकी शिकायत जो रेणुका जी को करनी थी वे तो खुलासा से कर चुकी हैं । और हम तीनों ही इस पर हँस पड़ीं ।

शाम को मेरा खाना ललिता जी के यहाँ था । जब हम टेबल पर बैठे तो नरेश जी भी आ गये थे । औपचारिक पहचान होने के बाद हमारी बातचीत रेणुका और रजनी पर टिक गई थी ।

नरेश जी ने कहा, "रेणुका जी को हम क्या दोष दें और क्या दोष रजनी को दें । हमारी ननसार में एक कहावत है, 'घाघरी पर चढ़कर चोली, छोरी हो जाये घोड़ी !' सो ही मसल यहाँ हुई । रेणुका जी ने असल में रजनी के साथ ही अत्याचार किया है ।"

मैं महसूस कर रही थी कि ललिता जी मेरे सामने अपने को अभियुक्त समझ रही थीं । फिर भी वे बोलीं, "आप तो पक्ष लेंगे ही रजनी का । पुरुष हैं न ! आखिर कहाँ गया उसका विद्रोह, क्यों शादी कर ली उसने अपने बाप की बताई लड़की से । हमने गधे के लात मारी थी कि उसके लिए इतने योग्य घराने की योग्य लड़की चुनी थी । और ऐसी सती-साध्वी कि आज भी जो उसके नाम की माला जपती है । लानत है उसकी भावुकता पर जिसका डंका पीटते हुए वह बार-बार माधवी जी के यहाँ जा ठहरते थे ।"

क्योंकि मैं हँस पड़ी, इसलिए नरेश जी ने मेरी हँसी में योग दिया । अब मैंने कहा, "दोष देखने से अब साँप तो पकड़ाई में आने वाला है नहीं, इसलिए लकीर को पीटना कोरी नादानी होगी । अब तो पहला काम यह है कि रेणुका जी अपनी पढ़ाई आगे चालू रखें । और उनके लिए अब ऐसा योग्य वर चुना जाये ख़ब ठोक-पीटकर जो उनके दिमाग़ को कैसी भी चोट न पहुँचाये और उन्हें अपनी पलकों पर बैठाकर रखे ।" दोनों पति-पत्नी मेरी बात से सहमत हुए और उन्होंने कहा कि वे उनके पिता जी से कहेंगे कि आँखों की पट्टी खुल जाने के बाद रेणुका जी को कुछ दिन इस शहर से बाहर किसी पहाड़ पर भिजवा दें ।

रात को रेणुका जी के साथ सोना था । लगभग ग्यारह बजे नर्स मरीजा को मेरे ज़िम्मे कर सोने चली गई । अब रेणुका जी ने टटोलकर मेरा हाथ अपनी गोदी में रखा और स्नेह से भरकर पूछा कि भोजन कर लिया मैंने । बताया कि हाँ, आज का खाना ललिता जी के यहाँ था ।

बहुत देर तक वह मुझ से देश के समाचार सुनती रही और पूछती रही कि

लड़ाई का क्या हाल है ? हिटलर बचपन में कौन था ? बर्मा देश की औरतें कैसे रहती हैं ? चीन की लड़ाई इतने सालों से क्यों चली आ रही है ? बात करते हुए हमें रात के दो बज गये तो मैंने कहा कि आप आराम करें। वह बोली, "आराम तो मैं आपके यहाँ खूब कर आई हूँ। और आपके 'उन्होंने' जो राय दी थी कि मेरी आँखों का ऑपरेशन होना चाहिए सो ही उनका हुक्म माना गया है। मैंने उनका वह एहसान अपनी गाँठ में बाँध लिया है। और आपका एहसान तो सदा ही मेरी स्मृति में एक तरफ़ ठीक तरह से रखा रहेगा।"

इस बात का कुछ उत्तर नहीं हो सकता था इसलिए मैं चुप रही। तो वह आगे बोली, "ज़रा मुझे सुनाइये कि रजनी जी के क्या हाल हैं ? उनकी रिक्शी देवी तो प्रसन्न हैं ?"

मैं इस प्रश्न के लिए तैयार होकर आई थी। पर भय था कि उत्तर देते हुए मैं कहीं उत्तेजित न हो जाऊँ। एक पानी का गिलास मैंने पीया और कहा, "रेणुका जी, रजनी या रिक्शी जी की प्रसन्नता कोई ऐसी विशिष्ट वस्तु नहीं है कि वह हमारी सहानुभूति से ज्यादा खुशहाली की हालत में रह सकेगी। तुम नये ज़माने की औलाद हो। तुम नई शिक्षा पा रही हो। तुम्हें एक ज़िम्मेवारी लेकर भविष्य देखना चाहिए। विवाह या प्रेम या प्रणय की भावुकता कभी थी ऐसी चीज, जिनकी चारों दिशाओं में दुन्दुभी बजा करती थी। पर आज जरा आँख खोलकर देखो तो पता चलेगा कि हम एकदम नई दुनियाँ में रह रहे हैं। शिक्षा पाकर कम से कम हम को चाहिए कि जीवन के प्रति हमारे दृष्टिकोण रोमांटिक न होकर यथार्थवादी हों। या कहूँ, बिजली के पंखे की पराधीनता स्वीकार करते हुए इतनी नाजुक न हो जायँ कि खुली धूप की हल्की तपिश भी हमें असह्य होने लग जाये। यह सच है कि प्रणय और प्रेम सर्वोपरि भावनायें हैं। लेकिन यह सर्वोपरि भावना संतुलित और इन्सानी रहनी चाहिए। तुम उठो और स्वस्थ बनो। और सस्ती भावुकता से ऊपर उठकर तब प्रणय की बात सोचो। जो गलतियाँ हम कर चुकी हैं, उनका अध्ययन करो और उनसे लाभ उठाओ।"

रेणुका कुछ देर तक शिथिल पड़ी रही कि वह उठकर मेरी गोदी में पसर गई। बोली, "बहन जी, तुम्हारी बातें इन्कार करने की नहीं हैं। फिर भी ऐसा लग रहा है कि एक बार दीवाला निकालकर मैं दुबारा व्यापार करने निकली हूँ।"

मैं सिहर उठी। इसमें और मेरे में कितना गहरा अन्तर है। अगर मैं भी रजनी के लिए इतनी पागल हो गई होती तो मेरा हश्र क्या हुआ होता ? रेणुका और मुझ में किस बात का अन्तर था, यह तो दिमाग़ पर ज़ोर लगाकर मैंने नहीं सोचा। लेकिन यह बात साफ़ हो गई थी कि हमारे सड़े हुए और जरा-जीर्ण समाज में हमारी नई शिक्षा जर्जर हथौड़ी बनकर ही आई है और नया निर्माण करने में यह सर्वथा

असफल हुई है। फिर भी मैंने कहा, "रेणुका जी, दिवाला तुमने नहीं निकाला है। आज तो तुम 'सरप्लस-स्टेट' हो। पर जब ख़रीददारी के लिए उचित पैसे नहीं हैं तो कोई क्या करे; और तुम सर्वनाश को पहुँच जाओ तो कोई क्या करे? आज हमें अपनी समस्त भावनाओं को भावुकता के आधार पर नहीं, बल्कि ज़िन्दगी की सचाइयों के वज़न से तोलते हुए परखकर अपनाना चाहिए।"

वह कुछ न बोली और चुप रही। मैं वहीं दूसरी खाट पर सो गई। चार रोज़ रहकर वहाँ से लौट आई। तब तक उसकी आँखों की पट्टी नहीं खुली थी। चलते समय मैंने रेणुका से कहा था, "नये मकान बना लेना बहुत आसान होता है। लेकिन हज़ारों सालों के खंडहरों को दुरुस्त करना बड़ा कठिन काम होता है। तुम जब उठोगी तो ऐसा ही समझना कि तुम्हें अपनी समस्त पुरानी टूटी हुई भावनाओं की दुरुस्ती करनी है। और वह बड़ी कारीगरी से और होशियारी से करनी है।"

मेरी यह बात नरेश जी ने, ललिता जी ने, रेणुका के माता-पिता ने और हैड नर्स ने नीची गर्दन किये सुनी थी और कोई भी इस पर कुछ टिप्पणी न कर सका था।

× × ×

अभी सुबह उठी हूँ। समाचारपत्र सामने है और जड़वत् बैठी हूँ। मोटी सुर्खी में समाचार छपा है कि राजनीतिक-क़ैदी रजनी लाहौर सैंट्रल जेल से फ़रार हो गया है। एक महीना हुआ, उसका चालान दिल्ली जेल से हुआ था।

१७

राष्ट्रीय नेतृत्व की ढीली कीलें

जेल-डाक्टर ने हँसते हुए रजनी से शाम की वेला में कहा, "जेल में कराहना, आह भरना, रिरियाते हुए करवटें लेना भी एक अपराध है। उन अपराधों की मैं चिकित्सा नहीं करता। मैं बीमार क़ैदियों को रंगीला पानी पिला-पिलाकर उनका जी बहला दिया करता हूँ।"

रजनी बीमारी से थका हुआ होने पर भी ज़ोर-ज़ोर से देर तक हँसा। अपने साथ उसने डाक्टर को हँसाया। और बोला, "थ्वाडी ज़िन्दगी, बादशाहो! क़ाबिले रश्क है। लेकिन डाक्टर साहब, मुझे पूरा यक़ीन है, आपको नरक की जेल में ६ महीने की काली कोठरी मिलेगी और कूटने को मूँज।"

डाक्टर शरमा गया। बात का रुख़ बदलकर बोला कि मैंने तुम्हारे लिए मक्खन की टिक्की, डबल रोटी और माल्टे लगा दिये हैं। आज शाम को आप वार्ड में चले जायँ। वहाँ जो भी सेवा दस्सोगे, वैसी ताबेदारी करने को सदा तैयार रहेंगे।

डाक्टर चला गया तो रजनी अस्पताल के कटघरे में टहलने लगा। उधर उस कमरे में वह बीमार क़ैदी मरने वाला है। पर क़ानून का दण्ड वह पहले भुगतेगा। दण्ड अर्थात् शरीर-कष्ट! मृत्यु-यातना से क़ानून का क्या सम्बन्ध है? रजनी ने इस बात से इन्कार किया कि कोई सम्बन्ध नहीं है। सम्बन्ध ज़रूर है, पर हमारा आक्रान्त शासन इस सम्बन्ध को क्षीण कर चुका है। वह क़ैदी शून्य-दृष्टि एकाकी-मन छत तक रहा है···

आकाश में कौवों का एक लम्बा जुलूस रजनी के सिर पर से गुज़र रहा है। सतयुग में हंसों की टोलियाँ प्रणयी राजकुमारों के विरह-संदेश लेकर अन्तरिक्ष में उड़ा करती थीं। आज राजकुमारों के स्थान पर हम साधारणजन शेष रह गये हैं। हंसों के स्थान की रिक्तपूर्ति इन कौवों ने ले ली है। कुछ देर तक वह कौवों की व्योम-क्रीड़ा देखता रहा। हल्के से उसने पूछा, "अरे कोई लाया है मेरी रिक्शी का सन्देश!"

कौवे व्योम-क्रीड़ा में उड़ते रहे। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया।

पीछे से आवाज़ आई, "बाबू अपना सामान सम्हालो। बारक में चलना है।"

रजनी जानता है कि जेल में रिक्शी की बात सोचना ग़लत है। हँसकर उसने अपने बीमार क़ैदियों से विदा ली। अस्पताल से पोलिटिकल-बारक पहुँचते हुए रजनी क्षुब्ध हो उठा कि कब तक वह क़ैदी रहेगा और इस तरह निष्क्रिय रहेगा?

यह भी भला कोई सज़ा है कि इस २५ हाथ ऊँची दीवार के अन्दर महज़ ज़िन्दा रहो और ज़िन्दा रहने के लिए अपने स्वप्नों की पूर्ति न करो। उसने एक क्षण रुककर अपने चारों ओर स्थित बारकें देखीं। साथ खड़े वार्डर से पूछा कि यहाँ कुल कितने क़ैदी हैं?

उसने बताया कि लगभग साढ़े तीन हज़ार और आप इस समय टैररिस्ट वार्ड में जा रहे हैं।

साढ़े तीन हज़ार! इतनी जनसंख्या में क्या कोई परीक्षण सम्भव नहीं है? चिकित्सा, विज्ञान, समाज के कितने अनेक परीक्षण हैं, जो यहाँ किये जा सकते हैं। महज़ इनसे मूँज कुटवाना या चक्की पिसवाना या कंबल बुनवाना तो एक व्यर्थ का सिलसिला है और जर्जर-शासन का परिचायक है। शासन वह, जो भविष्य का मार्ग प्रशस्त करे! शासन वह, जिसमें राष्ट्र अपने स्वप्नों के परीक्षण सतत चालू रखे।

रजनी को हँसी आ गई। उसे ख़्याल आया, शायद वे परीक्षण इन इंसानों के क़ैदी और अपराधी होने की वजह से दूषित हो जायँगे, शायद इसीलिए वे परीक्षण नहीं किये जा रहे!

बारक में घुसते ही १४ वर्ष के पुराने राजनीतिक-षड्यन्त्र के बीस साला क़ैदियों ने उसे ज़रा घूरकर देखा। उसने सबसे एक सामूहिक मूक वन्दना की और वहाँ खड़ा हो गया। क्या रजनी धन्य हो कि वह इन प्रसिद्ध षड्यन्त्रकारियों के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त कर रहा है?

उन्होंने उसकी वन्दना का कुछ उत्तर नहीं दिया। वे रजनी को ऐसे देखते रहे, जैसे तो वे अब भी षड्यन्त्रकारी हैं और यह नया व्यक्ति नाहक उनके बीच दख़ल पैदा करने आ गया है।

वार्डर ने रजनी की 'सैल' बतलाई। वह अन्दर घुसा तो वार्डर बोला कि बाबू यहाँ आसफ़ अली साहब भी रह गये हैं। रजनी केवल 'हूँ' कर रह गया। लोग जेल की कोठरियों में स्मृति शेष रखने लगे हैं। कौन सी स्मृति? विचित्र बात यह है कि स्मृति शेष वहाँ रहा करती है जहाँ वह कोंपल बनकर उग सके, वृक्ष बनकर लहलहा सके···

किया कि अभी तक उसे कोई ऐसा प्रत्यक्ष विद्रोही नहीं मिला है जो कि जेल से विद्रोह कर रहा हो। स्मृतियाँ सच्चे हृदय और शुभ अनुभूति की चीज़ें हैं। यह कोठरी किस नेता की है, इसमें भला कोई गौरव है? जब ये कोठरियाँ जलील इंसानियत की छाप से मुहरबन्द हैं, तब इन्हीं कोठरियों को क्षण-प्रतिक्षण कृष्णगृह की नाईं याद करना एक नालायक हिमाकत नहीं है? कृष्णगृह अपने युग में कृष्ण के ज्वालामुखी का अन्तर्दाह था। आज की ये जेलें सिर्फ़ गटर के गन्दे नाले हैं, जिनमें कीड़ों के स्थान पर साक्षात् इंसान बहते हैं और, और अपनी सड़ांध से सारे देश

में एक नई महामारी फैला रहे हैं। और इस तरह, देश भर के अन्तर्विद्रोह को ठण्डी आहों में जाने-अनजाने बदल दे रहे हैं।

वह अपनी खाट पर सो गया। बाहर, बारक के अहाते में किसी षड्यन्त्रकारी की ज़ोरों की हँसी गूँज रही है। जेल के बाहर किसी मोटर का हार्न सुनाई दिया और रजनी को याद दिलाया गया कि वह जेल में बैठा है। रजनी छत को एकटक देखने लगा।

एक क़ैदी-नौकर आया। पूरा पठान। कोठरी को गुँजाते हुए बोला, "बाबू!"

रजनी गहनतम सहानुभूति में उसका हुलिया अध्ययन करने लगा।

उसने कहा, "चाय तैयार!"

"ओह! चाय मिलेगी?" सिर को हिलाकर रजनी ने कहा कि ले आओ।

धुले तौलिये में ढँककर चाय की 'ट्रे' आ गई। रजनी कप बनाकर पीने लगा।

एक डरावनी और आत्मपीड़ित शकल ने अन्दर प्रवेश किया। हर आधी मिनट के बाद वह ज़ोर से खंखारता था। बिन हँसते, उसने आत्मीय बन कहा, "कहिये भाई साहब, हमारे मेहमान बनने आये हैं।"

रजनी ने मुस्कराकर कहा कि सिर्फ़ मेहमान ही नहीं, षड्यन्त्रकारियों के साथ रहने का सौभाग्य लेने आया हूँ।

रजनी चाय पी चुका तो उस युवक ने पठान-क़ैदी से कहा कि साहब के लिए सिगरेट ले आओ।

रजनी सरस हो आया कि आज इतने दिनों बाद सिगरेट मिलेगी।

"अच्छा!" और वह युवक जाने क्या विचारकर वापस लौट गया।

रात के दस बजे तक रजनी अपने पलँग पर सिगरेटें पीता रहा। पूरे दो पैकेट जाने किस सहृदयी ने उसके लिए भेज दिये थ। कुछ झपकी-सी आने लगी तो बाहर घण्टी-सी आवाज़ बजी। दरवाज़े पर उस पठान ने हुँकार दी कि जी चलें, खाना तैयार है।

वह उठा। बाहर जाली की दीवारों और छतों से निर्मित एक दालान में लम्बी डायनिंग टेबल है। उसे घेरे हुए बीस षड्यन्त्रकारी क़ैदी बैठे हैं। थालियों में खाना परोसा जा चुका है। रजनी को देखकर सबने एक नज़र उसे देखा। एक दृष्टि रजनी ने सब षड्यन्त्रकारियों को देखा। सबके चेहरों पर वक्र कुटिल भ्रुकुटियाँ हैं, रेखायें हैं। क्रोध की अवशिष्ट झुर्रियाँ हैं। पर सभी के चेहरों पर एक असीम गम्भीर शान्ति है। वह अपनी खाली कुर्सी पर बैठा। एक क़ैदी-नौकर ने थाली परोसकर उसके सामने रखी।

शायद बातों का सिलसिला पहले से चल रहा था। उस प्रौढ़ और श्वेत बालों के खुशनुमा व्यक्ति ने कहा, "कल कलकत्ता पर बमबारी हुई है। इसका मतलब मैं

यह समझता हूँ······"

उसे बीच में काटकर इधर के अल्पवयस्क युवक ने कहा, "यासीन साहब, आपके मतलब का फ़ायदा क्या है? मैं अपनी बात फिर दुहराता हूँ कि हिन्दुस्तान पर जापानियों का राज होता है या नहीं होता, इससे हमें सरोकार नहीं है। देश का मौजूदा नक़्शा हर मायने में पलटेगा। इसके उत्तर-दक्षिण-पूरब-पश्चिम बदलेंगे। इसका इतिहास नये नज़रिये से लिखा जायेगा। पर देश में ख़ून की नदियाँ बहने के बाद ही कुछ तब्दीली आ सकेगी। भले ही तुम सब गांधी को पूजे जाओ। उसकी सत्य-अहिंसा का नगारा बजाते जाओ। जिस दिन देश करवट लेगा, उस दिन गांधी एक दूर की भूली कल्पना रह जायेगा और सिर्फ़ ताज़ा ख़ून की लिखी घटनाओं की याद सबके सामने शेष रहेगी।"

कलकत्ते में जापानियों की बमबारी। सुनकर रजनी चौंका। अपने ही स्वप्नों की दुनियाँ में डूबे रहने का बचपना कब ख़त्म होगा? अरे, देश में और दुनियाँ में कितने बड़े परिवर्तन आ रहे हैं। नई घटनायें हो रही हैं। इस अल्पवयस्क युवक की बातों ने उसे जैसे हथौड़े से पीट दिया। वह भोजन करता रहा और सब की बातें सुनता रहा। विवाद राजनीतिक ही रहा। बीच में मज़ाकें होती रहीं। भोजन समाप्त हुआ तो सब उठकर अपनी सैलों में गये। रजनी से किसी ने बातें नहीं कीं।

एक सिगरेट सुलगाकर रजनी अपनी खाट पर आ लेटा। सब सुनी बातों को दुहराने लगा। ये षड्यन्त्रकारी जेलों में बन्द रहकर भी जीवित हैं। ज़िंदादिल हैं।

क्रिमिनल! अबोध नागरिक क़ैदी और षड्यन्त्रकारी। हर देश में जेलें होती हैं और हर देश में क्रिमिनल क़ैदी होते हैं। अबोध नागरिक जेलों से बाहर क़ैदी बनकर रहते हैं और षड्यन्त्रकारी जेल के अन्दर क़ैदी रहते हैं। और हर जेल में फाँसी लगे क़ैदियों की आत्मा भूत बनकर मँडराया करती है।

क्रिमिनल क़ैदी किसी तरह जीवित रहते हैं। और राह देखते हैं कि कब वे मुक्त हों और कब बाकी बची हविसों को बाहर जाकर पूरा करें। अबोध नागरिक-क़ैदी आजीवन अपने इसी अपमान के रुदन से पीड़ित रहते होंगे कि उन्हें कौन सी ठौर है जहाँ वे जाकर अपनी हविस पूरी कर सकें।

तो यह देश का स्वातन्त्र्य युद्ध सिर्फ़ एकांगी है? यह एकवर्गी नेतृत्व में सम्पन्न हुआ है? ये षड्यन्त्रकारी इस जेल से मुक्त होकर स्वतन्त्र देश में भी अपने विद्रोह को आगे बढ़ायेंगे?

पहली बार आज उसने जाना कि कम्युनिस्ट किस तरह सोचते हैं···

× × ×

दूसरे दिन सुबह चाय के बाद एक क़ैदी वार्डर उसे बुलाने आया कि जी, आपको

काँग्रेस-बारक में बुलाया जा रहा है।

वह अपनी बारक के बाहर जाने को हुआ तो वह अल्पवयस्क युवक हँसकर बोला कि जी, काँग्रेस-बारक जा रहे हो तो वहाँ बैठते ही प्राणायाम साध लेना ताकि काँग्रेस के बुद्धधर्म की 'बुद्धं शरणं गच्छामि' आपको न डस जाये।

सुनकर धूप सेक रहे सभी बीस साला षड्यन्त्रकारी हो-होकर हँसने लगे।

रजनी ने अत्यन्त सरलता से धीमे शब्दों में कहा, "जी, 'बुद्धं शरणं गच्छामि' या 'गांधी शरणं' सिर्फ़ ड्राई-क्लीन से अधिक कुछ नहीं है।"

सारे कॉमरेड अपने नये साथी की इस स्पष्टवादिता से ख़ुश होकर खिल-खिला पड़े।

काँग्रेस-बारक में घुसा तो रजनी की पुतलियाँ हठात् स्थिर हो गई। वह कुछ कठोर तपस्वियों की कल्पना में वहाँ पहुँचा था। लेकिन उस कैम्प में एक दस्तरख़ान बिछा हुआ है। ८-६ किस्म की नमकीन-मीठी प्लेटें लगी हुई हैं। शाहंशाहों की अदा में १०-११ अधेड़ बारीक दुग्ध-श्वेत खद्दर में सज्जित आराम से मसनदों के सहारे लेटे हैं। इधर-उधर क़ैदी-नौकर बड़ी आजिज़ी में हाथ बाँधे खड़े हैं। बिस्तर हैं तो सम्पन्न धरोहर तुल्य हैं और खाने-पीने के बर्तन हैं तो शान की दुहाई दे रहे हैं।

वह जाकर मुलायम तम गद्दे पर बैठ गया।

एक मोटी सौम्य मूर्ति ने लजीले स्वर में रजनी को सम्बोधन किया, "आपको कोई कष्ट तो नहीं है, उस बारक में?"

रजनी ने कहा कि कष्ट की बात मैं आज तक नहीं सोच सका हूँ।

सब चुप रहे, और मिष्टान्न का सुमधुर आहार करते रहे।

रजनी दबी कनखियों से इन नेताओं को देखता रहा। ये भारत के भाग्य की बागडोर अपने हाथ में सँभाले हुए हैं। ब्रिटिश सत्ता ने इन्हें फाँसी पर विद्रोह के अपराध में नहीं लटकाया है और इस प्रकार इन्हें घर-जँवाई बनाकर रख रही है तो अवश्य कोई रहस्य है।

उधर अपने चेहरे पर शीशे में मुख निहारते हुए एक स्थूल-काय सज्जन 'फ़ेसक्रीम' मल रहे थे। चाय का कप पूरा कर चुके तो एक नई नज़ाकत से आपने एक रसगुल्ला अपने मुँह में रखा और बोले, "आपने एल्डस हक्सले का 'एण्डस एण्ड मीन्स' पढ़ लिया?"

इधर एक सरदार जी नेता बैठे थे। हलवे की एक कतली अपनी जिह्वा पर बड़े प्यार से सरकाकर आपने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरा और बोले, "आपने की बात कह दी? एल्डस हक्सले? तुस्सी देखते जाओ, रूस में भी मार्क्सिज़म का स्प्रिचुअल रूपान्तर एक दिन ज़रूर होना है।"

उधर के सुकुमार प्रौढ़ ज़रा उचककर बोले, "लेकिन हक्सले की थीसिस भर रही है। बापू अगर यह 'वार सरवाइव' कर गये तो भारत 'आल-वैस्ट' का 'ऐक्स-पेरीमेंटल लेवोरेटरी ऑफ़ स्पिरिट' होकर रहेगा' और स्वयं अपने कथन की चुस्ती पर धीमे-धीमे मुस्कराने लगे।

इधर एक संगीन प्रकृति के उद्भट बैठे थे। सिर घुटा हुआ, पर खोपड़ी पर अमूल्य आँवला तेल की मालिश चमक रही थी। कुछ नमकीन मठरियाँ अपने मुँह में रखीं, कुछ हँसे और बोले, "द्वितीय विश्वयुद्ध ख़त्म हो लेने दो। आप देखेंगे, चर्चिल हम लोगों से ख़ुद मिलने आयेगा।"

आप भी अपने कथन पर सलज्ज हँसी हँसे और चाय की चुस्कियाँ लेने लगे।

वातावरण में सबकी चुहल उक्तियों के बावजूद सरसता नहीं आई तो उधर बैठे एक वृद्ध नेता ने ज़रा ठठाकर कहा कि मैं तो मौक़ा मिलते ही जार्ज बर्नार्ड शॉ को अपने यहाँ निमंत्रित करूँगा।

सबने आपकी हँसी में योग दिया। इसके बाद चुप-चुप चाय और मिष्टान्न और नमकीन चलती रही। सभी अपने गोपन की बात चुप लिये बैठे रहे।

रजनी ने देखा, उधर टेबल पर बड़ी-बड़ी श्रेष्ठ पुस्तकें रखी हैं। दर्शन की, राजनीति की, संस्कृति की और अर्थ-शास्त्र की।

वे सरदार जी सहसा बोल उठे, "आश्चर्य है, पंजाब धन-धान्य और जनशक्ति से पूरित है, फिर भी वह समस्या-प्रान्त बना हुआ है।"

तो ये खद्दर की ऊँची-ऊँची निकर पहने बोले, "सरदार जी, आप अकेले पंजाब की बात लेते हैं, तभी पंजाब-समस्या नज़र आती है।"

हो-होकर सब नेता हँस पड़े और एक सज्जन इतने हँसे कि उनके पेट में बल पड़ गये।

इस समय गाजर के हलवे का दौर चल रहा था। उसे समाप्त कर गरम पकौड़ियाँ पेश की गईं। एक पकौड़ी मुँह में दबाकर इधर के मोटे सज्जन बोले, "हिटलर की सेनायें अब पीछे हट रही हैं। और इधर अमरीकन आगे बढ़ रहे हैं। यह तय-शुदा है कि युद्ध अब दो वर्ष से अधिक नहीं चलेगा। तब हमारी जेलों के दरवाज़े चुपके से नहीं खुलेंगे, धूम-धड़ाके से खुलेंगे। क्या ख़्याल है भार्गव साहब ?"

भार्गव साहब ने माथे में शिकन डालकर अजीब बुज़ुर्गी छिटकाते हुए कहा, "मैं समझता हूँ, हमारी इन जेलों की आवश्यकता अभी ५० वर्ष और रहेगी। ऐसी हालतों में जेलों से बाहर निकलकर काँग्रेस यदि ख़ुशियाँ मनायेगी तो मूर्खता करेगी। हमारे विरोधी इस युद्ध-काल में हमारी अनुपस्थिति का पूरा फ़ायदा उठा रहे होंगे।"

विचित्र नज़ाकत के सज्जन इस बार चुपके से हँसे और बोले, "जिन्ना के लिए

ज़मीन के तहख़ानों में छिपी पड़ी है। रजनी अपने तहख़ाने में अकेला है और ऊपर देख रहा है। एक विमान हठात् उलटा होकर स्वतः जलने लगता है और नीचे गिरता है। शायद वह रजनी के तहख़ाने पर ही गिरने वाला है और अभी गिरेगा···उसकी घिग्घी बँध जाती है। वह सिहरकर आँखें बन्द कर लेता है और ठीक इसी क्षण उसके तहख़ाने पर एक बम गिरता है और धूम-धड़ाके से फटता है···

रजनी की आँखें खुल जाती हैं। वह अपने स्वप्न में उलझा हुआ है कि बाहर पठान-क़ैदी अभी बोला है, "बाबू जी, चाय तैयार है!"

डाइनिंग-टेबल पर जाकर वह बैठा तो उधर बैठे सरदार जी ने रजनी से पूछा कि जनाब इन (अल्पवयस्क युवक) पंडित जी की उम्र क्या है?

रजनी ने उसे देखा। बमुश्किल सत्रह वर्ष। पर चौदह वर्ष से यह जेल में हैं। यह नामुमकिन है कि तीन वर्ष की उम्र में ही यह जेल आ गया हो। पर रजनी ने कह ही तो दिया, "सत्रह वर्ष!"

हो-होकर डाइनिंग टेबल पर हँसी की फुहार के सुमन बिखर पड़े।

सरदार जी ने कहा कि इनकी उम्र ३२ वर्ष है। इनकी जवानी यहाँ ही कट गई है, पर इनकी मासूमियत अभी सुरक्षित है।

दुबारा अट्टहास छूटा और सबने चाय शुरू की।

हाँगकाँग से पकड़कर आये हुए एक सरदार जी ने कहा, "मेरी आँखों को ब्रिटिश सरकार धोखा नहीं दे सकती। लड़ाई समाप्त होने के बाद हमारे यहाँ सुराज या स्वराज्य नहीं आयेगा। दुनियाँ भर की मंदी में देश किसी की दुम बनकर रहेगा। छोड़ो यह बात कि ब्रिटिश सरकार किसे अपना कृपा-पात्र बनाकर देश की शासन-बागडोर सौंपेगी। मैं आज साफ़ देख रहा हूँ कि ब्रिटेन का पूँजीवाद इस लड़ाई में फफूँदकर, सड़कर हमारे देश को बुखार ला रहा है।"

उन मुस्लिम महोदय ने नीची निगाहें किये सूक्ष्म मज़ाक की, "तो सरदार जी, क्या ब्रिटेन भारत माता की इज्ज़त ख़राब कर उससे विवाह कर ले? मेरी राय है कि आर्यसमाज यह ज़िम्मा ले कि वह अशुद्ध भारतमाता की शुद्धि करे।"

सब हँसे और खूब हँसे।

डरावनी और आत्मपीड़ित शक्ल के युवक ने कहा, "नहीं, भारतमाता की शुद्धि तो 'बोलो सनातन धर्म की जय!' से होगी।"

हाथों के उठते हुए कप रह गये, क्योंकि हँसी का फौव्वारा ज़रा और तेज़ छूटा। पंडित जी (अल्पवयस्क!) ने, पहले ज़रा हँसकर, कहा, "आर्यसमाज या सनातन धर्म में न सही तो किसी मस्जिद या गिर्जे में ही भारतमाता की शुद्धि हो जायेगी। पर मैं पूछता हूँ कि वह उसके बाद अकेली रहेगी या किसी से उसका पुनर्विवाह भी होगा?"

हँसी का फौव्वारा और तेज़ छूटा। और इस हास्य को हास्य समझकर छोड़ दिया गया। किसी ने उत्तर नहीं दिया।

चाय समाप्त कर रजनी सैल में घुसने लगा तो सरदार जी ने कहा, "जनाब, आज शाम को यहाँ दावत है। भला आप कौन सी चीज़ बढ़िया पकाना जानते हैं ?"

ओह! इतने वर्षों की आवारागर्दी में उसने कब कोई रसोई तैयार की है ? मुस्कराकर कहा, "जी, यह अपराध मैंने आज तक नहीं किया है ?"

सरदार जी रजनी की इस फब्ती पर मुग्ध हो गये। बोले, "ख़ैर, आप बादाम और पिस्ता ही काट लीजियेगा।"

रजनी ने कहा कि जेल में यही काम मिल जाये तो मैं ज़िन्दगी भर रहने को तैयार हूँ।

और दोनों डटकर हँसने खड़े हो गये।

अपनी सैल में जाकर रजनी चारपाई पर जाकर लेट गया। उसके दिमाग़ में अपने इन साथियों की बुलन्द मज़ाकों से अधिक, बम गिरने के स्वप्न की हुमस छा गई है। युद्ध हो रहा है, यह बात वह जानता है। यहाँ जेल में वह निरपराध है, यह भी अनजाने युद्ध का ही एक मूर्खतापूर्ण अभिशाप है और देश की पुलिस का अन्धा शासन है। इस अन्धे शासन में कितने नागरिक इसीलिए यौद्धिक मोर्चे के सही कष्ट झेल रहे हैं, क्योंकि वे इतने अबोध हैं कि उनका अबोध ही उन्हें इस घरेलू मोर्चे पर निष्क्रिय बनाने का इन्द्रजाल डस-सा बैठा है। बम के गिरने का स्वप्न उसे आया है तो उसे भी आज स्पष्ट अनुभूति हो गई है कि कैसे बम गिरता है और कैसे हवाई जहाज़ हवाई युद्ध करते हैं। लेकिन यह स्वप्न उसे क्या पहले आया था ? शायद इतने दिन बाद अख़बार पढ़ने की प्रतिक्रिया हो। लेकिन इससे पहले उसने जो अख़बार पढ़े थे, वे असली मायनों में अख़बार पढ़ने कहाँ थे, महज़ उन अक्षरों के अर्थहीन रूपों पर ही वह अपनी सरसरी और तैरती हुई दृष्टि दौड़ा दिया करता था। तो क्या आज भी यह सच नहीं है कि वह जो यह अख़बार समझने लगा है कि यही ठीक है सो पूर्ण ठीक न हो ? इस तरह, आज के शब्दों का अर्थ भी वह पूरा-पूरा ठीक न लगा पा रहा हो!! लेकिन आज के अख़बारों के शब्दों के सही अर्थ से ज़्यादा, यह युद्ध का रोमांचक स्वप्न क्या अपने अधूरे अर्थ ही लेकर मुझे सिर्फ़ प्रारम्भिक अनुभूति भर देने आया था कि युद्ध चल रहा है, यह आज की पहली बात है ? इस दौरान में हज़ारों, लाखों सैनिक अपने प्राणों और अपने शरीरों को जो निष्क्रिय कर रहे हैं या जो अपनी आहुति दे रहे हैं उसका अर्थ आज हर एक के दिमाग़ में पूर्णतया सही नहीं है, यह आज की दूसरी बात है ? और भारत इस युद्ध से अछूता सर्वथा नहीं है, यह आज की तीसरी बात है ?

रजनी ने एक क़ैदी-नौकर से पठान-क़ैदी को बुलवाया। वह विस्फारित नेत्रों

से जानना चाहता था कि क्या हुक्म है। रजनी ने कहा कि सिगरेटों वाले बाबू से थोड़ी सिगरेटें ले आओ।

उसने सुना अन्दर से, बाहर हँसी का एक फौव्वारा छूटा है। वह तीन सिगरेट दे गया। एक सुलगाकर वह पलँग पर लेट गया। बाहर की हँसी से वह अचानक गम्भीर हो गया। जेल-जीवन के दैनिक नये-नये अनुभवों में रजनी बजाय कुछ स्निग्ध होने के, कठिन होता जा रहा है। जेल में उसने सिर्फ़ रुदन और हाहाकार और मूक विलाप ही देखा है। यह सुबह से शाम तक जो हँसी का फौव्वारा इन क्रान्तिकारियों में छूटा रहता है, यह उसे कुछ नई बात कहना चाहता है, लेकिन वह बात रजनी सुनते-सुनते रह जाता है। इतनी हँसी जीवन में आज वह पहली बार देख पाया है। क्या यह भी इनका एक व्यावहारिक स्वप्न है कि इतनी हँसी सर्वसाधारण जीवन में एक सफल क्रान्ति के बाद मुक्त हाथों बाँटी जा सकती है।

व्यंग और प्रतिव्यंग! शासनधारी-दल और विद्रोही-दल! कल के यह षड्यन्त्रकारी आज व्यंग के हृदय-रस का पान करते हैं और जीवित हैं। काँग्रेस आज सबल राजनीतिक दल है। षड्यन्त्र और आतंकवाद से दूर वह बहुसंख्यक जनता का संबल लेकर जीवित है। पर नहीं, जीवित उसे रखा जा रहा है। इन षड्यन्त्रकारियों को तो एक तरह से सरकार ने ज़िन्दा मार डाला है। यहाँ इनका क़ाबिले-रश्क जीवन-यापन है। लेकिन, ब्रिटिश सत्ता के रहस्यवादी कूटनीतिज्ञ इस काँग्रेस को किसी भ्रम में या किसी कूटनीति के चक्कर में जीवित रख रहे हैं। काँग्रेस लोकप्रिय है। लोकप्रिय तो ये आतंकवादी भी सुविधा पाने पर हो सकते हैं। राजनीति में दीर्घ-जीवन पुष्प-मालायें पहनने से नहीं बनता। लोकप्रियता पहली शर्त हो सकती है जन-जीवन की, लेकिन, वह पहला आधार नहीं बन सकती। आधार जंगली सूअर की तरह से आँख मींचकर नाक की सीध में भागना भी नहीं होता। आधार अपने आप में जन-जीवन की खुशहालियों के कलदारपने की असली टंकार वाली टकसाली झंकार है। इस टकसाली झंकृति के अभाव में ही राजनीति की दीर्घ-दृष्टि चुँधियाती रहती है, विकृत होती रहती है।

उसे लगा कि ये षड्यन्त्रकारी आज क्या राय देते हैं और कौन सा तीक्ष्ण व्यंग करते हैं, यह कोई अहमियत नहीं रखता। अहमियत का तकाज़ा जन-जीवन की गहन मर्मान्तिक वेदना में छिपा रहता है। हम उससे अलग मज़ाक क्यों करते हैं, इसी मसले में उलझा हुआ वह काफ़ी देर तक छत ताकता पड़ा रहा। दो सिगरेटें फूँककर वह सब कॉमरेडों के बीच जा खड़ा हुआ। सब व्यस्त हैं और कुछ न कुछ काट-बनार रहे हैं। उधर बादाम और पिश्ता रखे हैं। स्वतः उन्हें उठाकर वह उधर घास पर बैठ गया और बारीक-बारीक कतले काटने लगा।

एक क़ैदी-नौकर ने उसे आवाज़ दी कि जी, यहाँ धूप में आ जायँ और धूप सेकते हुए बैठें।

रजनी ने देखा कि शाम होने में देर नहीं है। धूप थोड़ी बची है। पर वह वहाँ जा बैठा। वह क़ैदी-नौकर उसकी सहायता करेगा।

दो मिनट बीते, तो क़ैदी-नौकर ने फ़ुसफ़ुसाकर कहा कि जी, मैं आपको पहचान गया हूँ रजनी बाबू।

रजनी चाकू को उँगलियों में थामकर क़ैदी की ओर ऐसे देखने लगा, कि कोई नया ख़रीदा हुआ जूता कुछ दूर जाने पर ही फट गया हो।

क़ैदी ने और भी हल्के फ़ुसफ़ुसाकर पूछा कि आप पं० हरसहाय के पुत्र हैं ?

रजनी ने स्वीकृति का सिर हिलाया।

"मुझे यहाँ चिट्ठी में पता चल गया था कि आप गिरफ़्तार हुए हैं। पर रजनी बाबू, आपकी जगह यहाँ जेल नहीं है, यहाँ से बाहर है। यहाँ जीव सड़ाने से क्या पल्ले पड़ेगा ? आप एक हफ़्ता हुए यहाँ आये हैं ?"

रजनी ने कहा कि हाँ।

बिलकुल अस्फुट स्वर में उसने कहा, "आज यहाँ दावत है। आप ये जेली कपड़े उतारकर अपने कपड़े पहन लें।"

रजनी ने कहा कि मेरे कपड़े मेरे पास हैं।

"इस बारक में आप अपने कपड़े पहन सकते हैं। दावत में जेलर साहब और सुपरिंटेंडेंट भी आयगा। आपको मैं इशारा करूँ, तभी दावत से उठकर बाहर आ जाना।"

"पर तुम आख़िर हो कौन ?"

क़ैदी के चेहरे पर विकृति छा गई।

"जी, मैं आपके पिछले मुहल्ले में रहता हूँ। कहाँ आप धनभाग। देश की ख़ातिर जी होम रहे हो और मैं हूँ, ४२० की सज़ा भुगत रहा हूँ। आपकी कुछ सेवा कर दूँ तो यह जीवन सुफल हो जाय। आपको दीवार चढ़ना आता है रस्से के सहारे ?"

रजनी ने साँस रोककर कहा कि हाँ।

"तो जिधर मैं भेजूँ, वहाँ रस्से के सहारे यह सामने की दीवार कूद जाना। बाहर भी एक क़ैदी पहरा देता मिलेगा। वह अपनी पहचान का है। वहाँ से आप ३०० गज़ सीधे चलकर बांई हाथ की सड़क पर हो लेना। जो दूसरा मुहल्ला मिले, वहाँ सांई हरदयाल का मकान पूछ लेना। पिता जी का नाम बता दोगे तो वे तुम्हें पहचान लेंगे। बस, रात भर और दो दिन वहीं रहना। आगे आपके साथ भगवान् हैं।"

यह कहकर क़ैदी वहाँ से उठकर लंगर में चला गया। रजनी वहाँ से उठा, क्योंकि अब धूप जा चुकी थी। इधर सब कॉमरेडों के बीच आकर बैठा। सिलसिला किसी राजनीतिक स्त्री का चल रहा था। एक नर्स नीली है। वह राष्ट्रीय आन्दोलन में जेल आई है और सामने की फीमेल-जेल में है। बाहर उसके पति की और उसकी मुन्नी की मृत्यु हो चुकी है। पर काँग्रेस के लोगों को इससे सरोकार नहीं रहा कि उस नर्स के उन स्वजनों की अन्त्येष्टि करते। दोनों की लाशों के लिए उनके पड़ौसियों ने कंधों का सहारा न दिया होता, तो वे वहीं सड़ती रहतीं।

सबने सुना। सबने सिर ग्लानि से नीचा कर लिया। युद्ध-मोर्चे पर लोग मरते हैं तो सैनिकों की विरक्ति उन आत्मीय-लाशों के प्रति कुछ मायने यही रखती है कि वे उसके अधूरे काम को करने तुरन्त आगे बढ़ जाते हैं। लेकिन यहाँ एक देश के एक आन्दोलन में कर्तव्यनिष्ठ लोगों का यह आपसी बे-लगाव कितना घिनौना नहीं है। यह क्या कसौटी नहीं है कि इस आन्दोलन का सड़ा हुआ पहलू इस सरगरमी की साँसों को लेते हुए अपना दायरा बड़ा बनाता जा रहा है। किस्सा सुनाने वाले ने बताया, अभी दो काँग्रेसी नेता जेल से स्वास्थ्य-कारणों को लेकर छूटे हैं! पर उन्होंने बीमारी के गद्दों पर मौज में लेटे हुए उन लाशों की अंत्येष्टि में कोई रुचि नहीं ली। न एक पत्र सहानुभूति का ही उस नर्स को भिजवाया······

फिर उन्होंने बताया कि काँग्रेस-बारक में तीन नेताओं की पत्नियाँ मिलने आई थीं और वे अन्दर बारक में ही चली आई थीं। एकांत का भोग करने!

इन समाचारों ने उसके दिमाग़ को ज़ोर से हिला दिया।

पिस्ता-बादाम काट चुका तो रजनी अपनी सैल में आ गया। उसका हृदय बड़ी ज़ोरों से धड़कने लगा है। एक सिगरेट जलाई और वह लेट गया। वह आज जेल से भागेगा······

लेकिन भागने की बात से अधिक उसके दिमाग़ में नीली नर्स की दर्दभरी कहानी तपती हुई भट्ठी-सी फैल गई। क्रोध का आवेश उसे जैसे बाग़ी बना गया। यह काँग्रेस क्या अपने बीच में एक डरावनी दरार फड़वाकर ज़िन्दा रह सकेगी और यदि ज़िन्दा रहेगी, तो, क्या अपनी नैतिक ईमानदारी मान्य रख सकेगी? अमीर और ग़रीब सिपाही तो किसी भी सेना में नहीं हुआ करते। लेकिन यहाँ, ऊँचे-नीचे अधिकारी न होकर, काँग्रेस के दो तबके अमीर और ग़रीब के पैमाने से नापकर, रखे गये हैं। यह अजीब पचड़ा है।

बड़ी देर तक वह काँग्रेसी-बैरक के नेताओं की चाल-ढाल और उनके हाव-भाव दुबारा याद कर मन को कड़ा बनाता रहा। इस अमीरी ठाठ के नेता जेल में अब अपना अमीरी ठाठ बसा बैठे हैं तो इनका यह अमीरी लोभ देशभक्ति का कैसा

चित्र तैयार करेगा ? यह तो इनकी नसों का दूषित मैल है। अरे, इन जेलों में इन नेताओं का यह अमीरी ठाठ किस षड्यंत्र की कीमत पर सुलभ हुआ है!! यह जेल अन्य क़ैदियों के लिए क्यों रौरव-कुहराम है ?

जेल में षड्यंत्र ? इन नेताओं का अमीरी-षड्यंत्र। और, आज रजनी भी जेल में षड्यन्त्र करने जा रहा है। वह जेल से भागने वाला है। उसके अन्तर में काठिन्य की जेवड़ियाँ बँटने लगीं······

रात के नौ बजे काँग्रेस-बारक के सब काँग्रेसी नेता आ गये। उन्हें दावत में निमंत्रित किया गया था। जेलर और सुपरिंटेंडेंट और अन्य जेल-अधिकारी भी आ गये। अन्य बारकों से नज़रबन्द भी आ गये। षड्यंत्रकारियों ने सबका स्वागत किया। 'डायनिंग-हॉल' में सब गोल घेरे में ज़मीन पर जम गये। उस गोल पंक्ति में रजनी भी आ बैठा। एक दृष्टि वह सब अराजकवादियों, षड्यंत्रकारियों, कांग्रेस-नेताओं, समाजवादियों, कम्युनिस्टों और राजनीतिक नज़रबन्दों को देखने लगा। एक जगह पर उसे इनके संयुक्त दर्शनों का यह सुअवसर मिला है। सब अपने दिमाग़ों के किलों में बंद हैं और सभी इस जेल के दायरे से घिरकर एक-ठौर बकरी के झुंड से इकट्ठा कर दिये गये हैं। भारतीय राजनीति के तीन युगों के प्रतिनिधि यहाँ एक पंक्ति में आज दावत खायेंगे, पर एक पंक्ति में चलना इनके बूते का काम जैसे एकदम नहीं है।

वह गौर से निहारने लगा कि जेल-सुपरिटेन्डेन्ट काँग्रेसी नेताओं से मज़ाक पर मज़ाक कर रहा है। ये ही वे काँग्रेसी नेता हैं जो 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के सूत्रधार हैं। और जिसकी झुलस में लिपटकर रजनी आज यहाँ जेल में बैठा है।

जेल-मैनुवल में सख़्त क़ानून है कि क़ैदियों से हँसकर बातचीत न की जाय। लेकिन ये मामूली क़ैदी नहीं हैं, ये राजनीतिक क़ैदी हैं। और जब ये जेल-मैनुवल बने थे तब राजनीतिक क़ैदी नहीं थे। राजनीतिक क़ैदी आज की तिथि में गोया सुन्दर लुभावने बच्चे हैं, जिनका चुम्बन तक लिया जा सकता है!

षड्यंत्रकारियों ने अनेक मिठाइयाँ और विभिन्न व्यंजन अपने राशन को बचाकर बनाये हैं, सो परोसे। और, रजनी ने स्पष्ट देखा कि जेल-अधिकारियों ने इतने अधिक व्यंजनों को देखकर एक जलन की नज़र उन षड्यंत्रकारियों की ओर देखा और एक नज़र अन्य काँग्रेसी नेताओं को देखा, और जी में चाहा कि वे यह सारी मिठाई इनसे अभी छीनकर अपने घर ले जायँ। कमबख़्त यहाँ जेल में हैं और इस तरह नवाबज़ादे बने हुए हैं······आह! यह दिन कैसा मनहूस आया है कि इस तरह जेल में जश्ने-जम्हूरियत मनाया जा रहा है······

अब-तब उसके कान में राजनीतिक हास-परिहास आते रहे।

दिल्ली के नेता लाला जी ने कहा, "यह मिठाई दिल्ली में बस एक ही दुकान

पर मिलती है।"

लायलपुर के नेता सरदार मनमुखसिंह जी ने कहा, "अजी मान गये कि जी, दिल्ली में बस एक ही दुकान है।" और एक ख़ास आशय से वे मुस्करा दिये। उनकी मुस्कराहट पर इधर की पंक्ति के नेतागण हँस पड़े। उन सरदार जी का आशय एक दुकान से केन्द्रीय अंग्रेज़ गृह-मंत्री से था, जिन से मिलकर लाला जी अपनी पैरोल स्वास्थ्य के कारणों पर करवाने की कोशिश में लगे हुए थे। लाला जी इस आशय को समझ गये और मुस्कराकर झेंप गये।

वह मज़ाकें सुनता रहा और जँचे हाथों भोजन करता रहा। जान-बूझकर मुस्कराता रहा कि उसके चेहरे पर किसी की ग़लत मज़ाक का ग़लत असर न हो जाय और उसके दिल की बेचैनी कहीं पानी में पोटेशियम-परमेंगनाइट-सी चेहरे पर न फैल जाय। कि वह क़ैदी आया। उसने रजनी को रसगुल्ला परोसा और बाहर जाने का इशारा किया।

उसने निश्चित होकर रसगुल्ला तोड़कर मुँह में रखा और उधर उस कॉमरेड की बातें सुनने लगा। वह काँग्रेसी नेताओं को सुनाता हुआ अपने हमउम्र साथियों की ओर मुखातिब एक चुभती हुई भ्रकुटि लिये कह रहा है, "क्या ख़ूब है यह काँग्रेसी आन्दोलन भी और इसका नेतृत्व भी! एक तरफ़ दिल्ली से रोज़ाना मिठाइयों के टोकरे यहाँ जेल में आते हैं और दूसरी ओर काँग्रेसी-बारक के वे बदनसीब वालिंटियर हैं जो जेल में चना-गुड़ पाते हैं और कच्ची खड्डियों पर सोते हैं। वर्धा-आश्रम यहाँ जेल में शीर्षासन कर रहा है......।"

कुछ इनकी हँसी और कुछ उधर के मित्रों की हँसी में बात अधूरी ही सुनाई पड़ी। कि निश्चित प्रोग्राम के अनुसार पंजाब काँग्रेस के नेता अपना भाषण देने खड़े हुए। अजीब-सा समां है और भाषण इसलिए दिया जा रहा है कि यहाँ जो जेल-सुपरिंटेन्डेन्ट उपस्थित हैं, वे इसकी फ़ेहरिस्त सरकार तक पहुँचा देंगे। क्या राजनीति है! जेल के अन्दर से सरकार को ज़रूर कोई नई बात पहुँचाई जा रही होगी या फिर काँग्रेसी नेता अपने हृदय-परिवर्तन की ताज़ा सूचना सरकार तक भिजवा रहे होंगे! बमुश्किल चार मिनट बोले होंगे कि वे बैठ गये। रजनी ने नहीं सुना कि वे क्या बोले। वह तो उनके हावभाव ही देखता रहा। पंजाब का यह नेता जन-जीवन के साथ भरपूर न्याय कर सकेगा, उसे विश्वास नहीं हुआ। जन-जीवन से अलग जो नेतृत्व जेल की इस ऐय्याशी में रसीला हो रहा है वह बदनसीब भारतीय जनता के साथ क्या हिलगाव रखेगा? कि दूसरे सज्जन भाषण देने खड़े हुए। रजनी ने चुपके से अपने साथी षड्यंत्रकारी से पूछा कि भला, ये कौन हैं? उसने बताया कि ये इन पंजाब के नेता के रक़ीब हैं। और इस पर दोनों ही हल्के से मुस्करा दिये। रक़ीब!

वह भाषण सुनने लगा। और उसने देखा कि यह रकीब किस दाँव-पेच के भाषण दे रहा है कि वह अपनी प्रतिद्वंद्विता साफ़ खुले ताश के पत्तों-सी आगे रखे दे रहा है। वे कह रहे थे कि काँग्रेस ने जापानियों के साथ कोई समझौता नहीं किया है। लेकिन हम आज भी गांधी जी के इस कथन में यह बात जरूर जोड़ देने के पक्ष में हैं कि भारत में काँग्रेस ही वह संस्था है जो अपने असूलों से समझौता कर बरतानियाँ हुकूमत से शर्तबंदी कर सकती है। हम वह रास्ता जानते हैं जहाँ से हमें अपने मंज़िले-मकसूद तक पहुँचना है······

रजनी आराम से उठा कि वह खंखारा कि कफ़ बाहर उगल आये। सैल में जाकर उसने अपनी कमीज़ और पैंट पहन ली और पलँग पर बैठ गया।

उधर उन रकीब-नेता का भाषण चल रहा है, साथ-साथ दावत भी चल रही है कि किसी मज़ाक पर सभी एक साथ मुक्त-कंठ ठहाका मार रहे हैं।

बाहर वह क़ैदी सरल भाव से आया कि जी, चलें।

रजनी बाहर आया। सब दावत के इर्द-गिर्द व्यस्त हैं। बारक के द्वार पर जो पहरेदार है वह रसोई में बैठा दावत खा रहा है। वहाँ से वे सरल भाव से निकलकर पीछे के गोभी-खेत में पहुँच गये। और पेड़ों के बीच में दोनों उकड़ू रेंगते हुए जेल की मुख्य दीवार तक आ रहे। क़ैदी ने मुँह से हल्की-सी सीटी बजाई तो दीवार के पहरेदार-क़ैदी ने चुपके से कहा कि आ जाओ। उधर की रोशनी यहाँ एक घने पेड़ की परछाईं डाल रही है।

रजनी उठा और वहाँ पहुच गया।

दीवार पर एक रस्सी लटक रही है। दोनों ने रजनी को सहारा दिया और वह ऊपर पहुँचकर दूसरे पलक उधर कूद गया। कूद तो गया पर पैर मुड़ गया और वह वहीं दर्द से चीख ही रहा था कि सँभल गया। उठ ही रहा था कि एक क़ैदी-वार्डर ने उसकी गर्दन पकड़ ली। झटके-से उसे खड़ा कर पूछा कि आपका नाम?

रजनी मुस्करा दिया। बोला, "रजनी।"

"माफ करना," क़ैदी ने सिर झुकाकर याचना की और कहा कि आप सीधे इस अँधेरे-अँधेरे उधर चले जायँ। उस दीवार पर एक रस्सा लटक रहा है। झट चढ़कर पार बोलें। देर की, तो हम सब ५० आदमी धूल-मिट्टी हो जायँगे।

रजनी ने उसके कथन पर अमल किया। जैसे किसी शिक्षिता नववधु ने अपने पुराने विरासती बन्द मकान से प्राचीन हस्तलिपियों को बेकार की चीज़ समझकर छत के नीचे फैंक दिया हो, उस लटकते हुए रस्से ने रजनी को उठाकर जेल की दीवार के उधर फैंक दिया······

× × ×

दिल्ली के नेता लाला जी अपने कैम्प में रजाई में लिपटे हुए आराम कर रहे हैं। अभी टैररिस्टवार्ड से दावत खाकर आये हैं। पंजाब के काँग्रेस-नेता और उनके रकीब के भाषणों पर यों ही ध्यान दौड़ा रहे हैं। यह ग़लत किया है यहाँ की पार्टी ने, काँग्रेस का नेतृत्व इस ग़लत आदमी के हाथों में दे दिया है। असल में ग़लती तो लाला लाजपतराय ही कर गये हैं कि उन्होंने इस ग़लत आदमी को मुँह लगाया। पंजाब का नेतृत्व तो अब तक मेरे हाथ में आ जाना चाहिए था। कि उनका ध्यान अपने घर की ओर मुड़ गया। इस समय उनकी पत्नी सो रही होगी। चिट्ठी में उसने लिखा था कि उसे रात नींद नहीं आती है। और पूछा था कि आप कब तक घर आओगे ? क्या कहा जा सकता है कि हम लोग कब तक छूटेंगे। हो सकता है कि हम लोगों पर मुक़दमे चलाये जायँ। ···उनकी उत्तेजना इतनी बढ़ गई कि उनकी इच्छा हुई कि उनकी पत्नी इसी समय यहाँ आये और यहाँ अन्दर इस बारक में चली आये। कितना प्यार है उसे मुझ से। और उसी के प्यार का नतीजा है यह कि मैं इतना प्रसिद्ध नेता हो सका हूँ। फिर ख्याल आया कि मैंने अपनी सारी जायदाद अपनी पत्नी के नाम कर दी है। डर था कि कहीं सरकार उसे नीलाम न करवा दे। और लाला जी को याद आया कि ९ अगस्त को बम्बई में हाई-कमांड गिरफ़्तार हो गया था। दिल्ली में भी गिरफ़्तारियाँ शुरू हो गई थीं। वे छिपकर दो दिनों तक तो महरौली पड़े रहे थे। पर वहाँ उन्हें पता चला कि सरकार उनकी सारी जायदाद ज़ब्त करने वाली है तो उनका दिल धक्क से रह गया था और उन्होंने फोन से पुलिस को एक झूठी सूचना दी थी कि लाला जी यहाँ छिपे हुए हैं। और पुलिस आकर उन्हें गिरफ़्तार कर ले गई थी। उस दिन उनकी पत्नी ने कितने-कितने आँसू गिराये थे···· लाला जी ने तकिये के नीचे से पत्नी की साड़ी निकाली और उसे अपने गालों के नीचे दबाकर वे कुछ बेसुध हो गये······फिर सोचने लगे कि उनके अख़बार में लगे हुए शेयरों का दाम तो काफ़ी बढ़ गया है। अच्छा है, अगर पचास हज़ार और मिल जायँ तो वे अपनी पत्नी के नाम से 'वार-बाँड' खरीदवा देंगे और शायद इस तरह उनकी पैरोल आसानी से होम-मिनिस्टर स्वीकार कर लेंगे···कि जेल के 'खतरे के घंटे' ने उन्हें चौंका दिया और वे उठकर बाहर आ गये······

'फ़ेसक्रीम मलते हुए' सज्जन पंजाब के नेता हैं और लोहे का व्यापार करते हैं। अभी वे पैरोल पर पन्द्रह दिन के लिए बाहर गये थे और इन पन्द्रह दिनों में उन्होंने पन्द्रह हज़ार का 'बिजनिस' किया है। उनके समधी सिविल-सप्लाई में हैड-क्लर्क हैं। वहीं पर उन्होंने अपने एक कारख़ाने के नाम से नब्बे टन की टीन की चदरें ली थीं और आश्वासन दिया था कि इस कारख़ाने में वे सबसे पहले 'वार-एफर्ट' को 'प्रायोरिटी' देंगे। इस समय वे करवटें लेते हुए सोच रहे थे कि उनकी लड़की

की शादी के लिए हाईकोर्ट के वे सरकारी वकील ठीक रहेंगे। यदि जात नहीं मिलती तो क्या हुआ? सरकारी वकील की पहली पत्नी का अभी स्वर्गवास हुआ है। दो मास तक वे रोमांन्स कर सकते हैं। इस तरह बड़ा फ़ायदा रहेगा कि हमारा लाहौर हाईकोर्ट पर असर रहेगा और बड़ा लड़का कालेज में 'लॉ' करते ही वहाँ के उसूलों को जल्दी ही समझ लेगा और जल्दी ही उसकी प्रेक्टिस चमक जायगी। फिर सोचने लगे, पंजाब के गवर्नर अगले हफ़्ते मांटगुमरी जायँगे। वहाँ पर उनके साले उनके सम्मान में एक दावत देने वाले हैं। इस दावत से यह फ़ायदा होगा कि उन्हें अपने ज़िले का सूत का कोटा मिल जायेगा। और उसकी ब्लैक से जो रुपया आयेगा उसे वे 'वार-बाँड' में लगा देंगे। आशा है कि अगले साल की आॅनर-लिस्ट में उन्हें 'नाइट' की टाइटल मिल जायगी··· कि उन्होंने सुना, जेल का 'ख़तरे का घण्टा' बज रहा है···

कीमती आँवला तेल की मालिश करने वाले घुटे सिर के नेता ने चुपके से अपनी ज़मींदारी गिरवी रखकर पाँच हज़ार के शेयर बिस्कुट फैक्टरी के खरीदे हैं और आठ हज़ार के शेयर कानपुर की एक 'वार-लैदर-फैक्टरी' के खरीदे हैं। ख्याल है कि इस तरह आगामी मास तक उन्हें तीस हज़ार मिल ही जायगा। इनमें से वे पाँच हज़ार वार-बाँड में लगा देंगे। और अपने बड़े लड़के को गवर्नर के पर्सनल स्टाफ़ में लगवाने की कोशिश करेंगे। यह काम ज्यादा मुश्किल नहीं है। गवर्नर पर ओकाड़े के चॅक नम्बर नौ वाले ज़मींदार का काफ़ी असर है और वह मेरे लड़के की सिफ़ारिश कर सकेगा। पिछली मिनिस्टरी में मैंने उसे सारे पंजाब-एरिया की सीमेंट-डिस्ट्रीब्यूटिंग मोनोपोली दी थी। इसके बाद वे कोशिश करेंगे कि गवर्नर ओकाड़े में एक दौरा कर आठ सौ रंगरूट भरती कर सके। इस काम में उनका लड़का पूरी मदद देगा। और बस, ओकाड़े में वे सहज ही कपड़े की मील के बीस पर्सेंट शेयर अपने करवा सकेंगे। शायद दुबारा इलेक्शन हो तो उन्हें खड़ा होना ही पड़ेगा और उस समय कम से कम पच्चीस हज़ार रुपया खर्च करना पड़ेगा··· कि उन्होंने सुना कि जेल का 'ख़तरे का घण्टा' बज रहा है। छाती उनकी काँप उठी और वे काँपने लगे, घिग्घी उनकी बँध गई······

भार्गव साहब ने अभी एक इंजेक्शन लिया है। उनका 'ब्लड-प्रेशर' बढ़ा हुआ है। और वे अपनी बाँह का सिकताव करा चुके हैं। इस काम के लिए जेल की तरफ़ से उन्हें तीन क़ैदी-नौकर मिले हुए हैं। खद्दर रेशम की चद्दर अपने ऊपर सरकाकर उन्होंने बिजली का पंखा चला दिया और 'बेड-लाइट' खोलकर वे प्लेटो का 'युटोपिया' पढ़ने लगे·· कि उनका दिमाग़ उचटकर लाहौर के नवाबगंज में चला गया। वहाँ उनका घर है। वे सोचने लगे कि अगली मिनिस्टरी में खिज्रहयात खाँ इसी तरह प्रीमियर

नहीं बन सकता, यदि हम उसकी यूनियनिस्ट में से मेजर मुराद को अपनी काँग्रेस-सीट पर ले आयें, उसे जलंधर में आरमी-डिपो का स्टोर-काँट्रैक्ट दिलवाकर। और जनाब नज़ीरउद्दीन साहब के बड़े लड़के को लाहौर म्यूनिसिपल-चेयरमैन बनवा दें तो वे भी शर्तिया उनकी पार्टी में आ जायँगे। और वे सर छोटूराम से समझौता कर लेंगे कि वे ऐजूकेशन विभाग में ७५ परसेंट जाट रख लें। भई, पालिटिक्स यही कहती है। अकेले सत्य और कोरी अहिंसा से तो पंजाब असेम्बली में काँग्रेस-मेजोरिटी रह नहीं सकती है···कि उन्होंने सुना, जेल का 'खतरे का घण्टा' बज रहा है···

और काँग्रेस-बारक के सभी काँग्रेसी 'नवाब वाजिदअली शाह' आँखों को विस्फारित किये हुए बारक के बाहर उचककर देखने लगे कि क्या तूफ़ान आ गया है और कौन बदतमीज़ इस तरह जेल की शान्ति को भंग कर गया है। जेल सुपरिन्टेन्डेट साहब कितने भले आदमी हैं। जब जो माँगो देते हैं। यहाँ बिस्कुट-मक्खन, बढ़िया पेटेंट दवाइयों के ढेर और इतने सारे नौकर···क्या सरदर्द किस नालायक ने उनके लिए पैदा कर-दिया है और उनके नाम पर कालिख पोत दी है। भला कहाँ दुनिया में होगा इतना दानिशमन्द जेल सुपरिन्टेन्डेंट !

× × ×

चारों तरफ़ बस सुनसान है। लपककर रजनी वहाँ नाली की उथली खाई में हो लिया और नीचे सिर किये भागने लगा सीधे···

घड़ी ने ग्यारह बजाये। और उसे जैसे चाबुक मारी कि वह जल्दी-जल्दी भागे।

सामने बाज़ार आया तो वह नाली से ऐसे चढ़ा जैसे तो पेशाब कर आया है। और बताये हुए मुहल्ले में घूम गया। उसे बस इतना होश है कि वह जेल से भागकर आया है। फिर भी उसने अपनी चढ़ी हुई साँस को शान्त किया। पान की एक दुकान पर उसने सांई हरदयाल का मकान पूछा। उसने कहा कि जी, उस गली में रहा।

गली के मकान के द्वार पर उसने थाप दी। दरवाज़ा खुला। सफ़ेद केश और सफ़ेद दाढ़ी। एक तैमद बाँध हुए, सांई जी ने कहा कि आइये बाबू जी।

अन्दर खाट पर बैठकर रजनी ने साँस ली। अपने चेहरे की भंगिमाओं को संयत किया और कहा कि मैं पण्डित हरसहाय जी का लड़का हूँ। सुनकर सांई जी की बांछें खिल गईं। और वे लपककर ख़ुशी में अन्दर गये। शायद घरवाली से कहा कि भोजन तैयार करो। ऊँची आवाज़ में रजनी ने सूचना दी उन्हें कि मैं भोजन कर आया हूँ। तो वे लौट आये। बैठकर बोले कि सुनाओ बेटा, पिता जी के क्या हाल हैं ? तुम जब छोटे थे तब मेरी गोदी में खेला करते थे। और तुम्हारे बड़े भाई मेरे कन्धों पर चढ़े रहा करते थे।

रजनी उठा और उनकी खाट पर आ गया। ज़रा कठिन होकर उसने कहा, "सांई जी, मैं जेल से भागकर आ रहा हूँ और आपकी शरण हूँ।"

सांई जी के चेहरे पर एकदम त्यौरियाँ पड़ गईं और वे अवाक रजनी को देखने लगे। देख चुके तो बोले, "बेटा!" उन्हें सीधे देखते हुए रजनी ने कहा कि जी। कि वे बलात् हँसकर बोले, "तुम वहाँ जाकर अन्दर लेटो और निश्चिन्त सोओ। अब सुबह बात करेंगे।"

हठात् यह क्या हो गया! एक दिन हठात् वह गिरफ़्तार होकर जेल में 'बन्द' कर दिया गया था। आज हठात् वह देश की सबसे बड़ी जेल से भाग आया है! उधर वह अँधेरे में खाट पर लेट गया। मस्तिष्क किसी विशालकाय मशीन की नाईं एकदम रुक गया है उसने सुना···दूर···जेल में खतरे का घण्टा बज रहा है। वहाँ पर वह घण्टा ख़ूब ज़ोर लगाकर बज रहा होगा, पर यहाँ आते-आते उसकी ध्वनि कितनी क्षीण हो चुकी है। और उसे सुनाई दिया कि चारों ओर पुलिस की सीटियाँ सारे नगर को ज़हरीली मकड़ी की मानिंद अपने जाले से ग्रसित कर रही हैं···

प्रातः रजनी की पलकें ऊपर के झरोखे से झाँकती हुई सूर्य-किरणों के स्पर्श से अतिरेकानन्द में झूमकर भीग उठीं। आँखें बन्द कर वह सोच रहा था कि इसी तरह किसी अनचीन्हे झरोखे से देश की नई किरणें भारत-माँ के घूँघट-पट खोलेंगी और अनभ्र प्रकाश फैला देंगी···

सांई जी ने माथे पर दुलार से हाथ रखकर कहा कि रजनी, आँखें खोलो और चाय पिओ।

रजनी आज क़ैदी नहीं है। क़ैद से विद्रोह कर वह उसकी शृङ्खलायें तोड़ आया है और यहाँ मुक्त श्वासें ले रहा है। लेकिन हाय! ये मुक्त श्वासें आज एक भयंकर अपराध हैं। जाने किस दिन वे रजनी की बहुमूल्य सम्पत्ति होंगी···एक लम्बी उबासी और भरी-पूरी अँगड़ाई लेकर वह उठा। सामने सांई जी कुर्सी पर बैठे हैं और उनके पीछे नई दिल्ली के कनॉट सर्कस-की-सी कोई आधुनिक युवती खड़ी है। हाथ में उसके चाय का कप है। मुस्कराकर रजनी ने चाय का कप ले लिया और चुस्कियाँ लेने लगा। सांई जी ने ज़रा सख़्ती से पूछा कि रजनी, आख़िर जेल से क्यों भाग आये हो?

प्रश्न से वह विचलित नहीं हुआ। बोला, "वहाँ साढ़े तीन हज़ार क़ैदी हैं। वे सब ही हाथ का आसरा लगे तो भाग आयें। मुझे मौक़ा हाथ लगा सो भाग आया हूँ।"

सांई जी शांत बैठे रहे। रजनी ने चाय ख़त्म की तो सांई जी ने पूछा, "अब क्या करोगे?"

अब क्या करोगे ? माँ ने यही प्रश्न जाने कितनी बार किया है। पिता जी यही बात कितनी बार पूछ चुके हैं। माधवी तो बार-बार यही तक़ाज़ा करती रही है कि वह अब क्या करेगा ? और आज जेल से भागकर यही प्रश्न उसका रास्ता रोककर खड़ा हो गया है कि वह अब क्या करेगा ? अरे. वह बताये, अब वह क्या करेगा ? ओह ! यह प्रश्न इस क्षण उस जेल-सुपरिन्टेन्डेन्ट और उस पुलिस जनरल की सामूहिक शक्ति से भी ज्यादा शक्तिशाली है। रजनी ने सांई जी को पूर्ण विश्वास से मुस्कराकर देखा और बोला, वैसे उसकी आँखों पर सामने खड़ी युवती के सौन्दर्य का विभ्रम-सा छा गया है, "मैं राजनीतिक व्यक्ति तो हूँ नहीं। उस पुलिस इंस्पैक्टर की नालायकी से मैं बेमायने का षड्यन्त्रकारी घोषित किया गया हूँ, तो आज मैं ज़बरदस्ती वैसा षड्यन्त्रकारी अवश्य हूँ जैसा कि अच्छा-ख़ासा भला आदमी पागल-पागल चीख़ने-चिल्लाने से नीम-पागल बन जाता है। पालतू कुत्ते को कोई हड्डी का टुकड़ा अगर गाहे-बगाहे कहीं पहली बार मिल जाय तो वह बस, हर घण्टे इसी तलाश में रहता है कि उस हड्डी की भूख को किसी तरह शान्त करे। और उसी की दीवानगी में वह अक्सर न जाने कहाँ-कहाँ आवारा की तरह से भटक आता है। आवारा तो मैं कालेज से निकलकर हो ही गया था। अब जेल का ख़ून मुझे भी लग गया है सो घरबार के काम का तो मैं कतई नहीं रह गया हूँ। पूरे देश का भ्रमण करना चाहता हूँ। आवारागर्दी के लिए यह कोई मेरा बहाना नहीं है। मैं जानता हूँ कि इस देश-भ्रमण की कमाई इस समय तो काम नहीं आयेगी, पर एक दिन उसका अपना मोल होगा और उस मोल से मुझे ज़िन्दगी का सहारा मिलेगा।"

सांई जी ने पीछे घूमकर कहा, "सुन लिया शिली। दूर से सिंह भयंकर लगता है। क़ैदी होकर वह चाबुक को भयंकर मानता है। तुम्हारे सामने यह भयंकर षड्यन्त्रकारी बैठा है। तो सम्हालो इसे, और एक ज़बरदस्त चाबुक की मार से इसे इतने मज़बूत कटघरे में बन्द कर रखना कि यह वहाँ से भाग न सके।" और उठकर वे बाहर चले गये। रजनी न जान सका कि क्रोध में वे बोले हैं या मुदित होकर।

शिली अब कुर्सी पर बैठी। परित्यक्त दृष्टि से उसने रजनी को देखा। संयत स्वर में बोली, "उठकर ये 'शोफ़र' के कपड़े पहन लें।"

रजनी ने वह ड्रेस देखी। दूसरी दृष्टि से शिली को देखा और उसी क्षण उसने अपने वस्त्रों पर मोटर-ड्राइवर का भेष धारण कर लिया। शिली ने कुछ नहीं कहा और बाहर चली। रजनी उसके पीछे चला। बीच के कमरे में सांई जी बैठे अख़बार पढ़ रहे थे। पर शिली मकान के बाहर आ गई। गली के नुक्कड़ पर 'कार' खड़ी है। दो छलाँग भरकर रजनी ने फ्रण्ट-सीट का दरवाज़ा खोला तो शिली ड्राइवर-सीट पर बैठ गई। रजनी पीछे बैठ गया। कार चल दी और रजनी को लगा कि जैसे वह एक

भूखण्ड से उड़कर दूसरे भूखण्ड पर जा रहा है।

सचमुच उसका साहस बाज़ार की भीड़ या इधर-उधर देखने का नहीं हुआ। निश्छल वह शिली की कोमल उँगलियों के बीच स्टीयरिंग-व्हील घूमता देखता रहा। ये उँगलियाँ 'कार' तो क्या चला रही हैं, उसके भाग्य को ज़मीन के नरक से निकालकर जाने किस गुप्त नक्षत्र की ओर ले जा रही हैं। आह! स्वर्ग-बालायें भी ठीक इसी तरह···पुण्य-आत्माओं को आकाश-गंगा के पथ से स्वर्ग-द्वार तक ले जाती होंगी!

लाहौर की अनारकली और मालरोड से होकर, कार एक कोठी के पोर्च के आगे रुकी। रजनी ने तुरन्त शिली का दरवाज़ा खोला। उसने नीची दृष्टि उसे कोठी में अन्दर आने का इशारा किया।

अन्दर एक भव्य ग्रीनरूम में पहुँचकर वह शिली के पीछे एक सुसज्जित 'स्टेअर्स' पर ऊपर चढ़ा। और दूसरे क्षण एक सुन्दर कमरे में प्रविष्ट होकर अन्दर बन्द हो गया। शिली के माथे पर पसीना चिलक आया है। लम्बी-लम्बी साँसों को शान्त करती हुई वह आरामकुर्सी पर फैल गई। कठिनाई से मुस्कराकर बोली, "वहाँ सोफे पर बैठिये।"

बैठने से पहले उसने ड्राइवर की ड्रेस उतारी। स्थिर पलकों कमरा देख चुका तो नीची निगाहें कर बैठ गया कि अब क्या करना होगा? द्वार खोलकर एक महरी अन्दर आई और बोली, "जी, बीवीजी!"

शिली ने कहा कि जल्दी दो कप कॉफ़ी ले आओ। और इन साहब के लिए गुसल का पानी गरम करो। और, शिली ने रजनी से पूछा कि जी, आपको कुछ और चाहिए, तो बतायें।

रजनी को दिमाग पर ज़ोर देना पड़ा कि क्या चाहिए। तो शिली बोली, "आपको सिगरेटें चाहियें न? क्यों न?"

वह आश्चर्य में पड़ गया कि यह अन्तर्यामिता कैसी। कि शिली इस एकान्त में खिलखिलाई और बोली, "आपकी ये उँगलियाँ पीली ज़र्द कह रही हैं कि आप तगड़े 'स्मोकर' हैं। इतनी एय्यारी मैं जानती हूँ।"

रजनी प्रथम परिचय के संकोच में मुस्कराकर कुछ बोल न सका। नीचे देखता रहा। शिली ने अपना पर्स उठाया और बाहर चली गई। तो वह एकान्त पाकर भी स्थिर न हो सका। और सोचने लगा कि पुलिस उसे कहाँ-कहाँ ढूँढ़ती फिर रही होगी। क्या वह पानवाला बता देगा कि कोई अजनबी सांई जी को पूछने के लिए रात के ग्यारह बजे आया था···

नहाने पर उसे नये वस्त्र मिले। वहीं कमरे में भोजन आया। भोजन के बाद सिगरेटें आईं और फिर महरी अंग्रेज़ी दैनिक दे गई। प्रथम पृष्ठ पर बैनरलाइन है,

"लाहौर जेल से राजनीतिक षड्यन्त्रकारी फ़रार।" पूरा समाचार वह पढ़ चुका तो कुछ वेदनामयी हृद्-गति बढ़ चली। गोड़ों में उसने छाती दबा ली, पर दिल का दर्द असहनीय होता गया। वह कराहेगा नहीं। कठोर होकर उसने एक सिगरेट पी। जाने कब वह सो गया।

चार रोज़ तक रजनी इस कमरे में बन्द रहा। शिली एक क्षण को भेंट करने नहीं आई। शाम तक वह समाचारपत्रों का एक-एक शब्द पढ़ता और सिगरेट फूँकता। पुलिस जी-तोड़ परिश्रम कर रही है। ऐसा समाचार मिला है कि रजनी आसाम की घाटियों तक जैसे-तैसे पहुँचकर नेता जी सुभाष बोस की फ़ौजों से मिलने के लिए चला गया है। पुलिस सरगरमी से उसका पीछा कर रही है।

इन चार दिनों में रजनी ने हिटलर के सम्बन्ध में काफ़ी पढ़ा। मुसोलिनी पर अपने विचार बनाये। अराकान की लड़ाई पर अपना मत बनाया। चर्चिल के भाषणों को उसने हृदयंगम् किया। सामने की अलमारी में रखे पत्रों से उसने 'भारत छोड़ो आन्दोलन' की बात ठीक तरह से समझी।

पर वह खुद कौन से मोड़ पर मुड़कर अब इस दुनियाँ की उलझी हुई घटनाओं की कौन सी गुप अँधेरी गलियों में आगे बढ़ना चाहता है? पूरे सात महीने वह हवालात में रहा है। चार महीने की वह जेल काट चुका है। उस क़ैद के अनुभव! राजनीति के कर्ण-कटु गीतिकाव्यों की देखी-सुनी-अभिव्यक्ति! वे बीस साला षड्यन्त्र-कारी क़ैदी और उनके जीवट हास-परिहास। वे काँग्रेसी नेता और जेलर से उनकी खुली मज़ाकें दोस्ताना तौर की। पर सबसे सर्वोपरि उन काँग्रेसी नेताओं की अदायें और ऐयाशियाँ उस जेल में और वे नौ-नौ किस्मों की डिशें। यह हमारा नेतृत्व इस कठिन समय में किस तरह का है कि नेताओं को सोने के लिए मुलायम गद्दे चाहिएँ। क्या और भी कठिन समय आयेगा तो हमारे ये नेता इसी तरह का राजभोग भोगते रहेंगे? उनके मुक़ाबले में सी-क्लास के वे दीन काँग्रेसी-क़ैदी और जो लोग अनायास पुलिस की ज़्यादतियों की वजह से इस जेल में लाकर पटक दिये गये हैं, उनकी मुसीबतें कितनी हैं और उनके घर वालों की तकलीफ़ें कितनी न बढ़ गई होंगी।

रोज़ वह जल्दी सो जाता है। आज नहीं सोयेगा और सारी रात जागेगा। उन सांई जी ने मुझे यहाँ किसकी क़ैद में पुनः बन्द कर दिया है? जेल का वीभत्स, निर्जन हैवानी एकान्त यहाँ भव्य शान में रूपान्तरित कर दिया गया है। पर इस शान में क़ैद रहना भला शान की बात है?

लाहौर। पंजाब की राजधानी। पाँच नदियों से धन्य प्रान्त। युद्ध की अग्नि में घृत-योग्य जूझने वाले पंजाबी युवकों का 'खलिहान'। रजनी आश्चर्य से पंजाबी महिलाओं का चरम फैशन देखता है और स्तब्ध रह जाता है···आश्चर्य है, पंजाब

की सीमान्त-संस्कृति हठात् बर्बरता से हटकर तीक्ष्ण-भौतिक प्रकृति के कौन से रासायनिक प्रयोग से रसीली हो उठी है। गौरव की बात तो पंजाब की राजनीति आज क्या, पिछले ४० साल से नहीं है।...कि रात के दो बजे शिली ने कमरे में प्रवेश किया और पहले सिगरेट-केस देखा। वह खाली था। उधर लपककर 'कॉलबेल' बजाई और आकर सोफ़े पर बैठी। रजनी उलूल-जुलूल तरीके से आराम-चेयर पर बैठा हुआ ऊँघ रहा था कि चौंका और सँभलकर बैठा। मुस्कराकर रह गया और बोला नहीं। नौकरानी आई तो शिली ने उसे आज्ञा दी कि सिगरेट ले आये। वे ४०० सिगरेट इन्हीं बाबू के लिए आई हैं।

रजनी का मूल्य ४०० सिगरेटों के आतिथ्य से कूता गया है।

सिगरेट आ गई तो शिली ने उठाकर अपने हाथों उसके मुख की सिगरेट चासी। और पूछा कि आप अभी बड़बड़ा रहे थे कि मेरी आँखें देख रही हैं...सो क्या देख रही हैं ?

रजनी को याद नहीं है कि वह क्या स्वप्न देख रहा था। फिर भी उसने सहज स्वभाव में कहा, "जो क़ैद में रहकर कोई कुछ काम नहीं कर पाता, बस, उसकी आँखें कुछ देखती रहती हैं। मेरी आँखें देख रही हैं कि आपका यह पंजाब इस करवट पड़ा हुआ नहीं रह सकेगा।"

शिली को कुछ उत्तर नहीं सूझा। ये एक क्रान्तिकारी हैं और इनके स्वप्नों को समझने में असमर्थ रहेगी। वह तो बस अपनी कालेज की टैक्स्ट्-बुक ही ज़्यादा समझ सकती है या फिर श्रेष्ठ रुचियों के लेटेस्ट फ़ैशनों की जानकारी रखती है। किसी षड्यन्त्रकारी का स्वागत करने का मौक़ा उसे मिला है तो यह अत्यन्त प्रसन्नता व मनोविनोद की बात है। पर बोली, "जी, तो पंजाब करवट लेगा। पर हम पंजाबी तो भाग्य पर बहुत ज़्यादा भरोसा रखते हैं। यह भाग्य क्या है ?"

रजनी अपनी हठात् उग्रता से कुछ झेंपा और हँस पड़ा। बोला, "जी, मैं भाग्य को सिर्फ़ ऊन की लच्छी ही समझ पाया हूँ, जिसे औरतें अपनी सलाइयों में ज़रा करीने और तमीज़ से बुनकर और करीने से सुलझाकर अच्छी-खासी जर्सी या पुलोवर और स्वेटर बुन सकती हैं।"

शिली यह परिभाषा सुनकर चौंकना चाहती थी, पर चौंकी नहीं और चुप रही। रजनी सिगरेट पीता रहा। वह उठी। मुस्कराकर बोली, "कल, आप लाहौर की सैर कर सकेंगे। मैंने इन्तज़ाम किया है।"

रजनी इस आभार से गड़कर रह गया और उसने कहा, "धन्यवाद !"

द्वार के दो पर्दों के बीच शिली रुककर घूमी तो वह उसे पूरी देवांगना जँची। बोली, "पुलिस आपका सरगरमी से पीछा कर रही है। पर नगर भर में यह अफ़वाह

मैंने फैलाने का प्रवन्ध अपने कालेज के दोस्तों के जरिये करा दिया है कि आप काश्मीर की सरहद पर पहुँच गये हैं। पुलिस ने आपको पकड़ने के लिए चालीस हज़ार रुपये का इनाम घोषित किया है। कहिये तो वह इनाम मैं प्राप्त कर लूँ ?"

रजनी ज़रा ऊँचे होकर बोला, "जी, यदि आप मुझे किसी कोल्हू में पिसवाकर मेरा तेल निकलवा लें, तो वह अस्सी हज़ार तक में बिक सकता है।" और ज़ोर से ख़ुद ही हँस पड़ा। शिली रजनी की इस अभिनव हँसी से तरंगायित हुई और नृत्य की दुलकी से उछलकर पर्दों के पीछे दौड़ गई।···अब रजनी सोयेगा। पर उसकी हृद्-गति फिर उत्कट हो गई है। उस पीड़ा से दुखित उसने आँखें मींच लीं। उठकर उसने रोशनी बुझा दी···चालीस हज़ार का इनाम···वह जल्दी ही सो गया।

× × ×

दूसरे दिन सुबह शिली का रूप अपूर्वतम था। मेहरूम शेड की सलवार पर गंगा-जमनी कमीज, माथे पर स्वर्ण झूमर, कानों में जड़ाऊ ईयर्रिंग, माथे पर इन्द्र-धनुषी टिकली। गोरे अधरों पर सुर्ख़ी, सुर्ख़ गालों पर पके सेव की ताज़गी का रंग। कंधों पर झूलता हुआ मनीबेग। आकर उसने रजनी को झकझोरकर उठाया और आँखें मलने से पूर्व ही उसके हाथों में चाय का कप थमा दिया। कुछ रुखाई से रजनी ने इस अपरिचिता निर्भीक कन्या का रति-रूप देखा और नीरस होकर चाय पीने लगा। चाय समाप्त हुई तो शिली ने उसकी उँगलियों में सिगरेट पकड़ाकर थमाई और ख़ुद ही उसे माचिस दिखाई। फिर बोली, "उठिये।"

रजनी उठ गया और ग़ुसलखाने में चला गया। उसने देखा कि आज उसकी धोती और कुर्ता वहाँ नहीं हैं। नहाकर वह पुराने कपड़े ही पहन आया। सामने शिली की गोद में कुछ वस्त्र रखे हैं···आध घंटा लगा तो रजनी को शिली ने सिख-युवक का बाना पहना दिया। दाढ़ी-मूँछों को भी बारीकी से चिपका दिया गया। वह अच्छा-ख़ासा टिक्का साहब नज़र आ रहा था।

'कार' शिली ने चलाई। आश्वस्त होकर रजनी बाज़ार देखने लगा। सबसे पहिली निगाह उसकी स्थान-स्थान पर चिपके हुए युद्ध में आवाहन करने वाले पोस्टरों पर गई। फ़ौज में भर्ती हो और 'नेशनल सेविंग्ज सार्टिफिकेट' ख़रीदो।···शाम तक उसने पूरा लाहौर देखा। शिली ने कोई बात तक न की, तो रजनी युद्ध के पोस्टरों पर विचार करता रहा।

लौटकर आये। शाम हो चुकी थी। दिन का भोजन एक होटल में किया गया था। ऊपर के कमरे में बैठकर रजनी अपने कृत्रिम केशों पर बँधा पग्ग उतारने लगा तो शिली ने ज़रा शुष्क होकर कहा, "ठहरें, अब आप कहाँ जायेंगे ?"

वह इसी प्रश्न का राह में था। बोला, "जैसी आप व्यवस्था कर दें। वैसे इस

पृथ्वी पर तो अभी मेरी आत्मा दस हज़ार साल तक आती रहेगी।"

उसने देखा कि शिली के माथे पर कालौस छा गई है। वह चिड़चिड़ी होकर बोली, "मुझे आपको अमृतसर पहुँचाना होगा। मार्ग ख़तरनाक है। शायद सड़कों पर पुलिस तलाशी लेगी। आपको पिस्तौल चलानी आती है?"

रजनी ने एक सिगरेट जलाकर कहा, "जी? अच्छा, पिस्तौल का मायना आप क्या जानती हैं?"

शिली का स्याह चेहरा रौशन हो गया। बोली, "अच्छा, पिस्तौल का काम भी मुझे स्वयं करना होगा। चलिए। खाना रास्ते में ही खाया जायगा।"

कार कोठी से चली तो रजनी ने इस सुखद-भवन को प्रणाम किया। उसकी इच्छा हुई कि जाने कि इस भवन का मालिक कौन है? ताकि उसके चरण छूता चले। पर यह युवती विष-कन्या से कम नहीं है। न मेरे बारे में जानना चाहती है और न अपना परिचय ही देना चाहती है।

आध घन्टे बाद 'कार' शिली के हाथों में कठपुतली-सी तेज़ नृत्य करती हुई अमृतसर की दिशा में भाग चली। रजनी को ध्यान आया कि इस समय जेल का वार्डर उनकी गिनती करता था और ताला लगाता था। आज भी वह आया होगा···हाँ, मैं भी कहीं जा रहा हूँ···यह कितना विचित्र है। रात के सन्नाटे में उसे यह युवती राजद्रोह के पथ पर कितने वेग से दौड़ाये लिये जा रही है।

वेग! युद्ध का वेग आज रूस से और ब्रिटेन से जर्मनी की ओर दौड़ रहा है।

उसने हल्के से शिली से पूछा, "मेरे मन में एक पछतावा रह जायगा। आपके आतिथ्य का ऋण तो ख़ैर मैं कभी चुका ही नहीं सकूँगा। फिर भी आपका परिचय मिल जाना चाहिए।"

शिली हल्के से मुस्कराकर बोली, "इस लड़ाई के ज़माने में माता-पिता या जाति के बताने के मायने ख़त्म हो चुके हैं। इंसान की अपनी इकाई भी आज कुछ नहीं रह गई है। फिर भी आप पूछते हैं तो मेरा नाम मिस शिलोठिया है। और मैं गवर्नमेंट कालेज की एम. ए. की छात्रा हूँ।"

कुछ देर बाद रजनी ने कहा, "आप जानती हैं कि आज हमारा राष्ट्रीय नेतृत्व सीखचों में बन्द है। बाहर, देश में जनता दाने-दाने को मुहताज है। पुलिस ने अपना कठोर राज क़ायम कर लिया है। रोटियाँ हीरों के दामों पर मिलने लगी हैं। यह दोष इस लड़ाई का या इस केन्द्रीय सरकार का नहीं है। हमारा राष्ट्रीय नेतृत्व आँखें मींचे हुए अभी तक अहिंसक विद्रोह का नेतृत्व भी पूरा नहीं कर सका है। आप मेरी एक बात याद रखना। युद्ध समाप्त होने के बाद दस सालों तक हमारा

देग राष्ट्रीय नेतृत्व की इन ढीली कीलों के दुष्परिणामों से दुखी रहेगा···"

कि एक चौकी पर दस पुलिसमैनों ने 'कार' रोक ली। श्रेष्ठ सुन्दरी और सरदार जी। आज्ञा हुई कि कार आगे बढ़े।···पुलिस के सरदार ने जब शीशे की खिड़की के अन्दर टार्च फैंककर झाँका तो रजनी स्वतः मुस्कराता रहा और शिली के कन्धों पर हाथ रखकर बैठ गया। कार आगे बढ़ गई तो रजनी ने अपना हाथ उसके कन्धों से हटा लिया और बोला, "क्षमा कीजियेगा।"

शिली ने कहा, "आप मुझे क्षमा कीजियेगा कि मैंने आपको जबरदस्ती क्षणिक पतीत्व का प्रदर्शन करने पर बाध्य किया है।"

दोनों बड़ी देर तक हँसते रहे।

१८
वर्मा की पहाड़ियों में खिलते फूल

"मेजर शर्मा !"

पीछे से सुनीन ग्रावाज़ फेंकी गई।

मेजर शर्मा ग्रपने कैम्प की ग्रोर बढ़ रहा था। ग्राज सुबह पश्चिम से इधर १२ मील परेड करते हुए ग्रागे बढ़े हैं। ठीक जंगल की झाड़ियों के झुरमुट में कैम्प लगाया है। कैम्प लग चुका तो मेजर शर्मा ने ग्रपने दो ग्रफ़सरों ग्रौर कुछ सिपाहियों को लेकर उत्तर-पूरब की दिशा में एक सरसरी प्रदक्षिणा की ग्रौर लौटती-वेला डबल-मार्च करते दौड़ते हुए ग्राये। 'ग्रार्डर्ली' ने एक कप चाय कमांडिंग-ग्रफ़सर के कैम्प में दे दिया था। थकान वैसी ग्रधिक थी भी नहीं, पर चाय ने यह एहसास दिला ही दिया कि कुछ मशक्कत हो गई है ग्रौर ग्रब एक नींद का 'डोज़' ले लेना चाहिए।

मिस लेखा कौर की ग्रावाज़ ने उसे लौटने पर मजबूर किया। घूमते ही कैम्प के ग्रन्दर से एक खिलखिलाहट जैसे कुसुमित हुई हो, मिस कौर ने पूछा, "कहिये जी, ग्राज खेत में से भुट्टे चुराये या किसी ग्राम के पेड़ से ग्राम चुराकर भागे ग्रा रहे हैं।"

मिस कौर डबलमार्च को 'ग्राम चुराकर भागने से' तुलना करती है, गोकि उसमें पीछे यह देखकर कि बाग़ का मालिक कहीं ग्रब भी दौड़ा हुग्रा न ग्रा रहा हो, सुस्ताने का लुत्फ़ यकलख़्त नहीं मिल पाता। ग्रौर भुट्टे चुराने की बराबरी वह किसी इक्के-दुक्के शत्रु के सिपाही का पीछा करने से करने में ख़ास मज़ा लेती है।

मेजर शर्मा ने दोनों हाथ जोड़कर नमस्ते की, 'पी'-केप उसकी छोलदारी के बाहर टाँगते हुए ग्रन्दर घुसकर कहा, "जी, ग्राज न तो भुट्टे चुराये ग्रौर न ग्राम। ग्राज महज़ बेर चुराये ग्रौर बस भागे ग्रा रहे हैं।"

मिस कौर ज़बरदस्त हँसी। रुकी तो बोली, "कहिये, यहाँ कब तक रुकियेगा ? सुना है, हमें ग्रब यहाँ ही रुकना होगा ग्रौर ग्राप ग्रागे बढ़ेंगे।"

"किस से सुना है ?"—मेजर शर्मा ने ग्राश्चर्य से मुस्कराकर पूछा। पर 'फील्ड' पर ग्राश्चर्य हठात् नहीं रह जाता। हर ग्रस्वाभाविक घटना सुनते ही सैनिकों को, विशेषकर सैनिक-ग्रधिकारियों को निर्मम होकर ग्रत्यधिक शान्त रहना ज़रूरी होता है। ग्रौर ग्रब तो लड़ाई चल रही है। कुछ जान-पहचानें तो प्रिय तक हो जाती हैं, पर सहसा उनकी युद्ध-मृत्यु सुनकर कड़े मन से निःसंग भाव में ठण्डी साँस तक नहीं ली

जा सकती ।

मिस कौर मुस्करायी । बोली, "आज कमांडिंग-अफ़सर साहब का 'आर्डर्ली' बोलता था कि आप मेम सा'ब अभी यहीं रुकियेगा और मेजर शर्मा का कम्पनी शायद आगे बढ़ेगा ।"

सुनकर मेजर शर्मा ने चिन्ता की भंगिमा प्रकट न होने दी और कहा, "चलो जी, सीता महारानी यहाँ ही आराम फरमायेंगी, और हम अकेले ही बढ़कर आखेट खेल आयेंगे ।"

मिस कौर स्वयं को 'सीता महारानी' सुनकर गद्गद् हो गई । एक नवस्फुर्णा में वह मचल गई । हँसती हुई बाहर गई, अपने आर्डर्ली को चाय बनाने का हुक्म दिया। लौटी तो एक सिगरेट मेजर शर्मा को पेश कर दूसरी स्वयं पीने बैठी ।

सीधे उसे देखते हुए मिस कौर ने पूछा, "इन जापानियों को क्या यह तमीज़ अभी तक नहीं आई कि वे अपने हथियार आपके सामने डाल दें ?"

"वे तो तैयार हैं, पर एक शर्त पर ।"

"भला वह क्या है ?"

"आप मेरी कम्पनी की कमांडिंग-अफ़सर हो जायँ ।"

मिस कौर ने दाँतों से अधरों को दाबते हुए एक गहरी अँगड़ाई ली और अन्दरूनी उत्तेजना से सुर्ख हो आई । चुहल उछालकर बोली, "मुझे मंज़ूर है ।"

पर मेजर शर्मा ऐसी सभी मिसों के 'मुझे मंजूर है' प्रणय-प्रस्तावों की सांकेतिक स्वीकृति का असली अर्थ जानता है और वह अर्थ क्षणिक मादकता देकर कई-कई दिन की विष-यन्त्रणा देने के अतिरिक्त भला क्या करता है ?

अनायास वह एक गहरे विचार में डूब गया । चौंककर वह मुस्कराया । एक कटाक्ष मिस कौर को देकर बोला, "आप चाय का कप मेरा वहीं भिजवा दें और शुक्रिया ।" बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये एक सिगरेट उसकी जंघा पर रखी डिब्बी में से और निकाली और अपने कैम्प के पलँग पर आकर धम्म् से फैल गया, लेट गया ।

'आर्डर्ली' ने 'अटेन्शन' हो सेल्यूट की और एक चिट्ठी साहब के हाथ में थमा दी । चिट्ठी माधवी की है । मेजर ने चिट्ठी पढ़ी । एक बार, दो बार, तीन बार ।

बाहर से इजाज़त लेकर मिस लेखा का 'आर्डर्ली' चाय का कप 'ट्रे' में थमा गया । शर्मा ने चाय पी, मुँह की सिगरेट फुँक चुकी, तो दूसरी सुलगा ली । नज़र उठाकर देखा, मिस लेखा का आर्डर्ली खड़ा है । बोला, "मेम साहब ने आपको शाम के खाने पर याद किया है ।"

शर्मा साहबी रौब से हँसा । बोला, "मेम साहब को हमारा शुक्रिया दो । हम आयेगा ।"

वह चला गया तो शर्मा ने माधवी की चिट्ठी चौथी बार पढ़ी । फिर उसकी तहें कर तकिये के नीचे दबा दीं । और दृष्टि शामियाने की छत के केन्द्र पर जमा दी, जिस बाँस के सहारे सारा तम्ब् तना हुआ है···यह बाँस हट जाय तो यह तम्बू अपना तनाव खोकर केवल बोझीला कपड़ा मात्र रह जायगा ।

और शर्मा सोते हुए आज माधवी के पत्र से विवश होकर अपने जीवन-वृत्त को उल्टा घुमाने लगा ।

······तब शर्मा बी. ए. में पढ़ता था । उसके पिता की घड़ियों की एक होलसेल एजेंसी की दुकान थी । कालेज में इरादा यह था कि अमरीका जाकर कुछ ऊँचा विद्याध्ययन कर आयगा । कि माधवी से विवाह हुआ···कि माता जी रुग्ण होकर आखिरी साँस छोड़ गईं···कि दुकान का भार शनैः-शनैः उस पर ही अधिक पड़ा कि महीनों व्यापारिक कारणों से वह देश की यात्रा में व्यस्त रहने लगा···उसकी उपस्थिति में और उसकी अनुपस्थिति में रजनी माधवी से मिलने आता···एक असंतुलित मानस का युवक है वह···और सन्तान के क्लेश को लेकर माधवी उसकी दुनियाँ में जंग खाई हुई तिजोरी की मानिंद बन्द रहने लगी···शर्मा सन्तान तो क्या, उसकी कल्पना से भी ग्लानि करता था ।···कि युद्ध आया । दुकान को लिमिटेड कर वह 'इमरजेंसी कमीशन' लेकर यहाँ चला आया । आज वह मेजर बन चुका है ।

शर्मा ने ऊँघते हुए तीसरी सिगरेट जलाई और बड़बड़ाया, "ओह ! नारी ! काश, तेरी कोख की भूख माणिक-मोती-नीलम-हीरों से पूरी की जा सकी होती ! !"······भूगोल-क्लास ख़त्म होने के बाद, विद्यार्थियों के चले जाने पर, जैसे भूगोल-मास्टर पृथ्वी के गोले को यों ही इधर से उधर और उधर से इधर घुमाया करता है, शर्मा ने एकदम रुककर माधवी के जीवन-वृत्त को अब इधर घुमाया······

माधवी विवाहित, वधु के घूँघट में ढंककर, शर्मा के ऊपरी ग्रीन-रूम में बैठी थी । प्रणय-रात्रि की प्रथम घड़ियाँ ! शर्मा अन्दर आया तो माधवी सकुचाकर सिमट नहीं गई । एक अजीब मस्ती से उसने दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया और तत्क्षण उसके चरणों को छूकर उन्हीं उँगलियों से अपनी पलकें स्पर्श कीं । माधवी कालेज-छात्रा रह चुकी है । उसकी यह शिष्टता शर्मा को सुरुचिकर लगी थी । और तभी बातें शुरू हो गई थीं । शेक्सपीयर के बाद शैली और उसके उपरांत मोपांसा पर आकर बात टिक गई थी । माधवी ने कुछ लाज-भरे संकोच में कहा था, 'सुहाग-रात्रि के प्रथम-प्रहर में हमारे देश के युवक स्वस्थ नहीं रहते, पीड़ित रहते हैं, इसीलिए आगे चलकर उनका दाम्पत्य सुखी नहीं रहता ।' तो शर्मा ने स्थिति को १०१ गुना सरस बनाते हुए, माधवी को प्रथम-चुम्बन के स्पर्श का संबल दिया और कहा, 'पर दाम्पत्य का तकाज़ा भी क्या यही नहीं है कि वह नववधु उस पीड़ा को अपने अन्तःमधु की

हल्की फुहार से ही नहीं; अपितु भारी झड़ी से सराबोर कर शीतल कर दे।" तो माधवी ने संक्षिप्त उत्तर से चुटकी काटते हुए कहा था, "मुझे वर्षा प्रिय है, पर उसकी गड़गड़ाहट और कड़कड़ाहट पसन्द नहीं है।"……इसके बाद माधवी ने कालेज में रची अपनी दो कवितायें सुनाई थीं……

कि शर्मा को हल्की-सी नींद आ गई।

मिस लेखा के 'आर्डली' ने आकर साहब को जगाया कि 'डिनर' तैयार है। शर्मा सैनिक-सी अकड़ में उठा और जाकर नींद में ऊँघता हुआ मिस लेखा की आराम-कुर्सी पर फैल गया। मिस अन्दर के छोटे तम्बू में बावर्ची को कुछ डाँट रही थी, शर्मा को देखकर बोली, "मेजर, माफ़ कीजियेगा, मेमसाब थोड़ा बावर्ची का काम करती हैं।"

शर्मा हँसा और हँसकर रह गया, बोला, "मेमसाब का बावर्ची बनने के लिए कम से कम १००० कैंडीडेट मिल सकते हैं।" और दोनों लय लेकर हँसने लगे। कि कैप्टेन विनायक ने अन्दर प्रवेश किया, "हलो, मेजर, गुड ईवीनिंग!" और मिस लेखा को बावर्चीखाने में देखकर बोला, 'आह! यू आर देयर; दैट्स फाइन मेम सा'ब!"

कैप्टेन दलजीत ने प्रवेश किया, "मेजर, गुड ईवीनिंग।"

"आह! कैप्टेन दलजीत, गुड···! तो मेम सा'ब आज बड़ा मेजबान बनेंगी?"

तीसरे सैनिक सैकिण्ड-लैफ़्टिनेंट ने प्रवेश किया और गम्भीर होकर सैल्यूट किया और फिर मुस्करा दिया, "मेजर, इजाज़त हो हमें भी मेहमान बनने की।"

कमांडिग-अफ़सर अन्दर प्रविष्ट हुए तो सब ने उनके स्वागत में सलामी का संयोजन किया। कमांडिग-अफ़सर मेजर किशोर ने एक विशिष्ट मुस्कान से मिस लेखा की सेल्यूट स्वीकार की और बोले, "तो भाई, आज कौन से जापानी अफ़सर का शोरवा तैयार हो रहा है।"

मेजर शर्मा ने चुटकी ली, "आज तो मिस लेखा किसी विचित्र पंछी का शोरवा पेश कर रही हैं।"

"ओह! भाई मिस लेखा, वह विचित्र पंछी भला कौन है?"

मिस लेखा ने गैस की ढँकी हुई रोशनी में अपनी अँगूठी का विशेष प्रदर्शन करते हुए मनःहर लाज में कहा, "मेजर शर्मा!!"

सारे मजमे ने ज़बरदस्त क़हक़हा लगाया।

उधर बावर्ची ने सब साहब लोगों को आकर सलाम बजाया तो सब उठे और एक फ़ौजी ढंग की काम-चलाऊ डिनर-टेबल पर जा बैठे।

कमांडिंग-अफ़सर ने खाना अपने पहले कौर से शुरू किया। वे वातावरण

सरस रहना चाहते थे, पर जान-बूझकर गम्भीर रहे, तो उनके अधिकारी-साथी अनायास किसी अकल्पनीय और कठोर आज्ञा की प्रतीक्षा में गिन-गिनकर ग्रास खाने लगे।

दूर तीन-चार मील दूर तड़-तड़-तड़ तीन फाइरिंग जंगल के अँधियारे एकांत में स्पष्ट तीक्ष्णता से गूँज गये। लपककर मिस लेखा ने गैस की रोशनी को इतना ढँक दिया कि खाने की प्लेटें भी कठिनाई से दिखाई पड़ने लगीं।

कमांडिंग-अफ़सर ने मिस लेखा की ओर देखा। वह समझी। शीघ्रता से उसने बीयर की बोतल खोली और उनके सामने रख दी। सैकिंड-लैफ़्टिनेंट ने पाँच गिलास भरे। और अपने अधिकारी के इशारे से सब मिस लेखा की सुरक्षा के नाम पर पी गये।

कमांडिंग-अफ़सर ने अपनी मूछों से बीयर की इक्की-दुक्की बूँदों को उँगलियों से पोंछते हुए कहा, "प्लीज़, डिस्पर्स!"

कनात से बाहर निकलने वाला अन्तिम व्यक्ति मेजर शर्मा था। उसने अपने कैम्प की ओर मुड़ने के लिए जो क़दम घुमाये तो मिस लेखा के तम्बू में सुना, कमांडिंग-अफ़सर मिस लेखा से कह रहा था, "मिस लेखा, ओब्लाइज़ मी विद वन किस, एंड देन वी डिपार्ट!"

एक कसक शर्मा में उठी, पर वह आगे बढ़ गया। तुरन्त उसने अपना 'आर्डर्ली' भेजकर अपनी कम्पनी एकत्र की। अँधेरे में सबको हुक्म दिया कि अभी हमें आऊट-पोस्ट की चौकी पर पहुँच जाना है। स्वयं वह 'मेसेज' की प्रतीक्षा में कमांडिंग-अफ़सर की छोलदारी की ओर बढ़ा।

मेजर किशोर उसी की राह में बाहर खड़े थे।

एक मिनट तक दोनों ने कानाफूसी की। लपककर शर्मा लौटा, कन्धे पर 'किट' सँभाला और अँधेरे में झाड़ियों को अपने भारी लट्ठे से हटाता हुआ दृढ़ डगों से आगे बढ़ने लगा।

यहाँ से २५० मील पर असली लड़ाई चल रही है। पूरब-उत्तर में यहाँ से कोई पौने दो सौ मील पर भारतीय सेना के विद्रोही भारतीय सैनिक आज़ाद-सेना की ओर से जापानियों की अग्रिम-पंक्ति बने हुए हैं। यहाँ से एक मील दक्षिण में अंग्रेज़ी सेना अमरीकनों के साथ युद्ध की बागडोर अपने हाथ में थामे, आगे बढ़ते हुए भारतीय सिपाहियों की पीठ का कवच बनी हुई है।

पीठ का कवच!! कवच तो वक्ष का हुआ करता है! ओह! यह ठीक है हम भारतीय सैनिक उन अंग्रेज़ सैनिकों की वक्ष के कवच हैं!!···शर्मा को अँधेरे में शीघ्रता से आगे बढ़ते हुए याद आया कि किसी पाश्चात्य नाटककार ने···भला

किसने ? कुछ याद नहीं पड़ता, लिखा है कि सैनिकों को चिन्तन नहीं करना चाहिए।

चिन्तन !

उधर की दिशा से एक वायुयान इधर बढ़ रहा था। निश्चय यह शत्रु-पक्ष की एयरक्रैफ़्ट है। शर्मा तत्क्षण झाड़ियों में उलझकर ज़मीन पर फैल गया। कि वह सिर पर से गुजरा, कि दो विस्फोट उधर दो सौ गज़ की दूरी पर हुए। वायुयान ने दो बम डाले हैं। कुछ ज्वालारूप में जला और तत्क्षण बुझ गया। हो सकता है बम शर्मा की छोलदारी पर पड़ा हो। हो सकता है, उसका 'आर्डर्ली' मर चुका हो। हो सकता है, कि मिस लेखा···पर शर्मा उठा और आगे बढ़ा। ऐसे क्षणों में वह नितान्त शान्त रहना सीख गया है।

बीस मिनट बाद वह आऊटपोस्ट पर पहुँच गया। एक ओर कुछ भारतीय सैनिक खुदाई का काम कर रहे हैं। सम्भावना है कि कुछ आगे बढ़ा जायगा सो वहाँ अंडर-ग्राउँड 'एम्यूनिशन' रखना है। वहाँ के प्रहरी से हल्की-सी अफ़सराना मज़ाक कर वह उत्तर की दिशा को हो लिया। यहाँ से छः मील पर एक गाँव है। कुछ आसामी, कुछ बर्मी मिश्रित लोग वहाँ रहते हैं। सूचना मिली है कि उनके कुछ मेहमान पूरब की दिशा से आये हैं और वे गुप्तचर हो सकते हैं।

शर्मा को 'कवर' करते हुए उसकी कम्पनी के छः विश्वस्त राजपूत सिपाही ५०-५० गज़ की दूरी पर आगे बढ़ रहे हैं। लगभग तीन मील की दूरी पर एक तीव्र प्रकाश फूटा और अँधेरे को निर्दयता से हथौड़े की चोट फोड़ता हुआ किसी तोप का गोला फूटा। सातों सैनिक जंगल में एक दूसरे को आँख फाड़कर चीन्हते हुए अपनी-अपनी ठौर रुक गये।

हवाई यान के दो बम और यह तोप का गोला एक नई बात है। मेजर शर्मा ने अपने मुख के निकट लटकते हुए यंत्र में कुछ 'कोडवर्ड्स' कहे, उनका उत्तर कर्ण-पटलों पर चिपके 'फ़ोन्स' से सुना। पता चला कि कुछ भारतीय सैनिक अग्रिम-पंक्ति में बाग़ी हो गये हैं। और आज़ाद सेना के नाम पर हाथ में मौजूद अस्त्र-शस्त्रों का विरुद्ध प्रयोग कर रहे हैं और यह वायुयान भी उन्हीं भारतीयों का ही था।

ठाकुर बेतावसिंह ने हल्के से पूछा, "साहब, क्या शुगल है ?"

शर्मा ऐसी संगीन घड़ियों में अधिक से अधिक परिहास करने का आदी हो चुका है। बोला, "ठाकुर साहब, महज किसी ने हिचकियाँ ली हैं। शायद कोई कुछ ज्यादा खा गया है।" और हल्के से अपनी हँसी भी अपने छओं साथियों तक पहुँचा दी। उन्होंने सुना और आगे बढ़े।

सेना में विद्रोह ! बीमारियों की एक बीमारी !!

याद आया, आज जो पत्र माधवी का आया है उसमें साफ़ लिखा है कि यदि आप लौटकर आवश्यक छुट्टी लेकर घर नहीं आये तो मैं कहीं चली जाऊँगी। माधवी भी मेरी गृहस्थी में कितने महीनों से विद्रोह नहीं कर रही है। ओह! तो वह सदा के लिए चली जायगी? लेकिन शर्मा सतर्क हुआ। और तुरन्त ज़मीन पर लेट गया। सामने से एक गोली सरसराती हुई उसकी बग़ल से निकल गई। जहाँ प्रकाश प्रकट हुआ था वह स्थान घने जंगल की पत्तियों में था। अँधेरे में सातों सैनिक पचास क़दम आगे बढ़े। मेजर शर्मा ने बेताबसिंह को 'ग्रेनेड' फेंकने का हुक्म दिया। उसने हुक्म बजाया तो जैसे ही विस्फोट-ध्वनि शांत हुई कि एक व्यक्ति किसी मर्म के तीव्र घाव से चिल्ला उठा। दौड़कर बेताबसिंह ने उधर ही झपट लगाई। अँधेरे में कराहट-ध्वनि के पास आने पर पता चला कि वह घायल को अपनी पीठ पर लाद लाया है। शर्मा ने टार्च जलाकर देखी, कोई बर्मी गुप्तचर है। ठाकुर जालिमसिंह ने शर्मा का इशारा पाकर एक गोली उसकी खोपड़ी में दाग दी तो वह तत्क्षण शांत हो गया।

दक्षिण में काफ़ी दूर पर कुछ ग्रेनेड फटे।

सातों व्यक्ति मृत बर्मी की तलाशी लेकर एक पेड़ पर चढ़ गये। शर्मा ने सुस्ताने को हथेलियों की ओट में एक सिगरेट जला ली।

शर्मा ने चंद मिनटों के इस आराम में महसूस किया कि माधवी के पत्र ने उस पर विशेष प्रतिक्रिया की है। अब तक वह अपने घर से बाहर रहा है और बिना सूचना दिये यहाँ युद्ध-मोर्चे पर भी चला आया है। पर माधवी उसके घर में अप्रत्याशित विद्रोहिनी रहते हुए भी उसके घर की संरक्षिका बनकर रही है। आज वह उसका घर छोड़कर जाने को तैयार है तो क्यूँ मेरा हृदय निरंतर एक बेचैनी से अनिच्छापूर्वक धड़क रहा है?

साथियों के कहने से शर्मा ने तय किया कि भोर-प्रकाश तक इसी पेड़ के झुरमुट में प्रतीक्षा की जाय। तब आगे बढ़ा जायगा। पर्याप्त बर्मी-देहाती मौक़ा पाते ही इक्के-दुक्के भारतीय सैनिकों की हत्या करने से नहीं चूकते।

एक साथी की बन्दूक को दो टहनियों में फँसाकर शर्मा बड़े आराम से उसका सिराहना लेते हुए नीचे की मोटी डाली पर जैसे-तैसे लेट गया। ठाकुर बेताबसिंह ने उधर की टहनी पर अपने दोनों पैरों को अड़ाकर उन्हें आश्वासन दिया कि वे निश्चित सो जायँ, वह उन्हें नीचे लुढ़कने नहीं देगा!

नींद का दूसरा 'डोज़' शर्मा सोचता ही रहा कि ले या न ले कि हल्की झपकी उसे आ गई। एक करवट ली तो बेताबसिंह ने पूछा, "साहब, यह आज़ाद-हिंद-फ़ौज भला क्या बला है?"

शर्मा ऊँघते हुए सोच रहा था, सैनिक को चिन्तन नहीं करना चाहिए। पर

यह युद्ध आखिर किसी का तो चिन्तन किया हुआ है। नागरिक कतई युद्ध का चिन्तन न कर सकेंगे। टोजो और हिटलर किसी चिन्तन-क्रम की वह लोह-शृङ्खलाएं ही तो हैं जो जीवित इंसानों को एक मुश्त में बाँध लेना चाहते हैं। सैनिक कुछ चन्द वर्षों बाद सैनिक-अधिकारी हो जाते हैं। वे क्या बिना चिन्तन के अपने सिपाहियों को आदेश और हुक्म देते हैं? और हज़ारों लाखों सैनिकों की शक्ति के बल पर राजनीतिज्ञ युद्ध-रचना कर जो विश्व-शान्ति की बात करते हैं, वह क्या एक लम्बे और दीर्घ चिन्तन का एक अंग ही नहीं है? शर्मा ने अस्फुट कहा कि सैनिकों को चिन्तन करना है तो वे विद्रोह करें!! कि बेतार्बसिंह की बात सुनकर वह होश में हो लिया। कुछ मुस्कराकर बोला, "ठाकुर साहब, यह आज़ाद-हिंद-सेना कुछ खोपड़ियों का चूँ-चूँ मुरब्बा है। इसे आप खाना पसन्द करेंगे, या उस अचार के बर्तन में अपना मुरब्बा भी डलवाना पसन्द करेंगे?"

जालिमसिंह ने कहा, "साहब, आपको हर बात में बड़ा मज़ा आता है। सुना है कि वे सब बड़े देशभक्त हैं। और इसीलिए उन्होंने हमारी सेना से विद्रोह किया है।"

"हाँ!" शर्मा ने मुँह बनाकर कहा, "गाँधी से भी बड़े देशभक्त!" स्वयं कुछ हँस लिया तो ठहरकर कहा, "अरे, कितनी बेवकूफ़ी की बात है कि कुछ चन्द टुकड़ों पर हम ज़िन्दगी की कड़वाहटों से ऊबकर सेना में भर्ती हुए हैं। न रात दिन, न दिन रात······लगातार, खच्चरों की तरह से एक साँस काम करते हैं। काफ़ी देशभक्ति कहाँ है सेना में! होगी रूस की सेना में देशभक्ति। आज़ाद-हिन्द-फ़ौज में तो वह कतई नहीं है।" सब चुप कुछ सोचते रहे। शर्मा ने सिगरेट सुलगा ली। ठण्डी हवा बहती रही। बहुत दूर इरावदी नदी की कलकल का शोर हवा के साथ अपनी सूचना ला रहा है। मीलों दूर पर गोला बारूद की तड़-तड़ धायँ···मद्धिम स्वर में गूँज जाती है। कि चौंककर शर्मा ने पूछा, "मैं एक सवाल करता हूँ। सब उसका जवाब दोगे? पर सबको अपना-अपना जवाब अलग-अलग देना होगा।"

सबने कहा, "जी, पूछिये।"

शर्मा ने कहा, "तुम अपने बेटों-पोतों को भी सिपाही बनाना चाहोगे?"

जालिमसिंह ने कहा, "नक्कूसिंह, साहब को जवाब दो।"

नक्कूसिंह ने कहा, "साहब, मेरी तो पुश्त-दर-पुश्त सिपाही रही है।"

शर्मा ने कहा, "याने तुम्हारा मतलब है कि पुश्त-दर-पुश्तों से लड़ाई चलती आती है सो तुम्हारी पुश्त-दर-पुश्तें सिपाही रहीं। पर तुम क्या अपनी पुश्त में इस सीधी लाइन को मोड़ने का इरादा नहीं रखते?"

नक्कूसिंह ने कहा, "साहब, हमारी क्या ताब है सरकार के कामों में दखल

देने की।"

शर्मा ने कहा, "तो मतलब तुम्हारा साफ़ है। कुछ चन्द सालों बाद मान लो फिर लड़ाई शुरू हुई तो तुम अपने बेटों को सिपाही बनाओगे?"

"जी हज़ूर।"

जालिमसिंह ने कहा, "अच्छा, मनकूराम, तुम कहो।"

मनकूराम ने कहा, "जी, रियासत में हमारी जो ज़मीन है वह ज़मींदार साहब के पास रहन है। उनकी ताबेदारी में तो एक जून भी पेट नहीं भरता था। गाँव में और काम होता ही क्या है। शहर में कई नौकरियाँ ढूँढ़ीं, पर शहर के खर्च के मुताबिक उनसे पड़ता बैठता नहीं। हार-थककर फ़ौज में भर्ती हो गया।"

शर्मा ने कहा, "सीधा मतलब तुम्हारा यह है कि आज कहीं तुम्हें फ़ौज में मिल रही रोज़ी जैसा भी रोज़गार या गुज़ारा-बसर काम मिल जाय तो वहाँ तुम खुश रहोगे और अपनी औलाद भी उसी रोज़ी में लगा दोगे।"

जालिमसिंह ने कहा, "मोतीराम, तुम अपना जवाब दो।"

मोतीराम ने कहा, "हज़ूर, बाप मरा तो वह कुल जमा तीन हज़ार का कर्ज़ छोड़कर मरा था। होश सँभालने के दो साल तक तो मैं महाजन के यहाँ नौकरी करता रहा। यह मज़दूरी तो उसने सूद भी न मानी और एक दिन जो छोटा-सा मकान था, वह उसने हज़म कर लिया। माँ तो इसी ग़म में कलप-कलपकर मर गई। मैंने कुछ दिन एक सेठ जी के यहाँ पहरेदारी में बिताये पर वहाँ कुल तनख्वाह बीस रुपये थी। आखिर लड़ाई शुरू हुई और मैंने फ़ौज में भर्ती होने का फैसला कर लिया। साहब, ज़िंदगी-मौत की बात तो मैं जानता नहीं, पर मेरे लड़के सिपाही रहेंगे, तो कम-से-कम दो जून खाना खायेंगे और अच्छी वर्दी तो पहनेंगे।"

शर्मा ने कहा, "तो तुम्हारा भी मतलब साफ़ है। तुम्हारे ऊपर कुछ कर्ज़ न रहे, ऐसी ही ज़िन्दगी बनी रहे और सरकार तुम्हारे बेटों को पढ़ा-लिखाकर दो सौ रुपये की नौकरी दे दे, तो तुम उन्हें सिपाही न बनाओगे।"

"हज़ूर ठीक कहते हैं।"

जालिमसिंह ने कहा, "बेताब जी, आप भी अपना जवाब दो।"

अँधेरे में ठाकुर बेताबसिंह ने अपनी मूँछों पर ताव दिया और कहा "साहब आपने फाइनक्लाथ के धोती जोड़े तो बहुत खरीदे होंगे। उनमें फिनिश कितनी चमक देने के लिए दी जाती है, यह भी आपने देखा होगा। पर उस फिनिश की मांड जब तक धोबी के यहाँ नहीं धुल जाती, तब तक वह धोती-जोड़ा पहनने के काम का नहीं होता। हमारे शहर में अगर कोई कोरे लट्ठे का पाजामा या कोरी धोती पहन ले तो लोग उस पर हँसने लगते हैं। मिलों में उस 'फिनिश' कराई की कीमत और धोबी

धुलाई की कीमत गाहक जब दे लेता है तब तक भला उसे चैन कहाँ पड़ता है कि उसने आज एक शानदार धोती-जोड़ा खरीदा है। मिलों के मालिक बड़ी चतुराई से ग्राहकों के दिमाग़ में इस फ़िजूलख़र्ची की नक्काशी खींच देते हैं कि ऐसी उसकी आदत ही पड़ जाती है। सो हाल मिलिट्री का है। जाने किसने हम लोगों में यह प्रोपेगेंडा पत्थर की लकीर-सा खोद दिया था कि सिपाहियाना ज़िन्दगी निहायत शानदार है। इसीलिए मैं भी सिपाही बना। वाकई अपने गँवई-गाँव के लोगों में जब मैं वर्दी पहनकर इधर से उधर निकल जाता हूँ तो एक रौब उन पर ग़ालिब हो जाता है। इस दिमाग़ी रोग के सामने फ़ौज के दुख-तकलीफ़ तो उस मांड के समान हैं जो धुलाने से कपड़े में नहीं रह पाता, और पहनने पर, बार-बार धुलने पर वह शानदार धोती-जोड़ा अपनी आब खो बैठता है। सो, जब मैं फ़ौज के भुलावे में पड़ सकता हूँ तो मेरे बेटे-पोते न पड़ेंगे, इसका वायदा अभी से आप से कैसे कर लूँ ?"

शर्मा ने कहा, "तुम्हारा भी मतलब साफ़ है। यदि तुम्हारे बेटे-पोतों को ख़ुद सरकार ही कहने लगे कि देखो, फ़ौज में तकलीफ़ है और सरकारी खेती में सबसे अधिक आराम है तो वे सरकारी खेती करने लगेंगे ?"

"ज़रूर !"

जालिमसिंह ने कहा, "अच्छा, भाई सक्खू जी, अब आप अपनी बात कहो।"

सक्खू जी ने कहा, "हज़ूर, ठाकुर बेताबसिंह बड़े घर के बेटे हैं। उनके दिमाग़ की पहुँच हम में कहाँ ? अभी तीन साल हुए मैंने होश सँभाला था। माँ-बाप घर में मर चुके थे। एक दूर के चाचा ने पाला था। एक दिन गाँव में अंग्रेज़ डिप्टी साहब आये। गाँव भर के लोगों का जमाव कर वे बोले मुझ से, 'टुम बड़ा हट्टा-कट्टा आडमी है। टुमें फ़ौज में ज़रूर भर्ती होना चाहिए।' गाँव के ज़मींदार और पंचों ने एक आवाज़ में कहा, 'हाँ सक्खू, सा'ब ठीक कहते हैं, तुम फ़ौज में भर्ती होओ।' बस, मुझे फ़ौज में भर्ती कर दिया गया। उस दिन से जो हुक्म मिलता है उसी को करता हूँ।"

शर्मा सक्खू के अज्ञानप्रद भोलेपन पर एक चुभन-सी महसूस कर रह गया। सक्खू ने आगे कहा, "सा'ब, वैसे मेरी कोई शादी करने को तैयार नहीं था। पर जब से मैं हवलदार हुआ हूँ, अच्छे-अच्छे घरों से मेरे रिश्ते आ रहे हैं।"

सुनकर सब हल्के-से हँस पड़े। यह हँसी समाज की दयनीय मूर्खता पर थी, या कि, इस युद्ध की प्रवंचना पर थी, यह किसे भी स्पष्ट नहीं था। पर शर्मा गम्भीर हुआ और बोला, "तो तुम्हारे बेटे-पोतों को भी कोई अंग्रेज़ साहब या उसी का कोई दूसरा अवतार (!) फ़ौज में भर्ती होने का हुक्म देगा और गाँव के ज़मींदार और पंच भी इस हुक्म की दाद देंगे तो वे भर्ती हो जायँगे।"

"जी !"

जालिमसिंह ने कहा, "अच्छा जी, तो अब मैं कहूँ। हजूर, मेरी बात में आपको कुछ अचरज लगेगा। मैं एक महाजन का बेटा हूँ। बचपन आवारागर्दी और खाते-पीते बीता था कि जाने किस की हाय हमारे घराने को लगी कि पाँच साल हुए एक हैजे में हमारा घर का घर जिसमें बाप, माँ, दो भाई, तीन बहिनें, दो भाभियाँ और चार भतीजे छः घण्टे में चल बसे। उनकी क्रिया-कर्म तो क्या करता, घर की सब नक़दी लेकर मैं रातों-रात घर से भाग खड़ा हुआ। जाकर एक रिश्तेदार के यहाँ कानपुर ठहरा तो एक रात उसकी महरारी ने शोर मचाया कि चोर-चोर ! सब उठे। पता चला कि चोर मेरी नक़दी लेकर भाग गये हैं। बस, मेरा दिल बैठ गया। जब से फ़ौज में भर्ती हुआ हूँ, मन को चैन और आराम मिला है। रही बेटे-पोतों की बात। मुझे तो यही सूझता है कि यही एक ईमानदारी का पेशा है जिस में किसी की हाय लगने से घर तबाह होने का डर नहीं है।"

शर्मा सचमुच जालिमसिंह के प्रश्न का प्रश्न करने में हकलाकर रह गया। सिर्फ़ इतना ही बड़बड़ाया, "ईमानदार पेशा !"

कि बर्मा की पहाड़ियों के उस पार से हल्की-सी सफ़ेदी आसमान पर छा गई। अँधियारा झीने घूँघट में से विलीन होने लगा। जंगल की भयंकरता हल्की पड़ने लगी। विचित्र पंछी उड़ते हुए नज़र आने लगे। युद्ध से पहले शर्मा को उगते-सूर्य से एक तीव्र सन्देश प्रायः मिला करता था। पर अब वह उगते-सूर्य से एक ग्लानि अनुभव करता है। सब नीचे उतर आये और निश्चित दिशा की ओर बढ़ने लगे। सभी सैनिक उत्सुक थे कि मेजर साहब कुछ पूछे गये प्रश्नों पर ख़ास मज़ाक करेंगे, पर शर्मा जल्दी-जल्दी मार्च करता रहा। जब तक वे गाँव पहुँचे, सूर्य आँखों के सामने पूर्ण चढ़ आया था। गाँव में बमुश्किल ८० घर थे। सभी जंगल में शिकार खेलने और लकड़ी काटने का पेशा करते थे। जालिमसिंह ने बर्मी भाषा में कुछ ट्रेनिंग पाई थी। उसने एक गाँव वाले युवक को पकड़कर पीटना शुरू कर दिया और तब पूछा कि तुम्हारे मेहमान कहाँ हैं ?

थरथर काँपते हुए उस कृश युवक ने सब सैनिकों को बीच गाँव के एक दालान में ले जाकर खड़ा कर दिया। ६ बर्मी कृषक लम्बे-लम्बे बीड़े तम्बाकू पी रहे थे। जालिमसिंह ने सबको डाँटकर कहा, "खड़े हो जाओ !"

वे जाने क्या बड़बड़ाये और खड़े हो गये।

शर्मा ने सक्खू से कहा कि वह अन्दर झोंपड़ी की तलाशी ले आये। शर्मा ने इधर पीठ मोड़ी ही थी कि एक बर्मी उनकी पीठ में छुरा घोंपने लगा कि जालिमसिंह ने उसकी बगल में अपनी बन्दूक की किर्च घोंप दी। कुछ ही क्षण वह कलपा कि

शान्त हो गया।

शर्मा शान्त रहा। उसने कलपते बर्मी की ओर नज़र उठाकर भी नहीं देखा। पर सतर्क रहा कि अन्दर सक्खू जी पर कोई आक्रमण न कर बैठें।

सक्खू जी अन्दर से एक मैली गठरी उठाकर लाये। उसमें काफ़ी तादाद में 'कार्टरिज'-बँधे थे। शर्मा की भवें तन गईं। जालिमसिंह ने तुरन्त उधर पड़ी एक रस्सी से उन सब कृषकों की मुश्कें बाँध दीं। उधर दीवार के सहारे उन्हें पीठ कर खड़ा किया और स्वयं दस फुट फ़ासले पर खड़ा होकर ठाँय-ठाँय कर उन आठों की पीठ और खोपड़ियाँ अपनी बन्दूक की फ़ायर से भून दीं।

एक क्षण भी अधिक वे गाँव में नहीं ठहरे। 'कार्टरिज' की गठरी सक्खू जी के कन्धे पर लटका दी गई। चलते हुए जालिमसिंह ने गाँव के पुरुषों को भरपेट गालियाँ दीं और कहा कि अगर उन्होंने ऐसे मेहमान फिर ठहराये तो वह उनकी एक-एक औरत के पेट में एक-एक बच्चा डालने से न चूकेगा।

रात सभी ने आधा पेट भोजन किया था। और अब छः मील लौटना था। ज़रा जल्दी लौटें तो चाय मिले और कुछ खाना। सो सबने अपनी गति डबल-मार्च ही रखी।

ठीक डेढ़ घण्टे बाद पसीने से सराबोर जब वे अपने कैम्प के पास पहुँचे तो वहाँ अंग्रेज़ सैनिक अधिकारियों को देखकर सबका माथा ठनका।

पता चला कि रात के हवाई आक्रमण में कमांडिंग अफ़सर और मिस लेखा मर गई हैं। और दो घण्टे बाद दोनों का फुल मिलिट्री-आनर्स से अन्तिम संस्कार किया जायगा।

शर्मा ने निश्चय किया कि वह मृत व्यक्तियों के चेहरों के अन्तिम दर्शन करने नहीं जायगा। अपनी सुबह की रिपोर्ट देने वह मैसेज-रूम की ओर बढ़ गया···

१६

मनुष्यता के उड़न-खटोले

रजनी की माँ ने एक राह-चलते साधु के कहने पर चार दिन का निर्जल व्रत किया है। पेट आँतों से चिपक गया है। और जीभ कण्ठ में सुकड़कर रह गई है। खाट पर पड़ी हुई लम्बी-लम्बी साँसें ले रही है। अभी छः घंटे बाकी हैं कि उसके कण्ठों में जल की बूँदें छोड़ी जायँ।

कल दुपहर से बड़ी बहू एक हाथ से पंखा झल रही है। बड़ा बेटा दुकान पर नहीं गया है। माँ के पांयताने बैठा हुआ अवशभाव से बैठा है। उधर अन्दर बैठक में पिता जी किसी से कुछ बोलते नहीं हैं। भोजन ज़रूर दोनों टाइम कर लेते हैं, पर बेमन। उनकी दाढ़ी बढ़ आई है। हल्का-सा ज्वर भी है। पर साहस नहीं करते कि डाक्टर के पास हो आवें। उसके चार रुपये छः आने अभी देने बाकी हैं। अख़बार जलाकर गरम पानी कर लेते हैं। जानते हैं चाय की पत्तियाँ ख़त्म हो चुकी हैं, पर उठकर हर बार देख लेते हैं कि उस खाली लिफाफे में कहीं चाय की दो पत्तियाँ पड़ी हों। एक वे दिन थे कि चाय का एक कप तो वे 'एडवरटाइज़र' मुफ़्त ही पिला दिया करते थे। पर आजकल तो वे भी दिखाई नहीं देते। नहीं, वहीं जाकर एक कप पी आते। गरम पानी की एक-दो बूँद घूँट से उन्हें पसीना हो आता है। पसीना ठंडा-ठंडा पड़ते ही वे होश में आ जाते हैं। उन्हें पता है कि रजनी की माँ निर्जला पड़ी है··· और किसी भी पल ठंडी हो सकती है। क्या सचमुच वह मर जायगी? पर क्रोध उन्हें हो आता है। कैसी नालायक औरत है। अपने चाहे का करेगी और तब घर में क्लेश फैलायगी। अच्छा है, मर जाय तो घर का क्लेश मिटे निर्जला व्रत रखा है। खुद का जी मरूँ-मरूँ कर रहा है, बेटे-बहू के प्राण अधर कर रखे हैं और इधर मैं दरवाज़े का कुत्ता-सा पड़ा हूँ। अपने धर्म-कर्त्तव्य तो सब ताक में रख दिये हैं। पति-सेवा तो आज पाँच साल से भूल बैठी है और ढोंग रचती है पुत्र-सेवा का। निर्जला व्रत का पाखंड रचा है। ठीक तो है, भगवान् कहाँ से देगा इसे शान्ति। रांड कहीं की!

माँ दो घंटे से बेहोश थी। नाड़ी उसकी तेज़ हो चली थी। वह सोच रही थी कि रजनी जब घर आयगा तो वह १०० ब्राह्मण जिमायगी, सवा मन अनाज और फल-मेवा ग़रीबों को बाँटेगी और रजनी को लेकर हरिद्वार नहाने जायगी।

होश टूटा तो उसने आँखें खोलीं। देखा कि बहू पंखा झल रही है। बेटा भी पंखा झल रहा है। उसने आशीष दी कि भगवान् शीघ्र इन्हें एक बेटा और दे।

पर आँख स्वतः बन्द हो गई। और माँ को दीखा, वह ग्यारह वर्ष की अल्हड़ कन्या है। गाँव के पूर्वी खेत से मूलियाँ तोड़कर लाई है। कैसी नफ़ेदचक्क मूलियाँ हैं लम्बी-लम्बी। माँ ने पिता के कुएँ से एक डोल खींचा, मूलियाँ धोई और वहीं, इमली के पेड़ की ठंडी छाँह में बैठकर खाने लगी······

वहाँ उसने गाजरें भी खाई हैं और कच्ची फूल-गोभी भी भर-पेट खाई है। घर के आँगन में दो भैंसें बँधी हैं। कुल पच्चीस सेर दूध उतरता है। खुद उसे गर्म कर जमाती है और फिर तड़के उठकर उसे बिलोती है और मक्खन निकालती है। दिन में इधर सूरज चढ़ता है और उधर गाँव की औरतें इकट्ठी होती हैं कि री लाडली बिट्टी, एक हांडी छाय तो देना। लग जाता था चौथाई पहर छाछ बाँटने में।

माँ की शादी के लिए जब उसके पिता शहर से लौटे थे तो सब खुश थे कि उनकी लाडली बिट्टो शहर की मेम बनने जायगी। पर उसका जी धक्क से रह गया था। वह नहीं आना चाहती थी शहर। तभी आज यह कुलकुनी दिन है कि उसकी कोख का जाया बेटा बिन कसूर जेल में बन्द है और कोई न्याय नहीं है।

माँ को याद आया, उसने अपनी चाची से भी कहा था, "चाची जी, शहर कोई सुरंग नहीं है जो तुम खुश होओ मेरे वहाँ भेजने पर। सच जानो, तुम सब मिल-कर मुझे कुआँ मांय ढकेल रया हो।"

ओ! वह भी उसकी बोली थी। यहाँ चली आई तो हिन्दी कितनी-कितनी डाँट-डपट और धमकियों से सीखी है। एक दिन तो रजनी के बाप ने न जाने उसे कई गालियाँ भी दी थीं।

आज माँ यह कहने को तैयार है कि शहर बारूद से फूंक दिये जायँ और सब वहीं खेतों में काम कर मीठी-मूली, छाछ और मिस्सी रोटियाँ खाकर लम्बी डकार लें और बारह घंटा सोयें। रजनी के बाप को देखो न, इस पचपन बरस की उम्र में सींकिया जवान भी तो न रहे। क्या ख़ाक धरी है शहर में, सो तो मुझे आज तक देखने को मिली नहीं। मिली है सांसत! ऐसी सांसत कि वह सिर्फ़ पैंतीस वर्ष की उम्र में घुटनों का दम खो बैठी है।

माँ को ठीक याद आया, चनों के खेतों में वह 'नंदोइया' और 'देवरिया' के गौत खूब गाती थी। एक दिन पूनम की चाँदनी थी और वह पड़ौस के अहीर की किल्लो उसके साथ थी। किल्लो की सगाई उसी दिन रची गई थी। उसने किल्लो से पूछा था, "री, तू ब्याह करने चली है। पर बता, बूढ़ी कितने दिनों में हो जायगी?"

किल्लो पागल-सी उसका यह सवाल नहीं समझी थी। फिर भी उसने हँसकर जवाब दिया था, "जब मेरे बेटे की बहू दो पोते जनमकर तीसरी पोती जन्मेगी।"

और दोनों खूब हँसी थीं। तब माँ ने अपने सवाल का जवाब खुद भी दिया

था, "पर मैं तो बहुत सालों बाद बूढ़ी हो जाऊँगी । इतने सालों बाद ।" और उसने हाथों को खूब फैलाकर गालों को खूब फैला लिया था ।

किल्लो इस पर खूब खिलखिलाई थी । उसने पूछा था, "ठीक बता, कब ?"

तो माँ ने कहा था, "जब इस दुनियाँ में परलय होगी ।"

सचमुच आज दुनियाँ में प्रलय हो रही है । और वह बूढ़ी हो चुकी है। अखबारों में रोज़ाना खबरें आती हैं मारकाट की । बड़ा बेटा पिछले मंगल को बताता था कि विलायतों में शहर के शहर तबाह हो रहे हैं । बस, अब आया काल इस देश का भी ।

माँ का ध्यान इधर से बँटकर मथुरा चला गया । रजनी के बाप के साथ वह वृन्दावन नहाने गई थी । रेल का इंजन, माँ जब सत्रह साल की थी, तब देखा था और दो दिन तक उसके कलेजे में रेल की घुरड़-घुरड़ घुमड़ती रही थी। वृन्दावन में भगवान् की कैसी-कैसी लीलायें देखने को मिली थीं । कैसा रास भगवान् ने रचा था ! जैसे ही किसी मन्दिर से वह निकलती थी तो उसकी आँखें भीग जाती थीं । सब मन्दिर वह देख चुकी तो रजनी के पिता बोले कि अब रात की गाड़ी से लौटेंगे । सुनकर पहले तो माँ कुछ न बोली । उन दिनों रजनी के बाप बहुत कम बोलते थे और उसका सब कहा मान लेते थे । धर्मशाला में जब भोजन कर चुके तो माँ ने रजनी के बाप से सटकर बड़े प्रेम से अनुनय की थी, "कल और ठहरो न । एक बार मैं फिर सब मन्दिरों के दर्शन करूँगी ।" उन्होंने हल्के दिल से यह मान लिया था और दूसरे दिन माँ ने सब मन्दिरों के दर्शन आतुर-नेत्रों किये थे ।

जब वह गाड़ी में बैठ बृन्दावन से विदा हुई थी तो उसने उस धर्मनगरी को हाथ जोड़कर नमस्कार किया था । अपने मन में उसने प्रार्थना की थी, "राधा के कान्हा, मुझे भी अपने पास बुला लो ।"

क्या जाने वृन्दावन के कन्हैया ने उसकी पुकार सुनी थी या नहीं ।

उसके बाद माँ ने रजनी के बाप से कितनी बार विनती की है कि उसे गयाधाम, पुरीधाम और हरिद्वार नहला लाओ । पर कहाँ करम में बदा है यह सब । और वे ही क्या करें ? महीने की उधारी ही पूरी नहीं उतरती, तीर्थधाम तो किन कर्महीनों को मिलते ।

कर्महीन ! घर में वह थी या कि रजनी के बापू ? पर आठ साल होने आये। उसका एक भी नया घाघरा नहीं सिला है । एक भी नई धोती बाज़ार से नहीं आई है । नया लुगड़ा तो हर महीने की तन्ख्वाह पर आते-आते अब हवा में ही कहीं उड़ गया है । कितनी सर्दियाँ चली गईं, माँ को रुई की एक बंडी भी नसीब नहीं हुई है। इन्हीं झीने कपड़ों में वह सुबह उठकर चक्की पीसती रही है, फिर घर के सारे बर्तन

मले हैं और तब घर भर के कपड़े बिना साबुन फटकारकर धोये हैं। और नहाने के बाद वालों में एक बूंद कड़वे तेल की डालने को भी नहीं मिली है। खुशबू के तेलों की बस उसने बातें सुनी हैं।

माँ को याद आई, जब वह ब्याहवली आई थी तो गाँव में एक रुपये का नौ सेर घी था और शहर में वही घी एक रुपये का सात सेर मिलता था। इस दो सेर के फर्क से ही उसे झुँझलाहट आया करती थी। तब उसके ससुर ज़िन्दा थे और नौकरी में वे कुल तीन रुपये तन्ख्वाह के पाते थे। पर रजनी के बाप ने आठवीं क्लास की पढ़ाई की थी इसलिए उन्हें पन्द्रह रुपये की नौकरी मिली थी। चने रुपये के तीस सेर आया करते थे। और आज ! धीरे-धीरे इस दुनियाँ पर जैसे राक्षसों का राज छा गया हो, घी रुपये का दो छटाँक मिल रहा है। गेहूँ कुल ढाई सेर। कड़वा तेल भी दस छटाँक। माँ को पहले नहीं समझ में आई—यह पैदावार भला यह पृथ्वीमाता कहीं कम किया करती है ? कोई है जो दुनियाँ के प्राणियों का खून चूसने बैठा है।

माँ ने मन ही मन उस रक्तशोषक को भस्म होने का श्राप दिया। और उसे याद आया, जब वह रजनी को जेल में देखने दिल्ली गई थी तो वहाँ एक मशीन धरी थी। उसमें इकन्नी डाली तो खट से प्लेटफारम का टिकट बाहर आ जाता था। नपूता यह शहर ही उस मशीन-सा कुआँ है जिसमें अपना सब-कुछ हमने डाल दिया है। अब तक माँ के सब ज़ेवर बिक चुके हैं और वहाँ से बस कुछ कागज़ के टुकड़े बाहर निकलते चले आते हैं। सारी दुनियाँ बैठकर चाटे इन कागज़ी नोटों को। पहले कैसा कल्दार भरी चाँदी का रुपया आता था। और अब ? नोट आते हैं जैसे तो हमने कर्ज़ लिया हो किसी से और उसने कागज़ लिखकर दे दिया हो……

ओह ! माँ का माथा दर्द करने लगा।

उसने आँखें खोलीं। पूछा, "क्या बजा है ?"

बहू ने बताया कि साढ़े पाँच बजे हैं। अब दिन उगने ही वाला है। आप कौन सा फलाहार करेंगी ?

माँ फलाहार करेगी ? घर में कौन रकम तिजोरी में रखी है। ज़रा से अधपेट फलाहार के लिए तीन-चार रुपये चाहिएँ। कहाँ महीने भर की तनख्वाह तीन-चार रुपये होती थी। वह बस कोरा पानी पीकर हनुमान जी की माला जप लेगी और फिर घर में जो भी रूखा-सूखा पकेगा, वह ही गले में उँडेल लेगी ! !

बहू को उत्तर न दिया। सूनी आँखों उसे देखती रही। दहशत खाकर बहू ने अपने पति को इशारा किया। बड़ा बेटा सुन्न रह गया। माँ की पुतलियाँ कहीं फिरने वाली तो नहीं हैं ? बोला, "तुम्हारी इस तपस्या से सरकार पर क्या असर पड़ता है। यह राक्षसों का राज है। इस राज में तो ईश्वर भी उसी की जेल में बन्द है।

और अवतार होने में अभी काफ़ी समय है।"

माँ कुछ न समझी। बोली, "तेरे बाप कहाँ हैं? उन्हें बुला ला।"

पण्डित हरदेवसहाय जी सुबह चार बजे ही सोकर उठ चुके थे। आज हवा में गर्मी थी। चद्दर ओढ़ते थे तो गर्मी लगती थी और वैसे सोते थे तो मच्छर डंक मारते थे। आख़िर परेशान होकर उठ बैठे। टूटा मूढ़ा लिया और बाहर चबूतरे पर जा बैठे। इच्छा तो हुई कि अन्दर जाकर रजनी की माँ की तबियत जान आयें। पर नहीं गये। तक़दीर में कैसी खोटी औरत मिली है।

मूढ़े पर बैठे तो अपने को आधी धोती खोलकर ढँक लिया, ताकि चारों तरफ़ मच्छर न काट सकें। इच्छा हुई कि सिगरेट पी जाय। पर यहाँ तो अब बीड़ी का टोटा भी नहीं बचा है। जी कुलमलाया और असंतोष से छटपटाकर रह गया।

एक ठंडी हवा का झौंका आया और पण्डित जी को स्फुरण दे गया। उनके जी को एक भूला हुआ सुख याद हो आया। तब वे सातवीं कक्षा के छात्र थे। रोज़ इसी समय तालाब में तैरने जाया करते थे। सिर पर कोई चिन्ता न थी। घर में ख़ूब घी था और अनाज था। आज तो बिना घी से उनकी देह का चमड़ा जैसे चूना ढोने वाले भैंसे के चमड़े-सा बन चुका है।

पण्डित जी अपनी कक्षा में सर्वप्रथम रहे हैं। उनके हैडमास्टर की उन्हें नित्य-प्रति आशीष मिलती थी। पर इन आशीषों के लिए उन्हें कितना श्रम करना पड़ता था और अपने पिता जी की रोज़ फटकार सुननी पड़ती थी। घर पर तन्ख़्वाह के कुल तीन या चार रुपये आते थे। इसलिए रात को पढ़ाई के लिए तेल कहाँ से आता? और वे हरसहाय जी की शिक्षा के पक्ष में नहीं थे। कहते थे, 'बाबू होकर रे! तू क्या करेगा? अपनी जो तक़दीर है उसी की लीक पर सीधे चलो। उधार ली हुई या झगड़कर ली हुई तक़दीर से ज़िन्दगी में कभी ख़ुशी नहीं मिलेगी।' पर वे रात को छत की छोटी-सी कोठरी में घुस जाया करते थे और वहाँ दिया लेकर पढ़ा करते थे। उस कोठरी में महज छोटी-सी खिड़की है, जिसमें बड़े कष्ट से घुसा जाता था। वहीं वे पढ़ते और ज़रा-सी जीनों पर आहट पाते ही दिया बुझाकर सो जाया करते···सच, पण्डित जी ने जो तक़दीर पाई, वह नाहक़ झगड़कर ली हुई है!

शुरू में उन्होंने पन्द्रह रुपये की नौकरी की है और आज उन्हें पौने दो सौ मिलते हैं, पर एक दिन भी ख़ुशी का हासिल नहीं हुआ है। न तो उनके दोनों बेटे सुविधा से अच्छी शिक्षा पा सके और न सम्पन्न घरानों में ब्याहे जा सके। आफ़िस से जो वर्दी मिलती है, उसके अलावा उन्हें कभी ज़िन्दगी भर में एक रेशमी सूट तक पहनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है।

पण्डित जी को याद आया कि रजनी की माँ ने शादी की पहली रात दो घंटे

लगा दिये थे और मुँह घूँघट में छिपाये रही थी। वह मुँह-दिखाई माँगती थी। पिता जी ने उससे वायदा किया था कि वह उसे एक अच्छे नगीने की अँगूठी बनवाकर देंगे। हो गये आज अट्ठाईस साल? वे अपना वह वायदा चाहकर भी पूरा नहीं कर पाये हैं।

उनके पिता जी कहा करते थे कि औरत घर में लाना हँसी-खेल नहीं है। उसकी पूजा ठीक लक्ष्मी की तरह करनी पड़ती है और लक्ष्मी की पूजा सूखी रोली और चावलों से नहीं हो जाया करती। कम से कम एक रुपया तो रखना ही होगा। आज तक उन्होंने रजनी की माँ की क्या पूजा की है? बेचारी को फटकार, ताड़ना, धमकी, फटे कपड़े दिये, पर माथे के सिन्दूर की शीशी तक नहीं दी। लानत है ऐसी गृहस्थी पर और ऐसे ब्याह करने पर।

बड़े बेटे को लेकर उन्हें बहुत आशाएँ थीं। सोचा था, यह पढ़-लिख लेगा तो घर में दुगने पैसे आने लग जायँगे और फिर दुख के बादल बरसने बन्द हो जायँगे। पर कमबख्त अक्ल का ठरस निकला। पाँचवीं से आगे पढ़ न सका। कुछ दिन आवारा-गर्दी की और अब पड़चूनी की दुकान करता है। मुश्किल से सौ रुपये महीने बचते हैं। सौ रुपये की कमाई बढ़ी तो उसकी बहू यहाँ घर में आकर पसरकर बैठ गई।

पर पण्डित जी को अपने ऐसे सोचने पर कुछ शर्मिन्दगी हुई। मेरे ही दिमाग़ में तो जनून चढ़ा था कि बरात लेकर उसके घर जा पहुँचा और यहाँ वह जब पहुँची थी तो घर के आगे बाजे बजाये थे। ससुर होकर मैंने उसे अपना क्या दुलार दिया है। आज तक अपने मनहूस हाथों से उसे एक धोती-जोड़ा तक लाकर नहीं दिया है। बेचारी जो अपने पीहर से ले आती है उसे ही ओढ़-पहन लेती है। उल्टे उसके पीहर के जड़ाऊ ईयर-रिंग यहाँ और बिक गये हैं।

बाहर कुरड़ी पर नीम है और वहाँ अब कौवे टेर लगा रहे हैं। हल्की-सी सफ़ेदी सामने की हवेली की छत को छूकर इधर आने लगी है। उनकी दृष्टि पीछे घूमती हुई बैठक की पूरी परिक्रमा कर आई। दो टूटी टेढ़ी-मेढ़ी लोहे की कुर्सियाँ, एक फटी दरी उनकी खाट पर। एक फटा कंबल, खूँटी पर तीन फटी कमीजें। एक वर्दी का खिसा-खिसाया कोट। दो फटे जोड़े जूते, उधर वह छतरी, जिसमें से पानी चूता है और जो जेठ की दुपहरी में छतरी का बहाना तक नहीं होने देती।

पण्डित जी ने मोटा हिसाब लगाया। अपनी तीस बरस की नौकरी में उन्होंने लगभग तीस हज़ार रुपया कमाया। पर इतना रुपया सिर्फ़ इनकी हडिड्यों की ताक़त ही सोख सका। उनकी हडिड्यों में इतने रुपयों ने कभी ताज़ा रक्त का सिंचन नहीं किया।

तीस हज़ार रुपया। ओह! कितना रुपया वे कमा चुके, पर जाने कौन से छिद्र

पण्डित जी ने कहा कि रजनी की माँ की हालत एकदम ख़राब है। तीन दिनों से निर्जल व्रत कर रखा है रजनी के लिए।"

"रजनी के लिए? ओह! भगवान् ने सुन ली रजनी की माँ की पुकार! यह देखिये, रजनी जेल से फरार हो गया है और जेल से भागना भी विना भगवान् के आशीर्वाद के नहीं होता।"

पण्डित जी हठात् कठिन हो गये। हल्के से पूछा, "रजनी जेल से भाग गया है? कैसे?"

"यह तो मालूम नहीं बस अख़बार में पढ़ा है, रात को आ नहीं सका, आपको कहने। सोचा, ठीक सुबह ही बोल आऊँगा।"

पण्डित जी लाला जी को वहीं पौली पर छोड़कर उल्टे पैर लौटे। रजनी की माँ को हाथों से झकझोरकर कहा, "सुना, रजनी जेल से छूट गया है। अख़बार में ख़बर आई है।"

माँ ने पहले तो नहीं सुना। फिर सुना तो आँखें खोलीं और पति को सूनी आँखों स्थिर पलकें देखने लगी।

पण्डित जी ने सोचा, ये ही पुतलियाँ हैं वे, जो उन्हें कठिन से कठिन प्रेरणाएँ दे चुकी हैं?

माँ ने कहा, "और सुनो, रजनी मेरे पीछे से आये तो मेरे ट्रंक में २०) रखे हैं! उसे दूध पीने को दे देना। बेचारे को वहाँ कहाँ दूध मिला होगा?"

पण्डित जी ने ज़ोर लगाकर कहा, "अरी, दो-तीन दिन हुए जेल से छूट गया है। अख़बार में ख़बर छपी है।"

माँ के कानों में पण्डित जी की ध्वनि ठीक से न पहुँच सकी। इस क्षण वह सोच रही थी कि रजनी की बहू के लिए क्या सौंप जाय? वह इस टैम पास होती तो अपना आधा-चौथाई भरा ट्रंक ही उसे सँभाल जाती। ख़ैर, जैसी भी बेशऊर की है, है तो बेटे की बहू। निभाना अपना फ़र्ज़ है। कोई भगाकर तो लाई नहीं गई है। हमीं उसे लेने गये थे।

पण्डित जी ने इस बार माँ के कान के पास मुँह लगाकर कहा, "रजनी की माँ, रजनी जेल से छूट गया है। वह कल सुबह तक आ जायगा।"

माँ ने सुना! रजनी छूट गया है। उसकी आँखों के आगे हल्के रोशनी के धब्बे तैरने लगे हैं। उसे भ्रांति हुई, भगवान् उसकी तपस्या पर निहाल हो गये हैं सो दर्शन देने आये हैं। वह न हर्ष से मचल सकी, न जड़वत् हो सकी। शरीर की क्षीण शक्ति से हाथ भी तो हिलने से रह गये हैं कि वह भगवान् को हाथ जोड़ ले। हाँ, साफ़ दिखाई दिया कि भगवान् की गोदी में रजनी है और वे उसे उठाये ला रहे हैं।

अब, माँ जोरों से रो पड़ना चाहती है सो उसकी प्रेमाश्रुधारा बह चली और वह अशक्त आँख बन्द कर देखने लगी कि भगवान् पास आयें तो वह उनके पैर छुए···

पण्डित जी ने माँ का हाल देखा। समझ गये कि अन्तिम घड़ी है। दिल उनका ऐंठने लगा। कहाँ से तो डाक्टर लायें, या वैद्य जी को बुलायें। वे उठे और दौड़कर बैठक में गये···पर लौटे। उन्हें ख्याल ही न रहा कि बैठक में क्यों गये थे। कि देखते क्या हैं, माँ ने अपने हाथ ऊपर फैला रखे हैं और धीमी हवा-सी निकलने के साथ उसके मुँह से सुनाई पड़ा है, "रजनी !" पर दूसरे ही क्षण वे हाथ स्वतः ही खाट पर गिर पड़े। पण्डित जी लपककर माँ की चारपाई की बाई पर बैठे और उसका सिर अपनी गोदी में ले लिया।

हठात् माँ ने आँखें खोलीं। सब को शून्य-दृष्टि देखा कि होंठों पर ज़रा-सा थूक एकत्र हो गया। एक दर्द से माथे की पेशियाँ विकृत हुईं और सहसा ही वह जोर लगाकर बोली, "सत्यानाश ! सरकार का···रजनी की बहू···" और उसकी पुतलियाँ चढ़ गईं।

पण्डित जी माँ का चेहरा टूटी हुई चट्टान के लुढ़के हुए पत्थर-सा देखते रहे। बड़े बेटे ने उठकर फटी चद्दर माँ के चेहरे पर डाल दी। बड़ी बहू छाती पीटकर रोने लगी, "हाय सास जी !"

विलाप का स्वर पण्डित जी को चेतना दे सका और वे वहीं खाट पर मूर्च्छना खाकर गिर रहे थे कि सँभले। चारपाई से नीचे उतर आये और माथा पकड़कर बैठ गये। उनकी आँखों से आँसू स्वतः झरने लगे।

बड़ी बहू का विलाप सुनकर पड़ौस की बड़ी-बूढ़ियों ने आहट ली और खड़ी हुईं कि चलें, रजनी की माँ को भी रो आयें। बस, अब हमारी बारी है।

२०

शिली का रहस्य

सुबह की मेल से नतीजा आ गया कि शिली एम. ए. पास हो गई है। सखियों ने टिप्पणी की, "अब सूर्य एक प्रहर समाप्त कर चुका शिली का। दूसरा प्रहर आज से ही उसका आरम्भ होना चाहिए।"

शिली ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। हर्ष की लहरों पर तैरती हुई-सी वह सोफे पर फैल गई। कुछ पलकों को रिझाकर वह हँसने लगी। सखियों ने कहा—"ठीक! यही हँसी प्रथम यौवन की···"

तभी शिली की ममी आ गई। सखियों के 'काँप्लीमेंट्स' स्वीकार किये। उन्हें धन्यवाद दिया। शिली से कहा, "इन्हें मिठाइयाँ माँगने से पूर्व ही चाय पिलाओ।"

फिर मुस्कराती हुई चली गई।

शिली ने पहले पापा को नमस्कार किया और आज्ञा ली कि चाय के बाद हम सिनेमा हो आवें। चाय आई और चीनी के कप झंकृत होने लगे। परसों मिसेज सौंधी ससुराल से लौटी हैं। पति-मिलन की सुर्खी उनके अंगों में ताजा है। उन्होंने प्रस्ताव किया कि चाय हम पियें और मनायें कि शिली की 'रात्रि' आरम्भ हो।

मिस सुनैना बोली ही थी कि मिसेज चित्रे ने कहा, "और वह 'रात्रि' काली न हो। पूर्णिमा का, कल्पना से भी परे, श्वेत-शीत प्रकाश हो और प्रतिच्छाया में ताजमहल की प्रतिमूर्ति जगमगाती हो।" सबने बड़े जोर से किलकारी मारकर करतल-ध्वनि की।

मिस सुनैना ने कहा, "मैं कहना चाहती हूँ, उस रात्रि में मयूर नृत्य करें। साक्षात् कालिदास और टैगोर आकर उस शिशिर के नीरव प्रहर में नीरव संगीत की फुहार झारें। कुबेर स्वर्ण-राशि की शैया का प्रबन्ध करें और स्वयं रतिनाथ वहाँ कदम्ब-वृक्षों की ओट में अदृष्ट रूप से उपस्थित हों।"

चाय को अधरों से लगाती हुई मिस भल्ला चहचहाई, "और उस रात्रि युद्ध रुका रहे। न रुके, तो टैंक-बमों का निनाद इन तक न पहुँचे।"

सबने फिर तालियाँ बजाईं और चाय की केटली क्षण-क्षण के उपरान्त खाली होने लगी। शिली अपने सघन मद में सबके चुटकियाँ काटने लगी कि सब नटखट हैं, तमीज भूल बैठी हैं, नाहक मेरे लिए अपने प्रस्तावों से जाने कौन से आवाहन का प्रबन्ध कर रही हैं?

सिनेमा हॉल तक पहुँचते-पहुँचते सब छँट गईं। मिस भल्ला ने कहा, "जी ज़रा धुक-धुक कर रहा है। शायद सिनेमा के मनोरंजन से ठीक-ठिकाने आ जाये।"

पर शिली आज अकेली सिनेमा देखेगी। उसने मना किया कि तुम्हें 'फ्लू' है, घर जाकर लेटो। नहीं तो, मस्तिष्क पर ज़ोर पड़ने से बदन गर्म हो जाता है।" और बात मानकर जब मिस भल्ला चली ताँगा कर, तो शिली उसे देखती रही। चुपके से बोली, "रात्रि! मधु-गीत गाते हुए रात्रि को बुलाया जाय, या मधु-गीत से जयजयकार करते हुए रात्रि व्यतीत की जाय?"

वह सचेत हुई। दीखा कि सिनेमा की सीढ़ियों पर वह खड़ी हुई है और पाँच सौ से अधिक दर्शक टिकट ख़रीदते हुए उसे देख रहे हैं। चिहुँककर टिकट ले, वह बाल्कनी में चढ़ गई।

वह एम. ए. पास हो गई है, ये दर्शक नहीं जानते। बेग से चॉकलेट निकालकर मुँह में डाल जैसे वह अपने द्वंद्व को ही चूसने लगी। बाल्कनी प्रायः खाली पड़ी है। उसकी चित्ताकर्षक दृष्टि नीचे की बैठी पंक्तियों पर पड़ी। नालायक कहीं के! यहाँ हॉल में सीटियाँ बजाते हैं। अंग्रेज़ी हॉलों में कितनी मधुर शान्ति मानस को हरिया देती है। नौ आने क्लास में इधर एक खालसा जी और उनकी कुड़ियाँ बैठी हैं। धर कुछ मारवाड़ी लाला अपनी दुलहिनों को ला रहे हैं। उसने और गौर से देखा, उन मारवाड़िनियों ने सैंडल के ऊपर कड़ियाँ और छेलकड़े, ब्लाऊज़ और बनारसी साड़ियों के ऊपर गोटे-किनारे के ओढ़ने, हेयर-क्लिप, लिपस्टिक और फेस पाउडर के ऊपर लम्बा घूँघट खींच रखा है। शिली ने गुनगुनाया, "बेचारी अपढ़ धनिकों की पुत्र-वधुएँ! आधुनिकता की उग्र क्रान्ति की मिठास को नहीं पी पातीं सो पानी मिलाकर, उसे हल्के-हल्के नशे बनाकर पीती हैं। पर अच्छा है, पीती तो हैं और अपनी गोरी बाहुओं को कन्धों के घुमेर तक नग्न रखने का साहस कर पाती हैं!" कि शिली चौंकी, "न, नग्न नहीं। अनढकी। अमरीका में तो खुली जंघायें भी अनढकी मानी जाती हैं, पर हमारे यहाँ स्त्रियों की अनढकी जंघाएँ नग्न ही घोषित की जायँगी।"

आज रिज़ल्ट निकला है। विद्यार्थी, विवाह न होने पर भी, अपनी-अपनी खुशियों को रजतपट की सुन्दरियों के आमोद से तृप्त करेंगे। ये लक्षण भी शुभ हैं। आज भी नारी हमारे भारतीय युवकों की चिर-पिपासा है। पर ये बे-पढ़ी-लिखी घरेलू और घूँघट-टाइप की महिलाएँ यहाँ सिनेमा में क्यों आती हैं? इस रजतपट की अलकपरी और चहकती तितलियाँ वे बन सकतीं नहीं, इस सिनेमा के मधु-प्रभात से ये जग सकतीं नहीं। इस सिनेमा के हँस-दौत्य की मुक्त किलोल ये कर पाती नहीं। एक क्रन्दन, एक सघन निशा, एक मरण-लग्न, एक क़ब्र की तड़प, एक रक्तस्वेद की मूक आह लिये ही ये लौटती हैं अपने घर। इनके प्रति सहानुभूति में शिली स्वयं

व्याकुल हो आई ।

हॉल में अँधियारा छा गया । खेल आरम्भ हो गया । युद्ध घोषणा के चित्र दिखाये गये । फिर विज्ञापन-प्रदर्शन हुआ । फिर सिनेमा कथानक नव-बसन्त के नृत्य-संगीत से आरम्भ हुआ । शिली चॉकलेट चूसती रही । उसकी केशलहरी के ऊपर से तीक्ष्ण प्रकाश-रेखाएँ तरुण पात्र-पात्रियों के यौवन को सागर-सा वहाँ रजतपट पर बहा रही हैं । दर्शक-गण अपने हृदय के राजभवनों का राजस्वप्न जीवित देख रहे हैं । शिली ने अपना राजभवन कभी निर्मित नहीं करना चाहा । वह एम. ए. तक इसीलिए पढ़ी कि सरल से सरलतम बन जाय और सरस्वती देवी की सरल-सी वाटिका में रहने लगे । शैल-शृङ्ग वहाँ होंगे तो टूटेंगे । शिली की वाटिका में तो फूल मुर्झायेंगे । पर वह चित्र का कथानक सुनने लगी । हीरोइन ने हीरो के कंधे पर अपनी मज्जित बाहुएँ रखीं । उसकी वक्ष के लगकर बोली वह, "यह राज्य जीतकर मुझे बन्दिनी तो न बनाओगे ?"

सुन्दर नौजवान आक्रमणकारी राजकुमार ने अपनी दृढ़ बाहुओं में उसे काजल की नाईं लगाकर कहा, "बन्दिनी ! बन्दी तो तुम्हारा मैं हूँ । तुम मेरे साम्राज्य की पटरानी बनोगी ।"

कुमारी राजकुमारी पटरानी के विजय-मार्ग की भूल-भुलैयाँ शायद जानती है, जहाँ उसके राज्य की पराजय एक करुण कथा-सी विस्मृत हो जायगी । बोली, "मुझे बहलाओ मत । पटरानी बनाकर लोहे के स्थान पर तुम मुझे सोने की ज़ंजीरों से कस दोगे ।"

राजकुमार राजकुमारी के अन्तर्मुखी अभिमान को बिना रक्त बहाये कुचल देगा । बोला, "तुम लोहे और सोने की ज़ंजीरों का ही भेद जानती हो । लोहे के दुर्भाग्य और सोने के सौभाग्य का भेद तुम्हें मुझ से सीखना होगा । तुम्हारा सौभाग्य सोने से जटिल हो जायगा और सोने की ज़ंजीरों में कसने वाला राजकुमार नित्य तुम्हारे मृदु तलवों को चूमने आयेगा ।"

शिली के मृदु तलवों में एक स्फुरण की लहर दौड़ गई । जाने किसने वहाँ गुदगुदी कर दी है । राजकुमारी अपना दर्प तो मर्दित होने देगी, इस राजकुमार के बाहुबल का भी रस निचोड़ लेगी । पहले पराजित हो और तब सिंहासन पर बैठे । बोली, "राजकुमार, अपने प्रेम के वचन बढ़ा-चढ़ाकर न बो । मेरे मृदु तलवों को न छूकर तुम मेरे कपोलों को ..."

और वह झुक गई । राजकुमार ने तुरन्त उसे बाहुओं में बैठा लिया । शिली के मृदु तलवों की गुदगुदी उसके अंग-अंग में हो गई । गढ़-द्वार के सामने जयघोष से विजयी सेना हॉल में छा गई । दृश्य बदल गया । दर्शक तालियाँ पीटते रह गये ।

मृदु तलवे और कपोल मध्ययुग का रोमांस है। आधुनिक जीवन में यद्यपि मृदु तलवे और कपोल मध्ययुग से भी अधिक मृदु हो गये हैं, पर आज एक भी राजकुमार जो नहीं है। शिली ने यह सब अधिक अध्ययन करने के लिए कालेज में दीर्घ समय बिताया है। आज सभी युवतियाँ शिली के मानिन्द हैं, कोई कम, कोई अधिक। शिली भी हॉल की राजकुमारी की रुचि-गति के पीछे तितली बन गई। और जल्दी-जल्दी आगे उड़ने लगी। वह राजकुमार उसे अपनी राजधानी में ले गया। वह सचमुच बहुत सुशील था। उसके हृदय में वही पटरानी बनी, वही सब कुछ बन गई। शिली, यह निश्चय है, कहीं प्रधान अध्यापिका बनेगी। राजकुमारियाँ अपने जन्म से स्वर्ण-वर्ग का अस्तित्व पाती थीं। शिली ने अपने मानस को राजकुमारियों के समान करने में कितना श्रम किया है। वैसे भी, आज किसी भी राजकुमारी से क्या वह श्रेष्ठ सुन्दरी न बैठेगी ? तो उसके कालेज-साम्राज्य पर कौन आक्रमण कर उसे अपनी सम्राज्ञी बनायेगा ! आज समाज में यदि राजकुमारियाँ हैं तो बिन बाँदियों और लौंडियों की। स्वयंवर की प्रथा अब फिर से चालू की जा सकती नहीं। पत्रों में विज्ञापन देकर वह भिड़ या ततइयों के छत्ते को छेड़ना चाहती नहीं, जो ढेर की ढेर उसके चिमट जायँ। यही कि हजारों युवकों के प्रणय-पत्रों में से वह किस को चुने ? बस, कोई यूँ ही उसके साम्राज्य पर आक्रमण करे ! वह उसके अंक में समर्पित तो होगी, पर उसकी दृढ़ बाहुओं में झूला झूलकर।

चित्र चल रहा था। अब राजकुमार बहुत सुस्त रहते हैं। पटरानी बार-बार उनसे उदासी का कारण पूछती थी, पर वे टालमटोल कर जाते थे। राज-शासन सुघर चल रहा है, राजकोष में अथाह धन है, राज्य की जनता परोपकारिणी है, राज्य पटरानी विश्व-सुन्दरियों में से एक है। फिर भी राजा सुस्त क्यों ? इस प्रश्न में अटककर पटरानी की सखियाँ हास करना भी भूल गई हैं। पहेली कौन बूझे ?

शिली की भी अपनी एक पहेली है। वह एम. ए. पास हो गई है। एक कॅनाल इंजीनियर की एक मात्र राजसी सन्तान है। विवाह योग्य वय है उसकी। पर आज तक उसकी वय ने शिली से प्रेमसूत्र उद्गमित कराकर प्रेम-गंगा को संयुक्त प्रान्त के मैदानों में नहीं ढाला कि आज दिन बह-बहाकर वह धारा बंगाल की खाड़ी में गिर जाती और शिली अपने उसी पति के संग उस बंगाल महासागर के किसी द्वीप के राज-उद्यान में रहने लगती। अनेकों कालेजी युवकों ने शिली के मृदु तलवों की धूल बन जाने की इच्छा प्रकट की, पर शिली अपने ही कक्ष में एकाकिनी रहती रही। फिर आज वह किसी सम्राट् की आकांक्षा से तीव्रतर क्यों हो गई है ? उधर चित्र चल रहा है। महल की अन्य राजकुमारियों ने भी अथक चेष्टा की कि राजकुमार की उदासी दूर हो जाय। आखिर राजकुमार ने राजमन्त्री से आँसुओं की धारा को

बहाकर कहा, "बाबा ! मैं एक घोर पाप का भागी बना हूँ। वह पटरानी तो मेरे ही वंश की है और सहोदरा है। हमारे पिता ने यह अपने जीवन-काल में हमें सुनाया नहीं था। इस राजकुमारी का धर्म-पिता मेरे आक्रमण से पहले मृत्यु को प्राप्त हो चुका था। इस रहस्य का ज्ञाता वहाँ का प्रधानमन्त्री ही था। सो वह युद्ध में मारा गया। मुझे यह भेद राजपत्रों से अब प्राप्त हुआ है। राज्य की जनता इस भेद को जानते ही विद्रोह करेगी और मुझे राह का भिखारी बनना पड़ेगा। मुश्किल अब यह है कि राज्य-पटरानी जल्दी ही एक सन्तान को जन्म देने वाली हैं।"

शिली सधकर बैठ गई। साँस उसकी रुक गई। यह आक्रमण का प्रतिफल क्या हो गया ? राजकुमारी के मृदु तलवे और कपोल बेचारे इस राजकुमार को कितने विषाक्त सिद्ध हुए हैं। और पटरानी का यह गर्भ तो इस विषाक्त अनुभूति पर घातक प्रहार कर बैठा है। नहीं तो···

नीचे किसी महिला का बच्चा काफ़ी देर से कुनमुना रहा है। अब हॉल में शोर करते हुए रोने लगा। सिनेमा का मजा किरकिरा-सा हो चला था। लोगों की एकाग्रता जैसे किसी ने भींच डाली हो। आवाज़ें आने लगीं कि बच्चे को चुप किया जाय। पर लीजिये, अब वह बच्चा चुप हो चला था, तो उस कोने से दूसरा बच्चा चीख उठा। सिनेमा भी चलता रहा। अब लोग गुस्से में हैं। शिली भी लाल सुर्ख हो आई कि कितनी बदतमीज औरतें हैं। पब्लिक-हॉल में आकर यों नालायकी फैलाती हैं।

राजकुमार ने आँसू बहाकर अपना रहस्य राज-मन्त्री को दिया था। शिली हॉल में फैलते हुए शोर पर और इस राजकुमार पर क्रोध करती हुई अपने रहस्य को ऊपर ले आई कि इस राजकुमार के रहस्य-तारतम्य से उसे गूँथ दे। बी. ए. में उसने एक युवक से साहचर्य बढ़ाया था। पर वह इसी राजकुमार की नाईं इतना उत्सुक युवा था कि शिली को उससे ग्लानि हो गई थी। आज के समस्त भारतीय युवक पाणिग्रहण-क्षणों में तात्कालिक उत्सुक रहते हैं ! इसके प्रमाण-स्वरूप अनेक नवयुवतियों को अपने प्रथम प्रसव पर मरते उसने देखा है। तब से वह इस घातक तत्व की विकृति से सशंक रही है।

हॉल में तूफ़ान बर्पा हो गया। लोगों ने आखिर उन बच्चों की माताओं को मजबूर किया कि वे हॉल से बाहर चली जायँ। वे बेचारी बाहर चली गईं तो सब दर्शक मूर्खतापूर्ण ही···ही करने लगे। शिली के श्वेत मुखड़े पर नरम धूप-सी छा गई। सस्मित बोली, "रात्रि महा शून्य नहीं है। वह हमारे नक्षत्र की अपूर्व धवलता है। प्यारमयी, मनुहारमयी मधु-गीतिकाओं को गाते हुए ही इस रात्रि की पग-ध्वनि को चीन्हना चाहिए।"

बावेला अधिक मचने से 'इंटरवेल' कर दिया गया। हॉल में प्रकाश छा गया।

शिली ने धौले रुमाल से प्रशस्त माथे के पसीने पोंछे। नयी चॉकलेट मुँह में डाली और खड़ी हो गई। वह खूब जानती है कि ऐसे कथानकों का अन्त क्या होगा। पटरानी का वह बच्चा समाज की मदिर लहरों में डूब जायगा और वह राजकुमारी उत्थान-पतन की अग्नि में भस्म हो जायगी। न गर्भ होता, न राजकुमार की समस्या कलुषित होने पाती।

शिली अपनी 'रात्रि' ऐसी विकृति नहीं चाहती। मिस भल्ला यह सब क्या जानें? 'रात्रि' का प्रस्ताव तो मैं स्वयं ही कर लूँगी। इस विकृति के महाज्वलन से बचाने की कोई शर्त भी तो ले।

चाय-सोडा बिकने लगा। शिली अपने निश्चय से सुसज्जित हो बाहर आई। बाहर वे औरतें अब भी अपने बच्चों को चुप कराने में लगी थीं।

२१

पूरब दिशा को नई पुरवैया

रेवती को पिता जी से उत्तर नहीं मिला है अभी तक। चाचा जी के हैड आफ़िस में तो क्या जाता है, अपने विषम-ज्वर के लिए गिलोय जैसे कच्ची चवा आता है। और फिर फ़ुर्सत के समय ट्राम में इधर-उधर घूमता हुआ दिन काट देता है।

श्याम बाज़ार से ट्राम में बैठा कि धर्मतल्ला चलेगा और वहाँ से 'लेक' पहुँचेगा। वह बैठा, तो सुना कि दो बंगाली बैठे हुए 'नेशनलिज़्म' पर विवाद कर रहे हैं। वह सुनता रहा। उसने महसूस किया कि दोनों छात्र नहीं हैं। वकील भी नहीं जान पड़ते। किसी कारखाने के बड़े बाबू लगते हैं। जब वे विवेकानन्द रोड पर उतरने लगे तो रजनी ने कहा, "सुनिये, राष्ट्रीयता का सीधा और सच्चा मतलब कुरूप और अरुचिकर गर्भवती औरत मान लीजिए आप दोनों।" दोनों इस व्यंग पर खीझ उठे। कुछ कहें कि वे उतर पड़े और अनायास हँस पड़े।

रेवती भी हँसना चाहता था। पर उसे उन दोनों की हँसी पर क्रोध आ गया। राष्ट्रीयता को, झींगुरों का तसल्ली से अँधेरे में बैठकर चिक-चिक-चिक करना जैसा मान लिया है दोनों ने—यह कौन सी पराकाष्ठा है हमारे राष्ट्रीय चरित्र की। भविष्य की ओर या तो हम लोगों ने आँख उठाना तक बन्द कर दिया है, या फिर खूँख़्वार गैंडे की मानिंद हम आँख बन्द कर सीधे नाक की दिशा दौड़ने की आदत डाल रहे हैं···

उधर दीवार पर 'अंग्रेज़ो भारत छोड़ो' धुँधली स्याही में अब भी चमक रहा है। रेवती ने हल्के-से गुनगुनाया, "दीमको, लकड़ी में घुन लगाना छोड़ो।" और बाहर देखने लगा :

आकर्षण-अनाकर्षण से परे सिर्फ़ रिक्त आकाश होता है। रेवती आजकल इसी रिक्त आकाश के निकट परिक्रमा करता है और इस रिक्त आकाश का कुछ अर्थ उसे हाथ नहीं लग पाता। दुबारा वह इसी चेष्टा में परिक्रमा करता है और फिर भी उसे अर्थ हाथ नहीं लगता। रोज़ सुबह वह दीवाल पर टँगे हिन्दुस्तान के नक्शे को देखता है। इसमें बंगाल भी है। रेवती आजकल बंगाल की महानगरी कलकत्ता में आ ठहरा है। बंगाल की हवा की गर्मी से बेचैनी उसे नहीं होती। पर नक्शे पर समूचे देश की गर्म हवा का एक भूभल चक्कर खाता हुआ ऊपर उठता है और रजनी को तिलमिलाकर चला जाता है। यह पूरे देश की गर्म हवा क्या है? रेवती इसका अर्थ जानने को

व्याकुल है।

गत सप्ताह रेवती के नाम पर बंगाल के गवर्नर को एक पार्टी दी गई थी। चाचा जी ने इस दावत में एक सौ पचास सरकारी मेहमानों पर पाँच हज़ार रुपया व्यय किया था। अख़बारों में रेवती का नाम छपा था। बंगाल-गवर्नर के साथ हाथ मिलाते हुए उसका फोटो भी छपा था। जो सुन्दरियाँ उस दावत में आई थीं, उनकी शोख़ अदाओं से वह चौंक उठा था। और जब गवर्नर महोदय दावत से निवटकर अपनी शाही कार में जाकर बैठे, तो चाचा जी ने दस हज़ार का चैक गवर्नर-फण्ड के नाम लिखकर उनके ए० डी० सी० की मुट्ठी में थमा दिया था। बातें दावत में सभी ने कम की थीं। सब केवल गवर्नर के मुँह की ओर मन्द हास लिये देखते रहे थे। उन्होंने एक मज़ाक की थी, "बंगाल के मारवाड़ी सेठ रसगुल्ले-जैसे गोल भी हैं, मीठे भी हैं, पर सुस्वादु नहीं हैं।" तो उपस्थित अधिकारियों के साथ चाचा जी भी मुक्त हृदय से हँस पड़े थे। गवर्नर महोदय ने अपनी लेडी को सुनाते हुए दूसरी चुहल यह कहकर की, 'हिन्दुस्तान के समुद्री-तट पर नारियल के पेड़ एक दीवार-सी बनाये खड़े हुए हैं यहाँ से करांची तक। और उत्तर में हिमालय पहाड़ है, परन्तु इस दीवार का तिलिस्म सब को जाना-पहचाना हो गया है।" फिर क्या था, सब अधिकारी और महमान पेटों में बल डाल-डालकर हँसे। जाते हुए गवर्नर महोदय ने रेवती से कहा था, "वेल ! आप कँवर साहब ज़रा सँभलकर रहिए। देखिये, कहीं सेठ के माफ़िक आपकी भी तौंद न निकाल आये।" तो रेवती ने अत्यंत शिष्टता से उत्तर दिया था, "सर ! तौंद भी एक ख़ास भट्टी में पककर तैयार होती है।" सुनकर गवर्नर और उनकी लेडी ख़ास तर्ज़ से हँस दिये थे। लेडी-गवर्नर ने टिप्पणी भी की थी रेवती पर 'ए नोबल एण्ड स्वीट चाइल्ड'।

चाचा जी ने इस टिप्पणी को बड़े आभार के साथ स्वीकार किया था।

गवर्नर जा चुके तो बड़े अधिकारी और उनकी शोख़ पत्नियाँ फव्वारे के इर्द-गिर्द इकट्ठे हो गये थे। और बात तौंद पर रुक गई थी।

गवर्नमेंट के चीफ़ सेक्रेटरी की पत्नी ने आधी इंगलिश और आधी हिन्दी में कहा, "तौंद मारवाड़ियों की मोनोपोली है और अब इस पर आर्डिनेंस लग जाना चाहिए।"

बनावटी खिलखिल के बीच प्रान्त के विकास-मन्त्री की युवती-कन्या ने पूर्ण अल्हड़ होकर कहा, "बड़ी मुश्किल तो यह है कि सेठानियों तक ने इस मोनोपोली को क़ायम कर रखा है।"

सब ख़ूब खी-खी हँस चुके तो गवर्नर के मिलिट्री अटेची की पत्नी ने कहा, "इसका एक ही इलाज है। सरकार तौंद पर एक विशेष टैक्स लगा दे।"

फिर हँसी का फव्वारा छूटा। अब म्युनिस्पल कॉरपोरेशन के चेयरमैन की पत्नी ने मिष्ट और लजीली होकर कहा, "और यह टैक्स का उपयोग एक 'साँड रिसर्च इंस्टीट्यूट' में लगाया जाय।"

इस बार हँसी खूब ज़ोरों से उठी और देर तक रही। फिर बात का सिलसिला अमुक सरकारी अधिकारी की पुत्री की शादी, अमुक की पत्नी के भाई को प्राप्त हुए नये सरकारी पद, अमुक सैनिक-अधिकारी और उनकी पत्नी के बीच तलाक, अमुक मन्त्री की युवति-साली द्वारा अमुक संस्था का उद्‌घाटन-समारोह आदि विषयों पर घूमता रहा। और उसी बहस में कुछ अस्फुट स्वरों में एक साहब ने बताया कि एक मिनिस्टर ने अपनी दूर की भतीजी का सतीत्व हरण कर लिया है!

रेवती इस आमोद-प्रमोद की चर्चा में मुस्कराता ज़रूर रहा, पर उसका सर दर्द करने लगा था। उन शोख़ पत्नियों की उँगलियों में पाँच-पाँच सौ रुपयों क अँगूठियाँ, गलों में दो-दो हज़ार के स्वर्ण-हार और अमूल्य सलवार-सूट या भारी मखमल ज़री की साड़ियाँ स्पष्ट-रूप से उसे नग्न-अपराध के ठप्पे मात्र ल। नता कंट्रोल के राशन से त्राहिमान चीख उठी है। भरपेट भोजन उसे मिलता नहीं। जो अन्न मिलता है वह भी निम्नतम कोटि का। और उनसे संचित किया हुआ राजस्व-रूप वेतन शासन के अधिकारी अपनी पत्नियों को रिझाने भर में ख़र्च कर देते हैं। एक अँगूठी या एक हज़ार की एक साड़ी इन सरकारी अधिकारियों के लिए आत्मा का प्रश्न नहीं है। एक कसाई कितनी गौओं के गले 'अल्ला हो अकबर' की दुहाई देकर काट डालता है, सो कोई गिनती है? बस, तरुणियों की फ़रमाइश होनी चाहिए। सरकारी अधिकारी ईश्वर की कृपा से, उसे पूरा करने की सामर्थ्य रखता है। महज समाज के व्यापक पापाचार की गुत्थियों की एक गुत्थी! और ये सरकारी परिवार मात्र श्रेष्ठ कोटि के अद्‌भुत अर्थों वाले वेश्यालय!! जिनकी सन्तानें भी अपनी गृहस्थियों में समाज के प्रति उत्तरदायी परिवार नहीं, समाज को नग्न और शोपण करने वाले वेश्यालय भर बसायेंगे!!

उफ़! भारत का हर सरकारी अधिकारी स्वर्ण-स्तूप में बैठकर मठाधीश की तरह से कांचन की सिद्धि के लिए प्राणायाम करता है और वैसी ही साँसें लेता है।

'अंग्रेज़ो भारत छोड़ो!' ट्राम में बैठे हुए रेवती को याद आया कि अभी उसने गुनगुनाया था। 'दीमको! लकड़ी में घुन लगाना छोड़ो।' उसने अब ज़रा ठण्डी साँस विचारा कि मान लो, अंग्रेज़ भारत छोड़ गये तो क्या हमारे ये सरकारी अधिकारी भी सरकार छोड़ देंगे। यह तो एक अकल्पनीय असम्भव बात है। अंग्रेज़ कौंसिल छोड़ जायँगे और मान लो, वहाँ राष्ट्रीय नेता भी जा बैठें तो राष्ट्र-निर्माण के महानद को पार करते हुए भारतीय जनता की पीठ पर ये सरकारी अधिकारी रूपी बिच्छू उस समय डंक मारने की प्रवत्ति को त्यागकर सन्त हो जायँगे वर्धा-

आश्रम के ?

रेवती ने बड़े ज़ोर से सिर हिलाकर इन्कार किया, कतई नहीं।

उसे ऐसा लगा, मानों भारतीय जनता की रक्त-हीन और स्वेद-हीन और अस्थि-मज्जा-विहीन छाती पर बैठकर राष्ट्र के शासक ईमानदारी से जनता के भाग्य-निर्णय की चेष्टा नहीं कर रहे हैं, बल्कि सिर्फ़ राजनीति की शतरंज खेल रहे हैं इन सरकारी अधिकारियों को मोहरें बनाकर, जो चन्द घण्टे खेल के बाद पुराने क्रिमिनल सरकारी अधिकारी ही रहेंगे और जो स्वतन्त्र भारत में भी रिश्वत लेना न भूलेंगे, अपनी पत्नियों की आराधना स्वर्ण से करना न भूलेंगे और अपनी नई औलाद को नई जनता के रक्त-शोषण का नव-पाठ पढ़ाना न भूलेंगे।

धर्मतल्ला पहुँचकर रेवती ने टैक्सी की और अपनी कोठी लौट आया। मार्ग में उसने पहली बार देखा, पूरब की ओर से आये हुए कुछ परिवार जो अन्नाभाव से संकट-ग्रस्त हैं और यहाँ इस महानगरी में आश्रय लेने आये हैं।

चाचा जी ग्रीन-रूम में बैठे उसी की राह देख रहे थे। दरबान ने कँवर साहब को सूचना दी।

रेवती के पहुँचते ही चाचा जी ने बड़े दुलार से उसे अपने पास सोफ़े पर बैठाया। पहले उसकी कुशलता पूछी। फिर कहा कि आज हैड-आफ़िस में एक नया स्टाम्प-कागज़ तैयार हो रहा है। गवर्नर साहब ने बड़ी मेहरबानी की है कि हमें अमरीका जाने के लिए पन्द्रह हज़ार डालर दिलाने का प्रबन्ध किया है। उसके लिए हमें वहाँ की एक फार्मेस्यूटिकल कम्पनी को दो हज़ार मन कुछ जड़ी-बूटियाँ भेजनी हैं। उसका रुपया डालरों में मिलेगा। गवर्नर साहब ने आश्वासन दिया है कि अभी अमरीका जाने पर वैसे अगरचे प्रतिवन्ध है तो भी वे मुझे पासपोर्ट दिलाने की कोई तरकीब निकालेंगे। सो रेवती बाबू, तुम उस स्टाम्प पर हस्ताक्षर करोगे और उस पर एक नोट यह होगा कि जड़ी-बूटियों का माल जहाज़ में ले जाने का ज़िम्मा खरीदने वाली कम्पनी को होगा। फिर उसके कान के पास मुँह ले जाकर कहा, "यह जड़ी-बूटी यहाँ तो इस्तेमाल ही नहीं होती है। उसकी तलाश करने के लिए मैंने परसों एक प्रसिद्ध वैद्य को तीन सौ रुपये मासिक पर नौकर रख लिया है।"

रेवती ने कहा, "जैसी आपकी आज्ञा!"

"और देखो, रेवती बाबू, क्या बात है, कलकत्ता में तुम्हारा मन नहीं लगा। 'लाइट हाउस' में बड़ी शानदार अंग्रेज़ी फ़िल्म आई है। उसे दो-तीन बार देखो, 'आर्मी केफे' में 'डांस' हुआ करता है, मैनेजर साहब से कहकर उसका स्पेशल पास मँगवा लो। और यह देखो, भाई साहब की चिट्ठी आई है। लो, पढ़कर सुनाना ज़रा।"

रेवती की जिह्वा अपने पिता जी के पत्र की बात सुनकर बन्द हो गई। सशंकित हृदय उसने बन्द लिफाफा खोला। पढ़ा—

"चिरंजीव भाई प्रभुदयाल जी,

ईश्वर की महती कृपा से आप सब सकुशल होंगे। यहाँ हम और रेवती की माता जी स्वस्थ हैं और आप सबके स्वास्थ्य की मंगल-कामना करते हैं।

अख़बारों में गवर्नर महोदय के साथ रेवती का चित्र देखकर अपार हर्ष हुआ। उसे आपके पास भेजकर हमें अतीव सन्तोष है।

रेवती ने अपने पत्र में लिखा है कि उसे व्यापार लाइन में ज्यादा रुचि नहीं उपज रही है। वह कोई आदर्श संस्था को लेकर आगे बढ़ना चाहता है। वह अभी बच्चा है। मेरे विचार में किसी अच्छे क्लब में उसे लगा दें तो कालेज की खुमारी वहाँ बुझने में समर्थ हो सकेगी।

अपनी कुशलता का पत्र नियमित देते रहें।"

रेवती ने पत्र समाप्त कर अपना शुष्क मुख जो चाचा जी की आँखों की ओर बढ़ाया तो वे हँस पड़े। बोले, "रेवती बाबू, देखो अभी तक तुम से खुलकर बातें करने का समय ही नहीं मिला है। अब तो मैं जाऊँगा। अपने बैरिस्टर साहब को लेकर एक अंग्रेजी कम्पनी से कुछ बातें करनी हैं। और तुम आजकल में ही अपनी आदर्श-संस्था की योजना लिख डालो। इस जीवन का रस बिना आदर्श के कुछ नहीं है। मैं खुश हूँ कि तुम एक होनहार बच्चे हो। फिर हम विचार करेंगे और जैसा कहोगे वैसा ही होगा। कलकत्ता के मारवाड़ियों के बीच तुम सांस्कृतिक नेतृत्व सँभालो, तो मेरी बड़ी पुरानी इच्छा पूरी करोगे।"

फिर उठकर वे चले गये। रेवती उस आलीशान कमरे में जो शेष रह गया सो मानों अशोक-वाटिका में सीता बैठी हो। वह पटरानी बन जाय, फिर जैसी उसकी इच्छा होगी, वैसा ही सब किया जायगा···ऐसा ही कहा है न, चाचा जी ने उससे ?

चाचा ज़ी ! रेवती की आदर्श संस्था के संरक्षक तुरन्त बनने को तैयार हैं। वह अपने चाचा जी के इस कपटपूर्ण व्यवहार पर तिलमिलाकर रह गया।

सुखिया ब्राह्मणी ने आकर कहा, "कँवर सा'ब, रसोई तैयार है।"

रेवती उठा, रसोई खाई और कार में बैठकर हैड-आफ़िस पहुँच गया। चार रोज़ हुए हैं, मैनेजर सा'ब बम्बई से लौट आये हैं। वे स्टाम्प तैयार कर रहे थे और उनके सामने कोई अंग्रेज़ बैठा हुआ अपनी डायरी में नोट्स ले रहा था। बैरा ने आकर मैनेजर को कँवर सा'ब के आगमन की सूचना दी। तुरन्त मैनेजर बाहर आये। रेवती की आवागमनी की। अन्दर लेजाकर उस अंग्रेज़ से परिचय कराया, "लाइन आफ़िसर ऑफ़ कण्ट्रोल्स टु मिलिट्रीज़ मेजर···" रेवती ने ज़रा अकड़कर उससे हाथ मिलाया।

मैनेजर ने बैरा को एक 'ट्रे' कॉफ़ी लाने का हुक्म दिया।

मेजर ने ज़रा हँसकर कँवर सा'ब से कहा, "आपको वार-फ्रंट का दोरा करना चाहिए। आप मालूम करें कि 'वार' और फ़ूड-प्राब्लेम्ज़ का कैसा आपसी सम्बन्ध है?"

रेवती ने सेठानेपन की शान से उत्तर दिया, "मेजर सा'ब, फ़ूड-प्राब्लेम्ज़ इण्डिया-रबर भी नहीं है और बंगाल टाइगर भी नहीं है। सीधी बात है। सोल्जर्स लोग 'वार' में अपनी ज़िन्दगी का 'रिस्क' लेते हैं इसलिये उन्हें बहतरीन से बहतरीन 'डाइट' मिलनी चाहिए। सिविलियन्स लोग बाकी के कूड़ा-करकट अन्न को खाकर अगर ज़िन्दा रहते हैं तो कोई गुनाह नहीं करते।"

मेजर ने मुँह के चुरुट का आख़िरी टुकड़ा ज़ोर से 'ऐश-ट्रे' में रगड़ते हुए कहा, "दैट्स इट, दैट्स इट!"

रेवती ने देखा कि मेजर पर निशाना ठीक बैठा है। ज़रा और मुस्कराते हुए रेवती ने कहा, "बंगाल गवर्नमेंट इधर मुस्लिम लीग की है। मुस्लिम लीग की सौत इन दिनों हरम के बाहर 'गैराज़' में बन्द है।"

"ओह यू फनी चैप! हाऊ इंटिरेस्टिंग।" और ज़ोर से वह हँस पड़ा।

रेवती ने आगे कहा, "यह बंगाल, ख़ुदा का शुक्र है, न तो किसी चटर्जी-मुकर्जी-बनर्जी के हाथ में है और न दिल्ली के शाहंशाह के मातहत। आज बंगाल 'वार' की बाय-प्रोडक्ट इंसानों के ज्वालामुखी पर बैठा है।"'

मेजर सुनते ही गम्भीर हो गया। मैनेजर ने रेवती को आँख का इशारा किया कि यह विषय एकदम रोक दें। पर रेवती ने पूरे आत्म-विश्वास के साथ पहले स्वयं खिलखिलाकर कहा, "जब किसी ज़मीन के टुकड़े के इंसान भूकम्प करने की सोचते हैं तो वहाँ अकाल फूट उठता है।"

मेजर के माथे की त्यौरियाँ इकट्ठी हो चलीं। वह हँस न सका।

पर रेवती ने कहा, "मेजर, बंगाल में अगर अकाल सचमुच फैलता है, तो यह बड़ी ख़ुश-खबरी होगी। बंगाल का Terrorism इस अकाल की आग में शान्त हो जायगा और ब्रिटिश गवर्नमेंट बड़ी तसल्ली से बंगाल को Pacific-ocean का सबसे बड़ा सैनिक अड्डा आगे के हज़ारों वर्षों के लिए बना सकेगा।"

मेजर की आँखों में हठात् सुर्खी उतर आई और उस सुर्खी में नई इबोनी-लकड़ी की पालिश-सी चमक झिलमिला उठी। वह हल्के से अब मुस्कराया, "कँवर सा'ब, तुम कितने Brilliant इंडियन हो।"

कॉफ़ी की ट्रे आई। तीनों ने कॉफ़ी पी।

अमरीका को भारतीय जड़ी-बूटी बेचने के स्टाम्प पर इस मेजर ने क्यों हस्ताक्षर किये, यह रेवती की समझ में नहीं आया। पर जब मेजर जा चुका तो

रेवती से मैनेजर ने कहा कि हमें मिलिट्री को आठ हज़ार टन चावल सप्लाई करना है। बंगाल गवर्नमेंट ने प्रोक्योरमैंट की मोनोपोली एक मुस्लिम लीगी को दी है। उसे हमें तोहफे में एक नई 'कार' देनी होगी और इतना चावल का स्टाक हमें उससे मिल जायगा।

आफ़िस की शिष्टता के अनुसार रवती ने मैनेजर को बधाई दी और ईश्वर को धन्यवाद दिया। वहाँ से उठकर वह अपने 'केबिन' में आ बैठा।

उसके चपरासी ने आकर सूचना दी कि कुक्कू देवी जी का फोन आया था। आपको शाम को याद किया है।

कुक्कू! पिछले पन्द्रह दिन से वह वहाँ नहीं गया है। पहले तो गवर्नर की दावत की भागा-दौड़ी रही। उसके बाद रुचि नहीं हुई उसके पास जाने की। युवती वह ज़रूर है, पर अभी से जैसे उसकी महत्वाकांक्षाओं को लकवा मार गया है। ख़ैर, आज शाम को वहाँ जायगा। चपरासी से कहा कि फोन करो वहाँ और बोलो कि हम ज़रूर आयेंगे।

दिमाग़ में मेज़र की टिप्पणियाँ बार-बार उभर रही थीं। 'क्रॉसवर्ड' पहेली की मानिंद यह व्यापार। 'ऑर्डिनेंसों' तक का व्यतिक्रम और निर्भय-निर्द्वंद उनका उल्लंघन। स्वयं सरकार के शासक 'ऑर्डिनेंसों' के गुप्त-द्वारों का दुरुपयोग करने वाले। देश के दो प्रांतों में फसल 'फेल' हो गई है। बर्मा-फ्रंट पर सैनिक-शासन से एक बड़े भू-भाग की जनता संत्रस्त है। पुलिस के शासन का दौर-दौरा है। प्रांतों के बजट जनहित का निर्लज्जता से अपमान कर रहे हैं। हर इंसान की इंसानियत शासन की दुष्टता की विषाक्त हवा से मति-भ्रम की मरीजा है। आम रूप से जन-साधारण को पौष्टिक तत्त्व प्राप्त नहीं हो रहे। इससे शारीरिक स्तर क्षीण हो रहा है। युद्ध इस क्षण फुटबाल की नई गेंद नहीं रहा है, पर खिलाड़ी हैं कि उसी से पराजय और विजय का संघर्ष खेल रहे हैं। यह निश्चित है कि यह गेंद 'बर्स्ट' होने वाली है। निम्न-वर्ग के पास कुछ पैसा हो चला है, पर वह नहीं जानता कि उसका उपयोग कैसे करे। पैसे से दूध पीने की बात उसे असंगत लगती है। लकड़हारा पन्द्रह रुपये के जूते पहनने की बात राज़ी-खुशी मान सकता है। जो धनवान है वह हज़ारपति, लखपति, करोड़पति हो रहा है। धन का उपयोग उसे भी नहीं आता। 'वार-बौंड' खरीदने का अर्थ एक ओर ब्रिटिश शासन के मक्खन लगाना है, दूसरे समस्त नागरिक क़ानूनों का अतिक्रमण कर युद्धोत्तर काल में नवीन भयंकर आर्थिक प्रतियोगिता की तैयारी करना है। बेचारा बीच का मध्य वर्ग समुद्र का वह निर्जन कोना बन गया है, जहाँ न ज्वार है और न भाटा है। अपितु जहाँ जल पड़ा-पड़ा सड़ गया है। इस सड़ांध में जो क्लर्क हैं वे बेहयाई से छोटी-मोटी रिश्वतें लेकर युद्ध-जनित सिप्सा का स्वाद चखने की चेष्टा करते हैं। जो रिश्वतें लेने

का साहस नहीं करते, वे महज ईर्ष्या से कुढ़ते रहते हैं। वस्तुओं के दाम तापमान की तरह इतने बढ़ चुके हैं कि साँस लेना कठिन हो रहा है। राष्ट्रीयता का आन्दोलन इन विषम परिस्थितियों में दुख-सुख की मिश्रित वीर-गाथा भर रह गई है। सिंध और बंगाल में मुस्लिम लीग श्मशान में ठीक रात के बारह बजे जलती चिताओं के बीच, और कब्रें खोद-खोदकर, मुर्दे उठाने का वहशियाना काम कर रही है! वह स्वयं नहीं जानती कि इन अधजले और गड़े हुए मुर्दों का वह क्या करेगी?

मेजर ने उसे कहा था, "ब्रिलियंट!"

रेवती की प्रखर-बुद्धि लेकिन क्या काम की। हम युवक क्या करें। उधर जेलखाने है, उधर अनन्ताकाश में जल-मरकर धूम-से विलुप्त होने को बेतहाशा रिक्त स्थान पड़ा हुआ है। युद्ध-स्थल में जो युवक गये हैं वे सहारा रेगिस्तान को पार करने वाले ऊँट भर हैं। लद्दू ऊँट! उनके साथ जो यात्री हैं वे एक हज़ार में एक जीवित पुरुष हैं। पर जिन्हें रेगिस्तान की यात्रा के अलावा और कहीं चैन नहीं पड़ता। हम जो कुछ भी जाने-अनजाने करते हैं, वह सभी युद्ध-कार्य के मर्यादा-क्षेत्र में आता है। अगर हम सिर्फ़ चुप भर रहते हैं तो इससे भी भारत के युद्ध-कार्य को लाभ पहुँचता है। युद्ध-कार्य के नाम पर देश भर में जो नग्न विषमताएँ छा गई हैं वे अबाधित रूप से होती रहेंगी। पर रेवती चुप इसलिए रहना चाहता है ताकि उसकी बुद्धि ज़माने की रफ़्तार में कुछ और पके और तब वह दृढ़ क़दमों आगे बढ़े।

इस बंगाल को ही लीजिये। वह इस प्रांत में रहने आया है। लेकिन यहाँ उसने जो बातें देखी हैं, क्या उसे इतिहास स्वीकार करेगा? ८वीं सदी से लेकर १५वीं सदी तक खैबर दर्रे ने भारत के भाग्य के साथ खिलवाड़ किया। १६वीं सदी से १९वीं सदी तक भारत के दोनों दक्षिणी समुद्र-तट भारत माता की नग्न जंघाओं के रूप में विदेशियों को दिखाई दिये और वे उसी पर कामुक आक्रांता से चढ़ आये। पर अब इस बीसवीं सदी में यह बंगाल आगामी डेढ़ सौ, दो सौ वर्षों के लिए एक नये आक्रमणकारी के लिए खुला हुआ (!) गुप्त-द्वार बन रहा है। विश्व-कवि टैगोर 'आमार बंगाल' की महत्ता गा गये हैं, पर उन्होंने यह कहाँ देखा कि पूरा प्रांत एक नई छूत की बीमारी से कृश हो रहा है। और इस छूत की बीमारी से भारतीय इतिहास के नये अध्याय ही नहीं, अब नये खण्ड शुरू होने वाले हैं।

बंगाल से बर्मा अलग किया जा चुका है। इसका सीधा-सा अर्थ यह था कि जल के एक सूक्ष्म किन्तु प्रबल स्रोत को दो भागों में बाँट दिया गया। उसके बाद बंग-भंग की चेष्टा की गई। इस चेष्टा का सीधा परिणाम यह निकलता कि बंगाल के सशस्त्र स्रोत को कण-कण छितरा दिया जाय, परन्तु किन्हीं कारणों से वह स्थगित हो गया। जी हाँ, स्थगित! उस विचार को समाप्त नहीं किया गया। स्कूली इति-

हासों में जो यह तथ्य लिखा गया है, सो सर्वथा ग़लत है। अब बंगाल पिछले कई सालों से मुस्लिम लीगी शासन में इस हालत का हो गया है, जैसे तो एक बड़े ककड़ी के खेत में जंगली सियार घुस गये हों और उसे उजाड़ रहे हों। इस अपहरण-कार्य में ब्रिटिश-सत्ता इसलिए योग दे रही है कि वह काल-कोठरी की रोमांचकारी स्मृति अभी नहीं भूली है। पिछले डेढ़ वर्ष से बंगाल दक्षिण-पूर्वी एशिया के बड़े कमांड-कार्यालय का सैनिक-अड्डा बना हुआ है। किसी नागरिक बस्ती में सक्रिय सैनिक-अड्डा जमाने से जो बेर पकेंगे उनमें कीड़े ज़रूर निकलेंगे। किसी कृश केले की जड़ से उसकी सूखी परतें उखाड़कर फैंक दो तो वह बस एक पत्ती का ही पेड़ रह जाता है। आज बंगाल एक पत्ती का केले का पेड़ है और उसमें भी अकाल की तपिश लगने की भयंकर सूचना चारों ओर सुनाई पड़ रही है। ओह! बंगाल! तुझे होना चाहिये था समूचा भरा-पूरा सुन्दर बन, जिसमें कम से कम एक करोड़ शेर-बबेरे ज़रूर रहते। पर तू कला की कमसिनी की ख़ुमारी में बरसात की वीर-बधुटी-भर बन गया है। सुर्ख़ मखमली वीर-बधुटी! और राजनीतिक गुंडे हैं कि तुझे पीस-पीसकर रसायन की तरह उपयोग कर रहे हैं!!!

चलते हुए 'सीलिंग-फैन' के नीचे बैठे रेवती को जाने कैसी बेकरारी हुई, उसे पसीना आ गया। घड़ी ने तीन बजा दिये। उसने महसूस किया, इस बीच वह आराम-कुर्सी पर फैला हुआ थोड़ा सो चुका है।

हुक्म पाकर चपरासी एक कप कॉफ़ी दे गया।

रेवती ने महसूस किया कि बंगाली युवतियाँ जंगल की झाड़ियों में फुदकते हुए ख़रगोश से अधिक कुछ नहीं हैं। इनका अधिकतम उपयोग यही हो सकता है कि घर के पिंजड़े में इन्हें बन्द कर दिया जाय। पिंजड़े का ख़रगोश! याने, नरक में कोई गंधर्व-कन्या!!

और बंगाली-पुरुष? सिर्फ़ रुकी हुई ट्राम का ड्राइवर! न इससे कुछ कम, न इससे कुछ अधिक।

समय हो गया तो रेवती कार में बैठा और कुक्कू के यहाँ पहुँच गया। वह बैठी हुई कसीदा काढ़ रही थी। रेवती को देखकर वह मुस्करायी। दोनों हथेलियों से नमस्ते कर बोली, "आपके चाचा जी अभी आधा घण्टा हुआ, यहाँ ही थे।"

"ओह! भला हमारी क्या-क्या शिकायतों का बहीखाता तैयार हुआ?"

"सो कुछ नहीं!"—कुक्कू ने अपनी मादक हँसी से रेवती को उत्तेजित करते हुए कहा, "वे आपसे अत्यन्त प्रसन्न हैं। आपसे सुबह ही उन्होंने किसी आदर्श संस्था की योजना बनाने की बात कही थी, सो चर्चा करते थे। वे खुद अन्दरूनी दिल मे अपने व्यापार से बड़े दुखी हैं और चाहते हैं कि कोई उनका व्यापार-भार सँभाल ले

तो वे अधिकांश समय पूजा-पाठ में बितायें। बात होते-होते गीता पर टिक गई। बताते थे कि भगवान् कृष्ण ने स्वयं कहा है कि विरत रहकर इस दुनियाँ में कार्य किये जाग्रो। फल की आशा कभी न करो। चलते हुए मुझ से गीता पढ़ने को कह गये हैं ताकि मैं उन्हें गीता के नवीन भावार्थों को उन्हें सुनाऊँ।"

रेवती ने व्यस्त दृष्टि सुना। चाय की 'ट्रे' आ गई। उसमें से दो बिस्कुट उठाकर खाने लगा। तो हल्के से पूछा, "क्या गीता और कृष्ण एक ही बात है?"

कुक्कू ने देखा कि रेवती का मूड कुछ चिड़चिड़ा है। वह तो इस आशा में थी कि चाचा जी की सांत्वना पाकर वह नये उत्साह से अपनी आदर्श संस्था को शुरू करेगा। मुस्कराकर बोली, "पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिये। क्या कृष्ण वाकई में कोई जीवित पुरुष हो चुके हैं?"

रेवती ने तसल्ली से कॉफ़ी का कप पिया। कॉफ़ी और बिस्कुट खाने के क्षणों में गीता और कृष्ण का अध्ययन करना मचान पर स्प्रिंगदार गद्दे बिछाकर सिंह का शिकार खेलना जैसा लगता है। फिर भी उसने उत्तर दिया, "कुक्कू जी, जीवित पुरुष वही है जिसे अपने भूतकाल के हज़ारों वर्षों का ज्ञान हो और जो भविष्य के हज़ारों वर्षों को देखने की क्षमता रखता हो। अन्यथा केवल हृदय धड़कने भर से पुरुष प्राणी-मात्र रहता है। कृष्ण हमारी इसी शस्य-श्यामला भूमि पर पुरुष की तरह से चल चुका है। वह प्राणी-मात्र नहीं था। और (ज़रा सरस होकर) पिंजरापोल का साँड तो कतई नहीं था।"

कुक्कू इस सदाशय पर जी भरकर हँसी। तो बोली, "उस महापुरुष की पुस्तक में आप क्या अन्तर चाहते हैं?"

रेवती ने चाहा कि कड़वी से कड़वी बात वह कहे और तब देखे कि यह अनायास हँस पड़ने वाली युवति अब भी हँसने की क्षमता रखती है क्या? कहा, 'मैं कुछ नहीं चाहता। गीता और कृष्ण में उतना अन्तर है जितना कि मूत्रालय और शौचालय की दुर्गन्ध में होता है।"

कुक्कू ने सुना और हँसते-हँसते रह गई। कॉफ़ी का कप उठाया और घूँट-घूँट पीने लगी। रेवती की उत्तेजना, इसका यह अर्थ हुआ, इससे भी अधिक उकसाई जा सकती है।

रेवती ने दो बिस्कुट और उठाये। कुक्कू जी को इशारा किया कि एक कप कॉफ़ी और बनाये। बोला, "किन्तु कृष्ण और गीता में दुर्गन्ध नहीं थी। आज का प्रचलित अन्तर बताने के लिए यह बात कही है मैंने। और वह इसलिए कि तुम जानती हो, कलकत्ता के समस्त धनपति सुबह गीता का पाठ करते हैं और दिन भर सम्पत्ति एकत्र करने का षड्यन्त्र रचते हैं। क्या कृष्ण अवतरित होकर इन्हें अपने सुदर्शन-चक्र का वरद आशी-

र्वाद नित्य-प्रति दे जाते हैं कि म तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हुआ और अब तुम कमा सकते हो मनचाहे ढँग से अपार राशि रुपया !"

कुक्कू ने कहा, "लेकिन ईश्वर-भक्ति से यह तो स्पष्ट है कि उनके हृदय में सात्विकता जाग्रत होती है।"

"ओह ! हमारी बड़ी चाची जी भी कितनी बड़ी ईश्वर-भक्त हैं। पर उन्हें असली चैन छोटी चाची के साँप-काटे से मरने के बाद ही हुआ है। रही सात्विकता की बात ! सो सारे पूँजीपतियों की सात्विकता घनीभूत होकर कितने भीषण रूप से सड़ उठने वाली है, यह तुम आगामी महीने तक देख सकोगी।"

"नहीं कँवर साहब !"—कुक्कू ने आर्द्र कण्ठ से कहा, "आप नाहक अपने चाचा जी से असंतुष्ट हैं। वे देवता-पुरुष हैं। आपको नहीं मालूम, परसों ही उन्होंने तीन ग़रीब छात्रों की छात्र-वृत्ति बाँधी है। लगभग पन्द्रह विधवायें उन्हीं की आर्थिक सहायता से अपना जीवन बिता रही हैं। हर शुभ कार्य में चन्दा देने से वे पीछे नहीं रहते।"

रेवती कॉफ़ी पी चुका तो उठा। बोला, "बात कृष्ण और गीता पर थी। क्या तुम असली कृष्ण के दर्शन करना चाहोगी ?"

"अवश्य !"

"तो कल सायंकाल मेरी 'स्टडी' आओ। वहीं परिचय कराऊँगा।"

कुक्कू ने निमंत्रण स्वीकार किया। रेवती चलते-चलते बोला, "एक बात याद रखें। हम जीवन में नित्य-प्रति गीता पढ़ते हुए सारे पापकर्म करने लगें तो इस पृथ्वी पर प्रलय आने में कई हज़ार वर्ष नहीं, कुछ चन्द वर्ष ही लगेंगे।"

× × ×

दूसरे दिन दुपहर तक रेवती अपनी स्टडी में व्यस्त रहा। वहाँ से साँस मिली तो टैक्सी में बैठकर उसने दमदम की ओर एक दौड़ ली। २४ परगना की ओर से देहाती दरिद्र परिवारों का काफिला विशृङ्खलित रूप में चला आ रहा है। डेढ़ घंटे तक वहाँ खड़ा वह द्रवीभूत होता रहा तो भारी हृदय लिये एक 'बस' में बैठकर, फिर ट्राम बदलकर बड़ा-बाज़ार उतर गया।

सहसा सामने से अंधड़ चल पड़ा। सड़क की रेत बवण्डर में घुमड़कर उठी और रेवती इस तूफ़ान में विमूढ़ हो घिर गया। आँखों में उसके धूल घुस गई। वह ऐसे अंधड़ों को आसुरी प्रयास कहा करता है। ज़रा भी नहीं रुका। अंधड़ को चीरकर वह चीतपुर रोड़ की ओर आ गया और सैनिक की नाईं हवा की तेज़ धारा के बीच दृढ़ता से आगे बढ़ने लगा।

अंधड़ क्या उत्तरदायित्व लेकर चल खड़े होते हैं सो कौन जाने। यह तो सही

है कि अंधड़ दुधारा होता है—आगे-पीछे तेज हवा के वेग से सब-कुछ उखाड़ता-उड़ाता चलता है। अंधड़ के अन्तराल में ववण्डर होते हैं जो धूल और रेत-पत्तों को बटोरकर उन्हें अपना अस्त्र बना लेते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि अंधड़ तात्कालिक सफलता के लिए निकलते हैं। पर इस तात्कालिक सफलता को वे संग्रहीत नहीं करते, तुरन्त इसे इधर-उधर बिखेरकर आगे बढ़ जाते हैं। जी हाँ, अंधड़ कभी शान्त नहीं होते—दिन-रात की नाईं वे कहीं-न-कहीं सदा प्रकट हुआ करते हैं।

अब बड़ी लाइन की डाकगाड़ी की तरह अंधड़ अपनी खोह से गहरता हुआ निकलने लगा। ट्रैफिक हठात् रुक गया। मीलों परे की रेत-धूल उड़कर सड़क-सड़क भागने लगी। रेवती ने देखा कि लोग सड़क के इधर-उधर वरांडों में खड़े हो गये हैं। आँखों से जैसे-तैसे धूल निकालकर वह मुग्ध हो गया कि किस तरह यह रेत-धूल इन लोगों को अँगूठा दिखाती हुई अपना खुद का 'ट्रैफिक' चला रही है, बिन बाधा और बिन संतरियों का!

रेवती आगे बढ़ता गया। सामने अट्टालिकायें और भवन और इधर-उधर पक्के-कच्चे मकान खड़े हैं। अंधड़ को इन्हें लाँघकर आना पड़ा है। किटकिटा ज़रूर रहा है कि बस चले तो इन्हें गिरा दे—हाँ, गिरा दे।

रेवती ने भी कण्ठ से स्पष्ट हामी भरी कि अवश्य आज की यह मकान-व्यवस्था व्यक्तियों के आश्रय को निहत्था करके केवल धन के आग्रह को प्रश्रय देने वाली है, सो यह सब मकान ढह जायँ। कहीं एक व्यक्ति के लिए दस कमरे और कहीं एक कमरे में माँ और नये ब्याहे पुत्र-पुत्रवधु और अन्य जवान बेटे। पास-पड़ौस का यह आपसी अपमान चौबीसों घंटे सुलगता है और इतनी ज़हरीली गैसें छोड़ता है कि जैसे स्वयं अपमान हर स्थान और हर ठौर पर अपनी एक हल्की-सी परत जमा रहा हो और लोग इस अपमान की जंग खा रहे हों। एक मकान सादा है तो दूसरे ने समस्त अर्बी और पर्शियन शिल्प-कला को बेमायने अपने ऊपर उँडेल लिया है। पास में किसी पण्डित जी ने अपने अखिल आर्यत्व को अपने मकान की दीवारों और स्तम्भों और मुँडेरों पर मूर्तिमान कर दिया है। तो पड़ौस में किसी आधुनिक सरकारी पेंशनयाफ़्ता आई. सी. एस. ने नई दुनियाँ के लेटेस्ट डिज़ाइन की अमरीकी बिल्डिंग खड़ी करवा दी है।

हवा और धूल के थपेड़ों से आक्रांत दृढ़ क़दम रखता हुआ वह तेज़ी से बढ़ने लगा। अंधड़ की वजह से सड़क खाली पड़ी है। उसे मज़ा आया कि इस समय सड़क पर वह अकेला चल रहा है। देखते-देखते मज़ा और भी करारा हो गया। ववण्डर का आख़िरी प्रवाह विलुप्त होते ही तड़-तड़ बूंदें आने लगीं। वह भागने नहीं लगा। रेवती समझ गया कि यह अंधड़ स्वयं हारकर इस मेह को आमंत्रित कर गया है

कि समाज के रोम-रोम में जो अपमान मैल की तरह जम गया है और सुलगता रहता है उसे वह धोये और बुझा दे। वर्षा इसलिए नहीं होती कि इंसान सड़कों पर चलता हुआ भाग खड़ा हो। और फिर रेवती कच्चा युवक नहीं है कि इस वर्षा से भीग जायगा। वह समाज में परिव्याप्त अपमान से अधिक समाज के भवितव्य का अपमान समूल मिटाने की साधना कर रहा है······

वर्षा की प्रथम फुहार में चलते हुए उसने अनुभव किया, इस वर्षा की झड़ी में अट्टालिकायें आमस्तक अपनी कुण्ठा को धो रही हैं। किन्तु मोड़ पर मुड़ते ही फुटपाथ पर पचासों भिखमंगे ठिठुरते हुए दरिद्रता के कुत्ते-से बैठे हैं। दरिद्रता के देनदार मालिक के इस कोप के क्षणों में वे कहाँ चले जायें? यदि भारत में एक बार कसकर बम पड़ गये होते तो बड़ा शुभ रहता! तमाम यूरोप का निर्माण युद्ध के बाद नवीन सन्तति नवीन शास्त्रों के अनुसार करेगी। किन्तु हमारी नव-सन्तति नव-निर्माण कुछ न करेगी, अनवरत पैदा होकर बस अनवरत मरती ही जायगी······

इन भिखमंगों की औरतों को उसने भेद-भरी दृष्टि से देखा। कुमारी कोई दीखती नहीं। पुत्रवती ही सब हैं। भीख माँगती हैं और अनजाने बलात् इन्हें ये औलादें किसी गली-कूचे में स्वीकार करनी पड़ती हैं। इनके पति हैं, पर······

आगे बढ़ते हुए रेवती ने इन भिखारिनों की विषण्ण आँखों को देखा। उनकी पुतलियों पर द्रुत छायायें आ-जा रही हैं। उनको और सीधे देखते हुए वह हल्के बोला, "ये अपनी गति अपना जीवन जीयें, पर अपने पुत्रों को समस्या न बना जायँ कि कम से कम अपने अज्ञात् पिताओं को वे न चीह्न सकें और उन्हें अपने जन्मने का दण्ड न दे सकें।"

अब वर्षा कम हो गई थी। सड़क पर कीचड़ बुरी तरह फैल चुकी थी और राहगीरों को डसने की मंशा रखती थी। बाईं ओर के चौराहे के ऊपर अनबरसे बादल उसी कीचड़ की तरह स्खलित हो चुके थे, पर बरसे नहीं थे। इसीलिए घृणित रूप से इधर-उधर अतृप्त भटक रहे थे। रेवती को आश्चर्य हुआ, ऐसे घृणित आस्मान और ज़मीन के बीच एक सामूहिक नारी-कण्ठ-स्वर कहाँ अभियान कर रहा है और यह कैसी मूर्खता खेली जा रही है कि ऐसे गंदे खाने के समय इतनी औरतें ज़री-गोटे-सोने से लथपथ लदी हुई अमूल्य वस्त्रों को पहनने का लोभ संवरण नहीं कर सकी हैं। चौराहे पर उसे दायें मुड़ना है और दाईं ओर से ही सेठानियों का दल चला आ रहा है। बेचारियों को घर में उमड़-घुमड़कर नृत्य, संगीत और गायन का सुअवसर पल्ले पड़ता नहीं है। उस अभाव की मूर्ति यों सड़क पर चलते हुए जोरों की कण्ठ-ध्वनि से प्रीतम और बालम के गीतों को गाकर की जा रही है।

औरतों के गिरोह में एक दूल्हे साहब हैं । ज़री के मुकुट में मुँह छिपा हुआ है। उनके दुपट्टे के छोर में, पीछे-पीछे, एक दुलहिन घिसटती हुई चल रही है। वह भी जरी-गोटों से लदपद ढँकी है । रेवती को यह देखकर अत्यधिक पीड़ा हुई। भला क्यों ये दोनों नव वर-वधू यों बीच बाज़ार में एक दूसरे के पीछे घिसटते हुए अपने शिथिल स्त्रीत्व और पुरुषत्व का जनता में इज़हार कर रहे हैं और अपने इर्द-गिर्द इन स्वजातीय सेठानियों के दूषित असंतोष का आशीर्वाद ले रहे हैं ?

सेठानियों के इस दल के निकट से गुज़रता हुआ वह हँस पड़ा। उसने अपनी गिद्ध दृष्टि से देखा, इन मकानों के बीच सुलगता अपमान इन सेठानियों की कोख में जन्मता है। हमारे समाज के शाप-अभिशाप ये सेठ-सेठानियाँ हैं और इनके अनुवर्ती छोटे महाजन हैं । अपनी मानवी देहों पर ये हीरों के कण्ठे और सोने के आभूषण पहनती हैं—कम-से-कम पाँच सौ रुपयों के, अधिक-से-अधिक पाँच हज़ार रुपयों के। पाँच सौ या पाँच हज़ार हम अपनी देहों पर खुले रूप से व्यर्थ में लटकाते फिरें और हमारा पूरा राष्ट्र भूख की पीड़ा से अर्ध-चेतन और दरिद्रता से अर्ध-नग्न रहे !

अब टैक्सी में चढ़कर वह कोठी पहुँचा और सीधे अपनी स्टॅडी में प्रविष्ट हो गया। हृदय में घृणा भरकर बड़बड़ाया, "यह दुनियाँ मुर्दाघर नहीं है जहाँ जीवन का मुनाफ़ा कब्र के ऐश्वर्य में परिणत करने का ठेका हम ले लें।"

बैड-स्विच दबाया तो कमरे में प्रकाश हो गया कि कुक्कू जी ने 'नमस्ते' करते हुए अन्दर प्रवेश किया। कमरे की दीवारों को देखते ही वह भौंचक्की-सी रह गई है। चारों ओर ४०० से अधिक कृष्ण के चित्र टँगे हुए हैं । वह हँस पड़ना चाहती थी कि उसकी सरसता में तनाव आ गया । रेवती की घनिष्ठता से संकुचित होते हुए पूछा, "यह क्या ?"

रेवती ने कुक्कू की बहियाँ पकड़कर उसे उधर खड़ा किया। स्टूल पर स्वयं खड़ा हो गया और हाथ में 'पॉईंटर' लेकर बोला, "आज तुम्हें कृष्ण के असली दर्शन कराने बुलाया था। गीता की बात तो सब करते हैं पर वह बात हमारे जीवन में व्यवहारिक कहाँ रह गई है ? (और पॉईंटर उठाकर एक चित्र की ओर इंगित किया.) यह कृष्ण का एक चित्र है। चित्रकार ने अपनी आत्मा की दृष्टि मूँदकर इसे बनाया है। असंतुलित चेहरे की आकार-रेखायें, बिना भंगिमा के कृष्ण के दृष्टि-बिन्दु। कृष्ण ने धनुष और सुदर्शन-चक्र युवा होने के बाद उठाये थे। किन्तु यहाँ यह चौदह वर्ष का कृष्ण इन्हें धारण किये हुए है। कृष्ण साधारण नहीं थे, न अनाकर्षक थे। चौदह वर्ष की अवस्था में ही कृष्ण का मुख सतीत्व अपहरण करने वाले दानवों के रक्त से लाल हो चुका था, लेकिन इस चित्र में यह कृष्ण मानवी स्त्रियों को अपनी अति-मानवी आँखों से किस प्रकार मोहित करने का प्रयत्न कर रहा है ?"

पाईंटर से वह चित्र उतारकर रेवती ने उसके टुकड़े-टुकड़े किये और कुक्कू के ऊपर उन्हें बिखेर दिया।

कुक्कू, मूक, अवस्था कमरे के शेष चित्रों को देखती रही। यह चित्र फाड़कर रेवती मुझे कृष्ण का दर्शन किस भाँति करायेंगे। कुछ खुलकर उसने एतराज किया तो रेवती हल्के से मुस्करा दिया। अब उसने पाईंटर दूसरे चित्र पर रखा। बोला, "यह कृष्ण का दूसरा चित्र है। बाल अवस्था है। नग्न हैं। पर आभूषण पहने हुए हैं। इन आभूषणों से अपनी देह के पौरुष को निखारकर शायद कामदेव का अभिनय कर रहे हैं। माखन चुरा रहे हैं। और चारों ओर सुन्दर गोपियाँ छिपकर इस माखन की चोरी में रस ले रही हैं। कलाकार का भाव क्या है, सो स्पष्ट है। किन्तु कृष्ण का जन्म इस क्षुद्र भाव-गीतिका का गुंजन करने के लिए नहीं हुआ था। बाल-कृष्ण का महत्त्व ही यह था कि हमारे समाज की घनीभूत सड़ी हुई संस्कृति को उन्होंने अपनी नग्न बालदेह की उष्णता से गलाकर बहा दिया था। उस कुर्सी पर खड़ी होकर इस चित्र को उतार लो।"

कुक्कू कृष्ण को कलियुग के उषाकाल का करुण-आशीर्वाद नहीं मानती। कृष्ण सामाजिक रुचि और सामाजिक स्वास्थ्य के प्रतीक थे। राजनीति की अभिव्यंजना यदि रचनात्मक है, तो वह कहने की धृष्टता करेगी कि कृष्ण ने हिन्दुस्तान के अंतरंग पर से राजनीति के राग-तत्त्व को सदा के लिए मेट दिया था। वह जाने किस आग्रह से उस कुर्सी पर चढ़ी। चित्र उतारा और उसे फाड़कर नीचे फेंक दिया।

रेवती का चेहरा हर्ष से चमक उठा। उसने तीसरे चित्र पर 'पाईंटर' रखा, "ये ग्यारह चित्र इस पंक्ति में हैं। सभी में कृष्ण गौएँ चरा रहे हैं। किसी में कृष्ण बाल हैं, किसी में युवा। एक-दो चित्रों में ग्वाल-बाल भी संग हैं। इन सभी में कृष्ण को मुकुट और मुरली और कटि में पीत वस्त्र धारण किए देखोगी। इन चित्रों का ज़रा अध्ययन करो। जब कृष्ण चौदह वर्ष के थे, तभी भारतीय समाज की तात्कालिक वेदना दुस्तर थी। उस वेदना की अवज्ञा कृष्ण ने किसी आयु में भी नहीं की। उस समाज की मान-रक्षा भी उन्होंने इस प्रकार से की कि जब समाज के कोढ़ को वे अभयदान नहीं दे सके, तो समाज पर शस्त्र-क्रिया कर उन्होंने उसे स्वस्थ किया। क्या कृष्ण ने प्रथम महायुद्ध के लिए (महाभारत विश्व का प्रथम महायुद्ध था ?) वर्षों पहले तैयारी नहीं की होगी ? पर इसके विपरीत इन सभी चित्रों में कृष्ण चिन्तित दीखते हैं या निरे ग्वाले। मैं कहता हूँ, इन चित्रों को उतार लो और और फाड़ डालो। ये चित्र आज अपने 'महाकल्याण' से स्वयं हतप्रभ हो गये हैं। कृष्ण ने मुरली इसलिए धारण नहीं की थी कि वे गोकुल, मथुरा और वृन्दावन के निकुंजों में गोपिकाओं की सामाजिक सद्भावना का मद-मर्दन करते फिरें। यह स्थिति कितनी

दयनीय है कि गोपियों का वह मद-मर्दन इन गौओं के 'लैंड-स्केप' को बैक-ग्राउण्ड बनाकर किया जाय। दो परस्पर विरोधी बातें हैं ये। गऊ उस समय की प्रथम राज-नीतिक ध्वजा थी! भारतीय राजनीतिक ध्वजायें चिरन्तन अतीत से चिरन्तन भविष्य तक सात्विकता को उद्वेलित करती रही हैं और करती रहेंगी।"

आत्मा की इस घोषणा से कुक्क एकाकार हो गई। उन चित्रों को दीवार पर से उतारा और निमेष भर में फाड़ फेंका। भारत राष्ट्र का एकमात्र श्रेष्ठ व्यक्ति (अति-व्यक्ति नहीं!) इस प्रकार हमारे कलाकारों द्वारा अपभ्रंश-रूप में रंगा जाय, सो शर्म की बात है। इन चित्रों में कृष्ण कृष्ण नहीं हैं; कृष्ण-प्रवृत्तियों के शाब्दिक अर्थ भी नहीं हैं।

स्टॅडी की दीवार चित्रों से ढँकी पड़ी है। उत्साहित होकर रेवती ने पाईंटर अगले चित्र पर रखा, "इन चित्रों की पंक्ति में देखोगी कि बाल्यावस्था में कृष्ण के चमत्कार कितने अभूतपूर्व हैं। किसी में राक्षसियों और किसी में राक्षसों का वध कर रहे हैं। इस चित्र में कंस का वध किया जा रहा है। नग्न-गोपिकाओं का जल-प्रपात में स्नान करते हुए कृष्ण का चीर-हरण-दृश्य भी इसी पंक्ति में आता है। लज्जा की बात है कि कृष्ण के युग में भी नग्न-नारी एक जिज्ञासा की बात रही हो!! अब इन कृष्णों को गौर से देखो। कृष्ण के मुख के चारों ओर एक तेज़ प्रकाश-मण्डल रहा होगा, इसके मानने में मुझे आपत्ति नहीं है। अगर गोपिकाओं की बात सच है तो यह प्रकाश्य-तेज अवश्य ही कृष्ण की अल्पायु में क्षय हो गया होगा। हमारा एक स्थायी दुर्भाग्य यह रहा है कि हमारी भावुकता ने हमारे इतिहास की कटुता को सरस बनाने की चेष्टा की है। इतिहास कटु ही रहे तो हमारा राष्ट्र राष्ट्र हो। मानसिक भोजन, यह ग़लत धारणा है, कि मधुर ही होना चाहिए। हाँ, तो मैं यह कह रहा था कि इन चित्रों के कृष्ण-मुख देखो। इन ४०० कृष्णों के चित्र विभिन्न प्रकार के हैं। इन ४०० कलाकारों का मन्तव्य एक अवश्य रहा है कि कृष्ण को महान्-पुरुष-सा चित्रित करें; पर अपने-अपने दृष्टिकोण की महानता को रंग देने में एक कृष्ण, एक सहस्र रूप ले बैठा है। यह कलाकारिता की प्रथम कोटि की नपुंसकता है। इतने हज़ार सालों में एक भी ऐसा महान् कलाकार नहीं हुआ जो अपने चित्रित कृष्ण को कह सकता कि बस, कृष्ण ये ही हैं। अब इनका मुख भविष्य के युगों में भी यही रहेगा। ऐसी दिगंत-व्यापी घोषणा के लिए आत्मा का प्राबल्य चाहिए। इन चित्रों के कलाकारों की एक सुप्त कदर्य भावना को मैं उखाड़ देना चाहता हूँ। ये सभी एक ओर कृष्ण को क्षुण्ण समझते हैं; दूसरी ओर उन्हें भव्य रंगों में इसलिए सज्जित करते हैं ताकि उन्हें ख़ुद को स्वर्ग मिले। नहीं, कृष्ण में अक्षय शालीनता थी। वे मानवी-क्रान्ति के अगुवा थे; और ये गोपिकायें समाज के उस अंग का प्रतिनिधित्व करती थीं जो मुक्त था, सम्पन्न था

और मानव-नारी का लब्ध-प्रतिष्ठित आदर्श था। गोपिकायें राजनीतिक सर्वथा नहीं थीं। ऐसी स्थिति के होते हुए हम कृष्ण को इस रूप में स्वीकार नहीं कर सकते कि शरीर उनका अत्यन्त मृदु था, गोपिकाओं को वह अपनी मृदुता का मधु-दान देता था और मस्तिष्क उनका क्रूर था, जिससे वे राक्षसों का वध किया करते थे। जी नहीं। इन चित्रों को भी उतार लो। कृष्ण जन्म से लेकर मृत्यु तक एक ही राजमार्ग पर चलते रहे थे। जिसे ध्वंस होना था, वह स्वयं ही कृष्ण की लौ से आकर्षित होकर, पतंगे की तरह उनके सामने आया और कृष्ण-योग के अनुपात में दुर्बल होने के कारण उनकी द्रुतगति में चिथ गया।"

चित्रों पर से 'पाईंटर' उठ गया। कुक्कू झुकी और इन चित्रों को नष्ट करने लगी।

पाईंटर अगली चित्र-पंक्ति पर घूमने लगा, "ये चित्र राधा के संग प्रणय करते हुए कृष्ण के एकान्त के गोपन-रूप को मुखरित करते हैं। इनकी संख्या १०० से ऊपर ही है। कृष्ण-राधा युवावस्था के सहयोगी थे या चिरकालिक प्रेम-पात्र थे, सो बहस नहीं है। कहीं राधा पूजा की थाली लिये खड़ी है। कहीं कृष्ण की बांसुरी वह बजा रही है; कहीं निकुँजवन की ओट में—कहीं चन्द्रमा के चँदोवे के नीचे, कृष्ण के साथ झूला झूल रही है। अब ठीक देखो, सभी चित्रों में राधा तीस वर्ष से कम नहीं है। और कृष्ण ?

कुक्कू ने स्फुट उच्चारण किया, "आपके समवयस्क लगते हैं।"

रेवती इस रुद्ध अभिव्यक्ति में कुक्कू का माया-प्रांगण स्पर्श कर बैठा। बोला, "किन्तु मैं किस का कृष्ण हूँ ?"

और कुक्कू को साक्षात् अपने दृष्टि-स्नेह से स्निग्ध करते हुए उसने आगे कहा, "मैं अभी तक किसी का कृष्ण नहीं हूँ। इन चित्रों के अनुसार ये राधा के सतीत्व के कृष्ण थे। सतीत्व के बोध में यहाँ नैतिकता का सम्मोहन नहीं है। काहिरा और पैरिस और टोकियो के होटलों की यौन-नैतिकता में स्वीकार कर सकता हूँ। हमें सचेत यही रहना है कि वह सतीत्व निष्परिणामी तो नहीं है ? सच्चरित्र और चरित्रहीन सतीत्व का बुनियादी सत्य समाज की उठी हुई उँगली या अँगूठा नहीं है। उस युग में कौन से रस की उत्पत्ति हुई थी, वही सच्ची सचाई है। हमारे भारत में आज राष्ट्रीयता का रस कहाँ से स्रवित हो रहा है, सो जानती हो ? हमारे आज के भारतीय सतीत्व में से। इसी की मृदु कोंपलें हम-तुम हैं। राधा का सतीत्व, मेरा क्रोध-भरा प्रश्न है, ये कलाकार किन रंगों में प्रदर्शित कर सकते थे ? पर किस आसुरी भाव में ये चित्र रंग दिये गये हैं ? तुम जानती हो कि राधा उस युग की प्रतिनिधिनी है ? भला ये चित्र उसके हैं ? इन चित्रों में जैसे राधा-कृष्ण को बाँधकर अपराधी-सा खड़ा कर

दिया गया है। य सब रुग्ण-रोमाँस के चित्र जानो।"

कुक्कू इन चित्रों की ओर बढ़ी कि इन चित्रों मे चूता हुआ असंयत स्पन्दन शान्त कर दिया जाय। नीचे कृष्ण-कला के भग्नावशेष खण्डहर की तरह इकट्ठे होने लगे। इस खण्डहर पर खड़ी हुई वह इस युग की नई कलिका-सी लगती थी। जैसे कोई प्राचीन सत्य-बीज अपनी अनुकूल ऋतु का दुलार पाकर फूट पड़ा हो और कुसुमित हो आया हो इस कलिका के रूप में!

पाईंटर अगली चित्र-पंक्ति पर घूमने लगा, "मुझे भय है कि इन कलात्मक कृष्ण और राधाओं की हत्या कर तुम कोई जय-लाभ वसूल नहीं कर रही हो। स्वयं कृष्ण को क्या जय-लाभ मिला? स्वयं राधा को क्या जय-लाभ मिला? किन्तु कृष्ण अवतार थे। इन चित्रों में कृष्ण को अवतार-रूप दिखाया गया है। महाभारत का रण-क्षेत्र इसको सिद्ध करने के लिए अनिवार्य था। ये लगभग सभी रण-चित्र हैं। जैसे तो कृष्ण लौह-धातु के चालित-यन्त्र थे कि ऐसे संहारकारी युद्ध में शस्त्रों की मार से बिलकुल अछूते रहे। महाभारत हम-तुम ने पढ़ा है। इन चित्रों की व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है कि ये चित्र भी फाड़ दिये जायँ। कृष्ण ने महाभारत का कोई पारिश्रमिक अर्जुन या पाण्डवों को नहीं दिया था। कृष्ण के आलोक के सामने यह बात मिथ्या है कि कौरवों का पक्ष अन्याय या असत्य का पक्ष था और वे मात्र पाण्डवों के प्राणों के संचालक नहीं थे, केवल कौरवों के संहार के संचालक थे। इन चित्रों से हमें यह सत्य प्राप्त नहीं होता।"

कुक्कू के हाथ आगे बढ़े और चित्र नष्ट-विनष्ट होने लगे। रेवती धैर्य के साथ खड़ा रहा कि सब चित्र फट लें तो वह आगे बोले, अब पाईंटर हवा में घूमता हुआ चित्रों की सामूहिकता को इंगित करने लगा, "इधर ये चित्र कुछ विशिष्ट प्रतिध्वनि गुँजित करते हुए पाओगी। कृष्ण ईश्वर थे, ऐसा इन कलाकारों का मत है। उधर कृष्ण-परम्परा के कवि और कवयित्रियाँ भावावेश में नृत्य कर रहे हैं। इसमें द्रौपदी कृष्ण को भरी सभा में याद कर रही है और कृष्ण उसकी साड़ी को लम्बी कर रहे हैं। इधर ये साहित्यिक चित्र हैं। इस चित्र के नीचे लिखा है,—'लार्ड-कृष्ण'। इन चित्रों में रास-लील खेली जा रही है। इन चित्रों में कृष्ण को सुदर्शन-चक्र के साथ चित्रित किया गया है। पर सुदर्शन-चक्र सरीखा अकाट्य-अस्त्र रखकर भी इन चित्रों के कृष्ण किसी प्रकार सूक्ष्म नहीं दीखते। इन सभी चित्रों में एक गम्भीरता अवश्य आ सकी है कि कृष्ण अहंकार में अकिंचन नहीं थे। फिर भी वे सब के, कौरवों को छोड़कर, शुभचिंतक थे—ऐसी मन:स्थिति का आधार कितना थोथा न रहा होगा।"

कुक्कू ने इन ढेर सारे चित्रों को भी उतार लिया। अब केवल एक चित्र बच

रहा। वह चित्र फाड़ने लगीं। और 'पाईंटर' इस चित्र पर घूमने लगा, "इस चित्र में प्राकृतिक सौन्दर्य अभूतपूर्व है। दाहिनी ओर जलाशय का थोड़ा भाग चाँदनी में झिलमिला रहा है। मोर और तोते और गौएँ मुग्ध-भाव से कृष्ण को देख रही हैं। कृष्ण दिन में महाभारत युद्ध लड़ चुके हैं और अब रात्रि की विश्राम-बेला है। पर आज के लड़ाई के ज़माने में वार-फ्रंट पर कोई विश्राम-बेला नहीं होती। एक ओर सुदर्शन-चक्र और धनुष रखे हुए हैं। राधा युद्ध-थकित कृष्ण को स्निग्ध-माधुर्य दे रही है। पास में युवती गोपिकायें भी उपस्थित हैं। संभवतः ये किसी विशिष्ट-पक्ष की नहीं हैं। पाण्डव-पक्ष की भी हो सकती हैं, कौरव-पक्ष की भी हो सकती हैं। पर यह ज़रूर है कि ये आज विधवा हो चुकी हैं। आज द्वितीय महायुद्ध में कितनी स्त्रियाँ जाने-अनजाने विधवा हुई हैं सो तुम जोड़ न बैठा सकोगी। युद्ध के बाद ये विधवायें रुदन करने बैठ जायँ तो तुरन्त बाद में दूसरा युद्ध शुरू हो सकता है। लेकिन महाभारत के बाद में? दूसरा युद्ध कितने हज़ारों वर्ष तक शुरू नहीं हुआ? कृष्ण महाभारत-संचालक से अधिक महाभारतोपरांत समाज के सृष्टा थे। ये विधवायें युद्ध की विभीषिका भूलकर इस क्षण कृष्ण-राधा के संग बैठी हैं। और ज्ञान-वार्ता सुन रही हैं। इस चित्र को उतार लो।"

कुक्कू ने यह चित्र उतारकर रेवती को दे दिया। उसने झुककर राधा से बचते हुए, कृष्ण के मस्तक का चुम्बन ले लिया और बोला, "इस चुम्बन का क्षय मैं न होने दूंगा।"

कुक्कू ने रेवती के चेहरे पर एक अपूर्व स्निग्धता देखी। और स्वयं भी नतमस्तक हो उस कृष्ण को नमस्कार किया।

रेवती ने कहा, "अब इस ढेर को देखो। मेरे लिए तो यह पहले भी फटे हुए काग़ज़ों का महज ढेर ही था। जब कोई गीता की बात आगे से करे तो तुम इस ढेर का स्मरण कर लिया करना। तुम्हें पूरी गीता पढ़ने के महात्म्य से अधिक पुण्य-लाभ हो जाया करेगा।"

सचमुच कुक्कू इस कथन से सिहर उठी।

पर रेवती ने मन-ही-मन मुस्कराते हुए सोचा कि हम भारतीय पिछले हज़ार सालों से पछवा में जीवित रहते चले आये हैं। आज हठात् नई पुरवैया चली है जिसकी क्षणिक सिहरन कुक्कू में घुस गई है…

२२

बारूद की गुलछियाँ

अमृतसर, कहते हैं, स्वर्ण-मन्दिर की वजह से जाना-पहचाना है। पर शिली ने उसे यहाँ पर छोड़ते हुए विदा लेते समय कहा, "आपको मैं उस नगर छोड़कर जा रही हूँ जो पंजाब की सभी पुरानी और नई क्रान्तियों का दावेदार सिद्ध होने की चेष्टा करता रहा है और आगे भी जो पंजाब की निजी क्रान्ति के लिए ईंधन बटोरने का काम करता रहेगा।"

बात गम्भीरता से कही गई थी और शिली, लग रहा था, इसे लाहौर से रटकर आई थी। रजनी का मन हुआ कि प्रोफेसर की नाईं वह इस रूप-गर्विता और सौंदर्य-वेगिनी अबोधा को एक करारी डाँट बताये और कहे कि पंजाब अपने आप में क्या है, पहले यह जान लो। सिन्धु और उसकी अन्य सहायक नदियों का वरद-हस्त यहाँ हर क्षण अपना नैसर्गिक वरदान अवश्य पूरता रहता है, किन्तु खेद! सीमान्त की यह धन-धान्य से भरीपूरी मण्डी इस बार खैबर दर्रे की तलवार से नहीं, नई दिल्ली की तलवार से लुंठित होगी और इस समय भी हो रही है···

शिली जाने लगी तो रजनी को यह अच्छा न लगा कि वातावरण गम्भीर रहे। वह हँस पड़ा और बोला, "आपको धन्यवाद देना ऐसा होगा, मानों दहकते हुए सूर्य की तपिश खाते हुए, अनजाने देश से आई हुई ठण्डी हवा को हम प्रणाम करने लगे। पर एक बात ज़रूर कहूँगा। मुझे आप ऐसी लगीं कि जैसे तो जादुई परी जो अपनी प्यारी गोद में उठाकर वहाँ से यहाँ ले आई।"

शिली ने सुना और इतनी हँसी कि रजनी उसकी हँसी के हर कण को सावधानी से पीता रहा और उतावला बना रहा उस शिशु की तरह जो अपने घर के उस रिश्तेदार को विदा होने नहीं देना चाहता जो उसके लिए बहुत सारे खिलौने लाया था और ढेर सारी मिठाइयाँ।

अमृतसर में बड़ी मशहूर हट्टी है; खालसा-दी-हट्टी। शिली रजनी को इसी हट्टी में सरदार गुरबचनसिंह के यहाँ छोड़ गई थी। सरदार जी का बड़ा परिवार था। बड़ी कोठी थी। उनकी बड़ी कुड़ी शिली की सहपाठिनी थी। खुद आज़ादी के नारों को हल्के-हल्के गुनगुनाने में सरदार जी खास रस लिया करते थे। चाय पीते तो हर चुस्की के साथ चुपके से आहिस्ते से आवाज़ लगाते, 'बोलो महात्मा गाँधी की जय', 'कौमी नारा—बन्दे मातरम्!' 'टोडी बच्चा-हाय-हाय!' और जब दुपहर में

लस्सी पीते तो हर घूँट के साथ मन में आवाज लगाते 'जवाहरलाल जिन्दाबाद!' और फिर खुद ही मजा लेते हुए मन में हल्के से गुनगुनाते, 'सरदार गुरबचन सिंह जिन्दाबाद!' और, फिर बस, एक ही घूँट में आधा सेर लस्सी का गिलास गटक जाते।

सरदार जी बस सरदार जी थे। प्रान्त के ख़ास नमूने, चुनिन्दा नमूने। जैसे आम सरदार जी, उन से अधिक इन में एक सिफ़त यह भी मिली कि ग्रन्थ साहब के दैनिक पाठ को पूरा करते ही उठाते 'रावर्ट ब्लैक' या चार आने वाली डिटेक्टिव-सीरीज़ की कोई पुस्तक और दुपहर तक उसी लुत्फ़ में बढ़-बढ़कर तिलिस्मी ख़्वाब देखा करते। उमर अब साठ हो चुकी थी, पर अब भी दो दिल्लीवाल नौजवानों को अपनी बगली गिरफ़्त में दाबकर क़ैद करने का दम रखते थे। रजनी को पाकर उनकी एक हविस पूरी हो रही थी, सो उनकी ख़ुशी का ठिकाना न था। मिलिटरी का ठेका पिछले तीस साल से होने के सबब से वे जंगे-आज़ादी में कोई हाथ नहीं लगा सके थे। रजनी की वे जी भरकर ख़ातिर करेंगे, ऐसा विश्वास उन्होंने शिली को दिया था। एक रिवोल्यूशनरी की सेवा कर वे जरूर इस ज़िन्दगी में तर जायँगे।

सरदार जी बड़ी सलीक हिन्दी बोल लेते थे। हिन्दी में कबीर के पूरे दोहे उन्होंने याद किये हैं। रजनी के लिए तीसरी मंज़िल पर एक विशेष कमरा ठीक कर दिया गया। अगरचे वे ख़ुद सिगरेट के हामी नहीं थे, और उनकी बीवी (जो कि तीसरी थी और उम्र में इतनी ताज़ा थी कि जिसकी वजह से सरदार जी को इस बड़ी उमर में भी दुनियाँ अत्यधिक सरस मालम देती थी) सिगरेट का नाम भूले-भटके ले लेने से सौ बार 'एक ऊँकार सतगुर प्रसाद' मन्त्र का उच्चारण करती थी। फिर भी तय पाया गया कि मुँदरी (नौकरानी) इकट्ठे बीस टीन सिगरेट के खरीद लाये और उधर रजनी बाबू, नहीं-नहीं, अजीत कौल बाबू के कमरे में रख आये। शिली ही अब तय कर गई थी कि रजनी बाबू अब सरदार अजीतसिंह कौल के नाम से पुकारे जायँगे।

रजनी के केश बढ़ चले थे। उनका भी उपयोग किया गया। ऊपर के बाल छाँटे कर दिये गये। पीछे के लम्बे ही रहे। उन्हें उलटकर सरदार जी का नौकर बुद्धिसिंह रोज़ उसके सिर पर पाग बाँधता और उसे अच्छा-ख़ासा टिक्का साहब बना जाता।

पहली रात डिनर-टेबल पर रजनी भी बुलाया गया। सरदार जी ठाठदार, बारौब, तड़कीले-भड़कीले नागरिक थे। पंजाबी खाना पंजाबी-श्री का परिचायक बनकर सामने आता है। रजनी ने डिनर-टेबल की डिशें देखीं और एकबारगी ही वह पंजाब के प्रचुर धान्य के प्रति मस्तक ऊँचा कर उठा। उसने माँस-भक्ष्य नहीं खाये। पहली बार आज प्याज खाई।

सरदार जी से कहा भी कि आज वह पहली बार प्याज खा रहा है। क़हक़हा लगाकर सरदार जी ने कहा, "बादशाहो, यह प्याज सब सब्ज़ियों की हूर परी है। प्याज खाते समय आप यह महसूस न करें कि उस हूर परी का गोश्त खा रहे हैं, बल्कि यही हिसाब लगायें कि आप उस हूर परी के राजमहल में बढ़िया शराब पी रहे हैं।"

डिनर-टेबल पर सरदार जी की बीवी भी थी। बोली, "प्याज की एक खासियत और भी है। दाल की तश्तरी में तशरीफ़ लाकर यह प्याज रानी दाल को बहिश्त का मज़ा दे जाती है। सब्ज़ी की डिश में बैठकर प्याज रानी सब्ज़ी को दुनियाँ का बहतरीन स्वाद सौंप जाती है। आलू के संग प्याज रानी की जोड़ी जो बैठती है सो क्या किसी की जोड़ी होगी। और दही में लिपटकर प्याज रानी ने गोया कमख़्वाब का सलवार-सूट पहन लिया हो!"

डिनर-टेबल पर हँसी की फ़ुहार हल्के-हल्के सबको विभोर कर गई। भोजन समाप्त हुआ तो शराब आई और विस्मय से चकित उसने देखा कि न सिर्फ़ सरदार जी ने ही वह शराब पी, उनकी बीवी ने भी और परिवार की अन्य एक महिला ने भी वह पी।

रात रजनी नहीं सो पाया। पंजाब सीमावर्ती उच्छृङ्खल संस्कृति से पीड़ित है, वह यह बराबर देखता आ रहा है। शरीर के किसी अंग का रक्त उच्छृङ्खल होकर दोष-विशेष ही तो पैदा करता है। युद्ध की कमाई का श्रेष्ठ हृश्र इस परिवार में यही हो पाया है कि अपनी शानदार कोठी बन गई है, वस्त्र बहुमूल्य पहने जा रहे हैं और भोजन में शराब का अंश ज़रूरी मान लिया गया है। पर उच्छृङ्खलता की क्या यही खड़ी पाई भर रह जायगी? नहीं, यह सिलसिला अभी और तेज़ आँधी बन कर बहेगा......

अपनी कमरे की जालीदार खिड़की से वह देखता रहता है कि पंजाब का रहन-सहन बहुत अंशों में ज़मींदाराना और बिना तकल्लुफ़ का है। खानपान का ऐश पहले, जिन्दा रहने का सुख बाद में। पर जो प्रश्न एक स्पष्ट अभाव के कारण खड़ा होता है, यह है कि क्या रेशम और तेज़ रंगों की भूख सब पंजाबियों की रगों में शिथिलता ला रही है या उसे काठिन्य प्रदान कर रही है। रजनी देख रहा है अपने इस संक्षिप्त दर्शन में कि चहुँ ओर सभी युद्ध की मुक्त कमाई से छिछला आनन्द तो खूब महसूस कर रहे हैं, पर सारे देश पर जो एक काला बादल छाया चला आ रहा है, उससे सर्वथा निश्चिंत हैं...

रात तो कट गई। दूसरे दिन और तीसरे दिन उसने खाना अपने कमरे में ही मँगवा लिया। चौथे दिन सायंकाल अपनी खिड़की में बैठा वह नीचे बाज़ार का रंगत देख रहा था। मुंदरी आई और बोली, "लीजिये प्राह जी, त्वाड़ी सिगरिटाँ।"

रजनी मुदरी को सचमुच अपनी बहन मान बैठा है, अत्यन्त सम्मान से बोला "शुक्रिया पैन जी !" और देखा, मोटे खद्दर में लिपटी हुई वह साढ़े पांच हाथ की वेवा युवति पजाब के प्रचुर सबल की प्रतिनिधिनी से कम नहीं है। अचल नेत्र भारी गति, मुखडे के गोरे रग पर चिन्तन की मटमैली रेखाये और आस-पास के अभिशाप को दिलेरी से पीने वाली। मुदरी ही उसे इस भूभाग की रेशमी सलवारों मे तितली-सी उडती हुई नारियो के बीच पहली सचाई प्रतिभासित हुई

"तुसी की झाँक रहे ओ ?"

"मै कई बाते देख रहा हूँ। एक ओर गाँव के भाई-बहनो के रूखे-रूखे चेहरे है और दूसरी ओर शहर की हर बूढी-जवान स्त्री रेशमी वस्त्रों मे लदी हुई फैशन मे पागल है। दूसरी बात मै यह सोच रहा हूँ कि पहले पजाबी औलाद साढे पाँच-छ हाथ लबी हुआ करती थी। आज पजाबी कुडियाँ सिर्फ साढे तीन या चार हाथ की होने लगी है। तीसरी बात यह है कि पजाबी भोजन मे राक्षसी खान-पान शामिल होता जा रहा है । इसका नतीजा क्या निकलेगा ? कुछ और भी मै देख रहा हूँ, लेकिन अभी उसे समझ नही पा रहा हूँ।"

मुँदरी का चेहरा उदास हो गया, "तुसी की कहन्दे हो भ्राह जी ? पजाब नू ताँ गुरु नानक साहब ने आपणे हथा नाल सवारिया सी। गुरू ग्रन्थ साहब नू पढदे ता सारे लोग हन पर उस ते अमल बहुत घट लोग करदे हन। पजावियाँ विच बहुत माडियाँ गल्लाँ आदियाँ जा रईआँ हन। दूसरे, शहरी ते दिहाती लोका विच अन्तर ज्यादा होन्दा जा रिहा ए, जिस दे कारण पजाब दी वधी होई शक्ति तार-तार होदी जा रई ए।"

"सुनता आ रहा हूँ कि पजाब की शान-शौकत जमीदारी से निकलकर ठेको में आ बैठी है। क्या ये ठेके ईमानदारी के खेल है ? जमीदारी धरती माता के साथ पूरी ईमानदारी का फल था।"

"भ्राह जी, ठेकेदारी ही नई, पजाबियाँ ने कई होर पेशे भी सम्हाल लए नें। मै तुसा नू खुलासा की दस्साँ।"

"अच्छा बहन जी, एक गल होर दसो। रणजीतसिंह दे पजाब ते हुण दे पजाब विच की अन्तर नजर आन्दा ए ?" रजनी ने सँभालकर पजाबी मे कहा।

मुंदरी रजनी को देखती ही रह गई। कुछ सोच के उसने जवाब दिया, "सिरफ दिल ते दिमाग दा फर्क हो गिया ए।

इसी बीच नीचे से आवाज़ आई और सिर का पल्ला ठीक कर वह नीचे चली गई।

रात रजनी ने भोजन नही किया। अभी तक सरदार गुरबचनसिंह से कोई बात

नहीं हुई है। वह उनसे मिलकर उनके आतिथ्य की कृतज्ञता जताना चाहता था। पर अब यहाँ से शीघ्र चला जाय तो बेहतर रहे। जो भी हो, इस भव्य आतिथ्य-परिधि को लाँघना होगा। संस्कृति उच्छृङ्खल हो सकती है, यह रजनी विश्वास नहीं करेगा। संस्कृति पर हावी होकर मनुष्यता उच्छृङ्खल हो सकती है, यही उसे संगत लगा है। रणजीतसिंह का पंजाब आज कच्छ, कड़ा, केश, कृपाण और पग्ग की रूपरेखा लिये हुए जाने किस दिशा की ओर बढ़ रहा है। अन्दर का पौरुष बौद्ध-मठों और देवदासियों के मन्दिरों से भी अधिक रंगीनी से आसक्त हो चुका है। रजनी अपने कमरे को गुँजाता हुआ बोला, "सीता माता के सतीत्व की रक्षा के लिए पृथ्वी बीच में फट गई थी। और फिर उसकी दरारें भी जुड़ गई थीं। पर अगर इस बार पृथ्वी माता पंजाब के सतीत्व के दूषित रक्त को छिपाने के लिए फटेगी तो उसकी दरारें क्या जुड़ेंगी? पंजाब, सावधान! रोम को किसी ने न जलाया था। वह तो अपनी पतिता सुन्दरियों की कई करोड़ प्रतिशत वासना की ज्वाला से दहक उठा था। पंजाब, तू जलेगा। अब भी जल ही रहा है। और कोई देश का राजनीतिक ज्वालामुखी ज़रा जमकर फूटा नहीं, कि तेरी ये मखमल और रेशम से सज्जित सुमुखियाँ, सुन्दरियाँ, षोड़शियाँ और तरुणियाँ और लेडीज़ फूस-सी दहकेंगी और अपनी आग में सबको भी झुलसायँगी··· जलायँगी···"

दूसरे दिन रजनी ने सरदार जी के बड़े पुत्तर के साथ स्वर्ण-मन्दिर देखा। वहाँ के दर्शन ने उसे आश्वस्त नहीं किया। मन्दिरों पर स्वर्ण की परतें चढ़ा देने से जन-जीवन विषम ही हुआ है। स्वर्ण का दम्भ चाहे कामिनी पर चढ़कर बोले या मन्दिर पर या राजनीति पर···वह सदैव ऊपर से सिर के बल गिरता है और सर्वप्रथम अपनी खोपड़ी को दो टूक करता है···

वह उलझता हुआ वापस लौटा। दुपहर में भोजन के बाद सरदार जी ने ऊपर संदेश भेजा कि तीन बजे हमारा बड़ा पुत्तर आपको कार में दिल्ली ले जायगा। सुनकर रजनी को धैर्य बँधा। न वह बीते कल की सोचेगा और न आने वाले कल की। मज़े में उसने एक झपकी ली। तीन बजते ही तैयार होकर नीचे उतर आया। सरदार जी के परिवार से शिष्ट विदा ली। सरदारनी और सरदार जी के चरण छुए। सरदार जी ने एक गिलास लस्सी उसके हाथ में थमाकर दूसरा अपने हाथ में लिया और गहरी मज़ाक में आँखों को मटकाकर बोले, "बोलो सरदार वल्लभ भाई पटेल की जय!" और लस्सी की चुसकियाँ लेने लगे। रजनी पी चुका तो सरदारनी बोली।

"सच, ऐनी उमर दे होनहार बच्चे दर-दर लुकदे फिरदे ने। रब्ब दा न्याय पत्थर जेहो जिहा हो चुकिया है।"

रास्ते के लिए भोजन कार में रख दिया गया। बड़े पुत्तर सरदार

मनजीतसिंह ने गले में कृपाण लटकाई। रजनी भी सरदार बनकर कृपाण से सज्जित हुआ। अमृतसर से बाहर निकलकर कार रजनी को पूरे वेग पर दिल्ली की दिशा में ले चली। ज़रा मुक्त हवा की साँस लेकर अब उसे समझ में आया कि विदा-क्षण कैसा विचित्र वातावरण सरदार जी के मकान में उपस्थित हो गया था। रजनी उनका न तो स्वजातीय था, न परिचित। एक शीशे की दीवार से जैसे वह पूरे सरदार-परिवार को देख रहा था और उधर से जैसे वे किसी अभागे शिकार को देख रहे थे! आज बीसवीं सदी का न्याय व्यक्ति को अपनी लौह-परिधि में घेरकर सचमुच उसे अभागा शिकार बना देता है।

'ड्राइव' करते हुए मनजीतसिंह जी कोई पंजाबी की धुन अलापने लगे। बैक-सीट पर रजनी अनमने भाव से एक डिटेक्टिव उपन्यास के पन्ने पलटने लगा। उसे दुख हुआ कि पंजाब में उसने हथकड़ियाँ पहनकर लाहौर तक की यात्रा की और अब दूसरे प्रकार की हथकड़ियाँ पहने पूरे वेग से वापस ले जाया जा रहा है। लाहौर की अनारकली देखता और यहाँ के गाँवों की आत्मा से साक्षात्कार करता···अतृप्त दृष्टि वह मार्ग के दोनों ओर असहाय नेत्रों देखने लगा।

रास्ते में कई पुलिस-चौकियाँ पड़ीं। पर किसी ने दृष्टि उठाकर भी इधर न देखा। रजनी के चेहरे पर हल्की-सी दाढ़ी उग आई थी। उसे पौमेड से ब्रश कर ठीक सरदाराना दाढ़ी का रूप दे दिया गया था।

रात को दस बजे सरदार जी एक पिंड में रुक गये। वहाँ के ज़मींदार सरदार मनजीतसिंह के फुफिया ससुर थे। उन्होंने रजनी का किस्सा सुना तो हठात् प्रेमाश्रु उनके छलक आये। बाँहों में भरकर उन्होंने उसे अपनी वक्ष से चिपटा लिया। उनके प्रगाढ़ बन्धन से फुर्सत मिली तो रजनी ने उनके झुककर चरण स्पर्श किये। स्वयं उसका भी जी भर आया। काश! बचपन से उसे ऐसा ही पितृत्व नसीब हुआ होता···

भोजनादि से निवृत होकर रजनी ने आज्ञा ली कि चाँदनी रात में ज़रा वह टहल आये। कितना लम्बा अरसा बीत चुका है कि घूमने की नौबत भी उससे छीन ली गई है। दोनों सरदारों ने साथ चलने का आग्रह किया, पर उसने अकेले कुछ क्षण बिताने की आज्ञा चाही। कुछ दूर पर ज़मींदार साहब का गन्दम का खेत है और वहाँ नहर बहती है। उसी ठौर पर वह रुका। और एक साल के पेड़ पर चढ़ गया। अब उसने एक सिगरेट निकाली और फुर्सत से पीने लगा। उसे याद आया, रिक्शी को ब्याहने जब वह बरात का अगुवा बना हुआ उस गाँव जा रहा था तो मार्ग में जंगल की उस प्राणवान वायु के स्पर्श से कितना उत्तेजित हो गया था कि एक पेड़ पर जा चढ़ा था। तब पिता जी ने आकर उसका स्वप्न भंग कर दिया था। आज भी

ठीक वैसी ही वायु, सम्भवत: वही भूली-भटकी वायु, शीतल और सन्देशवाहिनी बनकर वह रही है।

रिक्शी ! रजनी एक अन्तर्वेदना से सिहर उठा। वह इसी क्षण रिक्शी का एक आलिंगन चाहता है···कुछ क्षण वह विमूढ़ बैठा रहा। उसे होश आया कि जेल से भागने के क्षण से वह देश के अख़बारों द्वारा राजनीतिक पुरुष बना दिया जा चुका है। इस क्षण वह फरार राजनीतिक क़ैदी है। देश की समस्त पुलिस और गुप्तचर उसे ढूँढ़ने में आकाश-पाताल एक कर रहे होंगे। और वह मूर्ख निर्बुद्धि की तरह यहाँ इस क्षण रिक्शी का आलिंगन चाहता है। क्षुद्र-बुद्धि कहीं का।···तो वह क्या करे ? जेल से भागने के समय उसने कहाँ सोचा था कि दिन में उसे उल्लू की मानिन्द खोहों में वास करना होगा। महज रात्रि में ही कुछ क्षण मुक्त साँसें लेने को मिल सकेंगी। अब वह दिल्ली जा रहा है। वहाँ क्या करेगा ? जाने सरदार जी उसे किस बन्दिश में झोंक दें ? या कहीं पुलिस से ही मुठभेड़ हो जाय ? तो क्या वह यहाँ से भाग चले इसी दम ?···नहीं, रजनी ने तय किया कि वह जीवन के प्रवाह की भीषणताओं से घबराकर निष्क्रिय जीवन नहीं बितायेगा। भवितव्य यदि उसे उगलते ज्वालामुखी की तलहटी में फैंक देना चाहता है तो वह क्या कर सकेगा और कहाँ बच पायेगा। जेल से भागने के बाद से वह क्या कुछ देख रहा है। और उसका मानस कितना विद्रोह नहीं करता जा रहा है। देखना तो पूरा देश पड़ा है। न सही कुछ ठोस काम फिलहाल। उसका मानसिक विद्रोह ही तप्त बना रहे, वह अपनी मृत्यु के क्षणों में सुखद साँसें ले सकेगा···भयंकर ज्वालाओं का विराट स्वरूप देखते हुए वह अनायास जेल चला आया है। उसके जीवन का यह सत्य कितना विराट् नहीं है। धन्य हूँ मैं !!···उठा और नीचे उतरा। लौटा। पहुँचा तो उसे निख़ालिस सेर भर दूध पीने को मिला। जो तकिये पर सिर रखा तो गहरी नींद में वह अचेत हो गया। उसे इस तरह सोते देखकर फुफिया ससुर ने कहा—

"इक एहवी ज़वान है। होर एहो जही ज़वानी तोंई देश दी रीढ़ दी हड्डी सिद्दी हो सकदी है। जवानी दा मतलब सिद्धा-सादा एहो ही है के नहर दे जल दी मानिन्द चुपके-चुपके बहे, रास्ते दे खेतांनूं चुप-चुपी ते सींचदा रहवे और चुपचाप अग्गे वध जावे। शोरो गुल दी ज़वानी तों दुनियाँ दीयाँ बड़ियाँ लड़ाइयाँ हुँदियाँ हन। दुनियाँ दा अमन चैन होर किते नहीं है, सिरफ़ ऐस चुप्प ज़वानी विच ही है···सिरफ़ ऐस चुप्प ज़वानी विच ही है···सिर्फ ऐस चुप्प ज़वानी विच ही है···।"

सुनकर सरदार मनजीतसिंह चुप रहे। तो कुछ देर चुप्पी रही। फुफिया ससुर साहब ने कहा—

"ऐनूं नवीं दिल्ली लै जावो। उत्थे कम्युनिस्ट पार्टी दे लीडर सरदार

मनजीतसिंह जीनूँ साडा सिनेहा देण। ऐहो जेहे नौजवान कम्युनिस्ट पार्टी लई ही पैदा होए ने।"

× × ×

दूसरे दिन सुबह ही शेष यात्रा शुरू कर दी गई। सरदार जी ने रजनी से जेल की बातें पूछीं। सिलसिलेवार उसने सब बताया और सुनाया कि जेल में अन्याय और अपराध और दण्ड किस तरह रुपयों के मोल फलता है और राजनीति के कुचक्र में पड़कर वर्ग-भेद लेकर विभक्त होता है। सब बातें सुनकर सरदार जी को पक्का सबूत मिल गया कि यह प्रतिभाशाली नौजवान कम्युनिस्ट पार्टी के लायक ही है। और उसने कहा, "आपको अब हर हालत में एक राजनीतिक नेता के रूप में जीवित रहना चाहिए। इसी में आपकी शान है। सारे देश में तभी आपका नाम हो सकेगा। यूँ क्रिमिनल क़ैदी के रूप में घूमने से तो ज़हर खाकर मरना अच्छा है।"

रजनी चुप रहा। वह सुन रहा है और इस क्षण मनन करने की स्थिति उसकी नहीं है। कि उसने सड़क के किनारे-किनारे जाती हुई ट्रेन देखी। खचाखच भरी है। उसकी छतों पर लोग बैठे हैं और बाहर भी लटके चले जा रहे हैं। जिज्ञासा की कि क्या कोई मेला है?

सरदार मनजीतसिंह ने कहा, "नहीं जी, कैसा मेला? यह लड़ाई ही एक मेला बनकर जो आई बैठी है। हर ट्रेन से पहले भी सवारियाँ जाती थीं। किन्तु लड़ाई शुरू होते ही, रब्बा जाने. कहाँ से इतना इंसान बेनकेल हैवान की तरह से निकलकर बाहर चला आया है किसी गुप्त गुफ़ा से? ट्रेनें लद-लदकर चल रही हैं। बसें भी भीड़ से बोझिल होकर चल रही हैं। सभी शहरों में न जाने एक साथ ही कहाँ से इतने लोग घुस आये हैं। और भीड़ मचाते हुए क्या तलाश करते रहते हैं? सच बात यह है कि जी, इस युद्ध ने गाँव खाली कर दिये हैं। व्यापार···मनुष्य-व्यापार, आत्मा-व्यापार, शरीर-व्यापार, मस्तिष्क-व्यापार और जो कभी देखा-सुना न था, वह सब व्यापार चल निकला है और लोगों में खलबली इस तरह मच गई है कि जैसी आपने अक्सर श्मसान-घाट की तरफ़ जाते हुए किसी लाश पर की जाने वाली पैसों की बिखेर के समय देखी होगी। उन चन्द पैसों को लूटने के लिए भंगियों के लड़के और लड़कियाँ आपस में किस तरह घिनावनी गुत्थम-गुत्था मचाते हैं। और ज़रा ख़्याल कीजिए, यह भी व्यापार है कि सैकड़ों मन गुड़ में सैकड़ों मन कीचड़ मिलाकर बेचा जा रहा है सरे बाज़ार! बरसात में जैसे गीली मिट्टी फोड़कर हज़ारों चींटे पंख लगाकर प्रकट हो जाते हैं, वही हाल हमारे देश में इस युद्ध ने किया है। हर इंसान ने अपने एक पंख लगा लिया है। ध्यान से सुनें, एक पंख! दो पंख नहीं!!"

अपने इस आख़िरी कथन पर यद्यपि सरदार जी हँसे, पर रजनी एक दुर्दमनीय

टीस महसूस करता हुआ चुप बैठा रहा ।

नई दिल्ली पहुँचकर उसकी यह टीस कई गुना बढ़ गई । और वह सहम गया । दूसरे दिन सरदार जी उसे लेकर एक हिन्दुस्तानी सैनिक अफ़सर के कैम्प में ले गये तो रजनी गहरी परेशानी में निश्चय न कर सका कि वह क्या करे । वहाँ दो सरदार जी कच्चे बरामदे में बैठे 'ओवल्टीन' पी रहे थे । मनजीतसिंह जी ने उनका परिचय कराया, "सैकिण्ड लैफ्टीनेण्ट सरदार जगजीतसिंह जी और सरदार मनफूलसिंह जी ।"

रजनी ने आँखों पर काला चश्मा चढ़ाये हुए सरदार मनफूलसिंह जी से हाथ मिलाया तो वे संगीन बने रहे और रुखाई से बोले, "आपसे मिलकर खुशी हुई ।"

दस मिनट बाद सैकिण्ड लैफ्टीनेण्ट सरदार चले गये तो मनफूलसिंह जी ने कहा, "आपको कम्युनिस्ट पार्टी में लेकर मुझे खुशी होगी । आप कल अजमेरी गेट की बाईं गली में ४० नम्बर के मकान में आ जायँ । वह एक मुस्लिम प्रोफ़ेसर साहब का आलीशान मकान है । मैं आपको वहीं मिलूँगा । हमारी पार्टी को आप जैसे रिवो-ल्यूशनरी की सख्त ज़रूरत है ।"

दूसरे दिन सुबह ही सरदार मनजीतसिंह जी उसे कुतुबमीनार से भी आगे शिकार के बहाने ले गये । और वहाँ उसे पिस्तौल चलाने की शिक्षा दी । लौटते समय रजनी को याद आया, इसी कुतुबमीनार के अंचल में रिक्शी मिली थी । आज यह पिस्तौल की दीक्षा प्राप्त हुई है । यह रहस्य क्या है ?

सरदार मनजीतसिंह कह रहे थे, "इस समय असली देश-सेवा कम्युनिस्ट पार्टी ही कर रही है ।"

× × ×

साँप दीखते ही लोग उसके पीछे डण्डा लेकर पड़ जाते हैं । रामकिशोर झल्लाकर रह जाता है कि इतने इंसानों की देह में कई-कई सेर तरल ज़हर भरा हुआ है और लोग उन्हें ज़िन्दा ही नहीं रखते, उनकी जूठन तक इस तरह खाने को तैयार रहते हैं कि मानो किसी देवता का प्रसाद हो । उफ़ ! वे ज़हरीले इंसान आज देवता हैं ? क्यों नहीं समाज के समस्त सर्पों को समूल कुचल डाला जाय ? उसने जल्दी से जूतों के फीते बाँधे । कमबख़्त पाँच साल हो गये इस घिसे हुए जूते से काम लेते हुए । बेहया जूते कहीं के । कानों में मैला फटा गुलूबन्द लपेटा । एक बीड़ी सुलगाई । सिर पर मैली-सी टोपी डाली और दरवाज़ों की साँकल चढ़ाकर वह बाहर गली में हो लिया । ताले की ज़रूरत दरवाज़ों पर कतई नहीं । कोई स्वप्नों में जेल और पुलिस की हथकड़ियाँ देखता है, वह हर क्षण जेल और पुलिस की हथकड़ियों की करकश झंकृति सुनता रहता है । बाज़ार से अकस्मात घूमकर वह एक पनवाड़ी की दुकान पर रुका । पीछा तो उसका कोई नहीं कर रहा है । तसल्ली से उसने हथेली पर

चूना लिया, उसमें एक बीड़ी उधेड़कर उँडेल ली और खूब मसलकर मुँह में डाल ली और आगे बढ़ा। तम्बाकू की प्रतिक्रिया अक्सर उसे क्रोध ले आती है। पर रामकिशोर एकाएक चिकनाई दिल पर ले आया। अगर देश में हमारा दिन जागा तो हर कोशिश मैं करूँगा कि सब्ज़ी मण्डी की इस बदबूदार गली को रौनक करूँगा और मेरी परवरिश करने वाली बुढ़िया माई को घी-दूध से छका दूँगा। दूसरी बीड़ी सुलगाकर उसने जल्दी-जल्दी तीन मुहल्ले पार किये। एक दुकान पर इमरतियाँ ताज़ा-ताज़ा उतर रही थीं। इच्छा तो हुई कि छटाँक भर लेकर खा ले। पर ऊँह! पहले पार्टी की मीटिंग से सुलट लूँ, कहीं मिठाई खाने से वहाँ बुर्जुआ की तरह न बोलने लगूँ। चौथे मुहल्ले में मुड़ा। पूरी गली एक बारात से ठसाठस भरी हुई है। वह नुक्कड़ पर ही ठहर गया। दूल्हे का चेहरा ज़री के मुकुट से ढँका हुआ है और सर पर सेहरा कुछ घण्टों के लिए पहना दिया गया है ताकि कुछ घण्टों और दिनों के लिए वह अपने को स्वप्निल रंगीनियों का बादशाह समझ ले। पूरी देह पर कमख्वाब के वस्त्र हैं। भौंहें सिकोड़कर उसने थूका और क्रोध से उस नालायक-से नज़र आने वाले दूल्हे को घूरने लगा। आज हमारे समाज की निन्नानवें शादियाँ कलह और अशान्ति और अप्रेम से रिस-रिसकर कब्र और चिता तक गन्दे नाले की तरह बहती हैं। बेशर्मी नहीं तो और क्या है कि उस नारकीय जीवन का श्रीगणेश हम इस तरह नौबतें और नफीरी बजाकर धूमधाम से करें। घृणा से वह इतने रोष में भर गया कि दूसरी गली से घूमकर आगे बढ़ गया। ज़िन्दगी की ज़लालतों को वह तमाशबीन की तरह से बिलकुल देखना गवारा नहीं कर सकता। उधर सड़क को लाँघती हुई कॉमरेड रूपमती जा रही है। वह आँखों से ओझल हो चुकी तो आगे बढ़ा। इसे जैसे कब्र में भी उज्ज्वल परिधान सज्जा के लिए चाहियेंगे। ताज्जुब है कि अपने हाथी के दिखावटी दाँतों पर सोने के कड़े चढ़ाकर शान से सवारी करने वाले महावत-की-सी खोपड़ी कोई तमीज़दार इंसान कैसे अख्तियार कर सकता है? अजमेरी गेट आ गई तो निश्चित मकान के जीने पर चढ़ते हुए उसे मदनलाल टकरा गया। उसके कान में फुसफुसाकर कहा, "पार्टी की ज़िन्दगी खतरे में है। पुलिस शायद रात को धावा बोले। हबीब सी. आई. डी. में रिपोर्ट देता है। होशियार!" और बीड़ी का ढेर-सा धुआँ मदन के चेहरे पर फूँककर उसको धक्का देता हुआ ऊपर चढ़ गया। पूरी पार्टी हाज़िर है। मनफूलसिंह लीडर है। उसे जिस दिन निहायत सख्त आर्डर देना होता है, वह काला चश्मा पहनकर आता है। आज भी उसने काला चश्मा पहना है। संतरी के कन्धे पर रखी हुई बन्दूक की मानिंद वह अविचल भाव से बैठा है। उसकी बगल में एक नये सरदार जी बैठे हैं। वह भी काला चश्मा पहने हुए हैं। रामकिशोर ने लीडर को सलाम किया तो मनफूलसिंह के कठोर चेहरे पर मुस्कान की छवि चिलक गई।

गोरी छाती से दूध नहीं, खून टपकता था। पर हमने महसूस किया कि चीन की हर औरत की छाती में दूध, आँसू, खून के अलावा एक-एक बारूद की गुलछी भी रखी है।"

रजनी चीन की यह रहस्यमयी बात स्पष्ट नहीं ले सका। आग मन्दी पड़ी तो उसने थोड़ा फूस और सुलगाया। मंसूरी आते हुए कुछ सरदी लगने से खाँसी हो गई थी। छाती की जलन से कुछ देर तक खाँसता रहा। खाँसी की गोलियाँ चूसते हुए बोला, "बाबा, हिन्दुस्तान में बारूद की गुलछियाँ तो सिर्फ़ फ़ौजी नौजवानों के पास मिलती हैं और उन पर अंग्रेज़ों का कड़ा पहरा रहता है।"

बौद्ध चट्टानों की निचली जड़ों में बसे शहर को देख रहा था। अँधेरे की चाँदनी में उसकी परिक्रमा-रेखा ही दीख रही थी। ज़रा कुछ ऊँची छतें चमक रही थीं अन्दरूनी रोशनी से। वायु का बहना बन्द हो चुका था। यहाँ इस ऊँची पहाड़ी पर यह एक बहुमूल्य होटल है। बरांडे में ये दोनों बैठे हुए सर्दी की आग सेक रहे हैं। रजनी की बात सुनकर बौद्ध उत्तेजित हुआ और बोला, "तभी-तभी।"

रजनी ने पूछा, "क्यों ?"

बौद्ध ने कहा, "तभी हिन्द की साँसें तकलीफ़ के साथ निकलती हैं। जहाँ बारूद की गुलछियाँ संगीनों के पहरे में रहती हैं, वहाँ सिर्फ़ शासकों की क्रूरता के अलावा कुँगो-सुँगो का बलात् प्रचारित धर्म ही आँखों को अच्छा लगता है। मांडले में सुना था कि तुम्हारे हिन्द के दिल पर भी एक फौलादी सतह आहिस्ता-आहिस्ता इस लड़ाई में अंग्रेज़ों ने चढ़ा दी है।"

रजनी ने सुना और समझा। पर पूछा, "कुँगो-सुँगो।"

बौद्ध ने बताया, "चीन की मौजूदा जापानी-खिलौनों-सी राष्ट्रीय सरकार और उसका अर्थ मंत्री।" और वह खड़ा हो गया। त्रयोदशी का चन्द्रमा अब होटल के बरांडे को ज्योत्सित करने उस बदली से झाँकने लगा। सीढ़ियों से उतरकर बौद्ध बाईं पगडंडी पर हो लिया। रजनी को भी साथ ले लिया कि घूम आना। पहाड़ की घाटी उतरते ही रजनी ने कहा, "लेकिन चीन की मैडम च्यांग की तरह हिन्द मख़मली चमकदार फिराक नहीं पहनता। हमारे यहाँ जो नरेश और राजा-महाराजा हीरों के कण्ठहार पहनते हैं और ऐय्याशी का गुप्त जीवन बिताते हैं, उन्हें वेश्याओं का अखंड यौवन नहीं मिल गया है।"

बौद्ध ने रजनी को रोककर अपनी ओर आमुख किया। बोला, "आप धोखा न खाओ सरदार जी। देशाटन हमने बहुत किया है। देश-देश के फोड़े और सुर्ख़ चमड़े की गरमी और बहुत से देशों की संतवाणी के पीछे छिपी हुई बेईमानी को भी झाँककर हमने देखा है। तुम्हारे हिन्द के लीडरों की देश-भक्ति पिछले दस साल से

देखता आता है। पर क्या देश-भक्ति खस का परदा है जिसके अन्दर खुशबूदार ठंडक रहती है ? देश-भक्ति की कसौटी जनता का आर्त्त-नाद है। इस साल हम एक ही नतीजे पर पहुँचा है कि एशिया के सड़े हुए रक्त की धमनी पहले चीन में फूटेगी। और फिर बर्मा में।"

जिस क्षण से बौद्ध से मुलाक़ात हुई है, रजनी इसके माया-प्रांगण में उलझा हुआ एक नई ध्वनि, एक नया स्वर सुन रहा है। पार्टी की बैठक समाप्त होते ही रजनी की सहायता से रामकिशोर ने हबीब की खोपड़ी को पिस्तौल से छलनी कर दिया था और उसकी लाश को वहीं छोड़कर उसी क्षण दोनों दो रास्तों पर आगे बढ़ गये थे। पिस्तौल याने बारूद की सूक्ष्म गीतिका। या बारूद की सूक्ष्म दृष्टि। हबीब की हत्या क्रिमिनल नहीं थी, राजनीतिक थी; इसलिए रजनी को कुछ अधिक ग्लानि नहीं हुई। फिर भी दो रोज़ तक वह बारूद के इस नये कण्ठस्थ धर्म का स्पष्ट अर्थ नहीं ग्रहण कर पाया। कम्युनिस्ट पार्टी का गढ़ उसने पूरा देखा और उसके साथियों को जल्दी में ठीक पहचानने का अवसर न पाया। क्योंकि उसी शाम पार्टी गैर-क़ानूनी करार दे दी गई और दिल्ली के सारे ३८ कॉमरेड गिरफ़्तार हो गये। सिर्फ़ मनफूल बचा था। दो रोज़ तक रजनी उसी के साथ रहा। किन्तु जब उसे सरदार जी का एक नया परिचय मिला तो वह एक बड़ा निर्णय करने में समर्थ हुआ। मनफूल को जब यह मालूम हुआ कि उसका एक मामा (रजनी ने डैडी का ज़िक्रभर किया था, पता न दिया था) बहुत पैसे वाला है तो रजनी से आग्रह किया कि वह पार्टी के लिए कम-से-कम एक हज़ार रुपये मँगवाये फौरन। मनफूल की आँखें यह फ़र्माइश करते समय पैशाचिक हो गई थीं। रुपये लाने के बहाने रजनी ने मनफूल से विदा ली और वह उससे सदा के लिए विदा ले आया। किन्तु पिस्तौल और बारूद के मर्म वह देशीय राजनीति में ठीक तरह से समझ लेना चाहता है। दुपहर में होटल से नीचे उतरता हुआ बाज़ार जा रहा था कि ऊपर चढ़ते हुए यह बौद्ध मार्ग में मिला। रजनी को रोककर उसने पूछा था तपाक से, "सरदार जी, हिन्द का मालदार तबका मंसूरी की पहाड़ियों पर घूमकर अपने को इन्द्र देवता से कम नहीं समझता, क्यों न ?" पलक झपकते जैसे तो रजनी को कोई महामंत्र का दर्शन करा गया हो, रजनी ने विनम्र होकर इस बौद्ध के चरण छुए और उसे अपने होटल में ले आया। रजनी का दृष्टि-क्षितिज राजनीति के गहनतम प्रपंचों को अभी तक ठीक प्रकाशित नहीं कर पाया है कि उनके पेचीदे अक्षरों को ठीक तरह से पढ़ सके। राजनीति की घड़ी की सुइयाँ कभी खुद चलती हैं, कभी कोई ज़बरदस्ती उन्हें आगे सरका जाता है। भला कम्युनिस्ट होना और उसके जन-जागरण के आदर्शों को रचनात्मक बनाना क्या बुरा था ? लेकिन अपनी कीमत अदा करने के लिए हम अपने रिश्तेदारों का (डैडी तो निकट के आत्मीय

थे) धन अपहरण करें, यह कौन-सा वांछनीय खेल था। उसी शाम, पूछता हुआ रजनी रेवती के पिता जी की दुकान पर गया और अपना परिचय दिया। पहले तो वे विश्वास न कर सके, लेकिन थोड़ी देर में रेवती की माता जी ने उसे मरदाना वेश में छिपे हुए भी पहचान लिया। चार दिन वह वहीं छिपा रहा। रेवती के पिता जी ने डैडी से मिलकर उसके दिल्ली से पलायन करने का प्रबन्ध किया। डैडी छाती पर पत्थर रखकर रजनी से मिलने नहीं गये। एक महीने के लिए उसे गुड़गाँवा में चल रही डैडी की एक बस-कम्पनी का खज़ांची बनाकर भिजवा दिया गया। पर शीघ्र ही उसे एक तार दिया गया कि तुम्हारी नौकरी की अर्जी मंज़ूर है और फौरन मंसूरी चले आओ। मंसूरी जाने का प्रबन्ध एक होटल की वॉन में हुआ जो दिल्ली से अपना खास सामान खरीदकर ले जाया करती थी। अब तो जो भी नया नज़ारा उसकी परिधि के अन्दर निकट से देखने को मिलता है, उसे आँख खोलकर देखता है और उसे ही अपने अध्ययन की खुली पुस्तक समझने का संतोष करता है। यहाँ मंसूरी में धनवालों का निजी जीवन क्या है, वह सुबह से शाम तक देखता है और नियम से दो आंसू ढुलका लेता है। व्यर्थ धन का एक दुरुपयोग यह है। धन के अभाव का दुरुपयोग एक उन अनाथों के साथ है जो सड़कों पर सड़ते रहते हैं······। दोनों नीचे जाते हुए सहसा रुक गये। दस गज़ की दूरी पर दूसरी पगडंडी है और दो व्यक्ति इधर चढ़े आ रहे हैं। वे एक सघन झाड़ी की ओट में हो गये। उनमें से एक कह रहा था, "···कलेजा बर्बर-रूप से निकालना है। हमेशा शासक और उसके इर्द-गिर्द का तबका इतना अधिक क्रूर नहीं होता, जितना उस शासन का छोटा अधिकारी-वर्ग होता है। वायसराय से अधिक उसके आई. सी. एस. अफ़सर अधिक खुराफाती हैं।"

दूसरा बोला, "मानता हूँ। अरब रेगिस्तान के काफ़िले भारत को जीतकर अजीबो-ग़रीब मुग़ल सम्राट् उस हस्ती के बने, जब कि उनके जीवन के २४ घंटों में से १४ घंटे ४०-५०. हसीनाओं से भरे हरम में बीतते थे। आज सिर्फ़ लड़ाई में मदद देने वाले वहशी इंसान मुटिया रहे हैं, बाकी का तबका, जो पेड़ पर जीवन बसर करने वाली गिलहरी-सा था, नीचे गिरकर चित्त पड़ा हुआ है। तुम जल्दी देख लेना, इस लड़ाई को ख़त्म हो लेने दो, हिन्दुस्तान में एक नई आग पैदा होगी। शीत ऋतु की सुहावनी आग नहीं, ग्रीष्म की दाहक आग। उस दाह की सूचना तुम्हें बंगाल में फफूँद रहे अकाल से मिल जायगी बहुत पहले।"

पहला बोला, "और वही आग एशिया की नई आग···" वह इतना आगे बढ़ गया कि कुछ सुनाई नहीं दिया। अब रजनी ने कहा, "मैंने भारतीय इतिहास पढ़कर देखा है कि दम्भ-अहं-मिथ्या अभिमान हमारे हर शासक में पुरज़ोर रहा है और वही इन आई. सी. एसों. में विरासती घुन-सा पैठ गया है। ऐसे व्यूह-चक्र में आज़ाद भारत की

रूपरेखा या तो और अधिक संक्रामक हो जायगी या स्वस्थ होने के क्षणों में भी वह दूभर कुचक्र से ग्रसित रहेगी ।"

बौद्ध ने कहा, "इंसान आज भी इतिहास की करोड़ों शिक्षाओं के बावजूद संत नहीं हो सका है । पर इतिहास के कोढ़ फूट उठने के बहुत से छोटे-मोटे सबब हैं और आपका यह दम्भ-अहं उनमें से एक है । चीन का संत शासक दम्भी है, तभी आज चीन कुमिंटांग के कोढ़ से त्रस्त है । बर्मा अपने नेताओं की अस्पष्ट भविष्य-दृष्टि से घुटकर साँसें ले रहा है । स्याम अपनी छाती पर रखी हुई परायी बन्दूक की गोलियाँ ख़त्म होने की राह देख रहा है । और मैंने नेताजी के भी दर्शन किये हैं । जापान का अतिशय संबल एशियाई नारियों के साथ बलात्कार करने में स्खलित हो चुका है । उसी स्खलित राष्ट्र के दम्भ पर बैठे हुए नेताजी का भविष्य मुझे धुँधला ही लग रहा है ।"

इसी समय दूर अँधेरे में पहाड़ी पर चढ़ती हुई एक काली छाया दीख पड़ी । बौद्ध पहचान गया कि जिसकी राह उसे है, वही है । यह नीरू है । इसी से मिलने हर दूसरे साल यहाँ हिंदुस्तान आता है । दोनों एक बार चीन के सीमांत पर मिले थे । पहली मुलाक़ात में ही नीरू ने बौद्ध को अपनी हैरतअंगेज़ वाणी से प्रभावित किया था । उसकी एक बात अब तक याद है, "जो ख़ून लड़ाई के मैदानों में बहाया जाता है, उसे अगर ज़मीन से उठाकर किसी शेरनी को पिला दिया जाय तो बिला शक वह मर जायगी । हमारी इंसानी लड़ाइयों का ख़ून इतना जहरीला होता है ।" बौद्ध अपने हर्षातिरेक को रोक न सका । जल्दी ही नीरू सामने आकर खड़ा हो गया और उससे लिपट गया । नीरू ने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा, "ख़ुदा की पनाह और तुम्हारी मुहब्बत ।" उससे अलग होकर उसने रजनी का परिचय कराया, "इनका नाम तो मैं भी नहीं जानता, पर हिन्द का एक नौ-निहाल, जिसकी आँखों पर चर्बी नहीं चढ़ी है ।" नीरू ने रजनी को भी बाहुपाश में कस लिया और ख़ुदा से उसकी सौ साला उम्र होने की दुआ माँगी । रजनी ने अलग होकर ठीक देखा, जैसे एक फ़रिश्ता यहाँ मंसूरी की पहाड़ी पर उतर आया है । नीरू चट्टान पर बैठा तो बौद्ध उसके पैरों के पास नीचे बैठा । नीरू ने रजनी से कहा, "जाने कैसे इस दोस्त से छातियाँ मिलाने का नसीब हासिल हुआ । एक अरसा हुआ जब हमने उस मिट्टी के प्याले में ख़ुदाई दावत एक साथ बैठकर खाई थी ।" और दोनों ने एक साथ क़हक़हा लगाया । पूरी पहाड़ी इस हँसी से रोमांचित हो आई । चाँदनी पुलकित हुए बिना न रही । पूरबी हवा ने ज़रा ध्वनि कर इनकी हँसी से अपने नृत्य की लय ली । चन्द्रमा ऊदे-ऊदे बादलों के साथ नई उमंग में अठखेलियाँ खेलने लगा । नगर का कोलाहल अब पूर्णतया शान्त हो चुका है । नीरू ने आगे कहा, "दोस्त, माफ़ी दो कि दो घण्टे बाद ही आप से

विदा लूँगा और हिन्द को लाँघने की हिमाकत करूँगा। रोटियाँ कच्ची खा लेना और रोटियाँ सेककर खा लेना दो अलग बातें हैं। मैं तुम्हें ख़बर दूँ कि हिटलर के घुटने चंद दिनों में, खुदा ने चाहा तो इसी हफ़्ते, लड़खड़ाने वाले हैं। उस हालत में जापान बेचा नोन की मानिन्द ज़ार-ज़ार रोयेगा। उस वक्त जापान की खिलाई हुई कच्ची रोटियों से बर्मा, हिन्दचीन, हिन्देशिया की अन्तड़ियों में उमड़-घुमड़कर जो दर्द पैदा होगा, वह बस न पूछो। कुछ देश अपने मज़हब और अपने मसीहों के संदेशों का जामा अपनी आज़ादी को पहनाना चाहते हैं। कुछ लोग जम्हूरियत की बुनियाद पर अपने देश की आज़ादी चाहते हैं। पर सब परेशान हैं कि उत्तरी ध्रुव के ठीक पास में जो देश रूस है वहाँ रोज़ी और रोटी की नदियाँ आख़िर इस फ़रागदिली से क्यों बह रही हैं ? पर इसका सबब मैं जानता हूँ। ज़माना आज सड़क कूटने वाले इंजन की जानिब नहीं चल रहा। आज नई साँसों की सुर्खी उसमें आ गई है, इसीलिए ज़माना तेज़ी से उड़ते हुए आगे बढ़ रहा है।"

बौद्ध खड़ा हो गया। नीरू भी खड़ा हुआ। ऊपर होटल की दिशा में तीनों चलने लगे।

रजनी ने साहस कर विनम्र पूछा, "क्या सभी देशों की जनता अपने धैर्य के बन्धनों को तोड़कर महज रोटी के लालच को ही दिल और दिमाग़ में बाकी रखेगी ?"

नीरू ने सौहार्द्र देते हुए रजनी के कन्धों का सहारा ले लिया और बोला, "मेरे भाई, जनता हम दोनों की तरह से आवारागर्द, घुमक्कड़ और आपकी तरह से होटलों की चहारदीवारी में रंगरेलियाँ लूटने वाली नहीं होती। पीड़ित जनता भूख से बेहद दुबली होती है। पर उस दुबलेपन के साथ दूसरे दुनियावी बन्धन भी ढीले पड़ जाते हैं। और उसकी हाहाकारी साँसों से टूटने के काबिल हो जाते हैं। अब, मेरे इलाके की बात सुनो। तुम (बौद्ध से) इस्लामी दुनियाँ को ही तो मेरा इलाका कहा करते हो। सुनता आ रहा हूँ कि हिन्द का इस्लाम पाकिस्तान माँग रहा है। यह शैतान अंग्रेज़ यूरोप का बालकन का खेल रूस-हिन्दुस्तान की सीमा पर भी खेले बिना न मानेगा। मुझे यह कहते हुए अफ़सोस है कि मेरे इलाके के सभी लोग अपने-अपने घरों के चूहे पकड़कर पड़ौस में छोड़ देते हैं और बेख़बर हो जाते हैं। अमरीका अब इस्लाम के देशों को चूहों के पिंजरे बनायेगा। पर इस सब से अलग मैं साफ़ देख रहा हूँ, यूरोप और एशिया के बीच के इलाके से एक ऊँची शोले वाली आग ग़रीब मुस्लिम रिआया के बीच से उठने वाली है। उस वक़्त वह रिआया अपना मुसलमानी लेबल उतार फैंकेगी और महज़ रोटी की माँग करेगी। तब हमारे मौजूदा इंसानी फ़रिश्ते कहाँ पनाह लेंगे, कह नहीं सकता ?"

होटल के बरांडे में पहुँचकर रजनी ने तसले की आग में थोड़ा फूस सरकाकर उसे दहकाया। रजनी ने अब अपनी बात पूरी हिम्मत के साथ रखी, "आप दोनों ही अपन-अपने इलाकों से तूफ़ानी ख़बरें लाये हो। क्या आप दोनों का नज़रिया ख़ूनी तो नहीं हो चला है?"

नीरू का चेहरा आग की लौ में तमतमा गया। बोला, "मेरे भाई, ख़ूनी नज़रिया रखकर हमें कहीं की गद्दी या कुर्सी नहीं हथियानी है। मसला संगीन हो तो संजीदा बन जाना चाहिए। इस बड़ी लड़ाई में एशिया ने अहद किया है कि वह पश्चिमी ताकतों का खिलौना अब नहीं रहेगा। लेकिन असली मसला यह नहीं है। मसला यह है कि एशिया की सारी जायदाद पश्चिमी ताकतों ने पहले से हथिया ली है। जो बची हैं, उसे कैसे कायदे से सबके बीच बाँटा जाय? इसीलिए लड़ाई ख़त्म होते ही यह होगा कि एशियाई देशों की रिआया की बहबूदी का सवाल अधूरा रह जायगा और वे विलायती मशीनें ख़रीदने का नया मर्ज़ ले बैठेंगे। ये विलायती मशीनें ही उस वक़्त एशिया पर हुकूमत करेंगी।"

बौद्ध से न रहा गया। नीरू भला एक बात क्यों नहीं कह रहा है। बीच में बोला, "ज़रा ठहरो, नीरू मियाँ। मजहब ने कब कहा है कि रोटी न खाओ। जम्हूरियत कब कहती है कि आधे पेट रोटी खाओ। हाँ विलायती मशीनें दिन-दहाड़े चुनौती देकर कहेंगी कि रुपये का दो छटाँक घी, दो सेर आटा, तीन पाव दूध पियो-खाओ और बाकी रुपये विलायत भेजो। जनता को देश की फॉरन-पालिसियों से क्या सरोकार? वह रोटी चाहती है पूरा पेट और ईमानदारी से अपने बीवी-बच्चों की बहबूदी चाहती है। वह देखो, शहर में कहीं शहनाई बज रही है। कहीं शादी का कयास होगा। तुम जानते हो, यह किस बात की तैयारी है। आज जहाँ भी कहीं—इस हिन्द में या सुदूर एशिया में, नई दुलहिन और नया दूल्हा एशिया के किसी भी कोने में ताज़ा गलबहियाँ लेते हैं तो मुझे यही एहसास होता है कि वे बारूद की गुलछियाँ ही गूँथ रहे हैं। मुझे हर ख़ूबसूरत औरत के दामन में और हर ख़ुशनुमा जवान की नुकीली मूँछों में बारूद की बू आती है। हर नयी शादी की नयी अँगड़ाई से एक नयी औलाद होती है। पर एशिया की गिनी-चुनी रोटियाँ तादाद में नहीं बढ़ रहीं। समझे कुछ? और एक बारूद की गुलछी मैं सुबह यहाँ लाया था। इसी होटल में ठहरी है न वह?"

कँवर स्वयं ही आकर वहाँ तीनों के बीच में बैठ गई। बौद्ध ने बताया कि आज सुबह मैंने इसे बेगानेपन से इधर आते पाया था। घर से निकल भागी है। शादी अभी हुई नहीं है। मुहब्बत भी किसी से नहीं है। यह होते हुए भी इसकी कहानी सुनकर रो उठा था। घर में वालिद हैं, वालिदा हैं, तीन जवान भाई हैं। बड़ा घराना है।

यह बी. ए. में पढ़ी है। अचानक इसे मालूमहुआ कि इसके वालिद इसे ८००० रुपये के एवज में इसकी शादी बिहार के किसी बूढ़े ज़मींदार से कर रहे हैं। इसके ख़िलाफ़ इसने घरवालों को आगाह भी किया। वालिद को अपना इरादा बदलना पड़ा लाचार। छः महीने बाद इसे मालूम हुआ कि कोई हज़रत दूजवर हैं, उम्र ४० है और वह नई दुलहिन पाने की कीमत ८००० रुपये देने को राज़ी हैं। एक बोतल मिट्टी का तेल लेकर यह अपने वालिद के सामने पहुँची और अपने ऊपर छिड़ककर बोली कि लीजिये, अब माचिस आप लगा दीजिए। तो इस बार माँ का हिया पसीजा और उसने अपनी लाडली की रक्षा की। फिर साल बीता। यह एम. ए. की तैयारी कर रही थी। सहसा फिर सुनाई पड़ा कि अब की बार एक बालिग ज़मींदार से शादी हो रही है। बिलकुल नौजवान है, लेकिन जिसकी पाँच-छः बंगाली-नैपाली रखैलें कलकत्ता में आबाद हैं। कँवर ने अपनी बग़ावत जारी रखी। पर वालिद इस बार न झुके। कँवर आख़िर घर से निकल भागी। सुबह मुझ से कह रही थी, 'क़ैद में रहकर मुझे ज़िन्दगी के लुत्फ़ कतई न चाहिएँ।' और एक वे काँग्रेसी नेता हैं, जैसा इन सरदार जी ने सुनाया, जो जेल में मिठाइयों का दौर लगाने में भरोसा रखते हैं।"

नीरू ने पूछा, "आख़िर बेटा, तुझे क्या चाहिए ?"

कँवर ने सब को सीधे देखते हुए कहा, "जी, मुझे अभी शादी की भूख नहीं है। अभी पाँच साल मैं पढ़ाई की तपस्या में लगी रहना चाहती हूँ।"

नीरू ने पूछा, "अच्छा, अपना सामान ले आओ। मेरे दोस्त, चलते हुए एक आख़िरी बात मैं कह जाऊँ। एशिया के सब देशों में बिछी हुई बारूद की गुलछियों का एक-एक छोर यहाँ हिन्द में पड़ा हुआ है। बहुत जल्द हिन्द को एशिया की सदारत करने का जुनून नायाब होगा। उसकी कीमत यह देनी होगी कि अगर मुसलमानी इलाकों में और दूर पूरबी इलाकों में ये बारूद की गुलछियाँ सुलगेंगी तो इस ज़बरदस्त आग के शिकंजे में ज़रूर हिन्द जलेगा। अच्छा ख़ुदा हाफ़िज़। चलो कँवर।"

बौद्ध ने कहा, "पटना तक मैं भी साथ चलूँगा।" और अपना झोला उठाकर वह खड़ा हुआ। कँवर भी अपनी अटेची लेकर आ गई। रजनी दोनों बौद्धिक दानवों को 'सत श्री अकाल' करते हुए बोला कि अगली बार लौटो तो ईमानदारी से अमन की ख़बरें लाना। कँवर ने रजनी को सरदार जी ही समझा और कहा, "सरदार जी, ईमानदारी से इन दोनों जोगियों को अमन की ख़बरें कोई भी नहीं लाने देगा। जहाँ अंडों की भूख ज़बरदस्त है, वहाँ मुर्गी के हलाल होने की नौबत कौन बचा सकेगा ?" और तीनों चले गये। अँधेरे में बैठे रजनी ने अपनी आँखों से छलके हुए आँसुओं को चुपके-चुपके बहने दिया। बौद्ध और नीरू। भारत के पूर्व और पश्चिम। दोनों बारूद का सन्देशा लिये घूमते हैं। एक मैं हूँ जो हबीब की हत्या कर बारूद का नया धर्म

ग्रहण कर चुका हूँ···नहीं, रजनी ने कठोरता से अपने निचले होंठ को दाँतों से दाबते हुए कहा, "बारूद की इन गुलछियों को समेटना होगा। रोज़ी और रोटी की तादाद बढ़ाना बेहतर है, न कि बढ़ती हुई नयी औलादों को बारूद के ढेर में भूनना।" कि उसकी छाती की धड़कन और जलन बढ़ चली। खाँसता हुआ वह अपने बिस्तर की ओर बढ़ा।

२३
मेजर शर्मा का विद्रोह

उसी रात फील्ड-आर्मी टैंकों के संरक्षण में उत्तर की ओर ४० मील आगे बढ़ गई। मेजर शर्मा को, जब कि मेजर किशोर और मिस लेखा की चिताओं को मिलिट्री 'फ़रनल, दिया जा रहा था, हैडक्वार्टर्स जाने का हुक्म हुआ। उसने अपनी जीप सँभाली और अकेले ही निश्चित दिशा की ओर धुँधली चाँदनी में बढ़ गया।

अंग्रेज़ सैनिक-अधिकारी माथे में त्यौरियाँ लिये थूक बुदबुदाते हैं, क्रोध करते हैं और समझ नहीं पाते हैं कि क्यों भारतीय सैनिक विद्रोह कर रहे हैं ? हिन्दुस्तान के अख़बार क्या कहते हैं, इस बात की पर्वाह इन्हें अधिक नहीं है। दुश्मन के रेडियो अपना गला फाड़कर ख़ुशियों की तालियाँ पीटते हैं, सो परेशानी का बाइस है।

मेजर शर्मा ने कोर्ट मार्शल होते देखे हैं। अमरीका या अंग्रेज़ सैनिकों का कोर्ट मार्शल शायद ही होता है। कोर्ट मार्शल के गर्म-गर्म तवे पर भारतीय सैनिक सिर्फ़ भूना या पकाया ही नहीं जाता, उसका बैंगन का भुरता-सा बना दिया जाता है। दुश्मन के हाथों नृशंसतापूर्वक मरना एक बात है, पर कोर्ट मार्शल की गारद में अपमानित होकर आख़िरी साँस लेना···ओह ! अकल्पनीय-रूप में भयंकर है। मेजर शर्मा कई बार सोते हुए सिहरकर उठ बैठा है और रात-रात नहीं सोया है। अक्सर उन्हीं सैनिकों का कोर्ट-मार्शल होता है जो भगोड़े होते हैं।

भगोड़े ! 'सैनिक' नागरिक जीवन की शांत स्तब्धता से ऊबकर भागने वाले भगोड़े हैं। 'सेना के भगोड़े' नागरिक जीवन के दुलार में मुँह छिपाकर, गहरी नींद सोने के लिए, भागने वाले विद्रोही हैं। सैनिक-अधिकारी अपने भगोड़ों को प्राण-दण्ड तक दे सकते हैं। नागरिकता का ऐसा शाश्वत नियम कब बनेगा कि जो भी उसके शांत सरोवर से निकलकर और ऊपर उछलकर सेना के लोभ में सैनिक बनना चाहेगा, उसे प्राण-दण्ड दिया जायेगा ?

प्राण-दण्ड ! मेजर शर्मा ख़ूब जानता है कि पूरा हिन्दुस्तान देश आज के क्षणों में पुलिस-स्टेट बना हुआ है और किसी बहाने किसी भी कार्य-कलाप को अपराध घोषित कर किसी भी व्यक्ति को प्राण-दण्ड दे दिया जाता है। एक सप्ताह हुआ, कुछ सैनिक छुट्टी बिताकर घर से लौटे हैं। वे सुनाते थे कि पुलिस-अधिकारियों ने इस लड़ाई के ज़माने में अथाह रिश्वतें खाई हैं। फिर भी उनका हाज़मा धन की भूख से काबिज़ नहीं हुआ !

सामने एक परनाला है और बाँसों पर झूलता हुआ एक पुल है। संगीनधारी एक गुरखा प्रहरी ने कहा, "हाल्ट !"

मेजर शर्मा ने अपने 'स्टार्स' बताये और उसे सूचना दी कि 'बड़ा कैम्प' जाना है। सँभलकर जीप पुल पर चढ़ाई तो वह चर्र-चूँ कर उठा। शुक्र अल्ला ताला का, कि जीप उस पार पहुँच गई।

सुबह दस बजे तक 'फुलस्पीड' पर मेजर शर्मा ने जीप दौड़ाई तो बड़ा कैम्प आ गया। एक मील इधर ही जीप रोककर उन्होंने दूरबीन से फील्ड-हैडक्वार्टर्स का दृश्य देखा और देखते रह गये। एक बड़े गोल दायरे में तम्बुओं का ताँता लगा है। यहाँ से वहाँ तक ऐंटी ऐयर-गंस लगी हैं। उधर टैंकों का एक दस्ता खड़ा है। उधर बमवर्षक यान हैं। चारों ओर के जंगल नृशंसता से काट डाले गये हैं। इधर कोई गाँव रहा होगा, सो वीरान पड़ा है। उधर एक पूरा बटालियन सुबह की परेड कर रहा है। जगह-जगह चारों ओर पड़े हुए बमों के गहरे गड्ढे खुदे हुए पड़े हैं।

आज मेजर शर्मा ने इस बड़े कैम्प का पूरा दृश्य एक क्षण निस्संग भाव से देखा और जीप में बैठे। स्टार्ट करते हुए स्वतः स्वगत् किया, "उधर एक छोर पर नई दिल्ली में अंग्रेज़ वायसराय का भव्य, आलीशान और बारौब वायसराय-भवन है और इधर यह हैडक्वार्टर्स उस वायसराय-भवन का कसाई खाना है! अधिक से अधिक संख्या में यहाँ पराये इंसानों की हत्या की जाती है, और उधर अंग्रेज़ी सल्तनत का यूनियन-जैक आकाश में और एक फुट ऊँचा उठकर उड़ने लगता है।

पर मेजर शर्मा ने अपने को सँभाला। वह अत्यधिक गंभीर हो गया। कमांडिग-जनरल से उसे भेंट करनी है। वह अंग्रेज़ है और एक दानवी जीव है कि निश्चित स्थान पर वह उतरा। सख़्त डगों वह उसके कार्यालय में पहुँचा। एक गुरखा सैनिक बाहर क्रूर दृष्टि लिये पहरा दे रहा है।

सूचना पाकर उसे अन्दर जाने की आज्ञा हुई। एक लौह-इंसान अन्दर उसे क्रूर-दृष्टि से घूर रहा था। मेजर शर्मा ने सैल्यूट कर अपने कैम्प का बन्द लिफाफा उसकी सख़्त उँगलियों में थमा दिया। अंग्रेज़ कमांडिग-जनरल ने उसे पढ़ा। पढ़कर कुछ अस्पष्ट अपशब्द कहे, तो भूकम्प की अन्दरूनी गहराती गर्जन-सी गुंजाकर बोला, "क्या यह ख़तरा सारे भारतीय सैनिकों के साथ है कि वे ब्रिटिश शहंशाह के साथ गद्दारी करेंगे?"

मेजर शर्मा ने कहा, "यह कैसे हो सकता है? सिर्फ़ तीन प्रतिशत सैनिक भावुक हो सकते हैं।"

"अच्छा," और अंग्रेज़ सैनिक अधिकारी ने कहा कि तुम शाम तक ठहरेगा। इस पत्र का उत्तर शाम तक तैयार होगा।

वापस सैल्यूट कर मेजर शर्मा गुप्त कार्यालय में अपने शाम तक ठहरने का संवाद भिजवाने के लिए चला तो रास्ते में अपना नाम सुनकर ठिठक गया। इधर की छोलदारियों की लम्बी पंक्ति में 'वेकाइज़ गर्ल्स' रहती हैं। ठीक उसके सामने मिस सुन्दरी भाटिया खड़ी एक करुण हास लिये 'नमस्ते जी!' कर रही हैं।

मेजर शर्मा ने अपना सैनिक-नमस्कार किया और इस भेंट पर असीम प्रसन्नता प्रकट की। पूछा, "कुशलता तो है?"

मिस भाटिया ने इधर-उधर देखा, "कैसी कुशलता? ज़हर भी तो ढूँढ़े नहीं मिल रहा यहाँ।"

मेजर शर्मा इस अयाचित उत्तर से नहीं चौंका। वैकाइज़-गर्ल्स किस मर्ज़ की दवा इस सैनिक कार्यालय में हैं, यह वह जानता है। मिस भाटिया से नई दिल्ली के क्वीन-विक्टोरिया मैस में मुलाक़ात हुई थी। और वहाँ दोनों काफ़ी घनिष्ठ आत्मीय हो गये थे। सुनकर वह चुप खड़ा रहा। गम्भीर अवश्य हो गया।

"आप?"

"मैं इधर आब्ज़रवर्स कोर में हूँ और शायद अभी प्रथम अग्रिम पंक्ति में जाना होगा।"

"कब तक हैं यहाँ?"

"शाम तक।"

"लंच मेरे साथ लीजियेगा?"

"अच्छा।" और छोलदारी का नम्बर लेकर वह अपने काम को पूरा करने आगे बढ़ा।

दुपहर में मिस भाटिया की चारपाई पर आधा घण्टा लेटकर आराम किया और उससे बातें कीं। मिस भाटिया एकान्त पाते ही रोने लगी। बोली, "आप कुछ नहीं कर सकते?"

"क्या?"

"यहाँ मुझे और सब को वेश्या बना रखा है।"

उसने सिगरेट जलाई। बोला, "यह कब से हुआ?"

"जब से यहाँ अमरीकी भी आ गये हैं?"

"कितने दिन हुए?"

"हो गये दो महीने।"

मेजर शर्मा चुप रहा। बोला, "उठो, लंच ले लिया जाय।"

मैस में लगभग ढाई सौ भारतीय लड़कियाँ दिखाई पड़ीं। चेहरे सभी के गम्भीर थे। सिर्फ़ इधर अमरीकी खुशनुमा थे और उनमें से कुछ युवक इन लड़कियों से चुहल

करने से बाज नहीं आ रहे थे। मेजर शर्मा ने ठीक देखा कि इन लड़कियों में से कुछ-हैं, जो ठीक हैं। वरना, बाकी ज़रा-सी सैक्स-उत्तेजना पाते ही हँस पड़ती हैं।

युद्ध यौन को भीषण नहीं बनाता, यह सच है। युद्ध ठोस यौन का रस तरलतम बना देता है, यह सच है! और वह तरल बात-बात पर छलकता रहता है।

मिस भाटिया के साथ लंच पर एक बात भी नहीं हो सकी। भोजन हो चुका तो दोनों साथ आये। उसे महज यही सांत्वना दी, "मिस भाटिया जी, यह युद्ध-क्षेत्र है और यहाँ का रास्ता स्वयं ही ढूँढ़ना है। अपने सतीत्व की परिभाषा तो युद्धकालीन बना लो, पर भविष्य की ओर से आँखें बन्द न कर लो।" एक ठण्डी साँस लेते हुए मेजर शर्मा ने कृत्रिम हँसी खिलाई और अपने आरामगाह में चला आया। जो चारपाई पर लेटा और सिगरेट सुलगाई तो उसे आठ महीने पहले की एक घटना याद हो आई।

रंगून जापानियों के अधिकार में चला गया था। अंग्रेजी सेना उसे खाली कर तीन दिन पहले ही भाग आई। भारतीय सेना को नगर की बाहरी सीमा पर कुछ थोड़ा मोर्चा लेने को ठहरा दिया गया था।

मेजर शर्मा, एक भारतीय नर्स और एक अंग्रेज़ मेजर मिलिट्री आर्मड-कार में रंगून शहर से निकलकर पहाड़ की घाटियों में सावधानी से मनीपुर की ओर आ रहे थे। ८० मील भी न आ पाये होंगे कि पहाड़ियों के एक विराव पर दूर से ४ व्यक्ति हाथ उठाये दिखाई दिये। कुछ पास पहुँचे तो वे कार का रास्ता रोककर खड़े हो गये। अंग्रेज़ मेजर ने ड्राइवर से फुल स्पीड पर कार छोड़ देने को कहा, पर न चाहते हुए भी कार को ड्राइवर ने रोक लिया। रास्ता आगे बढ़ने को यही था कि उन व्यक्तियों को चीथकर आगे बढ़ लिया जाय। मेजर शर्मा और अंग्रेज़ मेजर नीचे उतरे तो देखा कि एक भारतीय कुलीन परिवार है। वृद्ध पिता, युवक, युवक की पत्नी और एक १४ वर्षीय उनका पुत्र। पुत्र बुखार में तप रहा था, पर हाँफता हुआ खड़ा था। युवक ने टूटी-फूटी अंग्रेज़ी में कहा कि वह आई. सी. एस. है और बर्मा में भारतीय गवर्नमेंट का नागरिक अफ़सर था। रास्ते में बर्मियों ने उनकी कार और सम्पत्ति छीन ली है। कल सायंकाल से वे प्यासे मर रहे हैं और यह बीमार लड़का प्यास से बहुत जल्द मर जायेगा। मेहरबानी कर हमें ऐसी जगह पहुँचा दिया जाये जहाँ पानी मिल जाये और बीमार बच्चे को दूध।

कठोर दृष्टि से मेजर अंग्रेज़ ने उनकी बेमायने की दास्तान सुनी और कड़ककर कहा कि रास्ता छोड़ दो, काले गधे कहीं के।

युवक ने उत्तेजित होकर कहा, "मैं ब्रिटिश गवर्नमेंट का वफ़ादार नौकर हूँ और अगर आप हमें कार से नहीं ले जायँगे तो हमें कार से चीथकर आगे बढ़ जाइये।"

पर अंग्रेज़ मेजर का हीया नहीं पसीजा। उसने ज़रा और कड़ककर कहा कि तुम नहीं जानते, बीमार बच्चों और बीमार घोड़ों से कैसे छुटकारा लिया जाता है। और तत्क्षण उसने अपनी पिस्तौल कमरबन्द के केस से निकाली। अपनी माँ की असक्त मुट्ठियों में झूलते हुए अर्द्ध-बेहोश बच्चे को इधर घसीटा और ठाँय-ठाँय दो फायर उसकी छाती में रख दिये। सिर्फ़ आधा मिनट! यह हत्या हुई और उसकी माँ ख़ून से लथपथ बच्चे की लाश पर एकाएक गिर पड़ी। युवक की आँखें पूरी विस्फारित हो गईं और वह नहीं समझ सका कि क्या हो गया है? कि मार्ग खुलाकर कार आगे बढ़ी। लपककर इस मेजर के साथ मेजर शर्मा कार में कूदा और फुल-स्पीड पर वे आगे बढ़ आये।

एक सप्ताह बाद पता लगा कि वहीं उस लड़के की माँ और उस लड़के का दादा रोते-रोते तड़पकर मर गये थे। जब वह युवक जैसे-तैसे पैदल चलकर, गिरता-पड़ता पास के आश्रय-शिविर में पहुँचा था तो पूर्ण रूप से पागल हो चुका था···

तब मेजर शर्मा को उस घटना पर विचार करने की फ़ुर्सत नहीं थी। पर शनैः-शनैः अंग्रेज सैनिक-अधिकारियों की अन्य जलील हरक़तों ने उसे बाध्य किया है कि वह कुछ सोचे अवश्य।

उसके बाद एक उड़ती हुई घटना सुनने में आई थी कि आसाम की खासी जाति का एक पहाड़ी परिवार आसाम-बर्मा सीमा की पहाड़ियों में रहता था। उधर अंग्रेज़ सैनिकों का एक दस्ता अचानक रास्ता भूल गया था। वह भटकता हुआ इस परिवार के झोंपड़ों को पाकर अपना खोया होश पा गया। उन्होंने होश में आकर याद किया कि वे शासक जाति के सैनिक हैं। उस खासी परिवार ने इन दर-दर के भिखारी सैनिकों का स्वागत किया। उन्हें चाय पिलाई। दूध दिया। और सोने को एक झोंपड़ा खाली कर दिया।

रात हुई तो दो अंग्रेज युवक सैनिकों की दृष्टि परिवार की युवति कन्याओं पर पड़ी। अँधेरा बढ़ते ही उन्होंने निर्लज्जता से परिवार के सामने ही उन युवति कन्याओं का हाथ पकड़ा और अपने झोंपड़ों की ओर घसीटने लगे। वे रोईं-चीखीं तो उसका असर उन सैनिकों पर न हुआ, उसके परिवार के चार युवक ज़रूर तैश में आ गये। अपनी कुल्हाड़ियाँ उठाईं और उन सैनिकों का सर धड़ से अलग कर दिया। बात का परिणाम जो होना था, वह सही सलीके से हुआ। परिवार के पुरुषों में और बाकी अंग्रेज़ सैनिकों में खुलकर लड़ाई हुई। जिसमें सब खासी पुरुष मारे गये, एक अंग्रेज़ को छोड़कर आठ अंग्रेज़ मर्माहत रूप में घायल हो गये। उस अंग्रेज़ ने ख़ूनी क्रोध में जो इन लड़कियों के साथ व्यभिचार करना शुरू किया तो अँधेरे में एक वृद्धा स्त्री आई और उसने उस अंग्रेज़ की देह के टुकड़े-टुकड़े काट दिये···

······फिर यह सुना था कि सप्ताह बाद एक अंग्रेज सैनिक टुकड़ी सशस्त्र कार में बैठकर वहाँ गई थी—सब ने खुले रूप में वहाँ की स्त्रियों के साथ पूरे २४ घंटे बलात्कार किया। जी भर चुका तो सब स्त्रियों को गोलियों की बौछार से भून डाला गया। उनके झोंपड़ों में आग दिखाई गई और अपनी विजय के उल्लास में उन शहीद (!) अंग्रेज़ों की कब्रों पर एक 'क्रास' गाड़कर उस पर यह तख्ती टाँग दी थी, "कुछ देशद्रोही जंगली आदमियों ने निम्न टैंक कोर के अंग्रेज सिपाहियों का कत्ल किया था।"

दो-तीन सिगरेटें पीं तो मेजर शर्मा ने महसूस किया कि बगल की छोलदारी में जो मिस चोरड़िया रहती है, वह किसी सैनिक से गरमागरम बातें कर रही है दबे स्वर में!

"मैं कहती हूँ कि बाहर चले जाओ। नहीं तो मैं चीख पड़ूँगी।"

सैनिक कोई अमरीकी है। बोला, "नहीं, चीखो नहीं, कोई इंडियन ट्यून का गाना गाओ।"

"नहीं जाओगे?"

"ओह! जाना-जाना, कहाँ जाना? मैं तुम्हें पिछले हफ़्ते से प्रेम करता हूँ, यहाँ आओ।"

एक हिचकी, एक दबी कराहट! और शांति!!

मेजर शर्मा का खून अपनी एक भारतीय अबला के साथ बलात्कार होते देख-कर खौला। पर चुप निःसाँस पड़ा रहा। उठकर उसने 'रम' का पेग चढ़ाया और शांत होकर पड़ा रहा।

शाम उसकी बुलाहट हुई। एक सार्जेंट-मेजर ने उसे सीलबन्द लिफाफा थमाते हुए कहा, "मेजर शर्मा, मैं एक बात साफ़ कह दूँ आपको। अगर इस बार हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने गद्दारी की तो मैं यह देखना पसन्द करूँगा कि सारे हिन्दुस्तान को सन् '५७ के ग़दर से भी कई गुना सज़ा दी जाय।"

मेजर शर्मा ने दृष्टि सीधी रखते हुए कहा, "जी!"

सार्जेंट-मेजर ने गुर्राते हुए कुछ जो कहना चाहा था, उसे गले में रोका और आगे कहा, "यह तयशुदा है कि हम हिन्दुस्तान को जापानियों के चंगुल में किसी भी कीमत पर न जाने देंगे। कुछ चन्द सिपाही या कैप्टेन अगर जापानियों को सफ़ेद झंडा दिखायेंगे तो मैं अकेला हर हिन्दुस्तानी सिपाही की रीढ़ की हड्डी तोड़ देना पसन्द करूँगा ताकि वह ताहम जिन्दगी सीधा ही खड़ा न रह सके। ज़मीन पर पड़ा हुआ चित्त सिपाही कौन सा 'इन्किलाब ज़िन्दाबाद' चिल्लायेगा, यह मुझे देखना बाकी है।"

मेजर शर्मा ने सतर खड़े हुए कहा, "यस सर!"

बस ! सार्जेंट-मेजर ने हठात् मुस्कराकर मेजर शर्मा की यात्रा की कुशलता की कामना की । इस गिरगिट के रंग बदलने का अर्थ वह न समझ सका । और तत्क्षण अपनी जीप में बैठकर चल दिया ।

जंगल की खुली हवा में साँस लेकर उसने सार्जेंट-मेजर की बातें दुबारा दुहराईं । आख़िर क्या कारण है कि हर छोटा-बड़ा अंग्रेज़ और अमरीकी सैनिक-अधिकारी हर छोटे-बड़े हिन्दुस्तानी सैनिक को अपना मन का गुब्बार कह सुनाने की गुस्ताखी कर गुज़रता है ? ज़रा से 'डिसिप्लिन' के नाम पर भारतीय सैनिक दण्ड का भागी होता है, पर किसी भी अंग्रेज़ सैनिक का डिसिप्लिन-उल्लंघन उनकी शब्दावली में कुछ विभिन्न अर्थ रखता है ।

इन्किलाब ज़िन्दाबाद ! कुत्ता कहीं का ! ! मेजर शर्मा ने अपनी सारी घृणा को संजोकर सार्जेंट मेजर को जैसे एक तमाचा दे मारा हो ।

जीप आगे बढ़ती गई । शर्मा को ख्याल आया कि पाँच महीने पहले यहाँ जापानी सैनिकों का आधिपत्य था । इस भूमि पर विजय भारतीय सैनिकों ने प्राप्त की, पर शासन अंग्रेज़ सैनिक-अधिकारी अपना चलाते हैं । प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट की 'फोर फ्रीडम्ज़' क्या बला हैं सो वे जानें । बर्मा मोर्चे पर भारतीय सैनिक अपने अन्याय के विरुद्ध विद्रोह करने पर उतारू हो रहे हैं, यह शर्मा ठीक जानता है ।

रात के दो बजे कैम्प आ गया । तत्क्षण शर्मा ने बड़ा लिफाफा नये कमांडिंग अफ़सर को दे दिया । पढ़कर उनकी भौहों में जलती हुई जेवड़ी की नाईं बल पड़ते चले गये । लपककर उन्होंने अपनी 'किट' सँभाली और आज्ञा दी कि उनकी कम्पनी आध घंटे बाद उत्तर को ११ मील आगे मार्च करेगी ।

तैयारी हो चुकी तो मेजर शर्मा को नया हुक्म प्राप्त हुआ कि वे जीप में इसी समय उत्तर-पूरब के निरोमा गाँव जायँ। वह यहाँ से २९ मील है और वहाँ से छः मील आगे जापानियों का मोर्चा है । गाँव के उत्तर में बर्मी नागरिक छापामारों का काम करते हैं । इसी गाँव में हमारे टैंकों के तीन दस्ते कल बारह बजे पहुँचने वाले हैं । मेजर शर्मा वहाँ के गाँव को खाली करवायेंगे और जो ग्रामीण बचे हुए हैं उनको सुबह से ही ग्राम की दक्षिणी पहाड़ी की नींव में जो पेड़ों की पंक्तियाँ हैं, उन्हें कटवाने में लगा देंगे ।

पहले मेजर शर्मा के साथ तीन सैनिक भेजे जाने की व्यवस्था की गई । उसने सुझाया कि अकेला ही मैं ठीक हू और खतरे की वैसी कोई बात नहीं है ।

दो मील जीप चल चुकी तो शर्मा ने एक पेड़ के नीचे रुककर भोजन किया । 'रम' की कुछ मात्रा एक बोतल में शेष थी । शर्मा ने तीन घूँटें उसमें से पीं । सिगरेट जलाई और आगे बढ़ गया । भूख की व्याकुलता से जाने उसके जी में आज कैसी

धुकधुकी मच गई है।

अब वह स्वस्थ है। कल बारह बजे तक अपने टैंक वहाँ गाँव में पहुँच जायेंगे और कल शाम को झुटपुटा होने पर बम-वर्षकों की छाया में वे टैंक उस पहाड़ी पर चढ़ेंगे। अगर मुमकिन हुआ तो दो घंटे में पहाड़ी की उत्तरी घाटी हमारे हाथ में आ जायगी। शर्मा की कम्पनी के एक लैफ्टिनेंट पहाड़ी से तीन मील दूर निगरानी पर तैनात हैं और उसने संवाद भेजा है कि पहाड़ी की तीसरी घाटी में लगभग ८०० बर्मी और जापानी सैनिक एकत्र हुए हैं। इसीलिए उधर ग्यारह मील आगे बढ़कर उत्तर से वे इधर पहाड़ी को आकर घेर लेंगे।

जीप आगे बढ़ती गई। कभी-कभी मोर्चे की गोलाबारी का कोई स्फुट गर्जन सुनाई पड़ता है। वैसे तीन दिन से तीनों ओर के मोर्चों पर शांति रही है।

अब तो हमारी प्रगति जारी है। पहाड़ी एक प्रकार से ज़्यादा खून-खराबी नहीं लेगी। पर धीरे-धीरे कर शर्मा के परिचित सैनिक और अधिकारी खेत होते जा रहे हैं और मोर्चे पर नई शक्लें नज़र आ रही हैं।

शर्मा इस युद्ध की दुनियाँ में सिद्धहस्त हो चुका है। मृत्यु के कार्य-व्यापार को वह राजा जनक की नाईं विदेह बनकर देखता है और अपनी ज़िन्दगी के वर्षों की गिनती कर रहा है। इस युद्ध में वह मरेगा, यह बात उसकी आत्मा ने उसे चुपके से भी नहीं कही है।

पहाड़ी का घेरा! इस घेरे में सब भारतीय सैनिक भाग लेंगे। वह विजित हो जायगी, तो अंग्रेज़ अधिकारी वहाँ आकर अपना कैम्प गाड़ देंगे और नया हुकुम दिया जायगा कि हिन्दुस्तानी सिपाही अब उस दूसरी पहाड़ी को सर करें।

कहाँ है इस बेमायने युद्ध में भारतीय सैनिकों की देश-सेवा? यह तो देश की दास्ता की बेड़ियाँ और दुगुनी कसनी हुईं।

और शर्मा के दिमाग़ में भारतीय व अंग्रेज़ सैनिकों का अन्तर इस तरह से दीखने लगा जैसे तो किसी कागज़ की गुप्त लिखाई आँच की तपिश से सुस्पष्ट उभड़ आई हो!

दिन निकलने लगा और शर्मा ने उगते सूर्य को नमस्कार किया। भावावेश में वह मुँह से सीटी बजाकर एक सानेट की ट्यून बजाने लगा कि मुक्त हृदय से वह बोल उठा, "पूरवी दिशा हमारी है और उस पर किसी का अधिकार न हो। इस दिशा के दुश्मन अकाल मृत्यु को प्राप्त होवें।"

ग्राम आ गया। जीप उसने एक जले हुए झोंपड़े में छिपा दी। और पूरे गाँव की एक गश्त लगाई। पूरा उजाड़ गाँव। मनुष्य नाम की छाया भी न दीखी। ऐसा लगता है कि गाँव खाली हुए काफ़ी रोज़ हो चुके हैं। अब क्या करे? वह लौटेगा

ग्रौर दो मील पीछे पड़ी हुई एक सैनिक टुकड़ी के कुछ जवान जीप में बैठाकर लायेगा। तभी उन वृक्षों की कतारें काटी जायँगी । जीप को पीछे कर वह स्टार्ट करने को हुग्रा कि टन से कोई चीज़ जीप की पिछली टंकी में ग्राकर लगी।

रुका। उतरकर देखा कि क्या गोली लगी है? पर एक तीर है ग्रौर उसमें एक कागज़ बँधा है।

तुरन्त उसने खोलकर पढ़ा। रोमन अंग्रेज़ी में लिखा है, "हम सब हिन्दुस्तानी भाइयों का रास्ता रंगून की ग्रोर नहीं है । हमें तो दिल्ली फ़तह करनी है। दिल्ली चलने के लिए क्या ग्राप तैयार हैं?"

एक सिहरन! वह दुश्मनों से घिर गया है। एक कम्पन! कि उसने जीपकार घुमाई, उधर पेड़ों के झुरमुट में एक हरा कपड़ा हिलने लगा।

शर्मा के हाथ कठपुतली से हिले ग्रौर वह उसी सफ़ेद कागज़ को हिलाने लगा।

ग्रौर दूसरे क्षण जीप में बैठकर वह फ़ुल स्पीड पर पहाड़ी की ग्रोर बढ़ चला। वहाँ 'दिल्ली चलो' का मोर्चा तैयार है । उस मोर्चे पर अंग्रेज़ी सैनिक-ग्रधिकारियों की तानाशाही तो कम-से-कम न होगी।

जीप का हार्न बजाते हुए मेजर शर्मा ने एक हर्ष की चीत्कार की……

२४

नारी का प्रथम भविष्य-चिंतन

कील और स्क्रू-पेच के अन्तर पर मैं पिछले चार दिनों से सोच रही हूँ। यह मुझे जँच गया है कि कील ने कारीगर को कहीं धोखा दे दिया होगा, तभी स्क्रू की बात मिकैनिक के दिमाग़ में बड़े टेढ़े-मेढ़े चिंतन और माथापच्ची के बाद जगी होगी। क्या समाज के सीधे-सादे जोड़ और लगाव कालान्तर में ही पेचनुमा गठ-बंधन में तबदील हुए हैं ? मैं कील और स्क्रू का अन्तर, स्वस्थ गर्भ और मूढ़ गर्भ के अन्तर सदृश मानने के निष्कर्ष पर पहुँची हूँ। इस विश्व-युद्ध ने इंसान-इंसान के हर लगाव और आत्मीयता पर और सम्बन्धों पर इस तरह से पेच कस दिये हैं कि वे अलग होकर स्वस्थ मुक्ति चाहें तो भी अलग न हो सकें और युद्ध की विभीषिकाओं से विषाक्त विवशताओं को दिल ही दिल में रोते हुए बर्दाश्त करते रहें। अब जैसे मैं घर का त्याग कर (उनकी तरह, जैसे 'वे' कर गये हैं और वारफ्रंट पर सक्रिय बने हुए हैं) कहाँ जाऊँ ? घर की चहारदीवारी फाँदकर वे चलते बने। रजनी जेल की चहारदीवारी लाँघकर भी भाग निकला; घर की चहारदीवारों को तो वह पहले ही ठोसा दिखा चुका है। पर मैं घर की चौखट को पार करने में ही भय खा रही हूँ। सामने विस्तृत मैदान और खुला आकाश है। मुक्त पंछी-सी उड़ान भरने के लिए डैनें चाहिएँ। पर समाज ने स्त्रियों के पैरों को कछुवे के पैरों में रूपांतरित कर दिया है ताकि वह जगती की लहरों में मुक्त तैरना चाहे या विस्तृत दुनियाँ में भागकर जाना चाहे तो सिर्फ़ कछुये की चाल जा सके और तैर सके। सिंहनी की तरह या मृगी की तरह छलाँगें न भर सके ! पर सहसा ही परसों एक सी. आई. डी. ने घर पर आकर मुझे परेशान किया कि मैं रजनी का पता बताऊँ। मेरे रूखे उत्तरों को सुनकर वह चला तो गया, पर मैं बेहद घबरा गई कि कहीं मेरी भी दुर्गति वह कोतवाली में बुलाकर न करे। दूसरे ही दिन मैंने मृगी की गति घर से भागने का निश्चय किया और बड़े मुनीम जी को बुलाकर घर की चाबी दी। मुनीम जी हमारे दाम्पत्य के सब उतार (चढ़ाव तो कभी आया ही नहीं) देखते आ रहे हैं। क्या बोलते ? मुझे एकटक देखते हुए उनकी आँखें पथरा गईं कि छलछला आईं। कठिनता से मैंने कहा कि उन्हें पत्र दे दीजिये कि मैं देश भर में चल रही लू के थपेड़े खाने चली गई हूँ। सबसे पहले मैंने रिक्शी से भेंट करने का निश्चय किया। उसके गाँव का टिकट लिया और गाड़ी में सवार हो ढाई दिन बाद वहाँ पहुँच गई। उसके गाँव के मार्ग में तीन-चार गाँव

ग्रौर पड़े। सभी में नवयुवक नहीं हैं ग्रौर शहर कमाने चले गये हैं। मैंने यथार्थ में महसूस किया कि इस बड़ी लड़ाई ने सभी भारतीय गाँवों का अस्तित्व क्षुण्ण कर दिया है ग्रौर उन्हें बाध्य किया है कि वे दधीचि की हड्डी बनकर देश में अवतरित हो रही नई सभ्यता के भवन-निर्माण के ग्रौजार बन जायें।

मैं ग्रौर रिक्शी जैसे ही ग्रामने-सामने खड़ी हुईं कि किसी ग्रदृष्ट शक्ति ने हम दोनों को प्रगाढ़ ग्रालिंगन में कस दिया ग्रौर हम दोनों ही प्रेमाश्रु भार बैठीं। हल्की हुईं तो मकान के कच्चे फ़र्श पर जा बैठीं। सूझ नहीं रहा था कि क्या बातें करें। पहले मैंने सूचना दी कि रजनी जेल की चहारदीवारी लाँघकर कहीं लापता हो गया है। वह एकदम चौंकी, पर पेट के शूल की क्षणिक ऐंठन-सी तत्काल शान्त हो गई। बैठी-बैठी स्वेटर की सलाइयों में ऊन की गुत्थियाँ बुनती रही। एक स्वेटर लाहौर-जेल भिजवा दिया था पार्सल से। ग्रब दूसरा बुन रही है, क्योंकि रजनी ने फ़र्माइश भिजवाई थी कि दुग्ध श्वेत उजले ऊन की स्वेटर में वह विशेष स्मार्टनेस महसूस करता है। एक लम्बी चुप्पी के बाद उसने पूछा कि यह लड़ाई कब तक चलेगी। उत्तर में मैंने कहा कि रूसी फ़ौजें पीछा करती हुई नाजियों को ग्रास्ट्रिया तक धकेल लाई हैं। ग्रगर इसी बारिश में काम हो जाय तो ठीक, नहीं तो ग्रगली गर्मियों तक बरफ पिघलने की राह देखनी पड़ेगी। ग्रौर कुछ हँसकर मैंने कहा कि बहिन जी, कसर यही है कि ग्रभी जमी हुई बरफ में युद्ध रोक दिया जाता है। रिक्शी भी मुस्कराई। बोली कि बेचारी बरफ़ की ख़ूब चलाई। ग्रब वह ज़माना ग्राने वाला है कि लोग ज़िद्द कर कंचनजंगा की चोटी पर खड़े होकर युद्ध-रचना करेंगे ग्रौर उत्तर-ध्रुव को ग्रपने साम्राज्य में मिलाने के लिए विश्व-युद्ध खड़ा किया करेंगे!

एक लम्बे ग्ररसे के बाद मैं जी भरकर हँसी। देखा कि रिक्शी के माथे पर पति-वियोग की कोई कालौस नहीं ग्राई है। पूरी सुकुमारी राजकुमारी है। पूछा कि क्या करती रहती हो सारे दिन। बोली कि करने को कौनसा मोर्चा है जो परेड या मार्च करनी पड़ती हो। जब मन में ग्रा लिया, सो गई। पढ़ने में ग्रब तबियत नहीं करती। कालेज में ग्रनेक क्लब थे, उनसे भी तबियत ऊब चुकी है। ग्रागे क्लासेज़ में रिसर्च करने का विचार था, सो ग्रब मन नहीं है। नई दिल्ली की महिला-संस्थाएँ भी ग्राजमा लीं। वे तो सोडा-लेमन-सी हैं जिनके पानी में एक तेज़ तरारापन है, जो स्वाद में जबान को भ्रम देती हैं ग्रौर पेट का हाजमा ख़राब करती हैं।

वह हँसी तो मेरी हँसी दूर हो गई। रजनी को जैसी प्रखर-बुद्धि की साथिन चाहिए थी, वैसी ही नसीब हुई है। तीसरे प्रहर तक मैं उसकी कालेज-जीवन की मज़ेदार बातें सुनती रही। फिर हम दोनों जनीं खेतों में निकल गईं। उसके साथ कई ग्राम-कन्यायें भी थीं। वे चली गईं बट (हरे चने) ग्रौर कचरियाँ तोड़ने ग्रौर हम

कुएँ के पनघट पर जम गईं। मैंने रजनी के साथ बिताये बचपन के संस्मरण सुनाये। अपने विवाह का किस्सा बखान किया। वताया कि किस तरह रजनी फेरों के दिन मेरी माँ से खुल्लम-खुल्ला झगड़ पड़ा था और नादानपने में यह तक बोल गया था कि दूसरे युवक से व्याहकर माधवी को कोई सुख नहीं मिलेगा, यह मेरा श्राप है!! उस समय तीव्र वेदना थी, पर रजनी की वह बात सुनकर हँसी आ गई थी। रिक्शी ने सुना और हल्के-हल्के हँसती हुई बोली कि तो बाबा, वे पहुँचे हुए ऋषि-महात्मा भी हैं? फिर मैंने अपनी सुहाग रात की और गौनावली की रात्रियों की ताज़ा कहानी सुनाई। रजनी जितनी बार मेरी ससुराल गया पागल वनकर, उसकी दास्तान सुनाई। रजनी ने जो-जो पत्र विवाह से पहले और मेरी ससुराल लिखे थे, कंठस्थ सब रिक्शी को सुना दिये। वह मेरे गले में अपनी बाँह डाले प्राण-सखि-सी सब सुनती रही। मैं रुकी तो बोली, "बहन जी, युवकों की जवानी को सीधी राह बहने देना ही अच्छा रहता है। जाने क्यूँ हमारे अशिक्षित माता-पिता सनातन रीति का ढोल पीटते हैं और युवकों की जवानी को पहाड़ी की घाटियों में बहने पर मजबूर करते हैं। तो वे अब आपको जीजी कहते हैं?" उत्तर में मुझे बरबस ढेर-सी हँसी बहा देनी पड़ी।

रिक्शी बोली, "हम स्त्रियों के साथ यही विडंबना है। मातृत्व की मृग-मरीचिका के पीछे म वे 'राम' बना दी जाती हैं, जिनका आखेट कभी आजीवन पूरा नहीं होता और न वह मारीच राक्षस सोने के मृग के रूप में 'हा सीते!' ही चीखता है। जैसे नई दिल्ली की सड़कें हैं कि इधर साइकिल चलें, उधर पैदल वाले और इधर बसें और इधर कार, उसी तरह समाज ने स्त्री को एक चौड़ी सड़क मान लिया है कि इधर उसे बहन मानने वाले चलें, इधर माँ मानने वाले, इधर पत्नी मानने वाला चले और इधर अन्य रिश्तेदार। पत्नीत्व और मातृत्व इति-श्री-सी वे दो नकाबें हैं जो स्त्री को बाध्य होकर पहननी पड़ती हैं। जैसे तो मातृत्व के और अणु-परमाणु अब विघटित न हो सकेंगे। यही स्त्री का प्रथम-अंतिम सत्य है जैसे।"

मैं तन्मय मुग्धा बनी हुई रजनी की नवेली बहू के मर्म का परिचय लेती रही। अब तीज की चंदिया नई ब्याही हुई ननद-सी दूर खड़ी हमें ईर्ष्या में देख रही थी।

रिक्शी मेरे चेहरे के भावों को पढ़ती हुई आगे बोली, "पर यह गलत है। मातृत्व हमारा अन्तिम सत्य नहीं, यह दुर्बुद्धि अन्धे दार्शनिकों का सत्य है। मातृत्व के आगे भी एक और पड़ाव है जो हमारा वास्तविक स्वर्ग हो सकता है, चिद्विलास बन सकता है। चौबीसों घण्टे हर गृहिणी को चूल्हा-चक्की की बात सुनाना मुझे ऐसे लगता है कि गोया आम-जामुनों के बाग का रखवाला आवाज़ लगा-लगाकर पेड़ों से तोते और चिड़ियों को हाँक लगा रहा हो। दुनियाँ में बात हो रही है एक विश्व की और

कन्वोकेशन में मुझे सीख दी गई थी स्वस्थ गृहस्थी बनाने की। पर आज की स्वस्थ गृहस्थी तो ऐसी चिड़िया है, जिसके पख कटे हुए है, पैरो मे जिसके घुँघरू बँधे है और जो पिजरे मे बन्द है।"

इसी समय ग्राम-कन्याएँ हरे छोलो को भूनकर ले आई और हम उन्हे छीलकर खाने लगी। साथ ही उन अबोध कन्याओ के बेमिलसिले प्रश्नो का उत्तर भी देती रही। उनकी इन बातो से थककर रिक्शी ने कहा कि अच्छा, तीजें गाकर सुनाओ।

रात के दो बज गये। हम दोनो अनिर्वचनीय आनन्द का उपभोग करती हुई कन्याओ के सुरीले कण्ठो से तीजो का रस लेती रही। एक कन्या हमारा भोजन घर से ले आई थी, उसे हम कब खा बैठी, नही जान पाई। जब लौटी तो रिक्शी बिस्तर पर करवट लेते ही खुर्राटे भरने लगी। पर मैं नही सो सकी। जिस मातृत्व के क्लेश मे मैने अपनी गृहस्थी दो टूक तोड दी है, उसी मातृत्व की नई परिभाषा यह रिक्शी कितने सरस और जीवित तौर पर मुझे दे रही है। एक स्त्री या तो किसी की सिर्फ माँ हो सकती है या किसी की पत्नी या फिर बहन। भाभी आदि सबोधन तो समाज ने अपने मनोविनोद के लिए बना लिये थे और उसी मनोविनोद की चरमसीमा पर जो विजय-गढ चिना था वह था वेश्या का। यह निर्लज्ज समाज आज भी इस गढ़ को कितने सयम से पूरी कीमत चुकाकर सुरक्षित बनाये हुए है। पर रिक्शी का भविष्य-चिन्तन मुझे एक नया प्रकाश दे रहा है।

दूसरे दिन भी दुपहर ढलते ही हम खेतो के बीच उसी पनघट पर जा धमकी। कल की बात का सिलसिला खुद ही शुरू करते हुए रिक्शी बोली, "हमें चाहिए कि अपना शब्दकोष हम स्वय बनाये। मनु तो खेतो मे टाँगी हुई वह हँडिया है जो जगली पशुओ को खेत मे घुसने का भय देती रहती है। उन जगली इसानों के लिए मनु का हौवा ठीक है। पर हम जैसे स्वस्थ और सुसस्कृत स्त्री-पुरुष क्यों हौवे की परिधि में जीवित रहे? यह स्त्रीत्व शब्द अपना सारा दूध दुहा चुका है अब। जब इस शब्द का गठन हुआ होगा, तो इसका भावार्थ यही रहा होगा :

"ओ स्त्रियो, हम बन्दी-युवक मृत्यु के मुख से लौटे है,
हम जीवन चाहते है।
तुम वह दान दो, दृष्टि दो, गति दो
और, दो हमें नव मुक्त-प्रकाश!"

और यह गाकर वह एक असीम हँसी सुहावनी वर्षा-सी झार बैठी। उसके सुन्दर गोरे मुखड़े पर प्राँजलता छाई हुई है।

चार रोज बाद विदा लेकर मै बहल में बैठी। मैने कहा, "घर से तुम्हारे देवता को ही खोजने निकली हूँ। यह हक मैने स्वयं ले लिया है। उस देवता की

देवी तो तुम्हीं रहोगी । अवसर मिला तो तुम्हारी भी आराधना करूँगी । भला क्या वरदान दोगी ?"

वह हँसते-हँसते हठात् करुणा से भर गई । बोली, "अभी तो आप वरदान दें कि सरकार मेरे जेल से फरार सुहाग पर कहीं गोली न दाग़ दे ।"

विदा-क्षणों को मैंने सरस ही रखा । उससे बोली, "मंजूर है । तुम्हारे देवता को सुरक्षित ले आई तो पुरस्कार लूँगी लम्बा-चौड़ा ।"

मेरी बात सुनकर ग्राम की सब बड़ी-बूढ़ियाँ हँस पड़ीं । रिक्शी भी प्रेमाश्रुभरी पुलकायमान हो गई ।[1]

१. माधवा की डायरी से । तिथि नहीं है ।

२५

नर-कंकालों का विजयी मार्च-पास्ट

सियालदा स्टेशन के सामने एक दुकान पर बोर्ड टँगा है। उस पर अंग्रेज़ी में लिखा है—

**"जब बंगाली जीवित रहता है तो कौन मरता है ?
और कौन जीवित रह सकेगा, जब बंगाली ही मर जायगा ?"**

रेवती ने पढ़ा और लिखने वाले की नपुंसकता पर कुढ़कर रह गया। कलकत्ता की हर सड़क पर आज बंगाली ही बंगाली मर रहा है और इस प्रान्त की व्यापक मौत के क्षणों में पूरा देश जश्ने-जम्हूरियत मना रहा है।

वह हरिसन रोड पर बढ़ गया। सड़क के दोनों ओर फुट-पाथों पर नर-कंकाल पड़े हुए हैं। कुछ हैं कि मर चुके हैं। कुछ हैं कि ज़िन्दा हैं और भयावनी मौत से भयावह हो उठे हैं।

सरकार ने बंगाल में अकाल घोषित कर दिया है। देश की कार्य-क्षम सेवा-समितियाँ इस घोषणा के सुनते ही उत्साहित हो उठी हैं। ये देश की सेवा-समितियाँ निर्लज्ज पूँजीपतियों और समाज के रक्त-शोषक तत्त्वों के हरम के हिजड़ों के अतिरिक्त भला क्या हैं ? जिनका निज न स्त्रीत्व हो, न पुरुषत्व हो। जो उन्हीं नर-राक्षसों की कृपा पर जीवित हैं, जिन्हें न जाने क्यों अपने ६०-७० वर्षों के दानवी दीर्घ जीवन में कुछ चन्द मिनट दया उपज आती है और उस दया का दुष्प्रयोग सम्पूर्ण मानवता के नाम पर कुछ रुपये ऋण देकर (अरे, वह दान कतई नहीं है !) वे यह करते हैं कि कर्ण और दान-वीर व्यक्तियों की कोटि में अपना नाम प्रकाशित करा लेते हैं।

उधर वह माँ मर चुकी है, पर उसका बच्चा उसकी शुष्क छातियों को चूस रहा है···उधर कूड़े-खाने में देश के पाँच नौ-निहाल शिशु सड़ाँध-भरे भोजन के कण बीन-बीनकर निकृष्ट घृणा फैला रहे हैं···कंकाल-मात्र वह बुड्ढा अपनी असहाय पलकों को झपक रहा है और उसकी बिन-माँस की गोदी में एक तीन साल का बच्चा बिलख रहा है···कि शनैः-शनैः चुप होकर मर जाता है···उधर बड़े मकान की तीन मंज़िल से दो झूठी रोटियाँ फेंकी गई हैं···उस पर ४० भूखे स्त्री-पुरुषों की भीड़ टूट पड़ती है और आपस में मार-पीट शुरू हो जाती है। यह लो उस युवक ने उस बुढ़िया को मारने के लिए जो हाथ उठाया तो उसकी तीन हाथ लम्बी जर्जर फटी साड़ी उसके हाथ में आ गई और बुढ़िया नग्न हो गई, पर भूख ने दोनों को अंधा बना रखा है और

एक दूसरे को जाने क्या गालियाँ बक रहे हैं···१००-१५० स्त्री-पुरुषों का यह दल इस शहर में नया (ओह !) आया है; मार्ग की पैदल-यात्रा ने इनकी हड्डियाँ ढीली और शिथिल कर दी हैं और मौत ने जो रत्ती-भर दृष्टि निःशेष कर रखी है, उसी से अपनी पुतलियों को इधर-उधर घुमाते हुए आगे बढ़ रहे हैं कि कहाँ जाकर बसेरा करें ? दोनों फुटपाथों पर उन्हें एक भीड़ दिखाई देती है जो उन्हीं-जैसे भूखे नर-कंकालों की है, पर जिन्हें वे नहीं पहचानते और उन पर क्रोध में बड़बड़ाते हैं कि क्यों नहीं इन दुष्टों ने हमारे लिए ज़रा-सी जगह खाली रख छोड़ी है कि उनमें से एक बुढ़िया लड़खड़ाकर साँस फूल जाने से गिर पड़ती है। यह सच है कि वह मर गई है। पूरा दल रुकता नहीं है । पीछे मुड़कर उसे उड़ती नज़र देख लेता है और आगे बढ़ जाता है।

रेवती ने उस दल को और उस बुढ़िया को नमस्कार किया। हिमालय के पथ पर जब अर्जुन लड़खड़ाकर गिरकर मर गया तो धर्मराज युधिष्ठिर अमर-निर्मोही के रूप में इसी प्रकार आगे बढ़ गये थे। और बढ़ते चले गये थे कि वह क्षण उपस्थित हो कि वे भी यूँ ही लड़खड़ाकर गिरें और मर लें···

रेवती ने आँसुओं से तर आँखों से स्पष्ट देखा कि न तो यह श्मशान-भूमि है और न यह युद्ध-भूमि है जहाँ आकाश से अकल्पनीय वज्रपात हुआ हो। और न देवताओं के रौद्र से प्रकुपित यहाँ कोई महामारी फैली है।

ट्राम में चढ़ा तो कुछ दूर बढ़कर देखा, यहाँ से वहाँ फुटपाथ पर शुष्क-चर्म से मण्डित नर-कंकाल पड़े हैं। जीवित पड़े हैं तो भूख से तड़पने-कलपने की शक्ति उनमें बची नहीं रह गई है। मुँह खुला हुआ है कि शायद इस अन्तिम क्षण भगवान् ही दयार्द्र होकर अपना कोई झूठा कौर उनके मुँह में डाल दें।

तो यह क्या है ? सिहरकर रेवती ने अपनी आँखें उधर से हटा लीं। युद्ध का रण-क्षेत्र मनुष्य के बनाये क़ानूनों से न्यायोचित है। लेकिन ये कई सहस्र भूखे नर-कंकाल—और न जाने कितने सहस्र बंगाल के कौन-कौन से कोनों में पड़े हुए हैं—भी क्या मनुष्य के बनाये क़ानूनों से न्यायोचित रूप में मर रहे हैं ?

मनुष्य का न्याय और उसका औचित्य ! भारी हृदय से रेवती ने निःध्वनि कहा, "भगवान् ! इन भूखे मरतों को अगले जन्म में चूहे बनाना कि आज के शासन का समस्त अनाज वे खा जायें और उस शासन के घर-जँवाई इसी तरह इन्हीं फुटपाथों पर भूख से तड़पकर मर जायें।"

ट्राम चल रही है और दोनों फुटपाथों पर सरकार और पूँजीपतियों के अनैतिक गठ-बंधन का कोढ़ रिस रहा है, बह रहा है। नरक की आकाश-गंगा का आज कोई कंगूरा टूट गया है और भूमि में वह फूट उठा है। अरे, इसी सुराख से साक्षात यम

भी अपनी सेना के साथ प्रकट क्यों नहीं हो जाते ?

तो यह क्या है ? रेवती ने ट्राम से उतरकर अपनी कोठी में घुसते हुए स्थिर पलकों से पूछा ।

दरवान ने कहा कि सेठ सा'ब आपको याद कर रहे हैं ।

रेवती ने चाचा जी के कमरे में प्रवेश किया । अभी पूजा-पाठ उनका समाप्त हो चुका है और दार्शनिक-मूड में बैठे हैं । देखते ही बोले, "आओ, रेवती बाबू ! बैठो ।"

रेवती उनके पास सोफे पर बैठा तो महाराजिन केसर पड़े दूध के दो गिलास छोटी टेबिल पर रख गई । एक गिलास खुद लेकर चाचा जी ने दूसरा गिलास उसके हाथ में थमा दिया । आधा गिलास वे पी चुके तो बोले, "अभी तक उस आदर्श-संस्था की योजना नहीं दी हमें ? क्या तैयार नहीं की ? मेरा ऐसा ख्याल है कि बंगाल में वह घड़ी आ चुकी है कि हम छोटे-मोटे आदर्शों को भूलकर जगत्-व्यापी आदर्श की नींव पक्की कर डालें । प्रान्त में यहाँ सरकार ने अकाल घोषित कर दिया है ।" वे एक क्षण रुके कि शायद रेवती कुछ कहे । तो आगे बोले, "रात मुझे एक स्वप्न आया है । मैं एक बड़े बीहड़ बन में भटक रहा हूँ । चारों ओर हिंस्र-जीव भटक रहे हैं । मैं सीधा मार्ग ढूँढ़ रहा हूँ कि उस पर चलकर किसी गाँव या किसी नगर में पहुँच जाऊँ । वे माँस-भक्षी जीव किसी शिकार की टोह में भटक रहे हैं । उन्हें वहीं जंगल में यह प्राप्त हो जाय तो वे दूसरी जगह नहीं जायँगे । गाँव और नगर मनुष्य ने बड़े श्रम से, अपना पसीना बहाकर बसाये हैं । उसे उन्हीं से मोह है । उससे बाहर रहकर पुरुष को शान्ति नहीं मिलेगी । इसलिए मैं राम का नाम सुमरण करने लगता हूँ । हनुमान चालीसा का पाठ शुरू कर देता हूँ । राम-नाम से व्यक्ति अथाह सागर को पार कर जाता है । तो मुझे एक वन-सुन्दरी एक पेड़ पर बैठी दिखाई दी । वह करुण-विलाप कर रही थी । मैंने उससे कहा कि क्या तुम्हारी कोई सहायता कर 'सकता हूँ ? तो बोली, 'चारों ओर लोग भूख से मर रहे हैं । तुम उनकी कुछ सहायता कर सको, तो तुम्हें इस बीहड़ वन से छुटकारा मिल जायगा और मेरी आत्मा को शान्ति मिलेगी ।' बस, फिर मेरी आँखें खुल गईं ।" और चाचा जी रुके । रेवती को देखने लगे कि वह कुछ अब भी कहे । पर रेवती उनके आगे नितान्त चुप रहता है, तो आगे बोले, "रेवती बाबू, इस काम को तुम अपने हाथ में ले लो । मैं आज ही पच्चीस हज़ार रुपया तुम्हें दिलाये देता हूँ । मेरे इस दान की घोषणा कल समाचारपत्रों में छपवा दो । मेरा फोटो भी छप जाय तो और भी अच्छा रहेगा । इन २५ हज़ार रुपयों को तुम जैसा चाहो खर्च कर सकोगे ।" कि फोन की घण्टी बजी । चाचा जी ने उस पर क्या बातें हल्के-हल्के कीं सो ठीक समझ में नहीं आया । 'रिसीवर' रख चुके तो

शीघ्रता से उठ बैठे। बोले, "चलो, कपड़े बदल लो। चीफ़ मिनिस्टर के सेक्रेटरी साहब ने बुलाया है।"

कार में बैठकर दोनों जब चीफ़ सेक्रेटरी के बँगले पर पहुँचे तो वहाँ एक लम्बी भीड़ लगी हुई थी। नगर के बड़े सेठ और लखपतियों के कँवर साहब और बड़ी फर्मों के पारसी बौहरे और मुस्लिम सज्जन किसी प्रतीक्षा में उपस्थित हैं कि अन्दर से चीफ़ सेक्रेटरी के 'पर्सनल-सेक्रेटरी' बाहर आये। एक शानदार मुस्कराहट से उन्होंने सब आगतों को अन्दर चलने का आदेश दिया।

सेक्रेटरी के सामने एक अर्द्ध-गोलाकार में पड़ी कुर्सियों पर सब जब बैठ चुके तो उन्होंने रेवती को मुस्कराकर अपने पास की कुर्सी पर बुला लिया। कुशल-क्षेम पूछी और हँसकर कहा, "अब वह मोर्चा तैयार है, जहाँ तुम्हारा हाई-कमाण्डर स्थापित किया जा सकता है।"

रेवती अन्दर रो रहा था। बाहर उसने लोकाचार की हँसी प्रदर्शित की और कहा, "मैं तैयार हूँ, 'वार-डिक्लेरेशन' आप कर दीजिये।"

उत्तर में मुक्त खिलखिलाकर सेक्रेटरी साहब ने सबको संबोधित किया, "शहर के मेरे रईस और खुश-नसीब दोस्तो! कुछ चन्द बातें हम और आप पिछले एक महीने से देख रहे हैं। वे बातें क्यों पैदा हुई हैं यह तो एक बहस का मसला है और हमें उस मसले को बहस न बनाकर उसके हल का कोई ज़रिया निकालना है। हिन्दुस्तान अभी तक अपनी असली ज़िन्दगी-मौत की लड़ाई में जूझा हुआ है। हमारे पास फ़ुर्सत नहीं है कि हम देश की ग़ैर-ज़रूरी परेशानियों में मुब्तिला रहें और अपने असली बढ़ते हुए क़दमों को भूल जायँ। मौजूदा बंगाल की भुखमरी मेरे यक़ीदे के मुताबिक़ बेमायने की चीज़ है? और सरकार का इससे कोई सरोकार नहीं है। भुखमरी, आप ही बताइये, कहाँ नहीं है। दुनियाँ के सब देश इस लड़ाई में तबाह हो चुके हैं। खुद हिन्दुस्तान का 'डिफेंस बजट' दुगने से ज़्यादा हो चुका है। भुखमरी तो लड़ाई का एक पहलू है और जो इंसान लड़ाई के मोर्चे पर जाने से अपना मुँह छिपाते हैं वे अगर घर में रहकर भूखे रहते हैं, तो उन्हें चाहिए कि ज़रा हिम्मत से कमर बाँधकर भूखे रहें। मैं परेशान हूँ कि आख़िर ये भूखे लोग क्यों गाँवों से भागकर इस कलकत्ता शहर की अस्मत को गंदा करने पर तुले हैं। ख़ैर, यह गंदगी अगर एक बड़े पैमाने पर कलकत्ता में छा रही है तो आप इंसान-परस्तों का कुछ फ़र्ज़ है। मैं चाहता हूँ कि आप सब मिलकर एक क़मेटी बना लें और एक बड़ा रिलीफ़ फण्ड खोलकर इन भूखों की मदद करें। सरकार आपके साथ पूरी-पूरी हमदर्दी रखती हुई आपके हर काम की माँगों को भरसक पूरा करने की कोशिश करेगी।" और वे एक मुस्कराहट के साथ बैठ गये।

इसके बाद जो बहस हुई उसमें एक बात रेवती को स्पष्ट हो गई। सेक्रेटरी साहब जितना रुपया रिलीफ़ में कहें दे दिया जाय, ताकि किसी भी ब्लैक मार्केट के काम में निःशंक होकर हाथ डाला जा सके। दान का रुपया घर में तो उगता नहीं, कहीं से कमाया ही जायगा। और इन दिनों कमाई का सिलसिला सरकार ने बाहरी रूप से तो बन्द कर दिया है। अन्दरूनी रूप से जो कुछ हो सकता है, यही बस बरक्कत समझो।

रेवती अपने स्थान पर बैठा हुआ तड़पता रहा। ये भुखमरे क्यों शहर में आ रहे हैं? और यह अकाल बेमायनी की चीज़ है! आज युद्धकाल में सरकार के ठीक मायने क्या हैं? उसे उत्तेजना तो यह हुई कि इसी क्षण इस चीफ़ सेक्रेटरी का गला घोंटकर मार दे जो एक बड़े पैमाने पर मरती हुई रिआया से अपना कोई सरोकार नहीं रखना चाहता।

पर शीघ्र ही लोगों ने अपने नाम के चंदे की घोषणा करनी शुरू की। रेवती ज़रा उठकर इधर आया तो सुनने लगा, चाचा जी पीठ किये एक पारसी करोड़पति से कह रहे थे, "आप पन्द्रह हज़ार तो बोल ही दें। २५ हज़ार मैं लिखाये देता हूँ। कुल चालीस हज़ार हुए। अगर चीफ़ सेक्रेटरी साहब इन भिखमंगों को लाँग-क्लाथ देने का ठेका हमें दे दें तो ये चालीस हज़ार भी निकल आयेंगे और दस-दस हज़ार हमें आपको बच रहेंगे।"

पारसी सज्जन ने कहा, "हम को आपका प्रपोज़ल में कोई उज्र नहीं है।"

एक सुन्दर मुस्कराहट के साथ चाचा जी ने २५ हज़ार अपने नाम से लिखा दिये।

डेढ़ लाख की राशि इकट्ठी हो चुकी तो एक कमेटी बनी और रेवती इस कमेटी का अवैतनिक सेक्रेटरी घोषित कर दिया गया।

तो क्या रेवती बज्र-मूर्ख है? वह चाचा जी के आदर्शों की झूठी टकसाल के कारखाने का खुशनुमा साइनबोर्ड क्यों बनता जा रहा है? आखिर क्यों? लेकिन सेक्रेटरी को उसने धन्यवाद दिया और इस डेढ़ लाख को किस प्रकार खर्च किया जायगा, इस सम्बन्ध में कल एक योजना तैयार कर लाने का वचन दिया।

कार में बैठकर चाची जी ने बड़े प्रेम से रेवती के कन्धे पर हाथ रखा और कहा, "मेरी आत्मा को बड़ी शान्ति मिली है कि सेक्रेटरी साहब ने तुम्हें एक बड़े पद पर आसीन किया है। सरकारी अफ़सरों की यह मित्रता बनी रहेगी तो किसी दिन कलकत्ता कारपोरेशन के चेयरमैन भी बन जाओगे।"

एक और नया प्रश्न—कलकत्ता कारपोरेशन?

अब फुटपाथों पर भूखे नर-कंकाल दिखाई देने लगे हैं। उधर आठ-नौ स्त्रियाँ

अर्द्ध-नग्न मुंह फैलाये विभ्रम हुई न जाने अन्तरिक्ष में क्या तक रही हैं। उनके साथ एक स्वस्थ युवती है पर जो इस समय तो भूखी है और एक गुण्डा हँस-हँसकर जाने उससे क्या बात कर रहा है···

कार आगे बढ़ गई। चाची जी ने इधर-उधर नज़र नहीं हिलाई। सीधे देखते रहे तो बोले, "ईश्वर किसी एक व्यक्ति को दैहिक कष्ट देता है, यह बात तो समझ में आती है। दो-तीन हज़ार व्यक्तियों को अचानक ऐसे घेरकर जब वह मारता है, मानों दुश्मन की किसी फ़ौज को उसने चतुराई से एक घेरे में घेर लिया हो, यह बात समझ में नहीं आती है।" और चुप हो गये।

रेवती ने आज महसूस किया कि अपनी पूँजी को जब कहीं बिना दाम किसी को खिलाने के लिए पूँजीपतियों को अनिवार्यतः विवश होना पड़ता है तो वे दार्शनिक बन जाते हैं।

दोनों ओर नर-कंकालों का करुण वीभत्स परनाला और बीच में नई से नई कारों का आवागमन। किसी को किसी से सरोकार नहीं, मानों चाचा जी किसी विमान में बैठकर किसी देवता की नाईं नरक का विहार करने निकले हों।

बोले, "कल दुपहर तक तुम्हें इस सम्बन्ध में योजना पेश कर देनी है। और भाग्य के बड़े बुलन्द हो कि जिस श्रेष्ठ आदर्श संस्था की तुम तलाश में थे, उसकी नाड़ी तुम्हें ही टटोलने दी गई है। आदर्श की बातें तुम ज़्यादा जानते हो, इसलिए मैं कुछ नहीं कहूँगा। परन्तु आदर्श की नाव एक जगह पड़ी रहेगी तो सिर्फ़ उत्ताल तरंगों की चोट खाती रहेगी और इन उत्ताल तरंगों पर नृत्य करने का आस्वादन न ले सकेगी। आदर्श नाव तो सार्थक रहेगी वही, जो पर्यटन करती रहेगी। इसलिए मेरा एक सुझाव है डेढ़ लाख की सम्पत्ति आजीवन साँसों के साथ सँभल-सँभलकर ख़र्च की जा सकती है, एक दिन में भी उसकी होली जलाकर खेली जा सकती है। तुम अपनी योजना में यह बात रखना कि 'रिलीफ़' का माल उसी स्थान से ख़रीदा जाय जो 'ब्लैक' की दरों से भले ही वस्तुएँ बेचें, पर जो स्थायी रूप से दो हज़ार प्रति मास इस 'रिलीफ़' में बराबर दान देता रहे।"

जापानी खिलौने की नाईं रेवती ने अपनी गर्दन हिला दी।

घर पहुँचे तो रेवती स्नान-गृह में घुस गया। बेचैनी से उसका शरीर तप्त हो चुका था। वहाँ से शीतल होकर आया तो बग़ल के आराम-गृह में चाचा जी और चाची जी बातें कर रहे थे।

चाची जी—"एक बात तो म्हांने भी सूझी है। थम ने २५ हज़ार का दान दिया सो चोखी बात रही। पर एक कसर रहगी।"

चाचा जी—"और रेवती की योजना अगर साहब ने मान ली तो हर महीने दो

हज़ार और देना पड़ेगा।"

"सो क्यों ?"

"अरी, थारी अकल है मोटी। यो अकाल एक-दो दिन के मांये थोड़ो ही ख़तम हो जाय लो। ऐनें कम से कम छः महीना चाहिए कि सब नर-कंकाल खत्म हो लें और जिन्दा बच रहें तो दुवारा बस लें। जानवर ने तो गला में रस्सा बाँधकर कहीं भी बसायो जा सके है। मनुष्य को बसानो जरा टेढ़ी खीर है, मकान चिननो से भी टेढ़ो।"

"सुनी है कि जवान लड़कियाँ दो-दो रुपयाँ में बिक रिही हैं।"

"सो तो कोनी सुनी।"

"हाँ, दरबान लोग आपस में बातां कर रिया था। तो थम भी आठ-दस जवान लड़कियाँ खरीद मँगाओ। धरम को धरम कि उनका प्राण बचावोगा और थम ने भी इधर-उधर भटकन की ज़ुरत ना पड़ेगी। शासतर में लिखो भी है कि पुरुष जवान लड़कियों से संभोग करै तो बाकी उमर वढ़ै है। म्हारो सुहाग लम्बी उमर पावै, इससे अधिक म्हांने कोई चाह नहीं है।"

"या तो थम ने एक ही कही। थारी देवरानी भी तो जवान थी। पर ऊँ की तरफ देखनां में तो तू सिर-आसमान एक कर देवै थी।"

चाची जी कुछ चुप रहीं। तो बोली, "वा बात म्हारे हिवड़ा में ईर्षा की आग जलावै थी। या तो मैं खुद थम से कह रही हूँ। थम अभी दरबान ने भेज दो। जाने बिचारी और कहीं बिकीं तो के पतो वेश्यावृति करन पर उनाने जोर दियो जावै। ऐसे बढ़कर धरम को काम के हो सकै है।" और चाचा जी ने महाराजिन को आवाज़ फेंकी कि दरबान को बलावो। तत्क्षण दरबान आया तो जाने फुसुर-फुसुर चुप शब्दों में चाची जी ने उससे क्या कहा।

रेवती बैठा सुन रहा था कि भोजन की थाली उसके आगे परोस दी गई। उसे झुँझलाहट आई कि यह अमूल्य भोजन की थाली, जिसमें १२ कटोरियाँ विभिन्न षटरस भोजन से सजी हुई हैं, उठाकर फेंक दे। बंगाल का अकाल जलील इंसानियत के पर्दे चीर-फाड़कर दिखा रहा है कि हमारे समाज के जर्जर वर्तमान पर सिर्फ़ जर्जर भविष्य ही खड़ा हो सकेगा। पर एक ये चाचा-चाची हैं जो नर-कंकालों के नाम पर लम्बा मुनाफ़ा कमाना चाहते हैं और भूखी युवतियों को खरीदकर अपना यौवन और सुहाग दीर्घ करना चाहते हैं। ओह! जैसे किसी ने एक हथौड़ा उसके सिर पर दे मारा हो।

भोजन उससे नहीं खाया गया। जैसे-तैसे निगल लिया। क़ै नहीं हुई, यही सब्र रहा। तो चाचा जी इधर आये। उन्हें जैसे अकाल ने चिंतित कर दिया हो, अपनी

आवाज़ को पर्याप्त तरल करते हुए कहा, "आज शाम तक तुम यहीं बैठकर योजना बनाओ। मैं गद्दी पर जा रहा हूँ। मेरा विचार एक और है। तुम्हारी चाची के नाम पर कलकत्ता में बीस-तीस जगह तीन-तीन फुलके और एक-एक चम्मच सब्ज़ी सुबह एक घण्टा बाँटने की व्यवस्था करनी है। शाम को मैं जल्दी ही यहाँ आऊँगा, तब पूरी बात करेंगे।" और वे कपड़े पहनकर कार में बैठ बाहर चले गये।

रेवती बैठा रहा। लंका नगरी में विभीषण कैसे रहता होगा, इसका कुछ आभास उसे आज हुआ। बेमन वह योजना बनाने बैठा तो फुटपाथों का दृश्य स्थूल रूप में पुतलियों के आगे झूलने लगा। इस महानगर में पहुँचकर भी भूखे नर-कंकालों को कोई आश्रय नहीं मिला है और क्षण-क्षण में हज़ारों पुरुष-स्त्री-बच्चे प्राण तज रहे हैं……

नहीं। रेवती चाचा जी और धनपतियों और सरकार की बेहूदगियों की दुर्गन्ध से घबराकर नहीं भागेगा। जमकर वह योजना बनाने बैठा तो शाम के चार बज गये। साँस लेकर उसने चाय के लिए अन्दर महाराजिन को आवाज़ दी तो वह जाने क्या बड़बड़ाती आई। बोली, "कँवर सा'ब म्हारी सेठानी सा'ब भी पूरी सती-सावित्री हैं। दस लड़कियों का उन्होंने उद्धार कर मँगवाया है। बाज़ार में पड़ी रहतीं तो जाने उनके साथ क्या कुकर्म होता?" लपककर गली की खिड़की से उसने देखा, दस अर्द्ध-नग्न बंगाली षोड़शियाँ स्तब्ध खड़ी हुईं शून्य दृष्टि से पलकें झपक रही हैं। चाची जी ने अभी हुकम दिया है कि इनके लिए स्टोर में से जो फटी साड़ियाँ हैं ले आओ और इन्हें खिचड़ी खिलाओ। जैसे तो रेवती की लंका में दस सीतायें बन्दिनी बनाकर ले आई गई हों और मन्दोदरी एक कुटिल आवेश में अत्यंत प्रसन्नता से चीख रही हो।

इच्छा तो उसकी यही हुई कि इस योजना को फाड़ फेंके और घर से भाग खड़ा हो। चाय पीने की उसकी इच्छा मर चुकी थी, पर चाची जी स्वयं उसे उदास देखकर अपने हाथों चाय पिला गई। थोड़ी देर बाद चाचा जी भी लौट आये। और सीधे वे रेवती के कमरे में आये। चेहरे पर उनके एक स्मित-हास की रेखा चपला बनी हुई थी। वे रेवती से बातें करें कि चाची जी अन्दर आईं और उन्हें पकड़कर ले गईं। बड़बड़ा रही थीं कि 'भगवान्, स्त्रियों को ऐसा कष्ट कभी न दे!'

जाली की खिड़की से रेवती ने देखा कि चाचा जी ने गम्भीर दृष्टि उन दसों ख़रीदी गई लड़कियों को एक नज़र देखा। घर के श्वेत वस्त्रों से ढँककर और थोड़ी खिचड़ी खाकर उनके चेहरे पर कौमार्य का मद उछल आया है, पर वे निर्जीव-सी बैठी हैं कि हम कहाँ हैं? वे अवश्य फूटकर रो उठना चाहती हैं कि उनके घर के प्राणी तो सब भूख से मर चुके और चंद रोटी के टुकड़ों में बिककर वे यहाँ क्यों आई हैं?

शहर में तो ये सिर्फ़ अपनी क्षुधा शांत करने आई थीं । जीवित चर्म की इन की क्षुधा अब बलात्कारी भाव में जो शांत की जायगी, वह भला क्यों ?

एक सहस्र बर्छियों ने रेवती को छेद दिया । वह इन बिकी हुई लड़कियों के एवज़ में रो उठना चाहता है ।

चाचा जी लौट आये । रेवती के सोफ़े पर बैठकर रेवती की योजना पढ़ी तो उनकी बाँछें खिल गईं । अतीव प्रसन्न-मुद्रा में बोले, "सुनो, इन डेढ़ लाख के अलावा हम तुम्हें आज रात को पचास हज़ार और दिला देंगे । आज अपने कौल साहब ने गवर्नर साहब की पैटरनेज में ग्रेट-गार्डन होटल में अकाल की सहायता के लिए डांस का 'चैरिटी-शो' रखा है । जल्दी इंगलिश सूट पहनकर वहाँ होटल पहुँच जाओ । दो अंग्रेज़ी-डांस होंगे, एक इंडियन ।"

डांस ! युद्धकालीन सभ्यता का वैचित्र्य !

रेवती उठा । जल्दी से स्नान कर उसने इंगलिश सूट पहना । टाई बाँधी । अपनी 'बेबी-आस्टीन' में बैठकर वह जो बाहर आया तो कुछ नर-कंकालों के बच्चों ने उसकी कार घेर ली, "बाबू, पैसा, रोटी !"

वायसराय ने कल भाषण दिया है कि हिन्दुस्तान 'विक्टरी-डे' मनाने की तैयारियाँ करे । पर अरे, हम कौन सी विजय मनायें ? हमारे ये आठ-नौ वर्षीय बच्चे एक रोटी और एक पैसे के लिए पशुओं से भी बदतर हालत में नारकीय कीड़े-से रेंगते-फिरते हैं······

उसने दरबान को आवाज़ दी कि इन सब बच्चों को खाना बाँटे, तो देखते-देखते वहाँ नर-कंकालों की भीड़ इकट्ठी हो चली ।

रेवती ने कार आगे बढ़ा दी । यह दृश्य आँख खोलकर देखना उसके बस का काम नहीं । कड़े मन उसने बाज़ार में बड़ी तेज़ कार चलाई ताकि इधर-उधर भूख से तड़पते नर-कंकालों पर नज़र न पड़ सके ।

होटल में सब तैयारी हो चुकी थी । इंगलिश डांसर दो क्रिश्चियन-गर्ल्स थीं जिन्होंने अपने चेहरों पर क्रीम और पाउडर विशेष-रूप से थोप रखा था । देशी नर्तकी एक बंगाली 'सोसायटी-गर्ल' थी ।

गवर्नर आये । चीफ़ सेक्रेटरी आये । डिफेंस-सर्विसेज़ के अधिकारी आये । सेठ-साहूकार आये और सम्पन्न घरानों के उच्छृङ्खल-उन्मत्त युवक आये । और छलकती षोड़शियाँ आईं । और आये मोशाय बाबू जिन्हें नहीं पता कि उनके बंगाल पर क्या गुज़र रही है ।

रेवती ने सिवाय अतिथियों के स्वागत करने के और किसी काम में रुचि नहीं ली । वह उधर के केबिन में अकेला बैठा हुआ सिगरेट पीता रहा । थोड़ी-थोड़ी देर बाद

हॉल में कर्तल-ध्वनि गूँज उठती है। पियानो अब बंद हो चुका है और शहनाई बज रही है। शहनाई की तरंग पर अब वह भारतीय छोकरी कत्थक नृत्य करेगी। उस नृत्य से दर्शकों के मानस में एक मादक उद्दंडता छा जायगी। और इस सुख के एवज़ में वे चंद रुपयों के टुकड़े अकाल-पीड़ितों को देने में किसी असंतोष का अनुभव नहीं करेंगे। उफ़ ! रुपये ! तू इस वेहया इंसान की गति से इतना नराधम और कोटि का निर्लज्ज हो चुका ?

'डांस' समाप्त हुआ। गवर्नर ने विदा होते हुए रेवती से कहा, "कँवर साहब, हम को बहुत खुशी होगी अगर आप एक चैरिटी-डांस फ्रांस के भूखे बच्चों के लिए करें। इससे इंडिया International context में ऊँचा उठ जायगा।"

अत्यन्त विनम्र होकर वह नत् हुआ और गवर्नर साहब के सुझाव को स्वीकार किया।

उनके जाते ही उच्छृङ्खल युवक और मदमस्त तरुणियाँ खिलखिलाती हुईं बाहर निकलीं। अकाल के नाम से कौन दुखी है इनमें ? जैसे तो इनकी मुक्त हँसी-मात्र से बंगाल का अकाल शुष्क फूल की तरह हठात् हरा होकर पुनः खिल उठेगा, लहलहा उठेगा। अधम युवक-युवतियाँ ! रेवती बड़बड़ाया।

सब जा चुके तो तीनों नर्तकियों को चाचा जी के साथ कार में बैठा दिया गया। रेवती ने देखा और जानते-बूझते उधर से आँख मींचकर वह इधर चला आया।

कौल साहब भी जा चुके तो उसने कार सँभाली। उधर के बाज़ार में पहुँच कर उसने पंजाबी होटल से १००) रुपये की रोटियाँ ख़रीदीं। सीधे वह सियालदह स्टेशन आया। अब भी वही बोर्ड वहाँ लटक रहा है।

"जब बंगाली जीवित रहता है तो कौन मरता है ?
और कौन जीवित रह सकेगा, जब बंगाली मर जायगा ?"

रेवती ने ज़ोर से पूछा, "किस हिजड़े ने लिखा है यह अधूरा वेद-मंत्र ! आज बंगाल मर रहा है तो किसी को उसकी लाश की बदबू तक महसूस नहीं हो रही है। आज बंगाली भूखी कुमारियाँ और युवतियाँ बिक रही हैं······"

अँधेरे में कुछ देर तक वह नर-कंकालों का आर्त-नाद देखता रहा तो बोला, "वह दिन पास आ रहा है जब बंगाल के इस विषाक्त अकाल से एक नई विद्रोही सन्तान पैदा होगी······"

वह कार से नीचे उतरा और फ़ुटपाथ पर जाकर उसने रोटियाँ बाँटनी शुरू कीं। देखते-देखते उसकी कार के चारों ओर दयनीय नर-कंकालों की भीड़ एकत्र हो गई। वह निश्चित न कर सका कि किस को रोटी दे, किस को न दे। उसकी कोई सुनता न था और पाँच सौ हाथ उसकी ओर बढ़े हुए अपनी हथेलियाँ फैलाये थे।

युद्ध-विजय ! पर देश की ये कोटि-कोटि फैली हुई हड्डियाँ क्या हैं ?

जैसे-तैसे उनसे निबटकर रेवती आगे बढ़ा । फुटपाथों पर भूखे नर-कंकाल उठते हैं और लड़खड़ाकर गिर पड़ते हैं ।

नगर में अनेक सेवा-समितियाँ कार्य कर रही हैं । कल से रेवती भी डेढ़ लाख रुपया लेकर इनको रोटियाँ और वस्त्र बाँटने का काम करेगा । पर इससे क्या होगा ?

नहीं, इस अकाल की क्षुधा कुछ चंद सहस्र रुपयों की रोटियों से शांत नहीं होगी और न इससे आँख मींच लेने से ही काम चलेगा । देश में युद्ध की ज्वाला नहीं दहकी है तो इसके बदले में सरकार और पूँजीपतियों ने जनता को नर-कंकाल मात्र बना दिया है । यह अकाल उन्हीं नर-कंकालों का विजयी मार्च-पास्ट है । थू हम पर, कि क्षणिक सहानुभूति से द्रवित होकर हम इनकी इस विजय को पराजय मान बैठे हैं ।

रात के बारह बजे हैं अब, और सर्वत्र शांति है । यदा-कदा कोई भूखा शिशु अपने कंकाल की साँस को संजोकर चीख उठता है ।

उसने स्पष्ट देखा, नर-कंकालों की एक सेना दानवी हँसी से चारों दिशाओं को गुँजाती हुई कलकत्ता नगरी पर छा गई है······

तो बंगाल के अकाल का सीधा अर्थ बंगाल के पौरुष का स्खलन होना स्वीकार कर लिया जाय ?

रेवती की कार अब फुल-स्पीड पर आगे बढ़ गई ।

२६

हिरोशिमा

आखिर रजनी को मंसूरी से जान बचाकर भागना पड़ा।

मंसूरी की पुलिस ने देखा कि यह जो नया सरदार यहाँ होटल में ठहरा है, वह पंजाबी तो नाम को नहीं जानता है। पूछताछ शुरू हुई। आहट लगते ही सतर्क रजनी ने अपनी दाढ़ी मुस्लिम ढंग की काटी, होटल के मुसलमान हैड बैरा को दो सौ रुपये दिये और उसके बड़े लड़के की शेरवानी पहनकर वह अलवर पहुँच गया। बैरा के लड़के ने अलवर में उसका शानदार स्वागत किया और उसके लिए खास महाराजा साहब की कोठी के पास खड़ी हुई दूसरी कोठी में रहने का इन्तज़ाम करवा दिया। रजनी को लगा कि वह मौत के जबड़ों से बार-बार बच रहा है, यह भाग्य-कृपा क्या कोई और भी अकल्पनीय गुल खिलायगी ?

आठवें रोज़ उसे ढूँढ़ती हुई माधवी भी जा धमकी। रजनी ने उसे देखा। और माधवी ने उसे देखा। दोनों की आँखें चकाचौंध हो गईं। वाणी जड़। दर्शन-स्पर्श ने आग्रह तो किया कि आश्चर्य में विभोर होकर आपस में गुँथ जायँ बाहों में कसकर। माधवी को लगा कि वह जिस राजकुमार की खोज में थी, वह जैसे तो हवाई घोड़ों पर स्वयं ही उड़कर उसके पास उतर आया है। रजनी को लगा कि चारों ओर उड़ते हुए धुँध-धुआँ अँधड़ के बीच में किसी देवांगना ने सहसा ही उसे अपने आँचल में ढँक लिया है…माधवी का अंचल यहाँ इस भौतिक खूँखार किटकिटाहट के दौर में यूँ उड़ता हुआ आ गया है तो वह रोमांचित हुए बिना न रहा। आखिर उसने स्तब्ध दृश्य की सरस स्थिति का संतुलन किया और गद्गद् वाणी में कहा, "माधवी, मैं तुमको पहचान नहीं पा रहा हूँ। क्या तुम पुलिस की ओर से मुझे गिरफ़्तार करने आई हो ? लेकिन…"

माधवी उत्तर में मुस्कराकर रह गई और फ़र्श पर बिछे कालीन पर बैठ गई। इस वाचाल और उत्तेजित युवक की नेत्र-दृष्टि भी सर्प की लपलपाती जिह्वा से कम नहीं है। सर्प देखता कहाँ है, वह तो अपनी दो डंक वाली जिह्वा का संघातिक कटाक्ष ही करता है। रजनी मेरे उत्तरशील मौन से दुश्चिन्ता की उत्तेजना को उदासीन नहीं बना सका ? फिर बोला, "लेकिन माधवी, तुम छद्मवेशधारी हो, यह मैं कबूल नहीं करूँगा। तुम पुरानी वही माधवी हो, यह भी नहीं हो सकता। मौत मेरे साथ आँख-मिचौनी कर रही है, इन क्षणों में क्या तुम मेरी आँखों पर पट्टी-स्वरूपा बँधने

आई हो ?"

माधवी ने मुस्कराकर लाज मे गड़ते हुए सिर्फ इतना कहा बड़ी कठिनता से, "मेरे पास न हथकडी है, न पट्टी है। मैं तो रीते हाथों आई हूँ। मागूँगी कुछ नहीं। तुम्हे अवकाश दूँगी कि तुम्हारी मृत्यु मेरे मे आँख-मिचौनी खेले।"

रजनी माधवी के अति निकट सरक आया, "सेठ जी से आज्ञा लेकर आई हो ?"

माधवी ने मीठी झिडकी मे झुँझलाकर कहा, "मुझे साँस लेने दो। शान्त बैठो। मैं तुम्हारी मेहमान हूँ। एक कप चाय पिलाओ; फिर खाना खाऊँगी। कल से भोजन नही हुआ।"

अब रजनी कुछ समझा, और उठा। बोला, "माधवी, पौराणिक युग उस समय के स्त्री-पुरुषो ने मिलकर रचा था। तुम क्या सचमुच इस युग का महापुराण रचने आई हो ?" और उत्तर की अपेक्षा किये बिना वह अन्दर चला गया आतिथ्य का प्रबन्ध करने।

और माधवी रजनी के साथ रहने लगी। रजनी तेज दुपहरिया मे मद-विभोर आकड़े-सा हिलोरे लिया करता, माधवी जगली झडबेरी-सी उसकी जड मे जम गई। दोनो को रह-रहकर अनुभूति यही होती है कि जैसे कोई स्वप्न ठहर गया है।

भोजन के बाद रजनी ने पूछा कि वह क्यो इस तरह घर से निकल पडी है।

माधवी को वह कई सालो बाद हँसते हुए देख रहा है, सो हर्षातिरेक मे है। वह बोली, "क्यो का उत्तर मेरे पास नही है। 'क्यो' का सवाल न मैंने कभी अपने से और न दूसरो से किया है। उस घर मे बन्द रहकर मै ऊब चुकी थी। वे मुझ से ऊबकर बरमा फ्रन्ट पर जा चुके है। मुझे यही सूझा कि लाओ तुम्हे ही ढूढ लाऊँ। पागलपन यह ज़रूर है कि तुमको ढूँढने की बात उठाकर एक प्रकार से तुम्हारी मौत को आहट देने मे ही सहायता दे पाऊँगी, पर मौत को मै भूखी सिहनी जानते हुए भी उसे भगाने की तरकीब गाँठ मे बाँधकर आई हूँ। पहले रिक्शी से मिलने गई। गाँव मे वहाँ पाँच रोज़ ठहरी। फिर तुम्हारे पिता जी से भेट करने पहुँची। तुम्हारी माता जी के देहान्त के बाद से उनकी हालत काफी खराब है। आधे पागल हो लिये हैं। अगर तुम्हारे बडे भाई और भाभी उनकी सेवा करते रहे तो आराम मिलता रहेगा। फिर भी चलते हुए उन्होने मुझ से कहा था, 'तुम ही हो न वह माधवी, जिसके यहाँ जाकर वह बार-बार ठहरा करता था ? उसने मुझ से यदि मन की असली बात कही होती तो मैं तुम्हारे पिता के पैरो पडकर तुमको अपनी बहू बनाता।' फिर चुप रहकर बोले, 'अच्छा, तो तुम उसे जहाँ भी ढूँढो, सँभालकर रखना। कही पुलिस उसे गोली से न भून दे। हमारे देश की पुलिस जानती हो क्या है ? सड़े हुए मल की सडाँध।

मैं बड़ा धनभाग हूँ कि वह मेरा बेटा है। आज तक मैं उससे एक भी दिन प्यार से नहीं बोला हूँ। वह अगर तुम्हें मिले तो उसे मेरा प्यार देना।' और इतना ही कहकर वे अपनी आँखों से आँसुओं की धार बहा बैठे थे। पुलिस वालों ने उन्हें पूछने के लिए बुलाया था कि अपने बेटे की खबर दो। उन्होंने साफ़ कहा कि मेरा उससे ताल्लुक नहीं है। वह आवारा है। मैं अपनी बची-खुची जायदाद अपने बड़े बेटे के नाम कर ही चुका हूँ। निश्चय, इस तरह वे तुम्हारे साथ कितना बड़ा न्याय कर सके, तुम क्या जान सकोगे। जब मैं गाड़ी में बैठ चुकी तो बोले, 'बेटी, माफ़ करना, न हम तुम्हारी खातिर कर सके घी-बूरे की। मैं बड़ा अभागा पिता हूँ। आजकल क्या, शुरू से हमारी हालत ग़रीबों-सी चल रही है। पेट काटकर, आधे भूखे रहकर, इस रजनी को पढ़ाया था कि बुढ़ापे की वेला कमाकर खिलायगा। रही-सही पूँजी भी उसकी गिरफ़्तारी के बाद दिल्ली आने-जाने में खत्म हो ली। रूखा-सूखा खा लेते हैं, यही बहुत है। वरना मैं रजनी के लिए तड़प रहा हूँ कि कुछ मिठाई तेरे साथ भिजवा देता'।"

जैसे तो सर्कस कटघरे में बैठे हुए बबर-शेर को सहसा ही जंगल की कोई याद आई हो और वह पाँच हाथ लम्बे सीखचों के घेरे को तोड़कर बाहर जाने का उपक्रम करने में लगा हो, रजनी खड़ा हो गया और गम्भीर, कमरे में चहल-क़दमी करने लगा कि बैठ गया। माधवी के पास उसके कंधों पर सिर रखा और लगा रोने। माधवी ने सोचा कि अब इस बच्चे को कौन से खिलौने से बहलाया जाय। यह आखिर कब तक बच्चा रहेगा? यूँ अपने अन्दरूनी मोम को पिघलाकर बहाने का हक़ स्वयं इसे तो आज कतई नहीं है। पर रजनी तो दूसरे ही क्षण फूटकर रो उठा। उसी के वियोग में अखिर माँ ने प्र ण त्याग दिये?

पर वह स्वस्थ हुआ। भर्राई हुई आवाज़ में बोला, "क्या पुलिस भी डैडी को तंग कर रही है? अच्छा है, वे मेरे जीवन में क्यों आये और क्यों रिक्शी का षड्यन्त्र रचा? उन्हें भी सज़ा मिल जाय तो बेहतर है।"

जैसे किसी ने माधवी को गुदगुदी कर दी हो, खिल पड़ी। बताया उसने कि हाँ, एक दिन पुलिस ने उनको भी कोतवाली बुलाया था। वहाँ उन्होंने यही स्टेटमेंट दिया कि मेरी-उसकी रिश्तेदारी सीधी नहीं है। वह क्रिमिनल है, हम शहर के फरमाबरदार रईस हैं और अपने इस सबूत के लिए उन्होंने उसी क्षण अपनी जेब से निकालकर वह चैक दिखाया जो कि वे उसी शाम चीफ़ कमिश्नर साहब को देने जा रहे थे। यह सुना और रजनी की दृष्टि शून्य में उलझ गई। यह रोने की भी बात है, विद्रोह करने की भी बात है। उत्तेजित होकर उसने पूछा, "यह भी एक विडम्बना है कि हम अपने आदर्शों या अपने विचारों का पालन करने के लिए पूरी क़ीमत देने को तैयार

नहीं हैं। क्या डैडी को यह शोभा देता था ? वह चैक ?"

माधवी ने कहा, "लेकिन आदर्शों का मार्ग इतना सीधा नहीं है। वह अनेक उलझनों से सुलझाकर निकालना पड़ता है। डैडी ने ही तुम्हारे जीवन को अपने अपार धन से सुरक्षित कर रखा है। और यह आदर्श क्या इतना खूनी है कि हर आदमी अपना खून ही इसे चढ़ाता रहे ? यह आदर्श खून से अधिक मस्तिष्क की शक्ति की अपेक्षा अधिक माँगता है। डैडी में वह खूब है।"

तपाक से रजनी ने पूछा, "तो क्या मैंने जेल से भागकर ग़लती की ? मेरे भागने से सभी सगों को पुलिस की ज़िल्लत से परेशान होना पड़ रहा है।"

माधवी से न रहा गया। वह मुस्कराकर बोल ही तो गई, "ग़लती तो श्रीमान् जी ने यह जन्म लेकर ही की है। अरे, परेशान क्यों हो ? यह फ़रारी जीवन कितने बड़भागों को नसीब हुआ है ? वैसे तुम मेरे विवाह के बाद से फ़रारी जीवन ही बिता रहे हो। अब स्वस्थ होकर अध्ययन करो और दिमाग़ के सब जुनूनों को तिलांजलि दो।"

अपनी उत्तेजना में थककर रजनी लेट गया। जाने कब सो गया। माधवी ने देखा कि उधर एक आले में कुछ नई पुस्तकें रखी हैं। सब गांधी जी के अहिंसा आन्दोलन से सम्बन्धित हैं। यहाँ इस अपरिचित स्थान में लेटा हुआ रजनी उसे ऐसा लगा, मानो, चूल्हे की तेज़ आग पर चढ़ी हुई खिचड़ी की हाँडी फदक रही हो और रसोइये की असावधानी से बस जलने के अनक़रीब हो। नहीं, माधवी इस स्वादिष्ट युवक को यूँ राख न होने देगी। इसके दिल के स्वर्ण को वह तपायेगी और···और···रजनी को वह पारिवारिक क्षुद्रताओं से उठाकर देश का एक बौद्धिक सेनानी बनायगी।

रात को जब सब सो गये, रजनी ने तीसरे पहर जागकर माधवी को आवाज़ दी। वह कच्ची नींद सो रही थी। आहट पाते ही जागी और पूछा कि क्या है ? रजनी ने उसे सीधे देखते हुए पूछा कि आखिर तुम मेरे पास रहने क्यों आई हो ? मुझ से क्या चाहती हो ? वह सरल भाव से बोली कि तुम्हारे साथ रहने का मेरा जी है, इसीलिए पुलिस की गोलियों को लाँघकर मैं कफ़न ओढ़े आई हूँ। रजनी ने कहा कि पहला सवाल तुम जीवित हो कफन ओढ़कर भी ? सेठ जी सुनेंगे तो नाहक शक करेंगे और तुमको सदा के लिए परित्यक्त कर देंगे। माधवी ने शान्त मन कहा कि मैं चाहती हूँ कि वह दिन आये। तो रजनी ने पूछा कि भला ऐसा क्यों ? माधवी ने सीधे दीवार की जड़ में दृष्टि स्थिर करते हुए कहा कि यदि और तरह की परिस्थितियाँ होतीं तो दुनियाँ निश्चय ही मुझे व्यभिचारिणी मान लेती। पर अब देखना है कि वह क्या कहती है ? वे क्या कहते हैं ? मैं देश का अध्ययन करने निकली हूँ। घर की चहारदीवारी लाँघी है तो देश की व्यापक मर्यादा को मैंने अपना नया घर

सबसे बाहर काँटेदार घेरे। उसके अन्दर मामूली तार के घेरे। उसके अन्दर रस्सों के घेरे। उसके अन्दर पुलिस के घेरे। उसके अन्दर साम्प्रदायिक सियासत के घेरे। उसके अन्दर महँगाई और चोरबाज़ारी के घेरे। और उसके अन्दर सबसे आख़िरी इंसानों की अपनी बेसुधी का घेरा। देश की जनता इतने बन्धनों से घुटी हुई जीवन-यापन कर रही है और खुशी मना रही है कि हिटलर अब जल्दी ही हार जायगा! वह दुष्ट मरे तो इस दुनियाँ को चैन मिले। उस एक इंसान पर सबका क्रोध है कि वह मर ले।

और हमारी ये साम्प्रदायिक सँस्थाएँ! बिना स्टीयरिंग-व्हील की भव्य बेश-क़ीमती रॉल्सरायस कारें!

शाम को अक्सर घूमते हुए वह खेतों में निकल जाता है और वहाँ बैठकर किसानों से बातें करने लगता है। बातें करते हुए वह उनके परिवार की बातें पूछता है। उनके बच्चों की बातें पूछता है। उन पर कितना कर्ज़ है, उन पर क्या तकलीफ़ें बराबर बनी रहती हैं? उनके क्या स्वप्न हैं? उनकी क्या भविष्य-आशायें हैं? वे क्या नई आसाइशें चाहते हैं? और उनसे बात कर जब वह लौटता है तो उसका दिल और उसका शरीर एक अनजाने दर्द से कराहने लगता है। हमारे ये कितने करोड़ किसान कमबेशी मात्रा में बिना इस पृथ्वी की स्वस्थ वायु का उपभोग किये मृत्यु के कँगूरे पर खड़े हुए मौत की राह देखा करते हैं। अशिक्षा, अनुत्साह, क्रोध, क्लीवता, क्षुद्र-दृष्टि, वैमनस्य, शोषण से सूखा हुआ पानीनुमा धमनियों का रक्त, अधनंगे और जिनका दिमाग़ भौंटिया गया है......लेकिन जिन पर एक या अनेक मुकद्दमों का ताज़े से ताज़ा असह्य भार थोपा जाता रहा है और वह कभी भी हटता नहीं। ऐसे किसान को लेकर देशभर में देश-व्यापी अकाल निकट भविष्य में ही आने वाला है, ऐसा कठिन विश्वास रजनी को हो चुका है......

उधर बंगाल का अकाल शुरू हुआ है। इधर सारे राजपूताने में ये नरेश वारएफर्ट की कीमत पर करोड़ों की पूँजी जाने कहाँ से बटोर रहे हैं और जाने कहाँ पर उलीच रहे हैं। और इसी राजस्थान में सारी प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ इन जर्जर रियासती-नरेशों के सहयोग से बुलंद किलेबंदी स्थापित कर रही हैं। जागीरदार शराब पीते हैं और बुरी तरह अफ़ीम का सेवन करते हैं, किन्तु स्वप्न देखते हैं कि तलवार की नग्नता से वे भारत की नग्नता सिद्ध कर लेंगे!

रजनी सब देख रहा है। माधवी को लेकर वह साहस के साथ राजपूताने की यात्रा पर निकला और जोधपुर तथा बीकानेर व उदयपुर होता हुआ अजमेर पहुँचा और वहाँ से सीधा फतहपुर-शेखावाटी। दोनों ने गुजराती दम्पत्ति का बाना धारण कर रखा है। फतहपुर की रात्रियों के बारे में उसने सुना था कि वहाँ रेगिस्तानी टीबों का

मर्म-स्पर्शी शीतल स्पन्दन स्वर्गीय रोमांच को लिए हुए प्राप्त होता है। दोनों ने प्रबन्ध किया कि अन्दर किसी गाँव में चलकर रात्रि खुले टीबे पर शयन करते हुए बिताई जाय। रेत पर वैसे ही लेटकर रजनी ने माधवी को अपनी सुहाग-रात की बात सुनानी शुरू की। सुन चुकी तो माधवी ज़रा नटखटेपन से बोली, "अच्छा है, इस विद्रोही यात्रा में मैं आपके साथ हूँ तो जैसे मेरी यह विद्रोही सुहाग-रात भी मन ली है!"

सुनते ही रजनी चौंक उठा। हठात् उसे लगा कि जैसे सामने आँच पर रखा हुआ दूध भगौने से उफनकर बह निकला है। यह माधवी यूँ उफनकर अपने उद्वेगों को छलकाने बैठेगी, देखकर रजनी बस उसे देखता ही रह गया। पर मुस्कराकर बोला, "तुम्हारी इस यात्रा में और रिक्शी की सुहाग-रात्रि की यात्रा में एक अन्तर था जो तुम नहीं समझ पाई हो। रिक्शी को समाज ने अपने हाथों मेरी बाहों में सौंपा था, इसलिए वह खुल्लमखुल्ला सुहाग-रात्रि की यात्रा में मेरे साथ रही तो यह समाज फूला नहीं समाया। उसकी प्रसन्नता की सीमा न थी। लेकिन तुम इस समाज की आज्ञा-बिना मेरे साथ मुक्त प्रवास के लिए निकल पड़ी हो, याद रखो, यह समाज तुम्हें कच्चा चबाने में ही अपनी विजय समझेगा!"

माधवी सुरसरा राक्षसी की तरह से अपने मानस को विशाल बना बैठी और पूछा, "क्या आपको यह समाज मेरे साथ रहने के अपराध में कोल्हू में नहीं पेरेगा? और तुम्हारा तेल निकालने का श्रेय अर्जित नहीं करेगा?"

रजनी हनुमान जी की तरह सरलता से इस बौद्धिक दानवता पर हँस पड़ा। बोला, "माधवी, आज भी तुम कितनी भोली नहीं हो। यह समाज पुरुषों का बनाया हुआ है। जेल से भागने के बाद मैं एक प्रसिद्ध व्यक्ति बन गया हूँ। निश्चय ही समाज मुझे अपना एक सदस्य बना चुका है। वह मेरा तेल क्या निकालेगा, मेरे चरणों को धोकर उस जल को पीना अपना सौभाग्य समझेगा। और, फिर मैं समझता हूँ कि आज का समाज नपुंसक किस दिशा में है?"

माधवी रजनी की बात पर ठठाकर हँस पड़ी। बोली, "और मैं यह जानती हूँ कि यह समाज सशक्त स्त्रियों से समझौता किन हालतों में कर लेने के लिए हथेलियाँ तक पसारने को तैयार रहता है।"

रजनी इतने ज़ोर से हँसा कि सारा सुनसान रेगिस्तान मचल उठा। बोला, "पर ध्यान से सुनो, मेरी हँसी तुम्हारी हँसी से ज़्यादा स्पष्ट और दूर तक सुनाई देने की क्षमता रखती है। इसके बावजूद, लो, समाज की ओर से मैं समझौते के लिए हथेली पसारता हूँ।" और यह कहकर रजनी वहीं साष्टांग प्रणाम करने माधवी के समक्ष फैल गया। हँसी शान्त हुई तो पलक झपकते माधवी ने करवट ली और सो गई गहरी नींद। रजनी के समझौते की बात का उत्तर देने में वह गहरी लाज खा

गई और तनिक काँप-सी गई······

माधवी सो गई। आज वह काफ़ी पैदल चली है। उमंग उसकी इतनी विश्वस्त हो गई है कि इस खुले आकाश के नीचे मेरे साथ मुक्त शयन कर रही है; पर माधवी एकाएक चुप होकर रह गई और सो गई, यह रजनी को व्यथित कर गया···वह उठा और ज़रा दूर हटकर इधर आ गया और रेत के ऊपर चहलक़दमी करने लगा। ऊपर इतने असंख्य तारे असंख्य तारिकाओं से चुहल कर रहे हैं और ख़ूब-ख़ूब खिलखिला रहे हैं। रह-रहकर उसके पैर चाहते हैं, माधवी के पास जाकर रुक जायँ और ठहर जायँ। आध घंटे तक वह अपने से झगड़ता रहा कि नहीं, मुझे इधर अलग सोना चाहिए। पर मन और हृदय से वाध्य वह आया और माधवी के निकट चुपके से बैठ गया। नींद में माधवी के वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये हैं। माधवी की वक्ष इतने वर्षों बाद भी पूर्ववत् अपने लावण्य की सुमधुर शंख-ध्वनि कर रही है और तरुणाई की सुगंधि-पूरित नाभि-सी इस क्षण खुल पड़ी है और एक-दृष्टि रजनी को विमोहित कर रही हैं··· उसे याद आया, कालेज-जीवन में एक बार उस दिन दोनों नदी में स्नान करने गये थे। शहर से आठ मील दूर एक हरीतिमा-मंडित विहार-अंचल था—वहीं। दुपहर का दाहक सूर्य सिर पर प्रहार कर रहा था। दोनों नदी में उतरे थे। जल की धाराओं ने माधवी के वस्त्रों को उसकी देह से सटाकर इतनी स्पष्ट रेखायें मुखरित कर दी थीं कि रजनी इस नववयस्का की वक्ष की भोरकालीन छटा को बस देखता ही रह गया था···कि माधवी जैसे ही ज़रा गहरे में पहुँची कि लपककर उसने उसे अपने हाथों में थामा और तट पर ले आया और आलिंगन में वद्ध और निःसाँस उन वक्षों की उष्मा को बड़ी देर तक पीता रहा था······

निःपलक माधवी को देखते हुए रजनी को भ्रान्ति-सी हुई कि सामने तो रिक्शी सोई है! करुणा और विषाद से वह भर गया रिक्शी की स्मृति भर से। निश्चय ही माधवी रिक्शी से अधिक सुन्दर है। और आज यह सौन्दर्य मृग-मरीचिका-सा ठीक उसके नेत्रों के निकट आकर ठहर गया!! आश्चर्य है रेगिस्तान में ही मृग-मरीचिका आत्मभ्रमिता-सी पिशाचिनी सम्राज्ञी की नाईं घूमा करती है। किन्तु रजनी जैसे कठोर व्यक्ति को परास्त करने के लिए वह साहसिनी बनी हुई ठीक उसकी नासिका के पास ठहर गई है?

हल्के हाथ से रजनी ने माधवी के कपोलों पर जो केश-लट हवा से उड़ आई थी, उसे उठाया और ठीक-ठिकाने बैठा दिया। उन मुक्त-निर्भरिणी के फेन-स्वरूप कपोलों का उँगलियों पर स्पर्श पाते ही एक असीम तृप्ति रजनी को हुई और वह सो गया······

माधवी क्षण भर पहले आहट लगने से जाग चुकी थी। अर्द्ध-पलकों वह रजनी

के मानस का मन्थन-दोहन देखती रही । जैसे ही कपोल पर रजनी की उँगली का स्पर्श हुआ, प्रतीत हुआ कालेज-जीवन की वह दीर्घ स्मृति भूली-भटकी बदली-सी आँखों के आगे ठहर गई है और अपने शीतल आर्द्र स्पर्श से जवानी की धूम का मनोभाव झार रही है···हल्के से वह बोली, "रजनी, तुम धन्य हो कि इस रेगिस्तान की आत्मा की चुनौती सर-माथे ले ली है। इस रेगिस्तान में धूल के पहाड़ के हर अंग का हर कण किसी भी क्षण छिटककर किसी भी दिशा में उड़ने की धृष्टता करता है और गर्दो-गुब्बार बनकर मीलों तक की मंजिल लाँघ आता है। पर तुम्हारा मानस इस टीलें की धूल के छितरे हुए कण-सा नहीं है, इसीलिए मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ!" और उसने पास सरककर अपनी साड़ी का आँचल उसके मुख पर ढँक दिया ताकि रात की हवा में उड़ती हुई धूल न गिरे और वह एक गहरी नींद लेता रहे······

× × ×

माधवी आज सो नहीं पा रही है। उसका रोम-रोम, अंग का हर पोरुवा एक लम्बी यात्रा के उपरान्त आज परम शान्ति पा रहा है। मन का मोद इस नभ-सा ठहराव खा गया है। रेगिस्तान के इन बालुई टीबों को क्योंकि अथाह जल आकण्ठ तृप्ति के लिए नहीं मिला, इसी से तो इसका हर कण छितरा-बिखरा विशृङ्खल उड़ा फिरता है। और इसी से दिन में बालू के ये टीबे अपने हृदय की मूक ज्वालाओं को खूब दहकाकर तपते हैं और जो व्यक्ति इन टीबों को लाँघने का दम्भ भरकर आता है, उसे मृग-मरीचिका से खूब छकाते हैं कि अरे, है यहाँ इतनी दूर जल की धारा भी, जो हम ने अपने पसीने को बहाकर तुम्हारे पीने के लिए बहा रखी है । लेकिन इस क्षण उस सूर्पणखाँ राक्षसी-से यह बालू के टीबे अपनी दाहक-मारक तपिश को कहीं छिपाकर राहगीरों को अपनी मायावी परम शीतलता देने का स्वाँग भला क्यों रच रहे हैं?

व्योम के तारे और तारिकायें, किसी उर्वर खलिहान में रखी अनाज की बालों-सदृश मन्त्र-छन्द बने हुए, कौन सा अमर गान गाया करते हैं। इसी रजनी ने एक दिन कालेज से रात को लौटते हुए मार्ग में कहा था, "माधवी, तुम्हारी आँखों में दूरबीन लगी होती तो महसूस करतीं और देखतीं भी, कि ये तारे और तारिकायें अमर जोड़ी के रूप में वहाँ विद्यमान हैं, तभी चमकते हैं । अकेला इंसान या अकेली औरत इस तरह की छटा को ज्योतिर्मय न बना सकेंगे।"

और माधवी को भी याद आया कि एक दिन एकान्त में वहाँ दोनों ने नदी में स्नान किया था। माधवी ज़रा कम तैरना जानती थी। रजनी लपककर उसे बचा-कर लाया था और मुस्कराते हुए उसने गाढ़े आलिंगन में उसे बद्ध कर लिया था। उसने कहाँ आपत्ति उठाई थी। और मेरी लाज से बल पाकर नटखट बनते हुए इसने ले

लिया था मेरा एक चुम्बन !

चुम्बन ! पश्चिमी सभ्यता में चुम्बन मुक्त हृदय की उन्मत्त तरंग का एक वेग मात्र है। वहाँ यह वेग नियन्त्रित नहीं है। वहाँ के समाज की निष्ठा इस वेग में निरन्तर मानवीय बनी रहती है। पर हमारे यहाँ चुम्बन जैसे पारस पत्थर से विपरीत वह अशकुनी पत्थर है कि जिसका स्पर्श पाते ही हर नारी खोटा पैसा या खोटी चवन्नी-अठन्नी बन जाती है।

हृदय पर कितनी जंग अभी हम और लगायेंगे ? नहीं, हृदय की जंग को काटना ही होगा। उसने अपना आँचल हटाया रजनी के चेहरे से, और उस दिन के चुनौती भरे चुम्बन का उत्तर आज देने बैठी और लिपट मरुस्थल, रेगिस्तानी जलधारा के नव-स्रोत-सी उछलकर उसने रजनी के दमकते हुए गाल पर दे ही तो दिया अपना एक चुम्बन। और शीघ्रता से पुन उसके मुख पर अपना आँचल ढँक लिया। इस समय बड़ी जोरो से बालू का अन्धड चल पडा है और दोनो को अपने कणो से ढँक रहा है। अरे, यूँ कहो, अपनी बालुई चिलमन मे इन दो महाप्रवासियो को निर्जन भरा आश्रय देने बैठा है·

× × ×

परसो हिरोशिमा पर एटम बम पडा है। उसके सर्वनाश से भयभीत शत्रुपक्ष ने युद्ध रोक दिया है और हार मानली है। समस्त विश्व इस अस्त्र से काँप गया है। मनुष्य मनुष्य का इतना व्यापक सर्वनाश करने की शक्ति सिद्ध कर बैठा है ! रजनी और माधवी निरन्तर इसी विषय पर चर्चा कर रहे है। समाज और राजनीति, युद्धकाल के भीषण प्रवेग के आगे आज तुच्छ व क्षुद्र बन गये है। किन्तु परसो रात्रि माधवी ने मुक्त आकाश के नीचे जो चुम्बन दिया था, उससे एक अगाध शक्ति रजनी को हस्तगत हुई है। मानवता आज तक दुर्द्धर्ष अविजेय चोटी-सी उन्नत मस्तक रही है और नष्ट नही हो पाई है किसी भी युद्ध मे, तो क्या आज प्रलय के क्षण उपस्थित हो गये है ? जितना ही वह चिन्तन करता है, उसके अन्दर एक वेदनामयी हूक उठती है कि यह अस्त्र समस्त मानव का सहारक बनकर नही आया है, मात्र देश-देश की जनता के बीच एक नई ईट गाडने आया है, नई विभाजन-रेखा खीचने आया है। पर नही, नही, नही,···सिर्फ नही-नही की ध्वनि रजनी मे भरती जा रही है, एक नये विश्वास का धूम सुलगता हुआ भरता जा रहा है। पर स्पष्ट कुछ नही है, समझ कुछ नही पा रहा है। आज वह रात माधवी से युद्ध की इतिहास-चर्चा करता हुआ सोया, तो उसने एक स्वप्न देखा—

···ऐसा नही लग रहा था कि प्रकृति रानी का हरा आँचल यौवन के मद मे प्रशान्त महासागर से उठी हुई पूरबी वायु-लहरी से प्रकम्पित हो रहा हो। सूर्य भी

आज कुछ खिन्नमना लगा। लगता था, बुद्ध की उस विशाल प्रस्तर मूर्ति की बगल से झाँकते हुए वह सूर्य जैसे प्रकाश से शून्य, रिक्त-दृष्टि से, देख रहा हो कि यहाँ प्रकृति का हरा रेशमी आँचल किस अज्ञात याचना में पसरा हुआ है। नित्य ही भगवान् बुद्ध प्रशान्त-महासागर के नील-क्षितिज पर प्रातःकालीन सूर्य की रक्तिम लिली-सी मृदु मुस्कान को इस प्रकार अपने विशाल चेहरे पर अवतरित कर लेते हैं कि सूर्य का व्यक्तित्व भी तेज़ दुपहरिया में उनके सामने धूमिल हो जाता है, क्योंकि भगवान् बुद्ध उस समय भी इस महान् प्रशान्त महासागर में ऊपर अविचलित बैठे हुए कड़ी धूप में तपते हुए अपनी चिर-उषा के हास्य को नहीं छोड़ते। वही चिर-उषा कुछ अपमानित-सी आज भगवान् बुद्ध के प्रसन्न मुख पर से अनुपस्थित है और भगवान् बुद्ध जैसे हज़ारों वर्षों के बाद आज पुनः बोधित्व प्राप्त करने के लिए राजमहल से भागने की मुद्रा में हों। कवि यामाशी ने यह अपना अपमान समझा। माथे में क्रोध की त्योरियाँ डालने की चेष्टा की, पर एक कालिमा ही उसके गोरे मुखड़े पर भासमान हो आई। सामने तालाब के तट पर जलदेव हैं। तरुण जापानी युवक-युवतियाँ दूर-दूर से देशाटन करके अपने यथार्थ यौवन का अर्घ्य चढ़ाने के लिए यहाँ आते हैं। घण्टों अपनी कुरूप आत्मा के संकोच का त्याग कर, सामूहिक रूप से नग्न और पवित्र होकर, वे जल-क्रीड़ा करते हैं। जल की शीतलता माता के दुलार से भी सुखदायिनी होती है; जल, दुलार से अधिक, जीवन का दीर्घ वरदान देता है। किन्तु पिछले सप्ताह भर से किलकारियों के बीच इस दीर्घ-वरदान को स्वीकार करने के पहले नग्न तरुण-तरुणियाँ इस जल-स्थल पर अपनी परिच्छाया तक डालने में भयभीत हैं। कवि यामाशी ने नगर के चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। उसे ऐसी प्रतीति हुई कि 'हिरोशिमा' की सौन्दर्य-देवी, आज एक अज्ञात-रेखा को पार कर किसी अदृष्ट नक्षत्र की दिशा में प्रवास कर रही है। उसने फिर क्रोध से अपने माथे पर त्यौरियाँ डालनी चाहीं, पर रात्रि के मध्य प्रहर की-सी कालिमा उसके प्रशान्त चेहरे पर द्विगुणित हो गईं।

वह पहाड़ी से नीचे उतर आया। संध्या की वह निशा धीरे-धीरे 'हिरोशिमा' के श्रेष्ठ सौन्दर्य को अपने सुरक्षा-वस्त्र से ढँक रही थी कि रात्रि की कालिमा की आभा भी उसे न छू जाय, परन्तु उसको ऐसे दृष्टिगोचर हुआ, जैसे अखिल हिरोशिमा के माँसल सौन्दर्य का लाल रक्त दूषित स्राव होकर ऊपर उमड़ आया है···हिरोशिमा का सलोना मन इस व्याधि से जर्जर, नीचे बैठ रहा है, मर रहा है। किन्तु···

वह दौड़ता हुआ नीचे उतर आया। यामाशी नगर का प्रधान कवि है और यह सौन्दर्य-नगर इस कवि की ओर सतत उन्मुख रहता है कि उसके मानसिक सौन्दर्य से लब्धप्रतिष्ठित होता रहे और शीघ्र ही विश्व का प्रथम सौन्दर्य-नगर घोषित हो जाय। एक बच्ची ने कवि को रोक लिया। अपनी नन्हीं-नन्हीं उँगलियाँ एक ओर

उठाकर पूछा, "वह जो सेना बाजा बजाते हुए जा रही है, क्या फुटबाल [illegible] मैच जीत-कर आ रही है ?"

कवि के चेहरे पर जैसे हठात् पूर्णिमा का चन्द्रमा ज्योत्स्नित हो गया। उछल-कर उसने बच्ची को गोदी में ले लिया। उसने निमेष भर, आश्चर्य से स्तब्ध होकर देखा, जापान की प्रसिद्ध सेना नगर के मुख्य भाग को पार कर रही है। चेहरा एक हल्की परत वाली बदली की छाया से फिर आच्छादित हो गया। बच्ची को प्यार किया, उसकी पीठ थपथपाई। वाद्य-यत्र-सा गुंजन करते हुए उसने कहा, "हाँ हाँ, फुटबॉल-मैच की जीत!" और शीघ्रता से आगे बढ गया। 'फुटबॉल-मैच नही तो और किसी खेल की जीत सही। अलबत्ता मैच की जीत!' उसने अपने मन के अन्तरतम मे बहुत धीरे मे कहा। नक्षत्रो के परस्पर-आकर्षण की तनावजनी इन दिनो लगातार हो रही है। और प्रकृति अपना नियन्त्रण इन नक्षत्रो मे उठा ले तो इन नक्षत्रो का आपसी आकर्षण इनके सहार का कारण बन सकता है। आज समस्त राष्ट्र प्रकृतिके नियमों को तोड बैठे है। आशकित होकर उसने स्वय मन ही मन पूछा, 'जापान भी ?' कवि में सामर्थ्य अत्यन्त व्यापक है कि इस विराट-प्रश्न का सन्तोषप्रद उत्तर दे। घूमकर चलते हुए ही देखा—वह बच्ची बाजो के घोष को सुनकर किलकारी मार रही है। पर उत्तर के स्थान पर वह अन्दर ही अन्दर सहम गया। राजाज्ञा के अधीन वह एक जापानी नागरिक है। उसका कर्त्तव्य है कि वह जापानी विजय के गीत गाये।

ये तरुणी सुन्दरियाँ ? यामाशी ने बाजार के बीच आकर इन पर दृष्टिपात किया। रिक्शों में बैठकर इनका मनोहर सुहास जापान की अतुल सम्पत्ति के रूप मे चमकता है। किन्तु आज यह सुहास केवल युद्ध-पीडित सैनिको की यन्त्रणा को ही मिटा सकेगा। पर कवि की यन्त्रणा युद्ध-पीडित नही है, जो इनके नैसर्गिक आलिंगनो की प्रत्याशा वह करे। आज उसका अन्त.क्लेश समस्त हिरोशिमा की अनाहूत आशका से पराभूत है। वह स्पष्ट दृष्टि से व्योम में देख रहा है कि नगर की अदृष्ट परियाँ, भय-भीत, सूर्य की पश्चिम दिशा को जा रही है। परियाँ, पलायन करे तो, जापान पर एक महाज्वालामुखी का स्फोट होगा। यह एक प्रसिद्ध कहावत है। किन्तु कवि के वृद्ध स्वजनो ने उसे बताया है कि आज तक अनेक भूचालो और ज्वालामुखियों के विस्फोट के दिगत बवडर के समय भी इन परियो ने जापानी भूमि का मोह नही छोड़ा और राष्ट्र के दुःख-सुख को निजी माना। उसके निकट एक रिक्शा रुका। नगर की मुख्याध्यापिका एक तरुणी है। नीचे उतरकर उसने कवि का सम्मान किया और पूछा, "क्या यह सच है कि जापान पर अग्निवर्षा होगी ?"

कवि ने तरुणी का सम्मान किया, मुस्कराकर काव्यात्मक उत्तर दिया, "अग्नि-

वर्षा बलात् कभी नहीं हुआ करती। पहले उसका सीमातीत आवाहन किया जाता है। चाहे वह आवाहन राष्ट्र के नरनारी नागरिक करें या देवता, या दैत्य। आज ही मैंने इतिहास की एक पुस्तिका पढ़ी है, उसमें जापान शब्द का एक विचित्र अर्थ मिला है—'लालटेन की वत्ती का वह गुल जो तेल न रहने पर भी सुलगा करता है'। आप जानती होंगी कि अग्नि-अग्नि का आपसी आकर्षण महाप्रचण्ड है। तो आप इसे अग्नि-वर्षा या बमवर्षा (बमपात्) न कहें। मात्र प्राकृतिक तत्त्वों का आलिंगन कहें।"

तरुणी कुछ भयभीत थी। यह सुनकर स्निग्ध हुई। मचलकर बोली, "तो इस आलिंगन का भारी मूल्य जापानी नागरिकों को प्राणों के अनुपात में क्यों चुकाना पड़ रहा है?"

कवि नहीं चाहता कि तरुणियाँ प्रश्नवाची हों। राष्ट्र के प्रश्न तरुणियों के प्रश्न हो जायँगे तो शेष क्या रह जायगा? अत्यन्त सहज भाव से इसे व्यक्त किया, "आज केवल जापान ही नहीं, समस्त विश्व इस आलिंगन का मूल्य चुका रहा है। और मैं जानता हूँ कि जिस दिन आप आलिंगन-समारोह करेंगी, उस दिन मुझे भी उपहार के रूप में कुछ मूल्य चुकाना पड़ेगा।"

तरुणी मद में खिलखिला दी। वापिस रिक्शे में बैठी और चली। कवि आगे बढ़ गया। आज मृत्यु का क्रय सामूहिक हो रहा है। पर मूल्य सब को व्यक्तिगत चुकाना पड़ रहा है। या कवि ने अपने को स्पष्ट किया, सामूहिक रूप में नर-नारी अपने आदर्शों के अस्तित्वों को ही स्व-पतन के एवज में बेच रहे हैं। पतन का मूल्य श्रीवृद्धि से कई गुना अत्यधिक है। यही कई गुना अत्यधिक मूल्य एक-एक व्यक्ति को अपने प्राणों से चुकाना पड़ रहा है। क्या यामाशी को भी चुकाना होगा?

कवि हठात् भय के मोह से दुर्बल नहीं हुआ—न काँपा। हठ से आगे बढ़ता गया। उसे मोह यही है कि वह अपने इस नगर हिरोशिमा को प्यार के साथ जी भर कर देख ले। कवि वर्ष भर में एक भविष्यवाणी करता रहा है और वे सब सच निकलती रही हैं। पिछले वर्ष उसने एक दम्पत्ति को आशीर्वाद लिखते हुए भेजा था कि पोणि का संयुक्तीकरण आप दोनों का युद्धकाल में हो रहा है, इसका विच्छेद भी युद्धकाल ही में होगा और यही शुभ रहेगा, क्योंकि शान्तिकाल आपको अशुभ रहेगा। दम्पत्ति ने उत्तर में प्रश्न लिखकर भेजा था कि इससे आपका तात्पर्य क्या यही है कि तृतीय विश्व-युद्ध और होगा? यामाशी कवि है, गणितज्ञ नहीं है। हाँ, गणित के अंक यदि काव्यात्मक रुनझुन से अपने उत्तर स्फुट कर सकें तो वह यह उत्तर दे सके। उसने उत्तर लिखकर भेजा कि तृतीय विश्व-युद्ध की चिन्ता कर आप अपने मनुष्यत्व का अपमान न करें। द्वितीय विश्व-युद्ध जब तक शुरू नहीं हुआ, तब तक प्रथम विश्व-युद्ध सक्रिय रहा है। इस अनुपात से ही आप अपनी आशंकाओं को

सहज करें। किन्तु उनकी शकाएँ सहज न हुईं और वे दोनों [illegible] में समाप्त हो गये। 'सम्भवत.', यामाशी ने लौह-मन से हुकार की, "वे [illegible] में अपनी आशकाओ को सहज कर पाते तो उनका दाम्पत्य आगे के वर्षों तक जीवित रहा होता।" आज यदि बलात् ही यामाशी को व्यक्तिगत मूल्य चुकाना पडेगा तो वह चुकायेगा, पर वह अभी जीवित रहेगा।

पूरे नगर की परिक्रमा वह करता रहा और अपनी भविष्यवाणी से वह आशान्वित होता गया। हिरोशिमा के सौन्दर्य को वह आकण्ठ पी गया। और बोला, "हिरोशिमा का आज अपमान होने वाला है।" पर यह कैसी भविष्यवाणी!!—स्वय उसे आश्चर्य-विस्मय हुआ। अपमान की वेदना पाषाण-प्रतिमा मे स्रवित नहीं हुआ करती। अपमान की प्रतारणा से अपमानकर्त्ता के अणु-अणु तक की शृङ्खला बिखर जाती है। आज हिरोशिमा पहला नगर नही है, जो बिना अपराध अपमानित होगा। दिल्ली और रोम इतिहास के महानगर है, जो बिना अपराध हर १०० वर्ष या १,००० वर्ष के बाद क्रूर निर्दय हाथो से ध्वस्त किये जाते रहे है। शायद हिरोशिमा नगरों के अपमान की कहानी का पूर्ण विराम हो! पर इस अपमान मे सिर्फ नगर का ढाँचा ही नही, नगर के नर-नारी और जीव-जन्तु तक इस अपमान की महाव्याधि से उपेक्षित नहीं रहेगे। पर इस अपमान से यामाशी अपमानित नहीं होना चाहता। उसने आज तक हिरोशिमा के गीत गाये है। हिरोशिमा के अग-अग को सौन्दर्य प्रदान किया है। उसके एक गीत की अमर पक्ति है, "हिरोशिमा, यदि यह तेरा मानवी सौन्दर्य नष्ट भी होगा, तो हानि अधिक नही होगी, क्योकि उसके बाद तेरे सौन्दर्य के स्रोत का उद्गम दिग्दिगत में प्रवाहित होगा।" ऐसे सौन्दर्य-स्रोत को भी वह ही अपने काव्य से आर्द्र रखेगा। अतः उसने अपना प्रदान किया हुआ समस्त सौन्दर्य वापस आकण्ठ पी लिया।

यह नगर का सुन्दरतम बाजार है। 'हिरोशिमा' के अन्तिम मानव के रूप में कठोर डगो से चलता हुआ वह नगर की सर्वश्रेष्ठ तरुणी कवयित्री के जीने पर चढ गया। द्वार खटखटाया और पट खुलने पर सादर अभिवादन किया। चुशाई की न देह पकी है, न आयु। अपने एक बहुमूल्य वाद्ययंत्र पर वह गा रही है, "शनैः-शनैः प्रलय निकट आवेगी। यह जल-प्रलय न होगी। जापान स्वय कमल है जो महासागर के गहनतम पाताल से उदभूत होकर विकसित हुआ है। जिस दिन जल-प्रलय से कमल नष्ट-भ्रष्ट हो जाया करेंगे, उसी क्षण इस नक्षत्र-समूह में जल वाष्प-रूप में भी न रहेगा। यह तो अग्नि-प्रलय ही होगी। इस दिन मैं प्रलय-नृत्य करूँगी और नागरिको को नृत्य से इतना विस्मृत विमोहित रखूँगी कि वे प्रलय-क्रीडा को अनुभव न कर सकेंगे।" यामाशी को देखते ही आनन्दातिरिक से विह्वल होकर मधुर और शिष्ट शब्दो में बोली, "तुम आ गये। पूछना चाहती हूँ कि प्रलय की सूचना किस प्रकार प्राप्त हो सकती है।"

यामाशी एक सोफ़े पर बैठ गया। उसे ग्लानि हो आई कि कवयित्री के नृत्य को प्रलय-सूचना की अपेक्षा है। प्रलय के दिन मनुष्य इस पृथ्वी की सुरक्षा करे, तभी वह सुरक्षित रह सकेगा। अथवा पृथ्वी के संतुलन में वह नर-नारी की रक्षा कर ले। सामने चुशाई का पिता बैठा है। उधर ही मुँह करके कवि बोला, "प्रलय मे स्व-रक्षा करने में समर्थ व्यक्ति ही प्रलय-सूचना प्राप्त कर सकता है।" वृद्ध चुशाई से नाखुश है कि वह यामाशी से विवाह नहीं करती। अभी तक कुमारी है। वह अपनी जगह से चीखकर बोला, "यामाशी, कवयित्रियाँ संकट पड़ने पर काव्य की सुरक्षा तक नहीं कर सकतीं। स्व-रक्षा तो अन्तिम कठोर है।" सुनकर दोनों ही खिलखिला दिये। वृद्ध भी खाँसते हुए हँसने लगा। चुशाई यामाशी के निकट आकर बैठ गई। उसके पुष्प-मुख पर रक्तिमा विशेष निखरी हुई है। बोली, "सच, आज मुझे अनुभूति हुई है कि नृत्य मुझे करना होगा। क्या इस नृत्य के गीत आप नहीं गायेंगे ?"

यामाशी ने इस प्रश्न में अपना एक विराट उत्तर पा लिया। चुशाई उससे विवाह करने को प्रस्तुत है। तुरन्त उत्तर दिया, "मुझे भी अनुभूति हुई है कि आज गीत गाने होंगे। इसलिए ही यहाँ आया हूँ।" और दौड़कर वृद्ध के पास गया। अपार हर्ष से यह सूचना वृद्ध के कानों में उसने दी। वृद्ध शीघ्र ही कुछ बड़बड़ाया, और गम्भीर हो गया। यामाशी को उसने एक ज्वलित-दृष्टि से देखा। चीखकर बोला, "चुशाई, अब मुझे कुछ रस नहीं है कि तुम किस के साथ नृत्य करोगी।" उठकर, सामने की टेबल से उसने एक मदिरा का प्याला पिया। फिर बोला, "यामाशी, तुम कहीं के भी सम्राट् नहीं हो, जो तुम्हें सम्राज्ञी चाहिए। तुम महाकवि हो और सौन्दर्य-साम्राज्य के प्रहरी हो। तुम्हें इस क्षण हाथ में खड्ग लेकर स्व-बलिदान के लिए तैयार रहना चाहिए। विवाह कोई खड्ग नहीं है।" यामाशी ने संक्षिप्त उत्तर दिया, "आज तो इस क्षण विवाह ही आपकी खड्ग की म्यान होने की शक्ति रखता है और मैं इसे अपनाऊँगा।"

वृद्ध इसका आशय समझ गया। यामाशी बलात् मुस्कराता हुआ चुशाई के पास आ बैठा। वह अपने पिता की उलझन को देखकर और भी मनोहर मुस्करा दी। बोली, "आप यदि ऐसा ही उलझन-भरा गीत गावेंगे तो मैं अपने नृत्य में उलझ जाऊँगी।"

यामाशी उसका स्पष्ट मतलब समझ गया। चुशाई को अपने प्राणों का मोह है। प्राणों का मोह प्रेम का मूल्य चौथाई कर देता है। आज मानवी मूल्यों में मुकुटवत् प्रेम के मूल्य का स्थायी-स्टैंडर्ड यामाशी निश्चित करेगा। प्रेम प्रथम और अन्तिम मानवी-अणु है, जो इस विश्व का प्रथम और अन्तिम निर्माता है, और रहेगा। इसी अणु को कवच बनाकर आज प्रलय से वह संघर्ष करेगा और विजित बनकर आगे

के वर्षों में जीवित रहेगा । 'हिरोशिमा' का अवसान भी आज [illegible] प्रेम के दुर्ग में आश्रय लेगा ।

नीचे से एक युवक हाँफता हुआ ऊपर चढ़ आया । बाहर हठात् जन-कोलाहल बढ़ने लगा । नगर के दायें कोने में ख़तरे की घंटी बजने लगी । शत्रु के वायुयान २५ मिनट में इधर की ओर आते हुए यहाँ पहुँच जायेंगे । युवक ने पूछा कि क्या सचमुच 'हिरोशिमा' बमों से ध्वस्त हो जायगा ? यामाशी विचलित न हुआ । दया आई कि यह राष्ट्र का एक युवक है । विश्व की एक इकाई है, पर अशिक्षित है । हम इस दुनियाँ में या इस 'हिरोशिमा' में जीवन की सुरक्षा तक नहीं जानते, तो जीवन का अधिकार हमें कहाँ से प्राप्त हो । युद्ध वह चेतना है कि जहाँ युवक-धर्म अखिल-जीवन की चेतना प्राप्त कर लेता है । उसने कहा कि नीचे तहखाना है, जाकर छिप जाओ ।

चुशाई की सुकुमार देह ख़तरे की घंटी की हर घोषणा के साथ अनिश्चित रूप से आवेश में आ रही थी । संभवतः यह नृत्य का आवेश था । उसकी बाँहें पकड़कर यामाशी वृद्ध के सामने पहुँचा । ख़तरे की घंटी सुनकर उसकी उलझन सुलझ गई थी । उसने दोनों को सर्वथा नवीन वर-वधु के रूप में देखा । सोल्लास बोला, "अब तो मैं चिर-शान्ति का स्वागत बिना सूचना के कर लूँगा ।" और उसने बेटी को दुलार से थपथपाकर सामने बड़े कमरे में धकेल दिया । स्वयं खिड़की के पास खड़ा होकर देखने लगा कि सड़कों पर भय-त्रस्त और मृत्यु-यातना से कराहते हुए नर-नारी बेतहाशा कैसे भाग रहे हैं । वह इस गम्भीरता से देखने लगा, मानो एक युग ख़त्म हो रहा हो और इन अपूर्व मानवों के हीन अज्ञान को वह साक्षात् निगल रहा हो । उसे इनकी क्षुद्रता पर तरस आया ।

चुशाई पिता से कहने को हुई कि आप भी तहखाने में चले जायँ, पर यामाशी ने मना किया । बड़े कमरे को पार कर वे नीचे जीने में उतर, तहखाने में आ गये । कलाई की घड़ी देखी, अभी बीस मिनट हैं । पलक मूँदकर यामाशी ने अपनी सर्प-के दंशन की अनुभूति को कड़ा जी कर सह लिया कि बीस मिनिट बाद 'हिरोशिमा' एक अस्पष्ट तैल-चित्र-सा रह जायगा । चुशाई से कहा कि तुरन्त अपना अन्तिम नृत्य प्रारम्भ कर दो । बाहर उसने सुना कि हिरोशिमा के सौन्दर्य का विस्फोट हो रहा है और जिसके महानिनाद से चारों दिशाएँ स्तब्ध हो गई हैं । चुशाई ने वाद्ययंत्र लेकर नृत्य शुरू किया । यामाशी ने अपना गीत शुरू किया :

"प्रशान्त महासागर की तेज़ लहरें हमारी अतिथि बनकर आ रही हैं ।

"ध्रुव-उत्तर और ध्रुव-दक्षिण महाशीत के प्रबल झौंके के रूप में अतिथि बनकर आ रहे हैं ।

"चारों दिशाओं के जीव-जन्तु अतिथि बनकर आ रहे हैं ।

"जब जापान का सूर्य नयी प्रभा को लेकर प्रकाशित होगा तब बुद्ध की प्रस्तर-मूर्ति सर्वथा नव मुस्कान के सम्पुट को विकसित करेगी ।

"हमारे आतिथ्य के बाद एक नया दिन शुरू होगा ।"

खतरे की घंटी अब भी बज रही है । चुशाई ने परिश्रम और रुचि के साथ नृत्य समाप्त किया । रुकी, तो ऐसी लग रही थी कि नृत्याग्नि में तपकर तेज़ चमकती हुई इस्पात-पत्रिका हो । कपोल की रंजित रक्तिमा दुगुनी हो गई थी । यामाशी ने गीत रोककर सुना, एक भीषण घोष ने समस्त पृथ्वी को कंपायमान कर दिया है । अत्यन्त शान्त, वह उठा और उसने चुशाई के कान में कहा, "नृत्य तुम कर चुकीं । गीत मैं गा चुका । आओ, अब हम सो जायँ । और स्वप्न-लोक की यात्रा करें । हमारे अतिथि हिरोशिमा के द्वार-द्वार में प्रवेश कर चुके हैं । चुशाई, मेरे पिता और पितामह भी हिरोशिमा के कवि रहे हैं । पर हर भूकम्प के बाद वे जीवित रहे थे । मैं स्वयं भी दृढ़-प्रतिज्ञ हूँ कि प्रलयोत्तर हिरोशिमा का सौन्दर्य-निर्माण अपने गीतों से मैं करूँ । लो, प्रलय के अतिथि, अपने तहखाने की सीढ़ियों पर उतर रहे हैं ।"

चुशाई अपना धैर्य छोड़कर चीखी, "पिता जी !"

यामाशी ने स्निग्ध और मूक-सम्बोधन किया, "पगली, आज की तिथि का पिता मैं हो रहा हूँ, तुम्हारे पिता प्रलय-अतिथियों का स्वागत करेंगे ।" बाहर प्रबल निनाद, हृदय-विदारक रव और अखिल हिरोशिमा की जनता का कुहराम बढ़ रहा था । हिरोशिमा का अणु-अणु किसी अज्ञात नक्षत्र की ओर, संभवतः परियों के लोक की ओर, एकात्म होने के लिए प्रवास कर रहा था । चुशाई काँप उठी : यामाशी ने उसे गाढ़ आलिंगन में कस लिया और दोनों एकात्म हो गये······

···रजनी पसीने से तरबतर उठ गया । उसने माधवी को उठाया और उसे अपना स्वप्न सुनाया । और सुनाकर बोला "क्या सचमुच यह ऐटम बम इस इंसान की सम्पूर्ण शक्ति को ध्वस्त करने की शक्ति अभी नहीं रखता है ?"

माधवी ने कुछ सोचकर कहा, "यह तो मैं नहीं जानती । यह तो वे वैज्ञानिक ही जानते हैं । लेकिन अभी यह दुनियाँ और इसलिए जिंदा रहेगी क्योंकि हम इंसानों का इस धरती पर स्वर्ग बसाने का काम अधूरा पड़ा हुआ है ।"

रजनी कुछ दुविधा में पूछ बैठा, "तुम्हारी बात में तथ्य मुझे नहीं लगा रहा है ।"

माधवी भरपूर खिलखिला पड़ी । बोली, "भविष्य के लिए जब भी कोई नया सूर्य उगा है तो इस इंसान को उसमें कभी भी कोई तथ्य मिला है ?"

रजनी ने तड़पकर देखा कि माधवी ने जैसे तो उसके मुँह की बात छीन ली है ।

२७

ज्वालाओं के उरोज

मिस शिलोठिया आकारहीन युवती नहीं है । अपने हर अंग के आकार को आधुनिक बनाने के लिए उसने मर्मान्तक पीड़ा तक सही है । अपनी सौन्दर्य-तपस्या को मानसिक क्लेश उसने इसलिए ही नहीं बनाया कि वह किसी युवक के लिए यातना नहीं बनना चाहती, न शापग्रस्त । अपने आप में वह बौद्धिक उलझन तो कतई नहीं है । नारी रहकर कोई पीड़ित रही हो, रही हो; मिस शिलोठिया इस पृथ्वी पर अवतरित ही इसलिए हुई है कि सौन्दर्य के आगे से सम्बोधन-चिह्न हटाकर विराम लगा दे कि बस, इसके आगे काम और रति और हैलेन और वीनस के भंडार में सौन्दर्य की इति हुई; अब तो केवल मात्र मिस शिलोठिया के निकट ही इसकी उपलब्धि हो सकेगी······

आज से प्रदर्शिनी शुरू है । नगर में इसकी धूम है । देश-देश के भण्डार वहाँ अपने उत्पादनों का प्रदर्शन करेंगे । पर प्रदर्शिनी का अर्थ है कि नगर के युवक-युवती अपना-अपना प्रदर्शन करें और उनकी होड़ लगे और फिर देखें कि कौन विजयी हो ! ये दुकानें तो 'लैंड-स्केप' की पृष्ठभूमिका हैं । 'ओपेन थियेटर'-निर्वाचन ही प्रदर्शिनी का दूसरा अर्थ होना चाहिए ।

सामने के शीशे में अपनी भरी-पूरी देह का अर्थ झाँकते हुए मिस शिली ने 'शॉवर' बन्द किया; लम्बे तौलिये में लिपटकर वह अपने कमरे में आई । स्नान के बाद आज किस 'कट' और डिज़ाइन के ब्लाउज़ से, किस फैशन के ईयर-रिंग से वह अपना शृङ्गार करे ? और कौन 'लेटेस्ट' चाल का सेंडल अपने मृदु तलवों के नीचे नगीने-सा बिठा ले ? सो, ज़रा सोचना है । अलमारियों के शीशों में तौलिये से लिपटी अपनी देह के प्रतिबिम्ब का रसास्वादन करते हुए मिस शिलोठिया कमरे में चहल-क़दमी करने लगी । यों ही वह किताब खोलकर कुछ पंक्तियाँ पढ़ीं, यों ही यह कापी उलटकर कुछ शब्द पढ़े । मचलकर सोफे पर फैलकर बिन-अर्थ वह 'ओटोग्राफ़' डायरी उठा ली—देश के प्रसिद्ध नेताओं और साहित्यिकों के हस्ताक्षर हैं इसमें । एक अनिर्वचनीय तन्मयता में वह अन्तर्मुखी हो रही थी, कि तड़पकर सचेत हो गई । यह क्या है ? यह किस मूर्ख ने यहाँ डायरी में लिखा है, चीखने की धृष्टता की है ? हस्ताक्षर ठीक समझ में नहीं आ रहे हैं । अक्षर तो तीन हैं—'ब', 'र', 'आ' । कविता की पंक्तियाँ हैं—

ज्वालायें धधकें तो रोष है,
ज्वालायें दें तेज तो तोष है,
ज्वालायें हैं सही नारी-रूप—
उनके भी हैं उरोज,
उनके भी हैं कम्पन,
उनके भी है दुग्ध !

ज्वालाओं के उरोज होते हैं ? इसलिए ज्वालाओं में कम्पन भी होता है ? और उरोज होने से ही ज्वालाओं में दुग्ध भी होता है ! अश्लील ! भ्रष्ट ! यह कविता है ? यह मेरा अपमान है ! मिस शिलोठिया ने याद करने की चेष्टा की, भला यह कब लिखा गया है और किसने लिखा है ?

सो याद नहीं पड़ता। कविता-पृष्ठ के सम्मुख पृष्ठ पर लिखा है—"नारी की सही परिभाषा तब बन सकती है जब कि उसके अन्तःवाह्य संगीत का 'टैम्पो' समानांतर हो जाय !" ओह ! यह क्या नीचता प्रदर्शित की गई है ? यह सब प्रपंच यहाँ इन पृष्ठों में किसने फैलाया है ? दोनों पृष्ठों को शीघ्र फाड़ा और उनकी चिंदी-चिंदी कर उसने कमरे में फैला दी ! तब चैन की साँस आई। मेरी डायरी में नारी का अर्थ नहीं चाहिए ! मेरी डायरी में···(उसने देखा) सिर्फ़ सौन्दर्य की परिभाषाएँ ही नहीं हैं, सौन्दर्य राष्ट्र और विश्व और ब्रह्मांड को अपना योग कैसे दे सकता है, यह भी राष्ट्र की महान् आत्माओं द्वारा अंकित है ! उसने कुछ पृष्ठ पढ़े, पर चुपके से उसके मस्तिष्क के किसी कोने में कोई ज़ोर से चीख गया—

ज्वालाओं के भी हैं उरोज
उनके भी हैं कम्पन
उनके भी है दुग्ध

मिस शिली ने अपने मस्तिष्क को झटककर चीखने वाले को चुप कर दिया। एक गर्म दृष्टि उन चिंदियों को दी, पर खिड़की से झौंका आया और वे बेचारी उड़कर अलमारियों के नीचे घुस गईं। चीखने वाले ने फिर चिल्लाया "···का टम्पो ! ···" मिस शिली ने एक लम्बी साँस खींचकर चीखने वाले को निश्चल कर दिया। गम्भीर, माथे में त्यौरियाँ लिये उठी। तौलिया छोटी-छोटी मुट्ठियों से छूट पड़ा था, सो सामने के दर्पण में अपनी समूची दुग्ध-श्वेत काया को देखकर मीठी हँसी हँस दी। तौलिये को शीघ्र लपेटा। हल्के से उच्चारण किया—"उरोज, कम्पन, दुग्ध, टैम्पो !" इस बार रस लेकर स्वयं ही कविता दुहराई—

ज्वालाओं के भी हैं उरोज
उनके भी हैं कम्पन
उनके भी है दुग्ध···

शान्त, सन्तुष्ट, सरस मिस शिल्पी ने ट्रंक खोला। [illegible] सब साड़ियों को परखा। सब जम्परों, ब्लाउजों को उलटा। कुछ तो स्मृति से ही उतर गये थे कि यह साड़ी और यह ब्लाउज उसके भी पास है! पर प्रदर्शिनी है और [illegible] उद्दीप्त रंग-बिरंगी बिजलियों की छत्र-छाया में ज़रा तमीज से जाना चाहिए। और वह भी खास तमीज के साथ। 'टैम्पो' शब्द फिर किसी ने उच्चारित किया। अवश्य 'टैम्पो' प्रदर्शिनी का कुछ रंगीन रहता है, कुछ तीव्र सोडे की बोतल का-सा रहता है, कुछ मदहोश झलकती जवानी का-सा रहता है। परिधान, सज्जा, भूषा का टैम्पो इस टैम्पो से 'मैच' करता हुआ हो तो प्रदर्शिनी है और प्रदर्शिनी की मिठास है और प्रदर्शिनी की मुक्त मुक्ति है! प्रदर्शिनी की मुक्ति! इस वर्ष मिस शिलोठिया प्रदर्शिनी की मुक्ति के चदन-द्वारों का उद्घाटन अपने सलोने हाथों से कर नगर के युवक-युवतियों के लिए एक असीम पथ का मार्ग-निर्देश करेंगी।

बॉडिस पहनते हुए मिस शिलोठिया ने पुन. गुनगुनाया—

ज्वालाओं के भी है उरोज,
उनके भी है कम्पन,
उनके भी है दुग्ध।

ऑटोग्राफ डायरी खुली पड़ी थी। मुखपृष्ठ पर लिखा हुआ था—"सौन्दर्य में वेदना नही होती। वेदना सुन्दर व्यक्ति के दिल मे होती है। जब इस वेदना की एकात्मकता व्यक्ति के चरम सौन्दर्य (!) से हो जाय तो व्यक्ति की एकात्मकता वेदना से हो जाती है!" इधर के पृष्ठ पर लिखा था—"दुग्ध का अर्थ है प्राणी का श्वेत फेन!" आह! सुन्दर! ये श्वेत फेन पीकर मै बड़ी हुई हूँ, मिस शिलोठिया को गर्व हुआ। जिस व्यक्ति को ये श्वेत फेन अपने बचपन मे पीने को नही मिले, वह कितना अभागा होगा!

श्वेत सिल्क ब्लाउज के ऊपर श्वेत वायल की साड़ी सँवारकर साइकिल पर आरूढ हो गई और बाज़ार की ओर चली। महात्मा गाधी ने जैसे चप्पलो की ईजाद की है, वैसे ही चश्मे की ईजाद शायद कामदेव भगवान् ने की थी! काले चश्मे को धारण कर मिस शिलोठिया ने मृदु-मृदु पैडल घुमाने शुरू किये।

वर्षो से युद्ध था, सो प्रदर्शिनी नही लगी। बात बेढगी-सी लगती है। प्रदर्शिनी आज के युग मे एक त्यौहार से क्या कम है, जहाँ हम अपनी सर्वोत्तम रुचियो का मापदण्ड हर वर्ष का निर्धारित कर सके। हमारे सास्कृतिक इतिहास मे वसन्त ऋतु मे यह त्यौहार देश-व्यापी पैमाने पर मनाया जाता रहा है। जाने कौन सी सदी की कौन सी वह अभागी तिथि रही होगी जिस दिन से यह त्यौहार लुप्त हो गया है।

अरे ! यह त्यौहार आज अन्तर्राष्ट्रीय हो ! अब तो युद्ध भी समाप्त हो चुका है ।

युद्ध के पहले जो आखिरी प्रदर्शिनी लगी थी, उसमें वह थी । उस वर्ष कोई श्रीमती भल्ला अपनी सलवार और दुपट्टे की ध्वजा को सबसे ऊँचा रख सकी थीं। महीने भर तक उनकी सुडौल काया की दुन्दुभी बजती रही थी ! मिस शिलोठिया में सुरुचि है; अवश्य उसके लिए वह सुडौल देह की दुन्दुभि बजना कहलायेगी ।

इस समय फुटपाथ पर सहस्रों ही 'श्रीमती भल्लायें' अकेली या संग चल रही हैं। पंजाब प्रान्त इनसे धनी है । भारत का शेष देश इनकी आधुनिक कुड़ी-पनता से धन्य-धन्य है । पर दुपट्टा और सलवार भारतीय स्त्रीत्व को क्षुब्ध करता है और उसकी सांस्कृतिक लज्जा का अपहरण करता है । अन्दर ही अन्दर मिस शिली के अहंकार की प्रतिभा कुन्द पड़ गई, उसने देखा इन पंजाबी स्त्रियों की वक्ष कितनी शीघ्र लटक आती है और इनकी देह कितनी शीघ्र बिना आकार की हो जाती है । न, ये पंजाबी कुड़ियाँ भारतीय सौन्दर्य की मधुरिमा को अदेशीय बना रही हैं । जो श्रीमती भल्ला की विजय उस प्रदर्शिनी में थी वह अदेशीय-ढंग की विजय थी । अन्यथा मिस शिली अपनी ध्वजा की तहें अवश्य खोलती और देखती कि···

पैडलों की गति धीमी की । टाँगों को सिकोड़कर नीचे उतरी । उधर 'स्टोर' है । अन्दर प्रवेश कर गई । कुछ देशी औरतें (!) देशी विवाह के ढंग के सुर्ख बनारसी दुपट्टे खरीद रही हैं । उन पर उसे तर्स आया । रुपये को यूँ व्यर्थ व्यय करती हैं और अपनी पुत्र-वधुओं को बेढंगे रूप से सँवारकर मूर्खा बनाती हैं । पर समाज इस समय मध्यवित धारा में है ! किसी किनारे लगे तो समाज की झिझक दूर हो और ठीक आँखें खोलकर अपना भला-बुरा सोचे ।

शो-मैन से कहा कि ज़रा टिश्यू दिखाये । स्टोर के पन्द्रह शो-मैनों ने अपने हाथ बढ़ाये, ड्राँज़ खुले और सामने की टेबल पर भाँति-भाँति के टिश्यू रख दिये गये । सिर पर दो सौ कैंडल-पावर के दस बल्ब दीप्त कर दिये गये । पास-पड़ौस के स्टोरों तक में 'करंट' पहुँच गई कि नगर की सुन्दरी रानी पधारी हैं, सो सचेत !

राजकुमारी की नाईं मिस शिली का इन दिखाये गये टिश्यूओं से मन अघाया हुआ है । दाहिने हाथ की अनामिका से उनकी परतें हल्के से छू-छूकर उसने अपनी अनिच्छा प्रकट की ! शो-मैन ने तुरन्त ही पचास शेड और सामने रख दिये ।

'यह सूरत का ज़री सिल्क है ।'—पर मेरा विवाह थोड़े ही है कि इसे पसन्द करूँ ? मूर्ख कहीं के ! बदतमीज़ ! पर इस सूरत के ज़री सिल्क में यह मेहरूम शेड अवश्य स्वस्थ है—'यह लीजिये बीबी जी, यह अहमदाबाद की तर्ज़ का ढाका सिल्क पर मेहरूम-शेड ।'—ऊँ हूँ ! यह सन्ध्या-बेला की दावतों में पहना जाता है ।—'यह बनारसी स्काइ-ब्ल्यू है और यह सी-ब्ल्यू !'—यह दोनों कुछ थोड़े से अन्तर से बरसात

के बाद की गुलाबी शाम को पहने जाते हैं, जब हल्की-हल्की ठण्ड भी होती है ।—'यह मूँगिया, मोती, आसामी-चैक, यह फ़िरोज़ाबादी ग्लास-शेड !'—ये नव पिकनिक के काम के हैं ।—'यह धारीदार, यह लहरिया, यह स्पाटेड, इन सबके ये सात-सात रंगीनी शेड हैं ।'—पर ये सब स्कूली-कालेजी हैं ! मास्टर और प्रोफेसर इन रंगों से चौंकें न, सुस्थ पढ़ा सकें !—'यह मिक्स्ड सिल्क टिश्यू है । यह सीपिया-प्योर, और बीवी जी, यह बिलकुल नया माल है, है बनारसी, पर टर्की चीज़ है । कुल पन्द्रह टिश्यू आये थे, बस यह एक बचा है ।'—किन्तु यह केवल जून महीने में ही प्रयोग में आ सकता है !—'यह भी देखें, कारीगरों को जयपुर भेजा गया था कि वे पीतल पर हुई पूरी कारीगरी का बारीक अध्ययन कर लौटें । देखें, यह भला सुनहरी कपड़ा है, दूर से जैसे कढ़े हुए पीतल की शीट रखी हो !'—किन्तु सुनहरी कपड़े केवल विवाह के प्रथम तीन दिन पहने जाते हैं, या उषाकालीन चाय-भोज में वे ज़बरदस्ती पहने जा सकते हैं; क्योंकि विवाह पर सिलवा लिये गये थे सो पहने तो वे जायेंगे !—'बीवी जी ! लंदन के कारीगरों ने अपना सिर फोड़ लिया, पर बनारसी साड़ियाँ न बना सके । वे इतने बारीक तार को कंट्रोल ही न कर सके—झट टूट जाता था । यह तो हमारी देशी दस्तकारी है और इस निखरे रूप में ।' शो-मैन ने, अब हाँफते हुए कहा, 'ज़रा इसे देखें, यह आकाश-गंगा है—बीच में तारिकाओं की ग्रन्थि, और चहुँ ओर ध्रुव और सप्त-ऋषि हैं ।' और बीबी जी पर, अपने इस माल की जायदाद के गर्व में, गालों को फुलाकर दृष्टि डाली । मिस शिली ने चार शो-मैनों से इसके चारों कोने पकड़वाकर पूरा दृश्य देखा, मुग्ध दृष्टि इसके कलाकार को धन्यवाद दिया । विजय ! हैड शो-मैन ने तुरन्त चालीस रुपये अधिक जोड़कर मूल्य बताया और मिस शिली ने एक मुस्कराहट के साथ यह साड़ी अलग रखवा दी ।—एक प्रतिशत कमी इसमें यही है कि इसका बारडर सुनीन है, रुपहला होना चाहिए था, चाँदनी का प्रतीक ! अब और चीज़ें देखीं—'यह बंगाली लैंड-स्केप है, यह ईरानी ग़लीचा-नुमा फंदा डाला गया है, यह काश्मीरी डिज़ाइन है, यह गंगा-जमुनी है, यह अबर है । यह 'स्कर्ट्स' के मतलब का सिल्क हो सकता है ।'—और काली-कलूटी ईसायनों को पहनाने के मतलब का नहीं ? 'यह चीज़ तोहफ़े के लायक है । स्वयं आप न पहनें !' शो-मैन ने लहज़े में उत्तेजना दी इसे खरीदने की; 'ज़मीन पर वर्षा की फुहार है और सामने इन्द्रधनुष की आब दी गई है ।' मिस शिली ने इसे देखा और अधरों को काटते हुए टिप्पणी की—काश ! कोई बरसाती मेहमान ऐसा हाथ लगे ! और स्वयं सतर्क हो गई । बरसाती मेहमान ? जी, ये अभिनेता बरसाती मेहमान होते हैं । पर इसे भी पसन्द कर लिया । प्रदर्शिनी है । मेहमान आयेंगे और उनसे परिचय होंगे । सम्भव है; कोई ऐसे मेहमान भी···

हर साड़ी के प्रदर्शन के साथ दुकान की झिलमिल और चकाचौंध द्विगुणित

होती जा रही थी। मिस शिली ने मन में गुंजन किया—"ज्वालायें दें तेज़ तो तोष है!" शो-मैन ने अब जॉर्ज्येट दिखाईं।—कुछ मिलाकर टिश्यू की नकलें हैं।—कुछ प्लेन सिल्की साड़ियाँ भी लाई गईं। गोटे-ज़री सिली-चिपकीं चीज़ें भी सामने आईं। चतुर पारखी की नाईं अत्यन्त शिष्टता से हज़ारों रुपयों के टिश्यू-सिल्क के ढेर को धीमे से हटाते हुए कहा—"तो और सामान अब आपके यहाँ नहीं है?"

स्टोर के शो-मैनों ने हाथ जोड़े कि—"जी, ताज़े माल की बिल्टी तो आई पड़ी है, पर गाँठ अभी नहीं छूटी है। वैसे, इतना और यह माल आपको यहाँ बाज़ार भर में नहीं मिलेगा। कुछ नये रंग भले ही किसी के पास हों।"

"तो", मिस शिली ने कोमल रोष में पूछा, "उस गाँठ में भी ऐसे ही अनाप-शनाप शेड भरे होंगे?"

"जी नहीं, नया माल है! बनारसी इंडस्ट्री की कला इन दिनों पैरिस, मिस्र, टर्की, जापानी कला-विविधता की ताई बनी हुई है! गाँठ के लेटेस्ट फैशन देखकर आप पूरी गाँठ खरीद लेना चाहेंगी, बीबी जी!"

सचमुच! बीबी जी की हैसियत है भी कि गाँठ खरीद सकें? पर इसी तैश में मिस शिली ने हामी भरी कि अच्छा, गाँठ आने दो? और सुनीन कलाई की सुनहरी मुन्नी-सी घड़ी देखी; समय कम है। कुछ अनजाने, ग्रीवा पीछे की ओर घूमी तो पाया कि पचासों ग्राहक यंत्रवत् खड़े यह व्यापार देख रहे हैं? ओह!—अत्यन्त मनोहर, क्षमा-याचना करती हुई मिस शिली चल दी।

जब मेन-रोड पर सायकल को अपनी नग्न बाहों से सम्हालती हुई मिस शिली स्टोरों की दिशा से आई तो सभी स्टोरों के शो-मैन अपने टिश्युओं और ब्लाउज़ों के ढेर की तहें कर रहे थे। पीछे झल्ली वाले के सिर पर बोझ रेशमी से अधिक लिफ़ाफ़ों और काग़ज़ी बक्सों का हो चुका था।

नेहरू जी की हरीकेन-गश्त की नाईं पलक झपकते कुछ जूतों के स्टोर 'विज़िट' किये। और वे भी प्रायः कुछ क्षण बाद अपने ढेर सारे जोड़ों को ठीक बिठाते हुए रैपरों में लपेटते दिखाई दिये। पर सब खुश हैं कि ग्राहक हो तो ऐसा दिलदार, माल दिखाने में चाहे पहुँचा टूट जाय, पर दिल में मुनाफे के रुपये एक बार खनक उठें···

सारा शहर प्रदर्शनी के द्वार-आगे रेडियो की पहली रिकार्डिंग की ताल पर खनक उठा। एक इन्द्र-नगरी बस गई है। पेड़ की पत्ती-पत्ती पर रंगीन बल्ब सुलग रहे हैं। आतिशबाज़ी अलग हो रही है। देश-देश की कारीगरी के नमूने अपने विलक्षण ढंग से प्रदर्शित हैं। समां का सुरूर छलक उठा है। और हर कोने पर उत्तेजक संगीत झर रहा है।

प्रदर्शिनी के उत्फुल्ल संगीत ने जब समस्त जनता से निराश और अनाश्वस्त-

भाव से परास्त मिस शिली ने कहा कि आओ, मुझे [illegible], मैं तुम्हारे आगे से उतरेगी । अब भीड़ का [illegible] करके उसका [illegible] [illegible] [illegible] । उसने चमकीले उदग्रीव तनु को स्टाल प्रदर्शिनी के आलोक में [illegible] कर [illegible] द्वार की ओर कदम रखे तो उसकी साकार देह की आभा कुन्दन से तत्काल मढ़ गई । अपने ही अवलम्ब से उसने टिकट खरीदा और अन्दर प्रवेश किया । आवाहन किया कि अन्य कान्त विजय के आग्रह से यहाँ आई है तो मुझे चकित करे । अपने तरंगायित आरोह-अवरोह का प्रदर्शन पहले मेरे आगे करे ।

प्रदर्शिनी उसे नहीं देखती । प्रदर्शिनी को सार्थक करने वह आई है । किम्बहुना, इस प्रदर्शिनी-रूप सूरजमुखी पेड का सूर्य बनकर आई है । पेट मे स्व-रुचियो के पुष्प पूरे खिले हुए हैं । वह अपनी गति से उन्हे निमन्त्रित करेगी और उन्हे विमुख न होने देगी, आमुख रखेगी । उनके मनोभावो का प्रतिबिम्ब न लेगी उनकी चिलकाहट मे अपनी दमक-चमक देगी ।

उसे झुँझलाहट हुई कि यहाँ प्रेस-फोटोग्राफर क्यो नही है ? आज की हमारी पत्रकारिता कितनी दयनीय, दरिद्र है । मात्र राष्ट्र और राष्ट्रजन और राष्ट्रीयता ही दैनिक, साप्ताहिक, मासिको मे पढते-पढते वह ऊब उठी है । यहाँ फोटोग्राफर हो और विभिन्न कोणो से उसके चित्र ले और अपने व्यवसाय को प्रकाश दे, भारतीय पत्रकारिता के फटे चिन्दी-चिथडो को दूर करे । एक भारतीय शिक्षिता उनके क्षेत्र की क्रान्ति मे अपना स्नेह झोक सकती है कि यहाँ अपने चित्र उतरवाने मे उसे झिझक नही है, वह प्रस्तुत है !

फोटोग्राफरो के अभाव मे, बहु-प्रकाश्य स्टालो के 'स्क्रीन' पर अकित होने के लिए मिस शिली आगे बढी । बिक्री की समस्त सौन्दर्य-भूषाये उसकी एक साडी के आगे तुच्छ बनकर 'बैक-ग्राउण्ड' के परितोष मे छिपने लगी । वह खरीदे भी क्या ? सब स्टालो के 'टेस्ट' अनाप-शनाप-से है ! यह हमारी कचन-देह इसलिए नही है कि इसे ढँका ही जाय चाहे कुछ मिले, या सजाया ही जाय चाहे कुछ मिले । यह अद्वितीय देह अद्वितीय शृङ्गार से ही सँवारी जाय ।

सिलसिलेवार हर स्टाल को देखना शुरू किया । अपनी चाल मे मिस शिली को बडी दिलचस्पी है । पर्याप्त आधार लेते हुए चुने-चुने कदम और सकुचित शीघ्रता । व्यक्तियो को न देखते हुए, व्यक्तियो के शृङ्गार को ग्रास बनाती चचल दृष्टि । मुख पर सरलतम हास्य-भगिमा । इजन की 'फ्रट लाइट' की नाईं शनै -शनै उसकी उपस्थिति सर्व-भासित होने लगी । लोग ठिठककर प्रदर्शिनी से ध्यान बँटाकर इस जीवित भव्य प्रदर्शिनी को देखने लगे । लोगो की टकटकी से वह विचलित नही हुई । अपनी विजय को निस्सदिग्ध करती हुई प्रदर्शिनी की पूरी परिक्रमा करती रही ।

विजयी ध्वजा का जो अर्थ होता है, उसकी विशेषज्ञा उसके पीछे उड़ती हुई धूल है। मिस अरोरा ने झूले से उतरकर बेमज़े की किलकारी मारते हुए शिली को चौंका दिया और ताना दिया कि इतनी देर से क्यों निकली हो ? कि एकान्त में प्रदर्शिनी देख सको ? और शिली की विजय-पताका के इर्द-गिर्द धूल देखकर अपनी चुहल से स्वयं ही तरंगित हो गई। चारों ओर युवकों की टोली मँडरा रही है।

शिली ने धन्यवाद देते हुए नमस्ते की। पूछा कि आपके 'फियान्स' नहीं आये ? और कहा कि हम एक कविता सुनायें, आज ही पल्ले पड़ी है—

ज्वालाओं के भी हैं उरोज
उनके भी हैं कम्पन
उनके भी हैं दुग्ध।

मिस अरोरा ने फूहड़-सा ठहाका लगा दिया और कहा कि नितान्त सुन्दर ! पर यह सच भी है ? ज़रा पीछे तो देखो।

शिली ने बिना शीघ्रता के पीछे देखा।

मिस अरोरा ने शिली के सौन्दर्य-सूर्य के समकक्ष खड़े युवकों के क्षितिज को देखा और उसे एक विचित्र अनुभूति हुई। सौन्दर्य की दुनियाँ में स्त्री-पुरुष का भेद हो नहीं है। दोनों ज्वाला-रूप हैं ! ये सब युवक शिली-सूर्य की ज्वालायें हैं ! शिली ने क्या कहा ?

ज्वालाओं के भी हैं उरोज
उनके भी हैं कम्पन
उनके भी हैं दुग्ध

उसे स्वीकृति मिली कि इन युवकों में ये तीनों पंक्तियाँ हैं।

शिली ने देखा, एक तरुण सुन्दर युवक ! वह सर्वश्रेष्ठ रुचियों की भूषा पहने खड़ा है। शायद वह भी प्रदर्शिनी देखने नहीं आया। मेरा अखिल अध्ययन करने आया है।

मिस अरोरा ने कहा कि आओ, शर्बत पियेंगे।

पर पहले परिक्रमा पूरी की गई। खरीदा कुछ नहीं गया। प्रदर्शिनी में कुछ खरीदना मानो अड़ियल टट्टू खरीदने की जोखम लेना है। सो मिस शिली ने यथोचित ढंग से अपना अखिल अध्ययन पीछे आते हुए उस सुन्दर युवक को सहज करा दिया। शर्बत पिया और अपने पीछे की धूल को अपने आप आकाश से पृथ्वी पर उतर आने और शान्त होने के लिए छोड़ गई।

प्रदर्शिनी अठारह दिन चली। इतने दिन काफ़ी होते हैं कि पूरा महाभारत पढ़ लिया जाय और राज-पाट का ही फ़ैसला नहीं, धर्म-पाप का निर्णय और मानवता

की इति-श्री भी तै करदी जाय। मिस शिली ने सत्रहों दिन अपनी भूषा की रंगीनी, सुरुचि के विशेषणों से भरपूर अपनी सौन्दर्य-मनुस्मृति और अपनी लज्जा की पूर्णिमा का मूर्त्त प्रदर्शन किया। प्रदर्शन अनुवादित होने लगे तो वह तपोबल में क्या कम है ? और अपनी विजय-पताका लिये वह हर दिन लौटती तो देखती कि वह मनोनीत प्रेसीडेंट मान ली गई। पर यह भी देखती कि उसकी विजय-पताका के पीछे बेतहाशा धूल उठती है। सबसे ऊँची धूलि का कण वही सुन्दर युवा होता था जो नित्य ही मिस शिली की विजय के टैम्पो के समानान्तर अपने परिवेष की प्रति-गर्जना करता था। गर्जना !

आज अन्तिम दिन है। प्रदर्शिनी की वृत्तियों और प्रवृत्तियों का वह 'राउण्ड-अप' करेगी। और अपनी विजय का अर्थ शब्दों में स्पष्ट करेगी। अपने पीछे उड़ती हुई धूल के कणों को अपनी पताका की फरफराहट से शांत करेगी। किन्तु वह जो सबसे ऊँचा धूलि-कण रोज ही आकर उसे आच्छादित करता है ?

लोग दुखी हैं कि प्रदर्शिनी बन्द होगी। मजा चारों ओर का फीका है। मिस शिली ने अपनी सौन्दर्य-गीता का अंतिम पाठ पढ़ा, परिक्रमा पूरी की और इस सुन्दर युवक को देखकर अपने विजय के प्रलोभन की रासें ढीली कर दीं। उसकी मंशा यह नहीं है कि उसके विश्व-विजयी अश्वों की टापों से चिथकर ये धूलि-कण कराहते हुए ऊपर उठें। उसका बस चले तो वह धूल के ऊपर टाप ही न पड़ने दे। चुपके से उसका रथ उस धूल पर से उड़ता हुआ सर्र चला जाय।

रात के बारह बज चुके हैं। सौन्दर्य के कुतूहल की अकुलाहट का द्वार अब बंद करना चाहिए। अब एकाग्रता यह हो कि अगले वर्ष वह इस वर्ष की विजय को अपनी साँकल से न खुलने दे।

प्रदर्शिनी समाप्त हुई। शिली लौटी और ताँगे में बैठी। वह सुन्दर युवक भी एक सवारी की नाईं आकर बैठ गया। ताँगा चला, और उसने जाना कि उसका बलात् अपहरण हो रहा है। और यह भी लगा कि सहायता उससे दूर पड़ गई है। पथ के अंधकार में वह कठोर दृष्टि उसको ग्रास बनाना चाह रही है। एक शिकन शिली के मस्तक पर आ गई। ताँगा शीघ्र ही एक स्थान पर रुक गया। चारों ओर निर्जन है। सामने मकान है। युवक ने कड़ककर कहा, "नीचे उतरो !"

शिली, विवश, नीचे उतरी। इतना सुन्दर युवक और इतना असभ्य ! मकान के अन्दर उसे बलात् ठेल दिया गया। दूसरे ही क्षण वह क्रूरतापूर्वक उसकी छाती पर चढ़ बैठा।

"अब बोलो !"—ब्लाउज़ के 'नेक-बो' को झकझोरता हुआ वह बोला।

"......"—शिली इस अलंघ्य और शठ व्यक्ति से क्या बोले ? अपनी शुभ्र

वेदना में कराह उठी, इतना भारी युवक जो उसकी छाती पर चढ़ा बैठा है।

"मैं पूछता हूँ, अब क्यों चीख़ती हो? यही तो तुम चाहती थीं कि तुम्हारे साथ ऐसा हो! कम से कम हम युवकों को तो यही उत्तेजना देती रही हो! नित तड़क-भड़ककर सँवरकर आती थीं तो क्या यही नहीं चाहती थीं? और आपकी वे पंक्तियाँ मैंने सुनी हैं। बड़ी नज़ाकत के साथ सुना रही थीं :

"ज्वालाओं के भी हैं उरोज
उनके भी हैं दुग्ध
उनके भी है कम्पन!"

"दुग्ध की इतनी बढ़ी-चढ़ी माँग है! इच्छा रखती हो तो क्यूँ काँप रही हो?"

शिली अपने तपोबल से पारदर्शी हो गई, कि युवक उसके आर-पार देख ले, अपना उत्तर जान ले। पर वह ढीठ युवक नीचे उतरा और अपने विशाल पंजों में उसे दबोचकर खड़ा कर दिया—"मैं पूछता हूँ, तितलियों-सी यूँ उड़ी फिरने में तुम्हारा उद्देश्य क्या रहता है, तुम्हें क्या मिलता है? या तुम क्या ढूँढ़ती हो? हज़ारों युवकों के पौरुष तुम विचलित कर जाती हो, उनके कौमार्य को डिगा जाती हो! क्यूँ न वे हज़ारों युवक अपने कौमार्य के डिगने के क्लेश के एवज में क्षणिक आनन्द तुम्हारी छाती पर बैठकर पायें?"

शिली पीड़ादायक यन्त्रणा से कुछ छूट पाई। सामने की कुर्सी पर जा बैठी। बोल सकी, "बलात्कार इंसान नहीं किया करते, नरपिशाच करते हैं। मैं बलात्कार द्वारा अपनी मृत्यु से नहीं डरती।" पर स्वयं अपने कथन पर सन्दिग्ध, तड़पकर रह गई।

सुन्दर युवक क्रोध से तमतमाता हुआ पीछे हट गया। निस्संशय विराट विजय-दृष्टि से शिली उसकी कठोर दृष्टि को ललकारती हुई गरज-सी उठी,—"मैं कुछ भी नहीं बोलना चाहती। सत्रह दिन बाद भी तुम्हारे साथ मुझे स्नेह नहीं उपजा है, बोलूँ क्या? छाती पर बैठने के क्षणिक आनन्द को तुम खोजने निकले हो? दुर्बल कौमार्य प्रदर्शिनी में क्यों होड़ के लिए आते हैं? प्रदर्शिनी बलात्कार के लिए नहीं है। तुम भला रोज़ जो बन-ठनकर आते थे, सो बलात्कार के लिए?"

युवक चीख़ उठा, "निकल जाओ मेरे कमरे से!"

शिली बैठी रही। वय-सन्धि का प्रथम आँसू उसके मुँह पर ढुलक आया। अरे, देवता पुष्प-वर्षा क्यों नहीं करते!

युवक ने द्वार खोला। बाहर ताँगा खड़ा था। शिली को उसमें कड़ाई से बिठाकर ताँगे वाले को दोनों का किराया दिया। बिना नमस्कार, लौटकर, धड़ाम से शिली के मुँह पर द्वार बन्द कर दिया।

निष्कम्प दृष्टि, वय-सन्धि के अश्रुओ का प्रपात भर [illegible] अन्तहीन फुहारे के नीचे स्नान करने को कोई नही है !

मकान पर पहुँचकर शिली ने मुत्रकियाँ बंद की। सामने प्रदर्शिनी में पहनी गई साडियाँ, ब्लाऊज़, आभूषण और हैंड-बेग, कास्केट-बाक्स रखे हुए हैं। उसे नही जँचा कि किसी कोटि के युवको का यौवन-धर्म ये दूषित कर देते है ! यदि करते हैं तो पहले शिली का सौन्दर्य-धर्म पतित नही कर चुके होगे ये ?

नही, नही, सौन्दर्य-धर्म से युवक-धर्म नही दूषित हो सकता। युवक-धर्म के विराट-रूप का अवतार प्रदर्शिनी में क्यो नही अवतरित हुआ, भला इसका दोष क्या शिली के विराट सौन्दर्य-रूप पर है ? वह कम-बुद्धि का सुन्दर युवक अपने क्षुद्र युवक-धर्म से, शिली के विराट-सौन्दर्य का स्वागत करने की बजाय, उसका अपहरण करने आया था !

अपनी वय-सन्धि के आँसू ढलकाती हुई शिली उस युवक के विष से विपाक्त सिहर उठी। जो वट-वृक्ष वह नही चाहती थी, उग आया है। शिली युवकों की नैतिकता की अखिल इयत्ता अपने सौन्दर्य में नही लय कर सकी। वह शठ युवक इसी नैतिकता की विराट छाया के नीचे उसकी छाती को चीथना चाहता था ?

'निकल जाओ मेरे कमरे से बाहर !' उसने चीखा था। पर प्रवाह के फेन को बाहर निकाल दिया जाय तो उसकी आस्था क्या रहेगी ? शिली ने अपने को झकझोरा। स्वस्थ हुई, रजाई में प्रवेश करती हुई उन ढेर प्रश्नो का जैसे एक उत्तर दे रही हो, बोली : "ज्वालाओ के भी है दुग्ध !"

२८

राजधानी के ढंने

धूप और लू और पसीने की चिपचिप से त्राहि चीखते हुए नर-नारी जब बरसात की अग्रिम सूचना देने आई हुईं छुटपुट बदलियों को नामचार की मामूली दो-चार बूंदें चुआने के बाद ही यह देखते हैं कि पुरवैया उन्हें तेज धक्का देते हुए आगे बढ़ाये लिये जा रही है और अपने पीछे बदबूदार हुमस छोड़े जा रही है, तो सभी क्रोध से भरी बेचैनी से ऊपर देखते के देखते रह जाते हैं। नरेश बेचैन है, कुढ़ रहा है, झुंझलाकर रह जाता है कि यह युद्ध बंद होता जा रहा है और उसके पास अभी तक पचास हज़ार रुपया भी जमा न हो पाया ? यह तो हर हालत में हो ही जाना चाहिए था। भला चूक कहाँ रह गई है ?

वहाँ रियासत से यहाँ नई दिल्ली के सेक्रेटेरियट में आकर उसने सोचा था कि यहाँ पर उसके गोपन की सभी इच्छायें पूरी हो जायँगी। वह हैरान, देखता रहता है कि सभी आई. सी. एसों. के यहाँ नित्य ही दीवाली के घृत-दीप जगमग जलते हैं। वह रोज़ाना शाम को देखता है कनाट सर्कस के 'बार' में, सब बड़े अफ़सरों की रंगीली खूबसूरत तरुणी पत्नियाँ शराब पीती हैं और बिना हिचके रसीले प्रेम की गुनगुनाहट हर नये साथी के कान में गुनगुनाती रहती हैं। जहाँ तक नरेश का सवाल है, बार में पहुँचते ही वह इन तरुणियों के बीच में रम जाता है और उसकी दिन भर की थकावट से क्लान्त जी गुदगुदा जाता है और मन हरा हो जाता है, बासंती हवा से स्फूर्त पीपल की नई कोंपलों-सा ! उसने भेद पा लिया है कि युद्ध की शुरूआत से लेकर सब अफ़सरों ने इतना रुपया कमा लिया है कि अपना-अपना नया मकान बना लिया है और उसका भाड़ा और उसकी सलामी बढ़-चढ़कर खा रहे हैं। सब अफ़सरों के बच्चे और उनकी लौंडियाँ और पत्नियाँ किस शान से रहते हैं। पर एक अभागा नरेश है कि आज तक कुल इक्कीस हज़ार रुपया ही बटोर पाया है। इतने रुपयों से तो एक चौथाई कोठी भी तैयार नहीं हो सकती। इतने रुपयों से तो वह किसी बड़ी व्यवस्था के चक्र-व्यूह में प्रतिष्ठित भी नहीं हो सकता।

नई दिल्ली आये हुए उसे आज पूरे पौने दो साल हो गये हैं। पहले वह अशोक रोड की एक कोठी में रहता था। ललिता भी साथ ही आई थी। महाराजा साहब ने अपनी खास सिफ़ारिश से उसे यहाँ नई दिल्ली भिजवा दिया था। इसमें महाराजा साहब का भी एक खास स्वार्थ था कि वे आराम से अपनी मनचीती चीज़ों का कोटा

वसूल कर सकेंगे। उन्होंने एक घूमफेर का चक्कर तैयार कर अपनी रियासत में कपड़े की मील क़ायम करने का इरादा किया था। सोचा यह था कि अपने निजी प्रभाव से दो लाख के शेयर तो मित्र नरेशों और जागीरदारों को बिकवा देंगे और एक लाख के शेयर अपनी रियासत के सेठों के मत्थे मढ़ देंगे। मन में उनके एक चोर यह भी था कि अगर मील न चली तो वे उसके लिए मिला हुआ लोहे का और सीमेन्ट का कोटा ब्लैक में बेचकर काफ़ी रुपया बटोर लेंगे और शेयरों का रुपया भी डकारने की छूट पा जायँगे। नरेश इस काम में नई दिल्ली में बैठा हुआ उनकी मदद सच्ची तरह से करता रहेगा। और नरेश ने सोचा था कि इस लेन-देन में कम-से-कम वह ४० या ५० हज़ार रुपया अपना कमीशन बिना सर-दर्द निकाल लेगा। लेकिन, वायसराय साहब ने महाराजा साहब को लिखा कि अभी वे इस तरह मील का काम अपनी रियासत में शुरू न करवायें। क्योंकि युद्ध बन्द न होने तक उन्हें मशीनरी किसी भी हालत में न मिल सकेगी। इस ज़रा-सी 'टेक्नीकल हिच' पर नरेश की सारी आशाओं पर पानी फिर गया था। महाराजा का क्या, उन्होंने अपनी रियासत के कलकत्ता-स्थित सेठों को दबाकर कलकत्ता में एक नई लिमिटेड कम्पनी खोल ली थी। यहाँ नई दिल्ली एक पराया शहर आज भी लगता है। फिर भी बिना मुस्कराये वह नित्य ही दो या तीन सौ की रिश्वत झड़पे बिना नहीं चूकता। किसी दिन गहरा दाव लगता है, तो उस रात वह दो बजे के झमझमे तक बिल्यिर्ड खेलता है। या किसी अफ़सर की हसीन पत्नी के साथ बैठकर शैम्पेन पीता है और उसे शैरी पिलाता है। अक्सर उसके पास स्वयं ही मिसेज हंसा सक्सेना आ बैठती हैं और हिन्दी की नई कविताओं पर सरस फब्तियाँ कसती हुई ताजा आर्ट पर बहस करती रहती हैं। किन्तु उसका पास बैठने का मक़सद सिर्फ़ तीन पेग शैरी पीना भर होता है।

नरेश ने ललिता को कई बार डाँटा है कि वह भी उसके साथ बॉर में चले और वहाँ की तमीज़ सीखे। मन में उसके हविश है कि उसके बॉस ललिता की संगत से ज़रा मुग्ध हो जायें तो कितने आकाश-कुसुम तोड़ने को मिलें। पर ललिता है कि डंडे पर डंडा खाने वाली पालतू गाय की तरह जिद्दन औरत बन गई है। कहती है, मुझे नहीं जाना उस रंडीखाने में। नहीं है फालतू मेरी देह कि उसका कठपुतली का नाच दिखाती फिरूँ। तुम्हारी अक्ल पर तो पत्थर पड़ते जा रहे हैं।

नरेश तिलमिला उठता है इस असंगत प्रलाप पर। दाँतों को भींचता हुआ कहता है, "अजी श्रीमती जी, ज़रा धीमे बोलिये। पड़ौस में आखिर कुछ शरीफ़ लोग बसते हैं।"

ललिता इस पर चुप हो जाती है। नरेश उसी समय बाहर हो जाता है।

और जब तक वह 'बार' नहीं पहुँच जाता, ललिता की बातें उसके दिमाग़ में क्लोरोफार्म-सी भरी रहती हैं। उसे इस तरह अपने वश में कर आखिर ललिता चाहती है कि मैं अपने साथी अफ़सरों की निगाहों में एक मूर्ख और फूहड़ गधा जाहिर हो जाऊँ। बस, 'बार' में घुसते ही वह फाइनेंस मिनिस्टरी के एडीशनल-सेक्रेटरी की तरुणी-पुत्री मिस चौहान से 'नमस्ते जी' कहता है और उसके पास बैठकर बातें शुरू करता है कि ओह, आज तो आपने मेहरूम शेड की इस साड़ी पर कितना मैच करता हुआ ब्लाऊज़ पहना है। कल मैंने 'हामंड एण्ड संस' के यहाँ एक नारवीजियन टिश्यू देखा है। वह आपको कितना फबेगा, यह तो आप उसे अपने पर सँवारेंगी तभी पता चलेगा। और नरेश देखता है कि मिस चौहान की वक्ष कितनी उभरकर 'पॉइंटेड' हो गई है कि इससे कोई भी कलाकृति बढ़िया तूलिका के सदृश खींची जा सकती है। मिस चौहान फुदककर खड़ी होती है और यूँ ही किसी नवागंतुक को देखने के बहाने उस भीड़ में अपना प्रदर्शन कर फिर बैठ जाती है और नरेश से कहती है कि आपका टेस्ट सचमुच मुझे अपील करता है। कल आप कहें तो शाम को हामंड्स के यहाँ ही चलेंगे। नरेश इस स्वीकृति पर निहाल हो जाता है और अब ज़रा तसल्ली से उसकी पतली कमर देखता है। मिस चौहान ने ब्लाऊज़ सिर्फ़ बाडिस तर्ज़ का पहना है और उसकी नाभि नग्न दीख पड़ रही है। एक ललिता है कि जिसे आज तक साड़ियाँ पहनने की तमीज़ नहीं आई है। और वह 'ब्वॉय' को हुक्म देता है कि दो पेग शैरी लायें! भाड़ में जायें ललिता और उसकी बच्चियाँ। दिमाग़ में चौबीसों घंटे हुमस रखकर हम वसन्त की मादक वायु-लहरी का आनन्द कैसे ले सकते हैं। पढ़-लिखकर तो हमारे दिमाग़ की नैतिकता और मँज जानी चाहिए और ब्रासो की पालिश से साफ़ की हुई चमक उसमें आ जानी चाहिए। लानत है ललिता की कालेजी पढ़ाई पर। ऐ ईडियट गर्ल, गुड फॉर नथिंग!! और, इसीलिए वह नित्य ही अपना शाम का 'डिनर' भी यहीं 'बार' में कभी मिस चौहान के साथ, कभी मिसेज सक्सेना के साथ, कभी मिसेज नायडू के साथ ले लेता है।

शुरू में रात को जब नरेश का देर से आने का नियम बनने लगा था, तो ललिता ने हल्का-सा क्लेश ही महसूस कर लिया था और मन मारकर बैठ रही थी। पर अब, वह महसूस करती है कि उसके दाम्पत्य की कुटी-कुटाई सड़क की ऊपरी सतह ताज़ा बारिश से भीगकर ऐसा कीचड़ बन चुकी है जिसमें पैर रखने के लिए पहले संशय ही नहीं होता था और अब उसमें धँसकर ताज्जुब हो उठता है। उनके कहने से दो-तीन बार वह 'बार' में जा चुकी है। वहाँ पर उसने अपने पति की इच्छाओं को परम तृप्ति देते हुए एक सुन्दरी का अभिनय भरपेट किया, क्योंकि अपने कालेज में वह 'चिकी' नम्बर एक थी। लेकिन घर लौटकर उसकी आत्मा ने कहा कि 'ये'

किस मरीचिका में उलझ गये है ? दिन में वे सब अफसर [illegible] हुए, देश की छाती पर रोजाना इस अग्रेजी सरकार के साथ मिलकर षड्यन्त्र किया करते हैं। और, रात को, अपनी घर की बहू-बेटियो को लेकर उन 'बारो' में वहाँ तो साज़िश करते है कि उनकी अफसरी-सोसायटी मे भी अपनी निश्चित सीढिया बनाकर रखे। छोटे अफसरो की पत्नियो को और पुत्रियो को चाहिए कि वे बडे अफसरो की पत्नियो को झुककर आदर करे और उनकी खुशामदे कर उनको गौरव दें। लेकिन इसी षड्यन्त्र मे सभी अफसर एक यह भी तो साज़िश अनजाने करते है कि नारी के माधुर्य की कीमत लेकर या देकर अपनी आगामी तरक्की की सडक चिनते रहते है। वास्तव मे ये 'बार' सेक्रैटेरियेट की बाहरी मशालें है, जिनके प्रकाश मे ये अफसर अपना भविष्य खोजा करते है। और जिस खोज के लिए वे अपने पूरे परिवार की इज्जत भी दाँव पर लगा देते है' 'ललिता को याद आया कि रोम के ऊपरी वर्ग में सरकार-परस्त सामत इसी तरह अपना अधिकाश समय'रोमास की चौपड और शतरज खेलने मे बिताया करते थे। और उस व्यापक 'खुले' जुए मे अपरवर्ग की सुन्दरियाँ इस तरह तैरा करती थी, गोया कि वे नारी नही है, बल्कि सिर्फ आखेट के हितार्थ रगीन मछलियाँ है। वह सिलसिला कितने करोडो सालो से बेलाग हर सरकार के दरबारो मे चला आ रहा है। आज यह नई दिल्ली भी उसी तरह के दरबार से सज्जित है, जिस दरबार के सामने मुगलो का दरबार फीका लगता है। शराब, सुन्दरी, रोमास की शतरज, एक चुम्बन की कीमत पर सरकार के सबसे बड़े-से-बडे रहस्य का क्रय-विक्रय, बिलयर्ड, ब्रिज, रेस, पिकनिक और वे सब खेल, जो हराम की कमाई से जरा आसानी से खेले जा सकते है, इस सेक्रेटेरियेट के इर्द-गिर्द किसी लम्बे त्यौहार की तरह से मनाये जाते है। इन लोगो के लिए कहाँ है युद्ध, कहाँ है बगाल का अकाल, कहाँ है जनता की रोज़ाना की बीहड़ तकलीफें और कहाँ है देश की आत्मा का कलपता हुआ स्पदन ?

नई दिल्ली राजधानी है! यहाँ पर सरकार का केन्द्र है। और जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले नही, अपितु जनता पर शासन करने वाले (जी हाँ, ये दोनों एकदम विपरीत चीज़ें है!) यहाँ पर आबाद है। सारे देश का शरीर आर्डिनेसो के ज़रिये मुश्तों मे बँधा हुआ है। और, जैसे कि यह मुश्त मे बँधा हुआ देश कोई युद्ध-अपराधी है, तो आई सी. एस. और उनके कारकून विजयी जनरलो और फील्ड-मार्शलो की तरह सुरापान मे विभोर है। नदी के किनारे-किनारे चलने पर व्यक्ति की परछाईं पानी मे नीचे की तरफ़ उल्टी बनी हुई कदम-ब-कदम चलती है। आज की सचाई यह युद्ध है और इससे फफूंदकर उठी हुई देश की अनेक महामारियाँ है और नई दिल्ली की यह जनानखानो-सी ऐय्यासी उसी की जलीय परछाई लगती है, लेकिन किसी भी 'बार'

में बैठकर लगता है कि ये उच्च सभ्यता की रेशम से ढँके सरकारी वेश्यालय ही असली सचाई हैं, और देश की समस्त महामारियाँ और यह युद्ध जल में नीचे की ओर मुँह कर और ऊपर पैर कर चलने वाली परछाईं भर हैं !

ललिता ये सब बातें सोच लेती है, और नित्य ही मन-ही-मन अपने दाम्पत्य के एकान्त क्लेश से रो लेती है। शुरू-शुरू में जब नरेश इस तरह शाम को नये रेशमी सूट पहनकर 'बार' जाया करता था तो वह खुश होती थी। खुश होती थी कि उसके दाम्पत्य का गुलाब खिल रहा है, फूल रहा है, कलिया रहा है, पक रहा है। उसमें जब मुलायम-मुलायम हरे-हरे काँटे उगे थे, तो वह हर्षित ही हुई थी, पर आज वे ही काँटे सूखकर कैसे उसी के चर्म में घुसते चले गये हैं और वहीं टूटकर टीस देते रहते हैं। हाँ, इसमें शक क्या है कि ये उसी के दाम्पत्य के वे हरे काँटे ही तो हैं, जो पहले बड़े मुलायम थे और बड़े सुहावने लगते थे···और ललिता अपनी आँखों को सुजाते हुए रोती रहती है। अब तो नरेश ने उससे बात करना भी छोड़ दिया है। अक्सर वह रात को सोने भी नहीं आता है। आता है तो कभी लिली को पीटेगा या उसे तुनककर कहेगा, "बेहूदी औरत ! क्यों तू मेरे गले में फाँसी का फंदा डालने आई है?"

ललिता इस वक़्त तो सिर नीचा कर चुप रहती है। पर जब वे कार में बैठकर आफ़िस चले जाते हैं तो तकिये में मुँह देकर वह ज़ार-ज़ार रोती है। अब तो उसके दाम्पत्य का गुलाब एकदम शनैः-शनैः मुरझाकर सूख गया है और उसकी सब हरी-हरी छोटी-बड़ी पत्तियाँ जाने सूखकर मिट्टी में मिल गई हैं या कौन सी हवा में उड़ गई हैं ? बस, अब तो उसके दाम्पत्य की सूखी डंडियाँ रह गई हैं और उनमें सूखे हुए बड़े-बड़े नुकीले काँटे। ओह ! अब उसका दाम्पत्य क्या बिलकुल हरा न हो सकेगा ? किसी भी तरह ? कि एक दिन नरेश ने कहा कि मैंने इन्तज़ाम कर दिया है। अपना बड़ा नौकर तुम्हें घर पहुँचा आयेगा। तुम शाम तक घर जाने की तैयारी कर लो। यहाँ रहना ठीक नहीं है। मैं रोज़-रोज़ तुम्हारा क्लेश बरदाश्त न कर सकूँगा। वहाँ तुम अकेले खुश रहोगी।"

इस तरह ज़बरदस्ती उसे अपनी कोठी से निकालकर वे उसे गाड़ी में भी बैठाने नहीं गये थे। गाड़ी की सैकिण्ड क्लास की 'लेडीज़' में अकेले होने पर वह इंजन के चलते ही रोई थी और उसके साथ ही उसकी दोनों बच्चियाँ भी दहाड़ उठी थीं और उसने उन्हें इसलिए चुप नहीं कराया था कि अच्छा है इन अभागिनों को रो लेने दो।

× × ×

नरेश ललिता को सात दिन में ही किसी बहुत पुरानी दुर्घटना की तरह भूल गया। अब वह मुक्त है और इस तरह उसके चारों ओर खुला आकाश घिर

गया है, जैसे तो उसके डैने मनचाही दिशा में उड़ने के लिए उग आये हों। सुबह की चाय उसकी किसी-न-किसी सुन्दरी के हाथों सर्व होती है। और दुपहर में वह अपना लंच भी किसी-न-किसी सुन्दरी के साथ लेता है। और रात के प्रथम दो प्रहर तो ठीक निशाने पर बढिया शॉट मारने मे बीतते हैं। अपनी रियासत मे वह 'जी-हुजूरी' कला का पारगत हो गया था। यहाँ अपने सिविल-सप्लाई विभाग में उसने इस कला का आई. सी. एस. शैली से इस नफासत के साथ प्रयोग किया है कि वह अपनी आत्मा की आवाज़ भूल बैठा है। कुछ चद कारखानेदारो और मुनाफाखोरो को हर वस्तु का कोटा उसके विभाग से एक अच्छी रिश्वत के ऐवज़ मे दे दिया जाता है। पर यही कोटा किसी भी उस व्यापारी को नही दिया जा सकता, जो रिश्वत देने से भय खाता है, या हिचकिचाता है। वह ऐसे व्यापारी को घोंचावसत कहता है और उस पर दया खाता है। अपने पिता के सस्कार उसमे इस तरह मोड खाकर बैठे है कि वह ठीक मौको पर साहबी ठाठ मे इतना तनाव खा जायगा, कि उसकी न्याय-भावना अपना सतुलन ही भूल बैठेगी। और, किसी भी स्थान पर अगर उसकी स्वार्थसिद्धि होती दीखेगी तो वह स्वामिभक्त घोडे की तरह हिनहिनाकर अपनी पूंछ फरफराना शुरू कर देगा। और, अपने से बडी हैसियत के अफसरो के सामने वह इतना-इतना गिड़-गिड़ायगा कि उन्हे उस पर पसीजना ही पड़ेगा। और, उसी शाम वह इस ताक में रहेगा कि किसी तरह उस अफसर की किसी युवति-कन्या को कोई बढ़िया साड़ी खरीदवाये या उसके लिए कोई अमूल्य तोहफा उसके नाजुक हाथो में क्षण भर को थमाकर कहे कि अच्छा, तो मेरा ब्वॉय दे आयेगा आपकी कोठी तक। बस, उसकी आत्मा कुल मिलाकर यह रह गई है कि वह अपनी कमीनी हरकतो से देश की छाती पर रिश्वतो के नारकीय-कीड़े मुक्त-हाथो फैलाने मे दोनो हाथो योग दे रहा है और अपनी नीच आदतो से केन्द्रीय सरकार के शासन के कीचड़ को और गहरा बना रहा है। नरक के ऐसे निर्माण मे उसके इस सहयोग के एवज़ में कुछ ध्वस्त-नारियो के झूठे चर्म को चाटने का उसे अवसर मिलता है और नरेश अपने को इस पृथ्वी का सबसे बड़ा धनभाग और खुशनसीब मनुष्य मानता है!!

डिफेंस मिनिस्टरी के एडीशनल सेक्रेटरी खान खुदाबख्श ने अपनी बेटी के निकाह पर 'एट होम' दिया है। अगरचे दिल्ली मे पच्चीस आदमियो से ज्यादा किसी भी तरह दावत मे नही बुलाये जा सकते, लेकिन इतने तो उनके मेहमान होगे। सब मिनिस्टरीज़ के चुनीदा-चुनीदा अफसरो को भी बुलाया जायगा तो कुल तादाद पौने दो सौ बैठेगी। इसीलिए मिठाई की जगह फल रखकर और बाकी डिशे बाकायदा रखकर पार्टी के इन्वीटेशन्स भेज दिये गये। उसी शाम उनकी शानदार कोठी के लान्स मे बिजली की ज़ोर-शोर की रोशनी की गई।

नरेश के सामने हैल्थ मिनिस्टरी के फर्स्ट सेक्रेटरी और उसके बायें मिसेज सौंधी, जिनके एक फुफिया ससुर काँग्रेसी नेता हैं और अभी लाहौर जेल में बंद हैं और जिन्हें पैरोल में छुड़ाने के लिए मिसेज सौंधी कई बार अनेक बहानों से होम मिनिस्टरी के फर्स्ट सेक्रेटरी से मिल चुकी हैं, उसके दायें मिस आहूजा बैठीं। और चारों ने सिगरेटों के कश लेते हुए क़हक़हा लगाया कि हम एक मुसलमानी निकाह के गवाह बनने आये हैं, हमारा ईश्वर हम सबों से कहीं नाराज़ न हो जाय।

फोर्सेज के जो भी पर्सनल आये हैं वे सब एक ओर इकट्ठा होकर 'ड्रिंक' करने बैठ गये। उनकी दुनियाँ अलग है। वे अलग तरीके से सोचते हैं। वे अलग तरीके से इस दुनियाँ को देखते हैं। उनके 'स्टार्स' खूब चमचमा रहे हैं। उनके चेहरे हल्की मुस्कराहट से खूब रौशन हैं। सिविलियन आफ़िसर्स के साथ मिलते हुए वे आजिजी से मुस्कराते हैं, लेकिन अपने होंठों को भी विद्रूप में हल्का-सा मोड़ लेते हैं। एक पायलट अफ़सर ने अपने साथी आफ़िसर से कहा, "आह! ये सिविलियन सेक्रेटरीज़ और आफिसर्स। गोया कि 'टिन्ड फ़ुड' स्मैल करने लगा हो।"

अपनी अकल का इज़हार आई. सी. एस. अफ़सर सर नरसिंह ने एक मज़ाक करते हुए दिया, "ओह दीज़ आर्मंड फोर्सेज़! जैसे तो किसी ने पहले 'ड्रिंक' कर लिया हो और उसके बाद दही-बड़े चाटे हों।"

यद्यपि इर्द-गिर्द बैठे हुए अफ़सरों के दिमागों में यह मज़ाक साफ़ न हो सकी, क्योंकि उन्हें सिर्फ़ अर्जेंट, इमीजियेट, स्ट्रिक्टली सीक्रेट, पर्सनल, कॉन्फीडेंशियल, टू अर्जेंट और लाल फीतों की फायलों की खानापूरी ही समझ में आ सकती थी। फिर भी वे सब उनकी चापलूसी करते हुए हँस दिये थे।

सब अफ़सर पी रहे थे और आपस में अपनी तोंदों को थुलथुलाते हुए हँस रहे थे, पर मन ही मन में वे आपस में एक दूसरे को देखकर कुढ़ते भी जाते थे। उनका खून जलकर राख हुआ जाता था। और उनके दिल में कोई अपमान अन्दर ही अन्दर रेंग कर उनका जी फूंके डालता था। पर ऊपरी मन वे न चाहते हुए भी हँस रहे थे और नये से नया किसी विदेशी अखबार में पढ़ा हुआ लतीफा सुना रहे थे।

आफिसर्ज़ लेडीज़ आई थीं। एक-से-एक बढ़िया साड़ी में सँवरकर आई थीं। पर यहाँ एक स्थान पर आकर उनको ऐसा भान हो रहा था कि उन सबकी साड़ियाँ एकदम सस्ती और आऊट ऑफ़ फैशन हैं। बस, उस मिसेज ने जो साड़ी पहनी है वह ही आज अलग बोल रही है। और वे भी वह साड़ी कल ज़रूर मँगाकर रहेंगी। और जब वे आपस के आभूषणों को देखती हैं तो उनका हृदय जल से बाहर निकली हुई मछली की तरह से तड़फड़ाता है। आह! कितना बढ़िया कट है उसके लाकेट का कि इतनी दूर तक अलग चिलक रहा है। और बात-बात में वे आपस में कुढ़ती हैं,

पर बाहर हँसती है। आपस में एक दूसरे को घृणा करती हैं, पर बाहरी मन से एक दूसरे की तारीफ करती हैं कि जी, आप बस एक ही हैं। आपकी [illegible] कितनी ऊँची है कि आज इतनी श्रेष्ठ विदुषी मिलना कठिन काम है। धन्य हैं आपको पाकर आपके पति महोदय! लेकिन जब कोई अफसर की पत्नी कहीं दूर पर खड़ी हुई किसी अन्य अफसर के साथ हँसती हुई दीखती है तो इनके तन-बदन में आग लग जाती है कि क्यों·

नरेश के पास से मिसेज सौंधी उठकर चली गई थीं और उधर बिहार के चीफ सेक्रेटरी के पास हिलमिलकर खिलखिला रही थीं। मिस आहूजा भी क्षमा माँगकर उधर बेगम मुहीउद्दीन के बडे नवाबजादे के पास दूसरा पेग शैरी का पी रही थीं। नरेश के पास इस समय उसके साथी-कुलीग मिस्टर चोपडा बैठे थे। उनसे मज़ाक चल रही थी कि ये कॉग्रेसी इस बार जेलों से निकलकर कौन सा शिगूफा छोडेगे। कि नरेश की निगाह वायसराय के पर्सनल असिस्टेंट की भानजी मिस मुनदा पर जा अटकी। उसकी वक्ष क्या बैलेस्ड है कि वह इस समय अनन्य सुन्दरी जँच रही है। कि नरेश ने मज़ाक की, "अरे भाई, खूब कही इन कॉग्रेसी नेताओ की। ये लोग तो किसी छोटी उमर की हसीना को छातियो की वह खाई है जो अभी सिर्फ बननी ही इस मायने में शुरू हुई है क्योकि उसकी छातियो का उठान ऊपर की ओर चल पडा है।" उसके साथियो ने ठहाका मारते हुए जोर का कहकहा लगाया और नरेश की इस पालिश्ड-मज़ाक पर उसे अनेक बधाइया दी। शात होने पर नरेश ने समझाया कि लडाई खत्म हो रही है, इसलिए इस कॉग्रेस की सियासत टैन डाऊनिंग स्ट्रीट मे अब ज़रा फुर्सत से गढी जा सकेगी।

पार्टी खत्म हुई तो अपनी कार मे अपने 'बॉस' के परिवार को छोडते हुए वह अपनी कोठी पहुँचा। मन उसका बाँसो उछल रहा है। वह आज बेहद खुश है, और चाहता है कि बजाय यहाँ सोनें के, 'बार' मे चलकर बिल्यर्ड खेल आये। पर अपने सोफे पर फैलकर उसने 'रम' का कार्क खोला और अपना सिगार निकाल लिया। वह चाहता है कि उसकी अपनी भी एक निजी कोठी तैयार हो जाय। पर वह हो कहा पा रही है। आज मिस्टर नागर आये थे। उन्होंने उसके सामने प्रस्ताव रखा है कि अगर वे डेढ सौ गर्डर्स का परमिट दिलवा दे तो वे अपनी कोठी का आधा फ्लैट उनके नाम कर सकते है। डेढ सौ गर्डर्स। परमिट देने के बाद उन्हे कम-से-कम अपने 'बॉस' को भी खुश करना होगा। और वे खुश किस तरह होगे···जब उसकी अपनी कोठी हो जायगी तो वहाँ पर एक छोटा-सा बगीचा होगा। युकलिप्टिस और आम के पेड लगेंगे। नही, हरगिज नही, ललिता उसमे आकर नही रह सकेगी। उससे नाता इस ज़िन्दगी मे किसी भी तरह न हो सकेगा। चिट्ठी में लिखा आया था कि वह माधवी

आकर उसके पास ठहरी हुई है। उसके नाम वारंट निकला हुआ है। पता नहीं, क्यों इस ललिता की अकल पर पत्थर पड़े हुए हैं। वह पकड़ी गई तो मेरा सारा कैरियर खत्म हो जायगा। क्या पुलिस के सामने वह यह स्टेटमैंट देगा कि उसका ललिता से कोई वास्ता नहीं है? कि वह सो गया।

२६

शिली का गर्भ

तेज़ घड़घड़ाती हुई मेल तनिक खड़क-खड़ककर एक लाइन से दूसरी लाइन पर बदल गई और फिर पूर्ववत् घड़घड़ाती हुई चलने लगी। लेडीज़ सेकिंड-क्लास में अकेली सोई हुई शिली ने थोड़ा झटका खाया और गाड़ी के, एक लाइन से दूसरी लाइन पर शीघ्रता से, फिसलने की गति से जैसे चोट खा गई हो, विह्वल होकर उठ बैठी···

इस भीषण गति से ये लौह-पहिये अपना पथ बदलते हुए नहीं हिचकिचाते और धड़ाधड़ अपने मार्ग पर आगे बढ़ जाते हैं। किंचित् भी यह लाइन का क्रास इन पहियों के पथ-परिवर्तन के क्षणों में तड़क जाय तो?···उसने अपना शॉल ठीक से लपेट लिया। गाड़ी के समूल उलट जाने की अपशकुनी कल्पना से शिली कठिन होकर बैठ रही। पसीना उसके गोरे माथे पर चिलक आया कि वह हँस दी।

अब मेल उसी ६० मील की रफ़्तार से पटना को छोड़कर कलकत्ता की ओर बढ़ रही है। खिड़की उठाकर वह बाहर देखने लगी। संध्या उल्लसित मन पृथ्वी पर उतरती चली आ रही है। क्षितिज-रेखा पर ताड़ के पेड़ों के शिखा-परिधान मंथर-गति से फहरा रहे हैं। सूर्य न जाने किस वृक्ष-समूह के पीछे कौन से स्थूल बादल की ओट में बैठकर पृथ्वी के चिर-नृत्य का आस्वादन कर रहा है? बिहारी कन्यायें अपने कठोर परिश्रम से सिक्त, खेतों से घर लौट रही हैं।

एक उबकाई लेकर शिली ने अँगड़ाई ली और हर्षित मन अपने गर्भ के स्फुरण की अनुभूति पाने लगी। वह अदृश्य जीव उस संक्षिप्त स्थान में इधर से उधर तैरकर क्षण-क्षण सूचना देता रहता है कि वह जीवित है और शिली को सम्भवतः चार महीने बाद की किसी तारीख को मातृत्व का गौरव देगा।

शिली गम्भीर हो गई। स्त्री को इन्सान कठोर प्रहरी की तरह बन्दिनी तो बनाये रखता है पर अपना गौरव भी उसे देता रहता है। उसके पिता ने उसे गौरव यह दिया कि उसके स्त्री-जीवन के द्वार खोले। यह द्वार खोलना या उसके स्त्रीत्व का उद्घाटन करना, सचमुच, कितना अथाह गौरव प्रदान करना है! ओह! एक तीक्ष्ण लाज में शिली ने अपने पिताजी की प्रतिमूर्त्ति को चुपके से याद किया।

मेल एक छोटे-स्टेशन की लाइन पर से गुजरी। चलते हुए 'टैबलेट' सम्हालकर, फिर घड़घड़ाती हुई मेन-लाइन पर शीघ्रता से पैंतरा बदलकर आगे बढ़ गई। शिली पुनः मेल के उलट जाने की आशंका से भयभीत हो गई।

बचपन की सीढ़ियाँ शिली ने बड़े वेग से चढ़ीं, जैसे एक साँस में वह अपने सोलह साल इस मेल की तरह धड़धड़ाती हुई लाँघ आई हो। और एक दिन इसी मेल की तरह तीन दिन के छत्तीस घण्टों के क्षणिक क्षणों में बचपन की लाइन पर से वह विवाहिता की लाइन पर बदल आई। तनिक न हिचकी, न रुकी, न शिथिल हुई। इसी मेल की नाईं विवाह की लाइन पर बढ़कर वह निरन्तर भाग रही है, एक साँस, एक राह, एक दिशा।

पत्नी बनाकर पति ने उसे पत्नीत्व का गौरव दिया कि वह स्त्रीत्व के सूक्ष्म-केन्द्र से आगे बढ़े, आगे गति करे और उस इन्सान के साथ सम डगें लेकर चले। पृथ्वी पर वे घड़ियाँ कितनी चरम उत्तेजना की होती हैं जब स्त्री अपने साथी इन्सान के साथ क़दम-क़दम मिलाकर आगे बढ़ती है······

मेल के डिब्बों के पहियों में एकदम ब्रेक लगा तो एक झटका लगा। गाड़ी रुक गई। शिली ने घबड़ाकर जिज्ञासा में बाहर देखा। पतले अन्धकार में इंजन का प्रकाश आगे सरलता से झाँक रहा है। लोग भी बाहर ताक रहे हैं। सूचना मिली कि एक गाय इंजन के नीचे आकर कट गई है और वह गाभिन थी। उसका बच्चा पेट से निकलकर अलग तड़प रहा है।

सीटी देकर मेल आगे बढ़ गई। शिली ने अपनी खिड़की बन्द कर ली। सामने की खिड़की के शीशे में उसका चेहरा और चेहरे के ऊपर धूमिल मस्तक और उसके ऊपर अस्त-व्यस्त केश दीख रहे हैं। तो वह गर्भवती गाय कट गई······

पास-पड़ौस में और दूर के रिश्तों में प्रायः शिली सुनती रहती है कि अमुक-अमुक बहू ने प्रसव से पूर्व और प्रसव के वेदना-काल में या प्रसव के उपरान्त प्राण दे दिये थे। और उनके बाद वे नवजात शिशु भी इस पृथ्वी की वायु की श्वासें सहन नहीं कर सके थे। प्रसव! एक दिन शिली की एक सखी ने कहा था, "अरी, यह प्रसव नारी के रोम-रोम के सत्व का निचोड़ झाड़ लेता है!" तो शिली ने अपनी अबोधावस्था से उत्तर दिया था, "चल री, आई निचोड़ का शोर करने वाली! प्रसव के समय ही नारी सीधे भगवान् के साक्षात् वरद हस्त के नीचे रहती है! ऐसे सौभाग्य को तो यह पुरुष तरसता ही रहता है।" पर इस वक़्त शिली को अपना उत्तर उतना सरस नहीं लगा।

बीच में दो दुर्घटनायें शिली के साथ भी हो चुकी हैं।

तेरह वर्ष तक स्कूल में जाते हुए 'बॉब्ड-हेयर' और घुटनों तक के फ्रॉक पहने हैं। वह देखती कि तीन मील की स्कूल-यात्रा में जो उसे मिलता सो पूरी आँखें उठाकर उसे पूरा ज़रूर देखता। शिली को इसमें आनन्द आता। पश्चिमी वेशभूषा धारण कर शिली यह तो नहीं जानती थी कि पश्चिम में नारी अत्यन्त आधुनिका बनकर

कैन से आसन पर आसीन हो चुकी है, पर भारतीय होने के नाते शिली अत्यन्त आधुनिका बन 'अन्तर्राष्ट्रीय सुरुचियों' से सम्पन्न होना चाहती है। हम एक अन्तर्राष्ट्रीय सरकार तो चाहते हैं, फिर भी अन्तर्राष्ट्रीय वेशभूषा से परहेज़ करना चाहते हैं! सो शिली अगरचे ५ फीट लम्बी षोड़शी हो चुकी थी, पर मुलायम पद-तलों के नीचे सुर्ख़ वेणीनुमा गुँथे हुए चप्पल, टखने से लेकर घुटने और अधोजंघायें नग्न और फिर वक्ष तक 'स्कर्ट' से ढककर अपना चन्द्रमुख और अपने केश नग्न रखती!

अंग्रेज़ी सिनेमाओं के संसर्ग से शिली उत्तेजक चाल चलने की, उत्तेजक वस्त्र पहनने की, उत्तेजक आकर्षण सँवारने की और उत्तेजक रूप को चरम उत्तेजक बनाने की दीक्षा ले चुकी थी। कालेज पहुँचकर वह क्षीण, सरल विद्यार्थियों के बीच में 'आधुनिक बाघिनी'-सी लगती जिससे प्रायः उदण्ड विद्यार्थी भी भय खाते। पर एक दिन यूँ ही शिली ने जो पहिली बार साड़ी पहनी और 'फुल-मिरर' के सामने खड़ी हुई तो अपनी मनोहारी काया की शोभा पर वह स्वयं ही लट्टू हो गई, लाज से गड़ गई! और उस दिन उसने अपने सब फ्रॉक एक अलग संदूक में बन्द कर दिये। पर उसी दिन वह एक धनाढ्य युवक के भोज में जो गई सो···शिली को ऐसा हठात् स्पन्दन हुआ जैसे··· शिली की मेल एक लाइन से दूसरी लाइन पर धड़धड़ाते हुए जाने में उलट गई हो! उस रात शिली जो लौटी तो अत्यन्त शिथिल, रोम-रोम उसका टूटा हुआ। फिर तीन-चार मास तक वह खाट पर ही पड़ी रही थी, उसे चक्कर आते, कै आती···उसे प्रतीत होता कि उसके अन्दर एक नया जीव बिलबिला रहा है। तंग आकर एक दिन शिली ने नई दवाई खाई और वह जीव थोड़े से रक्त के साथ बाहर आ गया। शिली ने उसकी ओर आँखें उठाकर देखा तक नहीं।

घर में पिताजी ने और भाइयों ने इस प्रसंग पर गम्भीरता से एक क्षण भी ध्यान नहीं दिया। सबके अपने रास्ते हैं और उन रास्तों के अनेक मोड़ हैं। और जब स्त्री इन मोड़ों पर मुड़ती हुई कोई दुराव नहीं देखती तो उसके संरक्षक नाहक अपने कर्तव्य से च्युत क्यों हों? संरक्षक वही जिसकी संरक्षता कोई चाहे। शिली अब बड़ी हुई। अपना भला-बुरा वह स्वयं थोड़ा आगे-पीछे समझने लगेगी। भले-बुरे का अनुभव व्यक्ति स्वयं ही करे तो अच्छा।

शिली बेचैन हो गई तो उसने खिड़की खोल ली। बिहार-भूमि का स्पर्श लेकर आती हुई शीतल वायु ने शिली को एक नया गुमान दिया। हल्के से बोली, "यह नारी मकड़ी की तरह क्यों ताने-बाने बुनती है कि उसके अपने जाने-पहिचाने पुरुष उसमें से बाहर न निकलने पायें और क्यों वह उनकी पहरेदारिन बनी हुई स्वयं उनकी परिधि में ही घिरी रहती है ?"

एक स्टेशन आ गया। शिली ने एक कप चाय पी, दो बिस्कुट खाये। पैर

फैलाकर वह तकिये के सहारे फैल गई। प्रतीक्षा करने लगी कि यह मेल चले और कलकत्ता शीघ्र आये।

बी. ए. में पास होकर उसने नृत्य सीखा, संगीत का अभ्यास किया; कुछ कवितायें बनाईं और उनींदी रहने लगी। सिर्फ़ पुस्तकें रट-रटकर वह क्या चाहती है? सो उसने गर्मी की छुट्टियों में एक टैनिस-क्लब में प्रवेश स्वीकार करा लिया! अधिक समय अब उस क्लब में बीतने तो क्या लगा, शिली को सम्पन्न बनाने लगा। वहाँ विवाद-प्रतियोगिताओं में वह तेज़ी से दहाड़कर अपने पुरुष विपक्षियों को स्तब्ध कर दिया करती। और जब 'डिबेट' समाप्त होती तो भरपूर खिलखिलाती हुई बाहर आती और देर रात तक अपनी शैय्या पर भी प्रसन्न-चित्त करवटें लेती रहती।

यह वर्ष शिली का रजत-वर्ष था और इसी वर्ष हठात् उसके साथ दूसरी दुर्घटना हो गई। रजनी की मुलाक़ात के बाद।

परीक्षा-फल आ चुका था। वह पास हो गई थी। तो निश्चिन्त होकर उसने शरत्-साहित्य पढ़ा, फिर मोपांसा पढ़ा। मोपांसा पढ़कर तो शिली चंचल न हो सकी। पर 'नीत्शे' के कुछ अंश पढ़कर वह क्षुब्ध हो गई। फिर उसने टैगोर की 'गीतांजलि' पढ़ी और पढ़कर शिली पूरे मास विकल रही। एक क्षण उसे चैन नहीं पड़ा। परेशान रहती। उस परेशानी को दूर करने एक दिन वह मिस्टर यशोधर्म के साथ शालीमार बाग़ गई। चाँदनी रात थी। एक शीशम का पेड़ था बहुत पुराना। उस पुराने पेड़ पर एक पुरानी बेल जकड़कर लिपटी हुई थी। उस बेल ने उस शीशम को अपनी दृढ़ बाहुओं में कस रखा था। उसे दिखाते हुए यशोधर्म साहब बोले, "रानी, इस शीशम और बेल के प्रगाढ़ आलिंगन के सामने नीत्शे, मोपांसा, शरत् और टैगोर सब तुच्छ हैं।"

उसने कुछ खीझकर कहा, "चुप रहें और नाहक उन्हें तुच्छ कहकर इस शीशम और बेल को तुच्छ न बना दें।"

यशोधर्म मूर्ख की नाईं चुप खड़े रहे। वह घूम-फिरकर चाँदनी रात्रि में प्रकृति का नीरव सुहाना संगीत सुनने लगी। फिर उस शीशम के तले बैठ गई। अपने साथ यशोधर्म को भी बैठा लिया। बोली, "हज़ारों वर्षों तक इस शीशम और बेल का प्रगाढ़ आलिगन न खुले, मैं चाहती हूँ।"

रात को जब वह देर से लौटी तो अर्द्धनिद्रित अवस्था में। सुबह उसे देर से चेत हुआ। और पूरे मास के बाद उसे होश हुआ कि अयाचित प्रगाढ़ आलिंगन की दुर्घटना उसके साथ पुनः हो गई है। पर शिली इस मेल की तरह से, दुर्घटना की लाइन से अपनी पूर्व की उच्छृंखल और स्वतन्त्र लाइन पर बड़े वेग से बदलने में न हिचकिचाई और थोड़ी-सी चेष्टा से वह पुनः स्वस्थ हो गई।

पर वह दुर्घटना की चोट के ज़ख्म पर खुरण्ड की सफ़ेदी वाली स्वस्थावस्था थी ! अपने दोनों कन्धों को झकझोरकर शिली उठ बैठी । खाना खायेगी अब वह ।

टिफिन खोलने बैठी तो वह कटी हुई गाय और उसका तड़पता हुआ बछड़ा आँखों के आगे प्रकट होकर कलपने लगा । उसने उसे देखा, एक क्षण, दो क्षण, तीन क्षण······

धीमे से बोली, "यह हिन्दू समाज ही ऐसा है ! घड़घड़ाती हुई मेल और इन लौह-यन्त्रों के अधिकारी ये पश्चिमी शासक हज़ारों गायें काट दें, कुछ हानि नहीं है, परन्तु कल मैं एक गाय काट दूँ तो सारा राष्ट्र मेरे विरुद्ध विद्रोह पर उतारू हो जायगा ।" उन दोनों रक्तस्रावों में जो जीव उसने बहाये थे, वे इस हिन्दू-समाज के बीच क्या जीने का अधिकार पाते ?

और भोजन करने लगी । अगले स्टेशन पर मेल ठहरा तो एक कप चाय उसने और पी ली ।

इस चाय पीने की सरलता के समान ही शिली ने सरलता से कलकत्ता की एक जूट-मिल के बड़े अधिकारी से विवाह कर लिया है । बड़ी धूमधाम से शादी हुई । बड़ी चमकीली वेशभूषा में सँवरकर शिली वधु बनी और अपनी ससुराल गई ।

सुहाग-रात्रि की मधुर-मधुर स्मृतियों के पंखों पर उसका चेतन मन ऊपर उड़ चला और उसकी देह निःशक्त होकर सीट पर चित्त पड़ी रही······

सुबह दिन निकलते ही हबड़ा आ गया । मेल के प्लेटफॉर्म पर रुकते ही यों ही एक प्रश्न उसके मन में उठा, "क्या मैं भी मातृत्व प्राप्त करने के बाद यों ही रुक जाऊँगी ? उसके आगे क्या नारी का कोई गतंव्य नहीं है ?"

सामने ही पति देव उसका स्वागत करने को खड़े हैं । शिली ने मुस्कुराकर उनसे 'जय हिन्द' की और नीचे उतर आई । कुशल-क्षेम के बाद दोनों टैक्सी में बैठे । सोफे पर बैठ अपनी सुन्दर बरौनियों को उठाकर उसने हबड़ा के विशाल पुल को देखा। कितनी महान् कलाकारिता है । जाने कितने हज़ारों कारीगरों के सूखे चमड़े वाले हाथ इसे इतना ऊँचा उठाने में लगे होंगे ! और जब अब यह बन चुका है तो नीचे से कितने सहस्र जलयान इसके दीर्घ पैरों के नीचे से निकल गये हैं, भला कोई गिनती है ? और ऊपर से कुछ गिनती के क्षणों में कितने करोड़ यात्री इस हुगली नदी को लाँघ जाते हैं !

उसने अपने प्रश्न का उत्तर दिया, "यह मातृत्व भी इस हबड़ा पुल की नाईं ही एक दीर्घ पुल है ।"

हबड़ा पुल को पार करते हुए शिली गर्व में विभोर हो गई कि वह भी शीघ्र एक इतने ही दीर्घ पुल को पार करेगी······

शिली ने कहा, "भगवान् हमें अक्षय वरदान उन्हीं क्षणों में देता है जब कि हम किसी महायात्रा के लिए चल पड़ते हैं !"

उन्होंने अब इधर के गालों पर एक चपत और लगा दी ।

शिली ने कहा, "हम-तुम क्या किसी महायात्रा पर नहीं निकल चुके हैं ?"

वे चुप बैठे उसके नूतन रूप को देखते रहे ।

उसने आँखें बन्द करते हुए कहा, "किन्तु अब मैं···" और वह चुप हो गई ।

कुछ समय यों ही बीत गया । वे खड़े हुए । बोले, "मैं आफिस चलूँ ।"

वे चले गये तो शिली ने इन्कार किया कि मातृत्व अपने में एक महायात्रा है । मातृत्व केवल एक दीर्घ पुल है उसके आगे जो पथ है वह राज-पथ है और उसका अन्त सब के बाद आता है । शिली अब इस मातृत्व के पुल को बार-बार नहीं लाँघेगी। उस मातृत्व के पुल को पहली बार लाँघते ही अपने भविष्य के राज-पथ पर चल पड़ेगी······

और उसकी दृष्टि के सामने वह शीशम—बरसों पुराना शीशम और उसके चारों ओर दृढ़ता से कसकर लिपटी हुई वह बरसों पुरानी बेल एकदम आकर कमरे में प्रकट हो गई । शिली उन्हें देखती रही, देखती रही । फिर बोली, "नारी का यही पथ शाश्वत है, मातृत्व नहीं !"

और उसकी आँखों से दो बूँद अश्रु नीचे ढुलक पड़े ! गर्भ से एक असह्य यंत्रणा पेट में हो रही है ।

३०

हिमालय की सुहाग-रेखा

खूब अन्धड़ चल चुका और खूब झमाझम वारिश भी हो चुकी तो चारों ओर इन्द्रधनुष की आभा छिटक गई। सप्तरंगिणी छटा की फुहार जैसे अब व्योम से उन इंसानों के लिए बरस रही है जो अन्धड़ और तेज़ वारिश की तीव्रता को भी पचा जाते हैं। रजनी बरामदे से उठकर सामने चौंतरे पर जा बैठा और गीली शिला पर लेटकर इन्द्रधनुष देखने लगा······

"मूर्ख न बनो रजनी !" कड़ककर अन्दर से पराग ने कहा।

पर इसमें मूर्ख बनने जैसी कोई बात रजनी को नहीं लगी। धूल से भरा हुआ अन्धड़ और फिर मूसलाधार वारिश और फिर यह इन्द्रधनुष···१९२० से लेकर १९४१ तक का भारतीय तूफ़ान, फिर १९४२ की मूसलाधार वारिश और आज भारतीय क्षितिज पर एक सप्तरंगा इन्द्रधनुष। कितना समानांतर अपनापा है ! भला इसमें मूर्ख बनने की बात ही क्या है। एक श्वेत रंग आज इन मनःहर बदलियों की रंगा-वलियों में विस्तृत और व्यापक हो गया है, तो भला यह श्वेत रंग मूर्ख बन रहा है ? उसने सुना, पराग पहले से दुगुना कड़ककर कह रहा है, "आज ही इस पर से सरकार ने वारंट हटाये हैं और इसी कारण यह कविता करने वहाँ लेट गया है। इस तरह तो मुझे इसका भविष्य अन्धकार से ही सना हुआ लगता है। चाहिए तो यह था कि गम्भीर रहकर मुझ से कुछ सलाह-मशविरा करता। बाग़ी होकर कविता करना एक तरह से रोना है कि मैं बाग़ी क्यूं हुआ ?"

पराग को रजनी पर कड़कने-गरजने का हक है। इसीलिए बिना क्षुब्ध हुए वह देखने लगा कि उधर के कुरूप बादल एक ओर भागे जा रहे हैं। सच, आज जो भी कुरूप व्यक्ति हैं, उसे हमारे यहाँ से भागना होगा। शनैःशनैः आसमान साफ़ हुआ, व्योम में सूर्य की किरणें झाँकने लगीं, इन्द्रधनुष जैसे इन किरणों से आलिंगन के लिए बढ़ा हो···कि सूर्य खिलखिलाता हुआ आगे आ गया। इन्द्रधनुष सकुचाकर मुँह छिपा-कर जाने कहाँ अन्तर्धान हो गया······

पिछले तीन वर्ष से रजनी छद्म वेष में रहता हुआ जीवन-यापन कर रहा है। आज अन्तर्कालीन सरकार ने उस पर से वारंट हटा लिये हैं। अब वह एक सभ्य नागरिक की नाईं रह सकेगा। लेकिन रजनी सोचने लगा, अभी भारतीय सूर्य के ऊपर से कुरूप बादलों को हटना है, उस सूर्य से लज्जित होकर इन्द्रधनुष को अन्तर्धान

होना है···कल्पनाओं का मोह छोड़कर सबको यथार्थ काम में जुट जाना है।

माधवी अन्दर कह रही थी, "यदि वह अपने बाग़ीपन पर रोता है तो उसके आँसुओं को रोकने की सामर्थ्य आप में ही है। आपने उसके प्राण अपनी मुट्ठी में जो बाँध रक्खे हैं, नहीं तो क्या आज वह इस दुनियाँ में होता ?"

पलटकर पराग बाहर आया। गरजकर उसने रजनी से कहा, "उठकर यहाँ आओ।"

पर हठात् बारिश फिर आ गई। वह उठकर अन्दर चला गया। मूढ़े पर बैठकर दादा भाई को देखने लगा कि वे आज्ञा दें। उस दिन उस मुहल्ले से भागते समय उसका प्राणांत हो जाता, यदि दादा भाई उसे अपने द्वार में न घसीट लेते। तब से वह दादा भाई को आत्मसमर्पण कर चुका है। किसी दुर्बलता से नहीं, कि उसे प्राणांत का भय खा गया हो। दादाभाई ने उसे अन्दर छिपाकर बिना परिचय लिये कड़ककर कहा था कि तुम बाग़ी हो, तो यह क्या आफ़त मचा रखी है कि इस मुहल्ले से छिपकर उस मुहल्ले में भागते रहते हो। बस, अब तुम यहीं रहोगे।

और उस दिन से रजनी यहीं रह रहा है। पराग को वह दादाभाई कहता है। एक दिन भी उन्होंने उससे मीठी बात नहीं की है। फिर भी उनकी बिजली की गर्जना के नीचे जैसे शीतल वर्षा ही होती रहती है। और रजनी उस बिजली की गर्जना से अधिक अपने को इनकी शीतल वर्षा में भीगा हुआ रखता है।

पराग भी मूढ़े पर बैठ गया। रजनी ने देखा, उनके होंठ किसी क्रोध से नहीं, करुणा से फड़क रहे हैं। और उनके दो आँसू छलक आये हैं। झट उन्हें पोंछ वे बोले, "आज तुम इसी गाड़ी से मेरे साथ हरिद्वार चलोगे। अपनी चीज़ें भी ले चलो।" और अन्दर जाकर माधवी से पूछा कि तुम भी चलोगी। उत्तर में वह चुप रही। तो पराग ने कड़ककर कहा, "तो चलो तुम भी साथ में।"

तीनों हरिद्वार की गाड़ी में आ बैठे। बादल अब अपने भीगे वस्त्रों को चुआ रहे हैं। यहाँ-वहाँ बिजली कर्कशा राक्षसी-सी दाँतों को किटकिटाकर तुरन्त ही चंचला तरुणी की नाईं सकुचाकर अपने आँचल में छिप जाती है। शीत हवा चल रही हैं। तीनों ठिठुरना चाहते हैं, पर तीनों सख़्त लोहे की तरह से बैठे हैं। माधवी ने कुछ बात करने की चेष्टा की तो पराग ने उसे डाँट दिया कि तुम दोनों चुप रहो। अगले स्टेशन पर उन्हें समाचार-पत्र मिल गया। पहले पराग ने दृष्टि दौड़ाई और पढ़कर उसे रजनी को दे दिया। रजनी इस समय क्या समाचार देखे। अपनी रिहाई का वारंट वह माधवी से सुन भर लेगा। माधवी ने एक साँस में वह समाचार पढ़ा जिसमें रजनी के ऊपर से वारंट हटने का ज़िक्र था और भारत भर में इस पर ख़ुशी मनाई जा रही है। लेकिन जनता ने आशंका प्रकट की है कि भला माधवी कहाँ है ?

और उस पर से प्रतिबन्ध कब हटेगा ? वह आगे पढ़े कि पराग ने उससे पत्र छीन लिया। तीनों फिर चुप बैठे रहे।

हरिद्वार पहुँचकर पराग ने तीर्थस्नान न स्वयं किया और न इन दोनों को करने दिया। दिन भर इस घाट से उस घाट की सैर करते रहे। शाम होते ही बोले, "हम पैदल ही आगे बढ़ें और हिमालय के निकटतम केन्द्र पर पहुँचें।"

माधवी और रजनी ने कोई आपत्ति नहीं की। दादाभाई की वाणी में उनको बहुत ही कोई पुराना स्वप्न सस्वर सुनाई पड़ा। शहर से जब वे बाहर आये तो सायंकालीन समाचार-पत्र में पढ़ने को मिला, "सब नगरों की जनता रजनी का विशाल पैमाने पर स्वागत करने को आतुर है। पर आश्चर्य है कि वे अभी तक प्रकट नहीं हुए हैं। और माधवी पर से प्रतिबन्ध हटाने के लिए सरकार से आग्रह किया गया है।"

दूसरे दिन लक्ष्मण-झूले की ओर क़दम बढ़ाते हुए पराग ने कहा, "तुम दोनों भारतीय इतिहास में तो अमर अभी तक नहीं हुए हो।" सुनकर दोनों ने जरा आगे बढ़कर उनके मुख की ओर देखा और इस कठोर परिहास पर चुप रहे।

लक्ष्मण-झूले के निकट पहुँचकर पराग ने अपना मौन तोड़ा और कहा, "मान लिया कि तुम दोनों क्रान्तिकारी हो और आगे भी समाज और देश के कामों में अनेक समस्याओं का पथ प्रशस्त करोगे। पर मेरी बात ध्यान से सुनो। यह सनातन भारत है। इसके प्रति पश्चिमी क्रान्ति का अपमान हमारी यह शस्य-श्यामला पृथ्वी बहुत दिनों तक सह न सकेगी। बाध्य होकर तुम भी एक नये भँवर में न बह जाओ।"

रजनी दादाभाई की उन सब बातों पर बारीकी से ध्यान देता आ रहा है, जो उन्होंने समय-समय पर कही हैं। किन्तु क्योंकि दादाभाई उसके लिए एक कठोर रहस्य है, इसलिए उनकी सब बातें भी कठिनतम रहस्यमयी ही रहती चली जा रही हैं। इस क्षण रजनी हिमालय की चरण-धूलि पर चलते हुए कुछ अतिरेकानंद का अनुभव कर रहा है। सनातन का अर्थ दादाभाई के पास क्या कुछ है, सो वे भला क्यों बताने लगे ? गीता पढ़ने के लिए उसमें कभी उत्साह नहीं जमा। आज के आधुनिक जीवन-संघर्ष में उससे दिशा-निर्देशन कैसा भी नहीं मिल पाता। वह समय और युग वैसा ही था जब मानस को ज्ञान-दिशा की अपेक्षा रहा करती थी और उस समय गीता-ग्रंथ निहायत आवश्यक सूचीपत्र मान्य बना हुआ था। तीर्थ तो उसने आज तक एक भी नहीं किया है। किसी पवित्र नदी में नहाने की उसकी रुचि आज भी नहीं है। वह दादाभाई को धन्यवाद देना चाहता है कि वे क्षण-क्षण के लोहित संग्राम से दूर, यहाँ की सनातन शांति में उसे ले आये हैं। किन्तु आज भारत सनातन नहीं रह गया है, जितना भाग उसने देखा है वह तो विश्वव्यापी आँधी में बराबर की धूल अपने सिर पर लिये हुए है……

चलते-चलते माधवी ने कहा, "दादाभाई !" पराग पलटकर खड़ा हो गया। वह किसी भी उत्तर की अपेक्षा माधवी से नहीं रखना चाहता। माधवी अपने को इतना संकुचित बना चुकी है, कि वह सिर्फ़ रजनी का पदानुसरण ही कर सकेगी। फिर भी गत मास उसने माधवी को आशीर्वाद दिया था यह कहते हुए, "मैं तुम से यह ज़रूरी तौर पर कहना चाहता था कि तुम्हारे मेजर शर्मा और रजनी को बड़ी सावधानी से जीवन में अग्रसर करते रहने की प्रेरणा बराबर देते रहना। कहीं ये दोनों आपस में झगड़ा करने लगें और तुम निर्जीव औरत की तरह से टुकुर-टुकुर निहारती खड़ी रहो। और जब ये झगड़ा भी करें तो सिर्फ़ एक ही उपाय काम में लेना कि स्वयं उस घर से अलग हो जाना। अब मेजर शर्मा के प्रति अपना पलड़ा अधिक झुका हुआ रखोगी तो देश के प्रति एक भारी अपराध करोगी। यह बात समझने की है, न कि समझाने की।"

"दादाभाई, जिस प्रकार मैं हिन्दू-मुस्लिम इन दो शब्दों से घृणा करती हूँ, उसी तरह पूरब और पश्चिम इन दो शब्दों से भी घृणा करती हूँ।" कहकर माधवी ने रजनी के मुँह का निहोरा किया।

पराग ने हवा में मुट्ठी अकड़ाई और आगे बढ़ते हुए क्रुद्ध कहा, "तुम अभी बच्ची हो। पूरब और पश्चिम। भारत की कल्पना तो हम लोगों ने माता के रूप में सहज ही कर ली है। पर मैं चाहता हूँ कि दुनियाँ को हम अपनी एक ही गंगोत्तरी मान लें और पूरब और पश्चिम उससे उद्गमित दो बड़े नद। सामूहिक मानवता इन बड़ी नदियों को अब बहुत अधिक दिन अपना-पराया नहीं मान सकेगी। पर तुम घृणा की बात करती हो। स्त्री की व्याख्या स्त्री के हृदय की घृणा से आँकने की कल्पना तक मैं नहीं कर सकता।"

भला इस बात का उत्तर माधवी क्या दे। पर रजनी ने बरबस कहा मुस्कराकर, "दादाभाई, यह माधवी चाहकर भी किसी को घृणा न कर सकेगी। सिर्फ़ यह राजनीति की 'अ आ इ ई' सीख रही है।"

पराग हर्ष-मिश्रित आश्चर्य में रुक गया। रजनी के परिहास पर वह नम्र हो आया और बोला "यह बात है, तो मैं कहूँगा, यह माधवी यहाँ हिमालय के चरणों में राजनीति की आत्मा के दर्शन सुलभ कर सकेगी।"

बात कम, यात्रा अधिक। और ये तीनों लक्ष्मण-झूले पर भी न रुके। आगे बढ़ते चले। रजनी को सहसा याद हो आया कि पाण्डवों ने हिमालय की यात्रा की थी। लेकिन अपना कार्य समाप्त कर ही वे इस दिशा की ओर आमुख हुए थे। उसने यह बात दादाभाई को याद कराई। पराग ने सुना और आगे बढ़ता रहा। बोला, "रजनी, ज़रा ऊपर देखो। ये बादल भरकर आ रहे हैं और वहाँ चोटियों से

टकरा कर विखर जायेंगे। कभी तुमने अपने आपको इस अनुभूति में प्रत्यक्ष या साकार पाया है कि तुम जनहित की भावना से भरकर बादलों की नाईं उफने हो और फिर किसी से टकराकर बिखर पड़े हो? वे पाण्डव एक कारण और था, जो हिमालय की यात्रा पर निकले थे। श्रीकृष्ण के अवसान के बाद उनका नेतृत्व गंतव्यहीन हो गया था। उस युग में हिमालय की चोटियाँ सर्वोपरि आध्यात्मिक गंतव्य थीं। मेरी यात्रा क्यों आज इधर आ निकली है, यह प्रश्न न करो। यहाँ से लौटकर तुम अनायास हर किसी समस्या से न टकराने लगना। पहले अपने बादलों को पूरा भरना, तब उन्हें बरसाने की अभिलाषा मन में लाना।"

कि फुहार पड़ने लगी। जंगल और पहाड़ों के बीच हल्की फुहार का आनन्द लेते हुए रजनी ने कहा, "दादाभाई, आपके पास में पाँच महीने से रह रहा हूँ। तब भी मुझ पर आप विश्वास न करेंगे और बतायेंगे कि आप इधर क्यों बढ़ रहे हैं और हमें लौटने की बात करते हैं।

पराग आज पहली बार ठठाकर हँसा। खूब हँस चुका तो रुक गया। माधवी को स्नेह से देखा और उसके सिर पर हाथ फेरा। रजनी के कन्धों पर हाथ टेककर उसने सहारा लिया और कहा, "मूर्ख! यह हिमालय हमारी वर्षा ऋतु का शाश्वत पति है। इस भारत-भूमि पर यदि एक भी दम्पत्ति न रहेगा तो यह हिमालय और वर्षा-ऋतु उन वीरान क्षणों में भी जीवित रहेंगे।" पर तुरन्त बात बदलकर बोला, "कृष्ण और पाण्डवों ने मिलकर अपने युग में गीता के मार्ग का नारा तात्कालिक जनता को दिया था। तुम्हारी गीता आज की भारतीय जनता के लिए क्या है?"

माधवी ने इस बार चुपके से कहा, "रजनी, कोशिश करो कि इस बार तुम मूर्ख न बनो।"

रजनी ने स्वयं खिलखिलाकर कहा, "मैं दादाभाई के सामने शाश्वत मूर्ख हूँ।"

माधवी और पराग इस पर साथ-साथ रस लेकर हँस पड़े। पराग ने कहा, "रजनी, आज की तारीख तक पिछले ५० बरसों से भारत में बहुत सशस्त्र क्रान्तिकारी बने। पर आज वे सब या तो योगाभ्यास कर रहे हैं या आश्रमवासी हैं, या वकील, प्रोफेसर और कलाकार बन गये हैं। बचे हुए क्रान्तिकारी अब उँगली पर गिनने भर को रह गये हैं। पद और प्रतिष्ठा की भूख तुम में नहीं है, यह मैं जानता हूँ। लेकिन क्रान्ति की भूख तुम में शाश्वत है, इससे मैं आश्वस्त होना चाहता हूँ।"

रजनी उत्तर दे, इसके पहले ही पराग लड़खड़ाकर बैठ गया। उसकी साँस चढ़ गई। दोनों ने उसे सहारा देकर उधर एक पहाड़ी कुली की कोठरी में ले जाकर लिटा दिया। बस, संध्या अनकरीब थी। कुली ने आग का प्रबन्ध किया और तीन कटोरी कहवा भी बनाया। दोनों ने देखा, दर्द से त्रस्त पराग कराहना चाहता है, पर

कठोर-मुख, लौहमानव जैसा स्थिर पड़ा हुआ है। कि बोला, "माधवी, रजनी को लेकर अब तुम लौट जाओ। मैं जान-बूझकर तुम दोनों को यहाँ तक लाया था। कुछ देखना था सो देख लिया है। देश की जनता तुम दोनों के दर्शनार्थ आतुर है। मैं तो गंगोत्तरी तक की यात्रा पूरी करूँगा।"

उत्तर में माधवी दादाभाई के पैर दबाने बैठ गई। रजनी सिर दबाता हुआ बोला, "दादाभाई, आपने मुझे आज की गीता बताने को कहा है। कृष्ण-युग की जनता इतनी ऊँचाई पर थी कि उसी के अनुरूप उस युग की गीता पुँजीभूत हो गई थी। हम आज की गीता पुँजीभूत करने में उसी समय समर्थ हो सकेंगे कि जनता का तापमान वांच्छित ऊँचाई तक ऊपर उठ ले। यह आप जानते ही हैं कि आज भारतीय जनता में खून की गरमी अत्यधिक है।"

कोठे में नीरवता छाई रही। कुली आग को सुलगाता हुआ गुनगुनाने लगा। कि तीन हिचकियाँ आईं और पराग कुछ हिलकर जड़वत् हो गया। इतना ही भर वह कह सका, "खबरदार, तुम रोये तो……"

बाहर हवा के झकोरे तेज़ी से चलने लगे। माधवी और रजनी ने दादाभाई की चरण-रज ली और उ हें चादर उढ़ाकर बाहर आ गये। दोनों ने एक-दूसरे से मूक-दृष्टि प्रश्न किया कि लौटें ? कुली को उन्होंने कहवा तैयार करने के नाम पर पैसे दिये। उसने आश्वासन दिया कि वह इस योगी के मृत शरीर की आवश्यक क्रिया पूरी कर देगा कल सुबह भोर में। तो, दोनों ही बढ़ चले शीघ्रता से। दोनों तेज़ रोना चाहते हैं, पर बरबस रुके हुए हैं। पश्चिम से कालिमा के काले डैने तेज़ी से उड़ते चले आ रहे हैं।

रजनी बोला, "यह दादभाई हमें कहाँ ले आए, माधवी ? और कौन से पथ पर छोड़ गये। हम राह देख रहे थे कि राष्ट्रीय सरकार आये और हम स्वतन्त्र होकर अपना शेष काम करें। पर यह क्या है इस मार्ग पर आगे चलना ? मुझे दादाभाई पर क्रोध आ रहा है।"

माधवी अपने आँसुओं को पोंछती हुई बोली, "मूर्ख न बनो। दादाभाई क्या थे और उनका पूर्व-परिचय क्या था, यह हम आज तक न जान सके। इन्होंने आज भी न बताया। उस पड़ौसिन से पता चला था कि हमारे आने से पूर्व वे सदा हँसमुख और मस्त रहा करते थे। इनकी एक पत्नी थी दो साल पहले तक। वह मर चुकी। वे इस इरादे से न आये थे कि उनका शरीर ही उन्हें धोखा दे जायगा। बोल तो गये हैं कि लौट जाना।" और रजनी के डगों का अनुसरण करती हुई वह आगे बढ़ती गई। उधर गंगा की कलकल ध्वनि स्पष्ट होती जा रही है। माधवी ने देखा कि रजनी ज़बरदस्ती आगे बढ़ा जा रहा है। उसका बस चले तो वह लौटे। कुछ दूर तक चलने के बाद बोली,

"दादाभाई के क्रोध को मैं कुछ जान सकी हूँ। वे 'शाश्वत' शब्द का प्रयोग कई बार करते थे। और जब हम दोनों इस शब्द से न तो चौंकते थे और न आकर्षित होते थे तो उन्हें क्रोध आता था। उनकी असामयिक मृत्यु से हठात् मुझे अनुभूति हो रही है कि यह 'शाश्वत' शब्द आज भी कितना तीव्र-सा लग रहा है। इसके आगे भारतीय या अन्तर्राष्ट्रीय विशेषण लगा देने मात्र से अखिल मानव का भविष्य धुँधला नहीं रह जायगा।"

रजनी ज्वालामुखी की नाईं फट पड़ा। बोला, "मैं लौटना चाहता हूँ।"

पर वह आगे बढ़ती गई। १०० गज़ चल चुकी तो बोली, "हम लौटने के लिए ही आगे बढ़ रहे हैं। मैं हिमालय का वह केन्द्र देखना चाहती हूँ जहाँ पहुँचकर दादाभाई हमारी परीक्षा लेना चाहते थे। उस दिन तुम बाहर इन्द्रधनुष को देखते हुए कविता करने लगे थे, तो वे मुझ से बोले, 'अब तक तुम लोगों ने जो कुछ किया है उसे मैं असंगत तो नहीं मानता, अनिवार्य मान लेता हूँ। लेकिन देश में अपनी सरकार आने के बाद मुझे भय है कि तुम दोनों उस सर्प की तरह न हो जाओ जो अपने दुश्मन के पीछे खूब तेज़ी से भागकर उसे डस तो लेता है पर खुद अपनी हड्डियों के ढीले पड़ जाने से अशक्त होकर मूर्छित हो जाता है। तो मैं इस रजनी को अपने साथ ले जाता हूँ। देख आऊँ कि इसमें मूर्छना अभी जाग्रत तो कहीं नहीं हो गई है। हिमालय-पथ यह चल लेगा तो ठीक है···अन्यथा···' और आगे वे चुप रहे थे।"

रजनी रुक गया। बोला, "मृत्यु से मेरा परिचय अभी तक नहीं हुआ है। उस वेश्या-तरुणी को छुरे से मारकर या उस कम्युनिस्ट को पिस्तौल से ठंडा करने में सहायक होकर भी मैं मृत्यु के दर्शन तक न कर सका हूँ। क्रान्तिकारियों की परीक्षाएँ कृष्ण-युग की कल्पना भर रह गई हैं। मैं एकलव्य बनना नहीं चाहता।" और वह लौट पड़ा।

माधवी सस्मित रजनी का वह रूप याद करने लगी जब वह पहली बार मेरी ससुराल आया था। क्षुब्ध होने की बात इसमें वैसे है भी नहीं कि यह लौट रहा है। नौजवानी में ही कितने क्रान्तिकारी गोलियों और संगीनों के शिकार होकर शान्त हो चुके हैं···एक विचित्र-सी नैसर्गिक अनुभूति में वह कुछ क्षण हिमालय के चरणों में खड़ी रही···दूर वह गंगा भी उसी दिशा को जा रही है जिधर कि रजनी लौटना चाहता है। भला यह गंगा क्यों नहीं अपना कार्य समाप्त कर महा प्रवास के निमित्त वापस लौटी आज तक? उसका रोम-रोम पुलकित हो गया, जब कि उसके अन्तरतम में किसी ने गुंजन किया, "इसका कार्य तो शाश्वत युगों तक बहते रहना है।"

काम तो रजनी और माधवी का भी समाप्त नहीं हुआ है। वह ज़ोरों से बोली, "रजनी, ज़रा ठहरो।" और वह सचेत हुई कि उसका कार्य रजनी का अनुगमन करना या अनुसरण करना भर नहीं है। दोनों एक ही पथ के राही और संगी हैं। उसने

ज़रा अधिकारपूर्ण शब्दों में कहा, "और यहाँ आओ।"

रजनी रुक गया और पीछे घूमा। मुस्कराकर माधवी के सामने आकर ठहर गया। वह बोली, "मैं भी लौटना चाहती हूँ। दादाभाई एक प्रकार से यहाँ महाप्रवास के बहाने आत्महत्या करने आये थे। मैं तो मृत्यु की अन्तिम विष-बूँद पीती हुई भी आत्म-हत्या नहीं चाहूँगी। आओ, रात भर हम यहाँ चौकी में रहेंगे और सुबह ही लौटेंगे।"

जैसे तो आकाश से पुष्प-वर्षा हुई हो, मोटी-मोटी बूँदों ने दोनों को आच्छादित कर लिया। लपककर वह उधर चौकी की ओर दौड़ चली। रजनी मुग्ध-दृष्टि माधवी की यह गति देखता रहा। उसे लगा अनायास, कि माधवी उसे केवल ठहरने भर को नहीं कह रही है, कुछ निमन्त्रण भी दे रही है। वह भी उसके पीछे दौड़ पड़ा और उसके पीछे भागने में उसे बेहद आह्लाद का अनुभव हुआ।

चौकी खाली थी। दोनों वहाँ फ़र्श को साफ़ कर बैठ गये। क्षीण होते हुए संध्या-प्रकाश की धुँधलिमा में रजनी ने देखा कि जो माधवी सदा मशाल के रूप में तीव्र जला करती थी, इस क्षण मोमबत्ती की न्याईं स्निग्ध प्रकाश निःसृत करती हुई पिघल रही है। कुछ क्षण वह सुरीले कण्ठ से कुछ गुनगुनाती रही। रजनी के लिए इतने दिनों बाद यह नया अनुभव था। जब से वह अपनी घरेलू परिधि लाँघकर बाहर निकली है, सिंहनी की तरह ही उसे रौद्र-रूप में पाया है। बाहर बूँदें बारिश में परिवर्तित हो गईं और शीत हवा के झकोरे चौकी में घुसकर दोनों को थपेड़े देने लगे। रजनी ने उठकर किवाड़ बन्द कर लिये। अब माधवी ने कहा, "तुम पूछ रहे थे कि दादाभाई हमें कहाँ ले आये। दादाभाई ने कहा था कि हिमालय वर्षा ऋतु का पति है। मेरा तुम से प्रश्न है कि इस हिमालय को यहाँ भारत की सीमा पर लाकर कौन छोड़ गया था ? मैंने सुना है कि इस वर्षा ऋतु के प्रेमपाश में बँधने से पूर्व यह पर्वत विद्रोहियों में प्रमुख था। विद्रोह-कार्य पूर्ण हो जाने के बाद जाने किसने इसे वर्षाओं में देवांगना-स्वरूप भारतीय वर्षा की विशाल बाहों में सौंप दिया।"

कोठरी के अँधियारे में रजनी माधवी के चेहरे का उतार-चढ़ाव न देख पाया। पर परिहास में पूछा, "तुम्हें इस हिमालय के दादाभाई का नाम-पता नहीं चल सका ?"

माधवी लजा गई। जैसे-तैसे बोली, "वह बचारा भी न जाने कहाँ लड़खड़ाकर गिर पड़ा, किन्तु यह हिमालय तो दीर्घ जीवन का एक प्रकाश-स्तम्भ बना हुआ खड़ा है।"

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे। आज दोनों एक-दूसरे के प्रति अत्यधिक नवीनता व अपरिचय अनुभव कर रहे थे। इस बार माधवी अपने स्वाभाविक स्वर में बोली, "हमारे समस्त शाश्वत आन्दोलन इसी हिमालय से स्रवित हुए हैं। और वह देखो

(बहती हुई गंगा की दिशा उँगली उठाती हुई), वह गंगा हिमालय की चरम सुहाग-रेखा बनी हुई हमारे समस्त कोटि देशवासियों को आकण्ठ तृप्त किया करती है। तुम आज्ञा दो तो मैं भी इस हिमालय की नवीनतम सुहाग-रेखा बनकर प्रकट होऊँ।"

हठात् वर्षा रुक गई। मानो नटखट सहेली की नाईं कान लगाकर बाहर से चौकी के अन्दर का प्रेमालाप सुनने लगी।

३१

सूखी हड्डियों के सूखे आँसू

घर की चौखट के वाहर रखा हुआ पाँवदान और भयावने जंगल के बीच से जाती हुई पतली एक पगडंडी। रेवती इन दोनों को जब भी देखता है तो ठिठककर रह जाता है। पाँवदान पर आकर लोग अपने पैरों की गर्द पोंछते हैं, अपने पैरों में लगा हुआ कीचड़ साफ़ करते हैं और आते-जाते उससे अपना जूता रगड़ जाते हैं। भयावने जंगल के बीच से हर इंसान अपनी मंज़िल का रास्ता काटने का हौसला नहीं रखता। कुछ गिने हुए जीवट ही इस भयावहता के बीच निडर घुसते हैं और उस पतली पगडंडी की मिटती हुई लीक को ताज़ा बनाकर उस पार चले जाते हैं। पाँवदान का अपना काम है, भयावने जंगल की पगडंडी का अपना काम है। पर एक ओर वह पाँवदान समय बीतने के साथ घिसता चलता है, झीना हो-होकर फटता जाता है। पर वह पतली पगडंडी अधिकाधिक पैरों से पिटकर, थपेड़े खाकर, ख़ूब-ख़ूब समतल होकर, उस जंगल की भयावहता के बीच एक झीनी इंसानी रोशनी की किरण स्थायी तौर पर अवस्थित कर देती है।

जिस कलकत्ता महानगरी का क्षणिक दर्शन करने भर के लिए हज़ारों मील से दर्शनार्थी आते हैं, उसी कलकत्ता को निकट से देखकर रेवती ने निश्चय कर लिया था कि नई इंसानी रोशनी से रोशन होकर भी यह कलकत्ता एक नया ही किस्म का बीहड़ जंगल है। जंगल की परिभाषा से अलग इस महानगरी की कोई अन्य परिभाषा किसी हालत में हो नहीं सकती। और, अब वह देख रहा है कि पूंजी के खूंख्वार पशुओं की इस सुन्दरबन-सी नगरी में धीरे-धीरे क्लिष्ट से क्लिष्टतम बीहड़ता व्याप्त होती जा रही है। पर यत्र-तत्र कुछ इंसान अपने जीवन से विरक्त, इस गहनतम बीहड़ता के बीच एक पतली पगडंडी बनाने का काम करते रहते हैं। 'पर पूंजी के हिंस्र पशु' कितने सतर्क हैं कि इस बीहड़ आधुनिक महानगरी का भयावह जंगलपन अछूता रहे और इंसानी रोशनी की एक भी किरण या इंसानी पदतलों की मुखर ध्वनि इस दिशा से जाने न पाये···

रेवती कलकत्ता में आकर स्वयं एक खूंख्वार पशु-समाज का सदस्य बन चुका है। उसके चाचा जी की छत्रछाया में घिरा रहकर वह मिस्र की 'स्फिक्स' जैसी विशालकाय बिल्ली (या बिलाव!) बन गया है जो अपने इंसानी मुंह से मानवी मुस्कराहट तो देने की क्षमता रखती है, किन्तु अपने पाशविक पंजों से और पाशविक

हृदय से सिर्फ़ ताज़ा इंसानी लहू के जिह्वा-व्यापार के लिए तत्पर रहती है। अकाल में निरन्तर उसने रिलीफ़ का व्यापक मानवी कार्य सम्पादित किया है, पर जो दो घण्टे वह नित्य ही आफ़िस में जाता रहा है, उस अल्प अवधि में, इसी संतुलन में, उसने कुल मिलाकर ८० लाख का बिजनेस कर चाचा जी की शाबाशी हासिल कर ली है। मामूली-सा शब्द है यह 'बिजनेस'। बड़ा गौरव मिलता है रेवती को, कलकत्ता के पूँजीदारों के बीच में। किन्तु वेश्याओं के उस ठेकेदार को क्या गौरव नहीं मिलता, जब वह किसी सुन्दरतम अबोधा तरुणी का बलात् अपहरण कर लाता है और उसकी चीख़-तड़प पर चुपके-चुपके मुस्कराता रहता है···

रोज़ एक दिन कट जाता है। यही दर्शनात्मक अनुभूति उसे होती रहती है कि जैसे वह ऐसा पेड़ हो, जिसकी सब पत्तियाँ एक-एक शनैः-शनैः गिरती जा रही हैं और वह ठूँठ बनकर रह जायगा बहुत ही शीघ्र। मन में उसका अब अन्तिम स्वप्न यही है कि वह यहाँ कलकत्ता के बीहड़ जंगल से बाहर चले और कुछ मानवी, कुछ आहत आत्मा के घावों को पूरने वाला काम करे। आत्मा उसकी लहू-लुहान हो चुकी है। इन हिंस्र पूँजीदारों के बीच शहीद होने का अर्थ भी तो नहीं है कुछ···

इधर समाचारपत्रों में उसने रजनी के वारन्ट रद्द किये जाने की बात सुनी है। शुरू से ही, परिचय हो जाने के बाद से, रजनी के प्रति उसका मोह उद्वेगपूर्ण रहा है। उसने समझ लिया है कि वह जो स्वप्न लिये घूम रहा है, निश्चय ही उन पर चलने मात्र से मेरे जैसे युवक का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। किन्तु विवाह के बाद ही वह जेल चला गया। उसका कड़ा मन रहा, जब रजनी जेल से फरार हुआ, कि रजनी मिले तो वह उसके हाथों में बीस-पच्चीस हज़ार रुपया रखे और कहे कि लो, अब करो अपने स्वप्न पूरे। अब रेवती का इरादा है कि रजनी प्रकट हो तो दौड़कर जाये और उसके गले में लिपटकर जी भर रोता हुआ कहे कि मुझे भी अपने विद्रोह के पथ का राहगीर बना लो, मित्र बना लो, साथी बना लो···

पर रेवती इस महानगरी में पंख-कटा-सा पक्षी भर है और कहीं अन्यत्र उड़कर नहीं जा सकता। यद्यपि उसके चाचा जी ने लीगी मिनिस्ट्री के सभी मिनिस्टरों से गुप्त कार्य-व्यापार आयोजित कर रखा है, फिर भी रेवती स्पष्ट देख रहा है कि प्रान्त के शासकों ने समूचे बंगाल की जनता को अपना पाँवदान-भर मान लिया है। अकाल में बंगाल की हड्डियाँ सूख चुकी हैं। अब षड्यन्त्र चल रहा है कि बची-खुची इन सूखी हड्डियों को उग्र-लिप्सा-जन्य राजनीति का ईंधन बनाया जाय और बंगाल के हर बीहड़ इंसानी जंगल में ऐसी आग दहका दी जाय कि बिना सर खपाये मैदान साफ़ हो जाय। जंगलियों ने बाँस से बाँस टकराकर आग पैदा की थी। आज सभ्यता के इस फले-फूले चमन में और इस चमन के इर्द-गिर्द उगे हुए बेसिलसिले के इंसानी झुरमुटों में जो

दौलत बिना हिसाब, गुप्त कोनों में लगे हुए शहद के छत्तों-सी पड़ी हुई है, उसका इलाज ही यह है कि इन डंक मारने वाली नाचीज़-सी मक्खियों को आग लगाकर जला दिया जाय और तब तसल्ली से उस शहद को—जो हज़ारहा इंसानों की चर्बी को जलाने से निकलेगा, हथेलियों में भर लिया जाय···

बंगाल के सेठ और पूँजीदार इस इंसानी चर्बी के खौलते हुए कड़ाहे पर वहशी इरादे करने से बाज न आए। राजनीति का खेल बड़ा पेचदार होता है। जो इस पेचीदगी को समझते थे, वे बड़ा सौभाग्यशाली अपने को मानते थे। बंगाल की राजनीति म यदि इस बार भी आग लगती है तो पूँजीदार तैयार हो गये कि इस बार फिर नये सिरे से हज़ारों, लाखों और करोड़ों का वारा-न्यारा किया जायगा। किन्तु रेवती, आग की लपटों मे नेस्तनाबूद हो रहे मकान में लटके हुए पिंजरे के बन्दी तोते की नाईं, नहीं जान रहा कि क्या करे? चाचा जी तो रात को कह रहे थे, "बेटा, नोआखाली में आग दहकने लगी है तो परेशानी की बात क्या है? हर सदी में यह छोटे तबके का इंसान यूँ ही मरा-खपा है। अगर पाकिस्तान बना, तो भी हमें ख़तरा नहीं है। ढाका के सब कारख़ानों के शेयर हम हज़रत मुहीउद्दीन साहब को दे देंगे और उनके यहाँ के कारखाने के शेयर हम बदले में ले लेंगे। और एक बात यह भी है कि कलकत्ता किसी भी हालत में पाकिस्तान में शामिल नहीं हो सकता। वैसी हालत में हर लीगी नेता की पूँजी को स्थानान्तरित करने में भी हमें एक लम्बी रक़म हाथ लगेगी। तुम ज़रा देखते जाओ।"

पर रेवती इससे आगे देखने की शक्ति खो बैठा है। उधर नोआखाली दहक रहा है। सहस्रों अबोध स्त्री-पुरुष और बच्चे कत्ल हो रहे हैं। गाँव के गाँव जल रहे हैं और···लो···कलकत्ता भी इस दावानल की लपेट में आकर जलने लगा है। क्यों न जले, सूखी हड्डियों का सब से सूखा ईंधन तो यहीं जमा हुआ है डाकेजनी के धन की शकल में···

लोग कहते हैं, यह हिन्दू-मुस्लिम दंगा है। क्योंकि मुसलमान हिंस्र बन रहे हैं, अतः हिन्दुओं को भी हिंस्र बनना चाहिए। पर नगर के पूँजीदार तो श्मसान के शृगाल की तरह टोह लेते फिर रहे हैं कि कहाँ है ऐसा सामान जो इस श्मसान में अछूता शेष रह गया है और जिसके औने-पौने दाम खड़े किये जा सकते हैं?

नहीं, परितोष वह नहीं लेगा-देगा कि यह हिन्दू-मुस्लिम दंगा है। परसों हिन्दू संज्ञा के बड़े नेता और मुसलमानियत के ख़ून में ज़हर की सुइयाँ चुभोने वाले क़ौम-परस्त नुमाइन्दे रेवती की टेबल की बगल में बैठे हुए हँस-हँसकर लतीफे सुनाते हुए 'डिनर' खा रहे थे। कल चाचा जी ने सुबह कुछ हिन्दू नौजवानों की अपील पर चुपके से पाँच सौ रुपये इसलिए दिये हैं कि उनसे हिन्दुओं की रक्षार्थ हथियार खरीदे जायँ;

दुपहर में वे मिनिस्ट्री गये थे और पूर्वी बंगाल में हिन्दुओं की अचल सम्पत्ति कितनी है, उसका ब्यौरा बताकर आये थे। इस तरह हिन्दुओं की पीठ में छुरा भौंकते हुए चाचा जी को हिन्दुत्व की रक्षा का सवाल इतना नहीं था, जितना कि मिनिस्ट्री में अपना विश्वास निहित करना था··· लोगों ने हिन्दू-मुस्लिम दंगे के लिए ब्रिटिश हुकूमत को दोष देना एक सरल काम मान लिया है, किन्तु यह हिन्दू-मुस्लिम सवाल तो हमारे ही पूँजीदारों का कसाईखाना-तर्ज़ का व्यापार है। पूँजीदार न हिन्दू है, न मुसलमान। वह दंगों में कभी नहीं मारा जाता। मरता है वह ग़रीब, वह नादान, वह भोला, वह मासूम इंसान जो अपनी ज़िन्दगी इन पूँजीदारों के नक्शे में घिराकर बेबस जी रहा है और जो इसी नक्शे में क़ैद इन्हीं पूँजीदारों की दी हुई मौत से मर जायगा। इन दंगों में न कोई मुसलमानी छुरे से मरता है, न हिन्दुई छुरे से। वह तो उस छुरे से मरता है, जिसकी कीमत इन पूँजीदारों की जेब से अदा की गई है और जो इनके इशारों पर ख़रीदा गया है और जिसके ज़रिये किसी भी राहगीर को खुले बाज़ार, खुली सड़क मार डालने का क़ानून इनके हाथों निर्मित हुआ है···

एक तरफ़ यह ख़ूनी एकांकी नाटक चल रहा है, दूसरी तरफ़ बड़ी तसल्ली से, बड़ी भरी-पूरी नाज़-ओ-अदा के साथ होटलों में जश्न मनाये जा रहे हैं—इस बात के इरादतन बँधे हुए मंसूबों के, कि चाहे दुनियाँ की बड़ी लड़ाई या हिन्दू-मुस्लिम लड़ाई···मुनाफ़ा ठीक दिशा में ठीक गति से आगे बढ़ रहा है। पाकिस्तान बनेगा तो वहाँ की राजनीति के रंग वाले शतरंज के मुहरे खेलने वाला पूँजीदार हिन्दुस्तान में न सही, पाकिस्तान में ही सही, बड़े मज़े से शतरंज खेलेगा और अपना दाँव और उस दाँव का सूद वसूल करता रहेगा···मुहम्मद तुग़लक ने दिल्ली खाली करवाकर राजधानी कई सौ मील परे बसवाई थी। उसमें वही मारा गया जो अनाथ था, निराश्रित था, कमज़ोर था और अशक्त था। पाकिस्तान बसने जा रहा है तो कितने मुसलमान मरेंगे, यह वह बख़ूबी जानता है। पर गाढ़ा मुनाफ़ा इतने हिन्दुओं को मौत के घाट उतारने में है तो ऐसे व्यापार को क्यों न खेल डाला जाय आनन-फानन में ? और मर-मराने के बाद राज तो क़ायम होकर रहेगा इन पूँजीदारों का ही···अच्छा है, ग़रीबों के झोंपड़े जल रहे हैं, लोगों का कत्लेआम हो रहा है · पर नई हकूमत और अपार दौलत तो तैमूर लंग को उस कत्लेआम के बाद ही मिली थी। उस कत्ले-आम में उसके अपने ज़रखरीद सिपाही कितने मारे गये, इसका अफ़सोस उसे किसी रात या दिन नहीं हुआ। कत्लेआम के लिए और नये सिपाही मोल मिल जायँगे !!

परसों चाचा जी की ब्रांच-आफ़िस का एक मुनीम किसी छुरे से मारा गया। चाचा जी की हिदायतों के बावजूद रेवती दंगों के ख़तरे वाले अंचल को पार कर गया और उसकी लाश उठवाकर नीमतल्ला भिजवाई। खुद भी लाश के साथ गया। और

वहाँ उसने देखा ज्वालामुखी पर्वत का भयंकर गर्भ-स्थल···चारों ओर लाशें जल रही हैं। करीब चालीस···इधर अस्सी-पिच्चासी लाशें 'क्यू' लगाए पड़ी हैं···कि उन लाशों को एक के ऊपर एक रखा गया···पैट्रोल छिड़का गया और सबको एक साथ जला दिया गया···उस सामूहिक चिता में हिन्दू भी थे, मुसलमान भी थे। पर नहीं, वे निरपराध इंसान मात्र थे···हिन्दुत्व और पाक ईमान की खाल ओढ़े हुए भेड़िये तो अपने महलों में और कोठियों में मसनदों के सहारे आराम फरमा रहे थे···

कि शाम को कुक्कू का फोन आया कि वह कुछ मुसलमानी गुण्डों से घिर गई है। उसके चाचा जी को मार दिया गया है दुपहर में। सुनकर चाचा जी ने एक सन्तोष की साँस ली और रेवती से कहा, "दुख ज़रूर है कि मैनेजर साहब मारे गये। पर ईश्वर कितना कृपालु है कि उसने इस हैवानी दीमक से हमारा पिंड आखिर छुड़ा ही तो दिया।"

क्रोध में उसने चाचा जी को देखा और लपककर वह अन्दर गया। साहबी ठाठ में सँवरकर वह बाहर आया। पतलून की जेब में सँभालकर उसने पिस्तौल रखी और टैक्सी में बैठकर पार्कस्ट्रीट की ओर मुड़ गया। कुक्कू की कोठी में जब वह घुसा तो बाहर कुछ बदमाश अपनी-अपनी आड़ में छिप गये। उसकी आवाज़ पाकर कुक्कू ने दरवाज़ा खोला। दरवाज़े के पास माली की लाश पड़ी थी। उसका गला ज़िबह किया गया है। लपककर वह अन्दर गया और कुक्कू से बोला, "रो-रोकर आँखें न सुजाओ। हौंसला बाँधो। जल्दी से जो नक़दी लेनी है लो, और चलो।" ताज़ी पगली की तरह कुक्कू ने रहे-सहे होश के बल पर कुछ तिजोरी से निकालकर बाँधा। बड़ी तिजोरी की चाभी तो चाचा जी के पास जेब में ही थी। वे बाहर आए। टैक्सी में बैठे तो दोनों ने महसूस किया कि टैक्सी-ड्राइवर मुसलमान है। पर घबड़ाने से क्या होगा। टैक्सी तेज़ गति से वापस लौटी और पलक झपकते ड्राइवर ने ऐंटाली में मोड़ दी। रेवती को तैश आ ही तो गया। उसने हठात् टैक्सी के रुकते ही ड्राइवर की पीठ में गोली दाग़ दी और लपककर वह स्टीयरिंग ह्वील पर जा बैठा और टैक्सी स्टार्ट की···पर तड़···तड़···तड़···गोलियों की एक बौछार आई···रेवती वहीं लुढ़क गया और तत्काल मर गया। कुक्कू की छाती में एक गोली सीधी आकर लगी और वह भी ठण्डी हो गई। उसी क्षण खून की तृष्णा शान्त करने के लिए कुछ हैवान आगे बढ़े और उन्होंने कुक्कू की बगल में दबी हुई आभूषणों की पोटली को छीना और गली में जा छिपे।

रात, बारह बजे पुलिस-थाने से पक्का सबूत मिला कि रेवती और कुक्कू मारे जा चुके हैं। गरम आँसुओं की धारा बह चली। चाची जी तो छाती पीट-पीटकर रोने बैठ गईं। इस समय एक तो बाहर निकलना मुश्किल है, दूसरे जान पर खेलकर लाश

कहाँ ढूँढ़ी जाय ? रात तीसरे प्रहर वे शान्त हुए। विलाप से थकित चाची जी को उन्होंने सांत्वना दी और कहा, "रेवती के न रहने से हमारा दायाँ हाथ ज़रूर क्रट गया, पर इसमें भी भगवान् ने कुछ अच्छा ही किया है। उसकी इच्छाएँ प्रबलवती होती हैं। पर दुख यह है कि वह मैनेजर की उस बेकार की छोकरी के साथ मरा है। यह हमारे नाम पर बड़ा बट्टा लगाने वाली बात है। पर वह तो मैं सँभाल लूँगा। मुझे तो रेवती के खत्म हो जाने से खुशी ही है कि अब उसके नाम से बैंक में जमा हुए पाँच लाख रुपये उसके बाप को न देने पड़ेंगे। बस, पाँच हज़ार देकर छुट्टी हो जायगी।"

× × ×

विवाह से पहले रिक्शी मर्मभेदी मधुरतम कटाक्ष की सिहरन जैसी थी। अल्हड़ और चुहल से भरी-पूरी। उसका अंग-अंग बड़े सरल भाव से उल्लास और उन्माद का पराग बिखेरता हुआ रोमांचित रहा करता था। मीठी हँसी हँसना और हर कटी-जली बात को हँसी में डुबाकर झूम-झूमकर खिलखिलाना। कह ही तो दिया था चिढ़कर उसकी प्रोफेसर मिसेज़ तलवार ने, "यह रिक्शी क्यों इतनी व्यर्थ हँसती है ? यदि इसकी हँसी इसी तरह बेलगाम रही तो इसका भविष्य भी बेलगाम रहेगा।" सुनकर रिक्शी खूब-खूब हँसी थी और बोली थी, "जी, भविष्य मेरा बेलगाम रहेगा तो कितनी ज़बरदस्त शान की बात होगी। खुदा के यहाँ वैसे भी लगामों की कमी पड़ चुकी है।" बरबस, प्रोफेसर साहिबा भी बाँध तोड़कर हँस पड़ी थीं।

विवाह की बात उसने किसी दिन न सोची। पढ़ती थी और फुर्सत के समय गप्प लड़ाती थी और खूब हसती थी। घर की हालत दरिद्र थी, पर डैडी ने अपने दुलार में उसे मधुर झंकृतियाँ बरसाने वाली बदली बना दिया था। दूर के रिश्ते में डैडी रिक्शी के भी मामा ही थे। रजनी के मामा भी दूर के रिश्ते से होते थे और अपने खर्च से उन्होंने रजनी को भी कॉलेज की शिक्षा पूरी इतराहट के साथ दिलाई। जब डैडी ने निश्चय किया कि रजनी रिक्शी को ब्याहने आयगा, तो भी रिक्शी ने मन मैला नहीं किया कि वह क्यों खुली दुनियाँ से हटाई जा रही है। विवाह-मण्डप के नीचे जब वह बैठी और घूंघट में घिरकर अपने दूल्हे की बगल में विराजी तो मन उसका बाँसों उछल रहा था, मुदिया रहा था, कलिया रहा था, हौले-हौले मुस्किया रहा था। रजनी के घर पहुँचकर जब पास-पड़ौस की औरतों ने उसकी मुँह-दिखाई की, तो सब हैरान थीं कि नई बहू तो घूंघट में दुबकी हुई भी सुहाग की हँसती हुई पूनम बनकर आई है। और सुहागरात की यात्रा में रिक्शी ने दो डैने अपने लगाये, दो रजनी के और उसे अनन्ताकाश में उड़ाये फिरी और खुद नये सिरे से नई हँसी हँसी और रजनी को भरपेट हँसाया···इतना कि उसका मन का सब क्लेद, क्रन्दन, रोष, हुमस और मैल कण-कण छितराकर बहता रहा, धुलता रहा···

सुहाग की शैया पर जब रजनी उसे अपने अंक में भरकर खूब बेरहमी से उसके शरीर को भींचने लगता तो वह चुपके से अपना प्रेम-रस भारती हुई हँस पड़ती और कहती, "नाहक आप मेरे अंगों को दबोच रहे हैं। क्या मेरा शरीर शहद का छत्ता है जो आप इसमें से दबा-दबाकर शहद निकाल रहे हैं!" रजनी प्यार की इस मार से शिथिल हो जाता और हँसकर कहता "जी नहीं, आपका यह शरीर तो जादुई ग़लीचा है, जिस पर बैठते ही मैं दूर आसमान में उड़ने लगता हूँ और जहाँ की तेज़ उड़ान से मेरी घिग्गी बँध जाती है।" उत्तर में बस रिक्शी इस तरह हँसती कि रजनी को प्रेरणा मिलती कि इसी तरह वह हँसना सीख ले तो एक नया इंसान बन जाय!

कि एक धूल-भरा बवंडर इस दिशा से, उस दिशा से, इस बग़ल से, उस बग़ल से घुमेर खाता हुआ आया और एक लहमे में दोनों गश खाकर ज़मीन पर जा गिरे। जब रिक्शी को होश आया तो उसने पाया कि रजनी जेल की चहारदीवारी में क़ैद हो चुका है। और रजनी से परित्यक्त, अनाथा-सी बनी हुई, वह मात्र अर्द्ध-विध्वा-सी रिक्शी रह गई है। फिर भी धैर्य रखकर वह जेल में मिलने गई और अपनी बची-खुची हँसी को उँडेलकर उसने रजनी को अपने माधुर्य का अर्घ्य दिया और उसे जताया कि वह अब भी इस जेल के अन्दर उसका पति-रूप ही है।

लाहौर जेल से फरार होने के बाद पुलिस उसके गाँव गई थी। उस से पूछताछ की थी। रिक्शी ने शिष्ट अंग्रेज़ी में बातें करते हुए बताया कि रजनी किस तरह बिन-कसूर पकड़ा गया है और पुलिस-अधिकारियों द्वारा वह व्यर्थ में ही एक क्रान्तिकारी बना दिया गया है। जेल जाने से पहले उसने राजनीति और राजनीतिक षड्यंत्रों का अक्षर-ज्ञान भी नहीं किया था। वह एक उदीयमान कवि था और एक प्रसिद्ध कवि बनने के स्वप्न देख रहा था। यह दोष तो पुलिस-विभाग को अपने ऊपर लेना चाहिए कि उस अबोध युवक को नाहक जेल में रखकर और षड्यंत्रकारियों के बीच दीक्षित करवाकर उसे जेल से भागने का सौभाग्य दिया है और इस तरह देश के क्रान्तिकारियों की संख्या में वृद्धि की है। पुलिस-अधिकारी ने यह तर्क सुना और रिक्शी को महज़ धन्यवाद देकर वे चले आये।

रिक्शी की इच्छा रही कि रजनी की अनुपस्थिति में वह रजनी की बूढ़ी माँ की सेवा करे। पर डैडी ने वैसी अनुमति नहीं दी। लाचार, वह गाँव जाकर रहने लगी और जब उसने सुना कि रजनी की माँ का देहांत हो गया है तो वह जीवन में पहली बार लगातार सात रोज़ तक रोई और उसी क्षण उसकी हँसी का स्रोत सदैव के लिए सूख गया। उसके रक्तिम कपोल खुश्क हो गये। उसकी नटखट भाव से चंचल पुतलियों की चिकनाई मटमैली हो गई। वह भूल गई कि बरबस हँसना अब

क्योंकर हो सकता है। पति को जिसने जन्म दिया है, उसकी मौत के स्पर्श ने रिक्शी को अनेकानेक आशंकाओं की दमघोंटू धूम ने आसन्न कर दिया। इधर तो आज-तक उसने झाँककर भी नहीं देखा था। हँसी की चहारदीवारी से बाहर वह रास्ता भूल गई है और एक नई भूलभुलैयाँ में भटकी हुई मन मार थककर बैठ गई है कि लो, जीवन का अवसान जो नक्षत्र की तरह से आसमान में चमक रहा था, सहसा टूटकर मन में एक गहरी लकीर खींच गया है अपनी तेज़ चमकीली गति से एक अमिट अँधियारी रात्रि का।

रजनी अबोध निरपराध है। रिक्शी भी उसी संतुलन में बेकसूर है। पर दोनों अपना आलिंगन दो टूक तोड़े हुए, दिल की और दिमाग़ की अशांति की असह्य गरमी में बेसुध पड़े हुए हैं और अपने ही पसीने की बदबू से इतने तंग आ चुके हैं कि चाहते हैं, यह शरीर न रहता तो ठीक रहता। नया दाम्पत्य मिला और तत्काल साँसें मिलीं विपाक्त वियोग की। पर रिक्शी सोचती है कि दुनियाँ में युद्ध चल रहा है और देश में पुलिस का दमन बढ़ रहा है। यह युग मुझे ऐसा ही क्लेश देने आया है तो ठीक है। परन्तु बेल में उगी हुई ताज़ा ककड़ी-सा उसका हिया मुरझा रहा है तपते हुए सूरज की झुलसन खा-खाकर। किन्तु एक दिन उसने अपने को खड़ा किया और जाकर गाँव की स्त्रियों में रल-मिल गई। निश्चय किया कि वह गाँव की स्त्रियों में साक्षरता का आन्दोलन चलायेगी। डैडी को पत्र लिखा कि वह कुछ रुपया भेज दें। कुछ पुस्तकें मँगायेगी, सीने-पिरोने का सामान मँगायेगी और अपने को गँवई गाँव की एक सेविका के रूप में ढाल देगी। डैडी ने उत्तर में पत्र दिया; क्रोध में विस्फारित नेत्रों-सा बनकर वह पत्र रिक्शी के सामने आ खड़ा हुआ। पत्र में लिखा था, "आत्महत्या ही करोगी मेरी इतनी परवरिश पाकर? होगा यह किसी के आदर्श का स्वप्न-मंदिर कि वहाँ गाँव में जाकर अपने मानस को संकुचित दायरे में बन्दी बना ले। ये आज के हमारे गाँव प्राचीन गुफ़ाओं से कम नहीं हैं जहाँ प्राचीन ज़माने में दुनियादारी से हारे हुए पलायनवादी लोग तपस्या की विडंबना की सिद्धि करने जाया करते थे। गाँव की समस्या एक व्यक्ति की समस्या नहीं है। यह विराट समस्या है और इसका उपचार पूरे देश की सामूहिक शक्ति के आधार पर ही खुशहाली को पाकर हो सकेगा। तुम पहली गाड़ी से यहाँ चली आओ। हमारे नगर आज के असत्य नहीं हैं। ये आज के कठोर सत्य हैं। तुम एक कठोर स्त्री बनो और यहाँ के नगरों के विस्तृत आकाश के नीचे अपना ठीक-ठिकाना तय करो। मैं तुम्हें इस तरह घुटने तोड़कर बैठने की आज्ञा नहीं दे सकता।"

रात के अँधियारे में एक पुलिस की गूँजती हुई सीटी सभी ऊँघते हुए पुलिस वालों को अटेंशन कर देती है। डैडी का शब्द-मात्र रिक्शी को सीधा बढ़ चलने के लिए भारी

धक्का देने का काम करता रहा है। वह गाँव से विदा हुई और नई दिल्ली पहुँच गई। स्टेशन पर डैडी आये थे। कंधों पर थपकी देकर उसके नमस्कार का उत्तर देते हुए बोले, "यह नई दिल्ली देश की आत्मा का नया गीत है। इसे कंठस्थ करो और इसका अध्ययन करो। रजनी तुम्हारे दायरे से बाहर कहीं खो गया है, तो तुम अपने को किसी गाँव में खोने की ज़िद्द करोगी ? तुम्हें तो नेतृत्व करने का मार्ग दिखाया है मैंने।"

रिक्शी आँसुओं से दयनीय बनकर बोली, "डैडी, मुझे ललकारना अब व्यर्थ है। मैं एक गहरी नींद सो जाना चाहती हूँ। कोई कुम्भकर्ण की नींद मुझे चुराकर ला दे।"

डैडी इस पगली की बात पर हँस दिये। बोले, "अरी, कुंभकर्ण की नींद नहीं, उसकी तपस्या की अक्षय शक्ति को चुराने की बात कहो।"

दो सप्ताह बाद वे उसे गोरखपुर ले गये। वहाँ उन्होंने निश्चय किया कि अपने जीवन का चिंतन पुस्तकाकार रूप में करेंगे। वे बोलते जायँगे और रिक्शी लिखती जायगी। डैडी इस तरह रजनी के बाहर आने तक रिक्शी को एक मार्ग-प्रदर्शिका बना सकेंगे। नई दिल्ली के राजसी चक्रव्यूह में आबाद होकर वे यह स्वीकार नहीं कर सकते कि देश के आधा पेट भूखे मरने वाले असंख्य ग़रीब इस देश की कोई समस्या हैं। युद्ध और विश्व-युद्ध को वे गर्भिणी-सर्पिणी-रूप राजनीति का क्रीड़ाप्रद मनोरंजक खेल भर मानते हैं। केन्द्रीय कार्यालय के सिविल-सप्लाई के अधिकारियों से मिलकर, ले-देकर, अपनी सम्पत्ति के सिर पर सुरखाव के पर फहराये रहने में इधर उन्हें नवजीवन मिला है और इस पैंसठ वर्ष की आयु में वे विश्व-भ्रमण करने का मंसूबा बाँध रहे हैं। पर सुराग खोज रहे हैं कि देश की सरकार की कीमत पर ही यदि यह यात्रा का पहिया घूम जाय तो निहायत ही शान की बात होगी। रिक्शी आधुनिकतम युवती बन चुकी। अब वह एक प्रसिद्ध भाषण-दात्री बन जाय और देश भर में लोकप्रियता ग्रहण कर ले, यह उनका अधूरा स्वप्न है। रजनी पुलिस और जेल के चंगुल से जीता-जागता बाहर आकर देश का भ्रमण करेगा, ऐसा प्रोग्राम उनका तैयार हो चुका है और उस देश-व्यापी भ्रमण में वे उसे विद्रोही कवि के रूप में मशहूर कर देंगे।

गोरखपुर में रिक्शी डैडी की पुस्तक की डिक्टेशन का काम हाथ में लेकर भी अपनी खोई हुई हँसी खोजे न पा सकी। डैडी के संग हँस लेती है, पर जैसे तो किसी दुकानदार ने बासी संतरे को पानी के छींटों से चमकाकर ज़री के तागे में लटका दिया हो ! सिर्फ़ तीन मील दूर पर बसे हुए उन ताल्लुकेदार की लखनऊ में पासशुदा भतीजी के पास कुछ देर बैठकर वह महसूस कर लेती है कि जो उच्च विद्याध्ययन वह स्वयं भी कर चुकी है, उसकी एक कीमत है और वह रजनी के परित्यक्त रहते हुए भी वसूल कर सकती है और भी उच्च विद्याध्ययन कर। किन्तु

रिक्शी का मानस जब हँसने के लिए ही शिथिल है तो यह अभियान किस सहारे करे?

आज डैडी बहुत खुश है। ताल्लुकेदार साहब के यहाँ आपने बडे लुत्फ की दावत खाई है। उनके स्वर्ण-जटित हुक्के की लखनवी तमाखू का हुक्का पूरे आध घंटे तक गुडगुडाया है और सुबह से अब तक उनके उम्दा पानो के ६० बीडे चबा चुके है। रह-रहकर वे रिक्शी को एक लतीफा सुनाते है और उसे किसी-न-किसी बहाने उसकी खोई हुई हँसी की लगाम थमा देना चाहते है। अखबारो मे खबर आई है कि रजनी पर से केन्द्रीय सरकार ने वारट हटा लिये है और वह शीघ्र ही प्रकट होने वाला है। पर रिक्शी है कि सुन्न है, सुस्त है और नीरस बनी हुई ऐसी चिनगारी भर रह गई है कि डर है कि दहकाने के बहाने दी हुई फूँक से कही बुझ न जाय।

ताल्लुकेदार साहब की कोठी गोरखपुर से यही ६ मील पर उस गाँव में है। कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रथम वर्ष मे दोनों सहपाठी थे। एक अरसा हुआ मुलाकात हुए। तो इस बार अचानक गोरखपुर आते हुए ताल्लुकेदार साहब इलाहाबाद-स्टेशन पर अमरूद के खोमचे पर टकरा गये। बस, नही छोडा और पहले अपने गाँव लिवा ले गये। उसके बाद महीने मे दो दिन अपनी टमटम पर पकड बुलाते है। शहज़ादी उनकी भतीजी है और रिक्शी उसके पास शुगल मनाती है। जब आज लौटे तो उन्होने अपनी टमटम जुडवाई और डैडी के साथ अपने बडे गुमाश्ते मुशी अलाउद्दीन को साथ कर दिया। चारो ओर खबरे अच्छी नही आ रही। मुशी अलाउद्दीन आलिम फाज़िल है और आपको कुरान मुँहजबानी याद है। सियासत मे भी थोडा दखल रखते है। और बेहद खुश है कि जल्दी ही दिल्ली के तख्त पर एक बार फिर से मुसलमान का तारा नुमाइदे की बतौर चमकने वाला है। गाँव से बाहर आकर टमटम जब एक गहरी हरियाली से पार होने लगी तो मुशी जी का और डैडी का दिमाग हरियाली के समा मे एक अजीब खुशहाली से लहराने लगा। डैडी बोले, "बस, अब आज़ादी आयगी और हम ही हम होगे।"

मुशी जी ने फरमाया, "बिला शक! हिंद की आजादी की चिंगारी बरसों की कुरबानियो की रगड से पैदा हुई है। अब यह जरूरी है कि इसकी मशाल बुझने न पाये। देश के इस्लाम ने इस चिगारी को लो दी है और इसे दहकाने मे बड़ा काम किया है। जो इस्लाम के नुमाइदों को फिरकापरस्त कहते है, खुदा उन्हे गारत करे।"

डैडी ने इस बात को हल्के दिल से नजरअदाज़ कर दिया और सुनाने लगे कि रजनी ने, जो उनके अपने अजीज है, सन् '४२ की बगावत मे कैसा पार्ट अदा किया है। मुशी जी सुन चुके तो बोले, "जनाब, ईं जानिब तो एक बात के कायल है। शिकस्त वह जिसमें मात पैंदली दी जाय। ठीक है जो आपके अजीज ने किया। पर यह तख्त का सवाल है। और ऐरे-गैरे नत्थूखैरे तख्त का नही, दिल्ली के तख्त का। जिस पर कितने

ही दिल-दार कुर्बान हो चुके हैं, कितने ही भोले शिकार जिबह किये जा चुके हैं। कितने ही मशहूर उस्तादों के पट्ठे चारों खाने चित्त हो चुके हैं और जिस पर न जाने कितनी हसीनाओं का हुस्न धूल-राख हो चुका है। भई, दिल्ली का तख्त भी क्या अजीबोगरीब कमाल की चीज़ है। वाह ! कुर्बान जायँ, दिल्ली का तख्त १००१ हसीनाओं के वस्ल से भी बेशकीमती चीज़ है, यह आपको मानना पड़ेगा।" और मुंशी जी यह कहकर बड़ी अदा से बीड़े को दबाये हुए अपने जबड़ों को घुमाने लगे।

रिक्शी साथ है और डैडी आख़िरी जुमले को सुनकर परीशान हो गये। पर एक ज़बरदस्त क़हक़हा लगाया और बोले, "लेकिन दिल्ली का तख्त अब महज़ गुलेल की निशानेबाजी नहीं रह गया है। अब तो एटम बम की ईज़ाद हो चुकी है। यह तख्त दुनियावी अमन का झंडा बनकर लहरायगा।"

मुंशी जी ने एक गिलौरी अपनी चाँदी की डिबिया से निकालकर मुँह में और दबाई और रेशमी बटुवा अदा के साथ बूढ़ी कमसिनी उँगलियों में थामकर उसके रेशमी इजारबन्द को खींचा। एक जड़ाऊ छोटी डिबिया लेकर उँगली के शोशे से चूना ज़बान पर रखा, थोड़ी तमाखू भी। वापिस बटुवा अपने महीन मलमल के कुर्ते में रखकर बोले, "अमाँ, गुलेल और एटम बम हम नहीं जानते। हम तो पाकिस्तान की बात संगीन होकर सोचते हैं। अंग्रेज़ हुकूमत अगर इतनी बेवकूफ़ है कि वह हम 'माइनिरीटी' की फ़रियाद नहीं सुनती, सच जानो, कबीर की बात का हम सही-सही नक्शा खींच दिखायेंगे। कबीर ने कहा है, 'ग़रीब की हाय से लोह भस्म हो जाय'। हिंद का मुसलमान सब से बढ़कर ग़रीब है।"

डैडी के दिमाग का सुहावनापन काफूर होने लगा। यू. पी. का यह मुसलमान भी पाकिस्तान की बात सोचने लगा है। दुनियाँ के बड़े पैमाने पर लड़ाई हुई और बड़े-बड़े आदर्शों की दुहाई दी जा चुकी। भारत में स्वतन्त्रता-युद्ध हुआ और हज़ारों युवकों-बच्चों ने अपनी कुर्बानियाँ हँसते-हँसते दीं और आज उस सचाई से अलग, नोआखाली के नरमेध-संहार ने जैसे देशव्यापी आशाओं को गरम-गरम सलाखों से दागना शुरू कर दिया है कि जनता-रूपी इतने मवेशी इस कसाईखाने के हैं और इतने बचे हुए तुम्हारे हैं ? वे चुप हो गये और मज़ाक का सिलसिला आगे न बढ़ा सके। टमटम घोड़ों की टाप की थाप पर लय लेती हुई अपनी मंज़िल की ओर दौड़ती रही।

रिक्शी इस बहस से अलग सोच रही है कि रजनी आयगा तो वह उसे लेकर क्या सबसे पहले अपने पिता के पास जायगा ? कि उसने देखा, दूर, पेड़ों के झुरमुट को चीरकर आग के शोले उठने लगे हैं। छुटपुट शोर और अफवाह सुनी जा रही थी कि दूर के इलाकों में कुछ गाँव जलाये गये हैं। मुंशी जी ने और डैडी ने भी उधर देखा, सन्न से रह न गये। डैडी को अनायास इन मुंशी जी से नफ़रत हो गई है। वे नहीं सोच पाये कि कैसे ख़ून-

खराबी कर और मासूम हिन्दुओं की हत्या कर पाकिस्तान टिकाऊ कर लिया जायगा ? अगर पाकिस्तान की नींव खून से चिनी जायगी तो क्या उसकी दीवार की हर ईंट भी खून से लथपथ गारे से ठहराई जायगी ?···टमटम आगे बढ़ी तो एक शोरगुल उधर के पेड़ों की आड़ में सुनाई पड़ा। डैडी दिली नफ़रत के सबब, मुंशी जी से न पूछ सके कि यह शोरगुल क्यों है ? मुंशी जी एक खूंख्वार मुस्कराहट से अन्दर-ही-अन्दर गुदगुदाने लगे। टमटम जैसे ही इस टीले के मोड़ से घूमकर पेड़ों के झुरमुट के पास पहुँची कि लाठियों और बरछों से लैस भीड़ ने उन्हें घेर लिया। 'अल्ला हो अकबर' का हौलनाक शोर और देखते-न-देखते एक तगड़े नौजवान ने ज़बरदस्ती डैडी को पकड़कर नीचे घसीट लिया। ज़मीन पर वे औंधे गिरे । वे सँभले कि एक हथौड़ी ने उनकी खोपड़ी के दो टुकड़े कर दिये। 'क़ायदे आज़म जिंदाबाद' का दूसरा खूंख्वार शोर उठा और तड़पड़ाते डैडी को पचास पैने छुरों ने छेदकर छलनी कर दिया···और उधर रिक्शी तीन गुंडों के चंगुल में जो उलझी कि खच से एक तलवार ने उसकी धड़ अलग कर दी······

मुंशी अलाउद्दीन ने टमटम में बैठे हुए एक नवाबी हँसी से सब का शुक्रिया अदा किया। खुदा से दुआ माँगते हुए बोले, "या खुदाया, तेरो कुदरत भी अजीबो-ग़रीब है। काफ़िर को ठीक सज़ा देने में एक लहमे भर की देर न की । चलो, ताल्लुकेदार साहब इस काफ़िर के बीस हज़ार के कर्जदार थे। फ़ुर्सत मिली। यह भी एक ज़ुल्म है कि ये काफ़िर महाजनी का रोज़गार करते हैं!"

× × ×

सर्प-दंशन लपलपाती हुई कोमल दुधारी जिह्वा से होता है। किन्तु वह दंशन पलक झपकते सारे शरीर को नीला ज़र्द बना देता है और अंग-अंग का लहू अपनी आब खो देता है, अपनी गति छोड़ बैठता है और ज़हर की भयावहता से पीड़ित छिछड़े-छिछड़े हो जाता है । न जाने कब मेजर शर्मा में सर्प-दंशन हुआ था। युद्ध और विश्व-युद्ध देश-देश की आस्तीनों में पलने वाले सर्पों के सामूहिक दंशनों का स्पष्ट परिणाम होता है। युद्ध के प्रति आकर्षण भी इसी दंशन से उत्पन्न विभ्रम का एक लक्षण है। अपनी फ़ौज से भागकर वह आज़ाद हिंद सेना की तरफ़ भागा। शीघ्र ही उसे एहसास हुआ कि यह भागना भी किसी पुराने दंशन का निपट परिणाम बनकर सामने आया है। कुछ क्षणों के लिए मौत की गली में घुसने से वह ज़रूर रह गया, लेकिन व्यर्थ के वाग्जाल से दूर, अपने एकांत में मेजर शर्मा ने सोचा—युद्ध की परिभाषा शत्रु से मित्रता कर कहाँ अर्थ बदल देती है ? शत्रु तो हमारी मानसिक पराजय को भी अस्त्र बना लेता है और उस युद्ध को सहस्र गुना नारकीय बना देता है ! सक्रिय वह ज़रूर रहा । आज़ाद हिन्द सेना में उसने दी गई ड्यूटी पर अमल भी

किया। पर विवाह की घड़ियों में मंडप के नीचे शहनाई की मस्तानी धुन से मस्त दूल्हे को वेदी का पंडित एक तीन अँगुल की गुड़िया देकर कहे कि यह तुम्हारी वधु है, लो इसका भोग करो और मौज करो···तो वह दूल्हा क्या उस कड़वी मज़ाक को स्वीकार कर लेगा चुपचाप ? किन्तु मेजर शर्मा ने इस कड़वी मज़ाक को चुपचाप स्वीकार कर लिया और उस खिलौने से खेलता हुआ समझता रहा कि वह देश-प्रेम से उबलती हुई सेना में 'सर्विस' कर रहा है···

और एक दिन वह भारतीय फ़ौज के हाथों गिरफ़्तार कर लिया गया। युद्ध रुकने के बाद लाल किले में उसके सभी साथियों के भाग्य का निपटारा हुआ··· कारावास से मुक्त हुआ तो अपने शहर में उसका जलूस निकला और सारे कस्बे ने उसे फूल-मालायें पहनाईं। कई-कई दिन उसे दावतों का सिरमौर बनाकर रखा गया। किन्तु घर पर जो माधवी नहीं है, सो कुछ नहीं है। आकाश-बेल की तरह से वह आज़ाद हिन्द सेना का भूतपूर्व मेजर कब तक बना रहे ? घर के मोर्चे पर वह आख़िरी आत्मसमर्पण करना चाहता है, सो किसे करे ? किसे अपना सफ़ेद झण्डा फहराकर दिखाये। नहीं रोक सका वह अपना वेग और दो रात माधवी के तकिये पर औंधा फैलकर वह भर रोया···

वारंट जिस दिन हटे, माधवी सीधी अपने घर आई। सारे शहर में समाचार बिजली की तरह से फैल गया। माधवी अपने नगर की 'हीरोइन' करार दी गई। सुबह से शाम तक, कई दिनों तक, हाथ जोड़े हुए उसे फूल-मालाएँ पहनने के लिए खड़ा रहना पड़ा। पास-पड़ौस के लोग दर्शनों के लिए उमड़े चले आ रहे थे।

पर पहले ही दिन रात के एक बजे जब माधवी को फ़ुर्सत मिली तो मेजर शर्मा की ओर उसने शान्त भाव से देखा। दोनों मुस्करा न सके। निश्चय न कर सके कि यहाँ बरांडे से उठकर क्या अन्दर चलें ? सुबह से शर्मा का दिल बल्लियों उछल रहा था कि माधवी, जो सन्तान की पीड़ा से खब रोया करती थी, देश की प्रसिद्ध महिला घोषित हो चुकी है। निरन्तर उसके गले में पड़ती हुई मालाओं को देखकर वह सन्तोष अनुभव कर रहा था। और प्रतीक्षा कर रहा था कि कब इसे छुट्टी मिले और वह अपने घुटने टेककर कहे कि माधवी, मेरे अपराधों को क्षमा करो। न सिर्फ़ दुबारा मुझे अपना पति बनाकर वरो, मुझे अपना स्थायी सहारा भी दो···मैं तो अब सिर्फ़ युद्ध का पंगु सैनिक भर रह गया हूँ···नागरिक जीवन की वेदनामयी खंडित मूर्ति-भर ! पर जैसे ही माधवी ने अब उसे देखा कि मेजर शर्मा सहम गया। उसे ख्याल आया कि इतने महीनों से यह रजनी के साथ एकान्तवास कर रही थी ? रात्रि और दिन का एकान्तवास ?···भूल से पेट के बल रेंगते हुए वह जैसे शत्रुओं के मोर्चे के अन्दर प्रविष्ट हो गया हो और सहसा ही उनसे घिर गया हो। शर्मा रजनी के

ध्यानमात्र से सुन्न और स्थिर रह गया। यह एक माधवी दुश्मन की असंख्य पुतलियों-सी उसे कैसे घूर रही है! जल्दी से उसने एक सिगरेट निकाली और उसके धुएँ में माथे की त्यौरियाँ छिपाकर वह उठा और बाहर देखने लगा। अब भी कुछ लोग फाटक के बाहर एकत्र हैं और 'माधवी की जय' के नारे गुँजा रहे हैं। न साहस है कि माधवी को सीधा देखे या उसे कुछ कहे। काश! इस समय गोली चलाने की सुविधा होती तो वह माधवी को बस एक शॉट में सुला देता और एक साँस लेता।

माधवी ने उन्हें देखा और कुछ कहने का चाव ऐंठन खा गया। क्या इन्होंने युद्ध-मोर्चे पर भोग्या नर्सों और 'वैकाई' लौंडियों के साथ सुरा-पान किया है और आलिंगन-पान नहीं किया है? शक्ल कितनी गिर चुकी है। अशक्त हैं और दुगनी उमर के हो गये हैं। शून्य दृष्टि वह उन्हें देखती रही। नारनौल से दौड़कर आई थी कि इनके चरणों में शीश झुकाकर बैठी रहेगी और ये जब तक उसे ऊपर न खड़ी करेंगे, बैठी रहेगी। किन्तु साहस कर भी वह अपना शीश इनके चरणों में झुकाने के लिए न खड़ी हो सकी। कुछ हल्की-सी प्रतीति भी हुई कि ये इस समय कैसे पराये पुरुष से इस कमरे में खड़े हुए लग रहे हैं। या मेरी आज की इस गगन-भेदी जयजयकार के बीच में यह कोई प्रेतात्मा नया प्रश्न बनकर खड़ी हो गई है मुझे डसने के लिए?

बीत गया आधा घंटा। शर्मा चेन-स्मोकिंग करता रहा। माधवी गले में पड़ी हुई मालाओं को एक-एक कर निकालती रही, उनके फूलों की पत्तियों को मसल-मसलकर बिखराती-छितराती रही। मन में तो आया कि अपने गले की सारी मालायें निकालकर इनके गले में डाल दे। पर नहीं, ऐसा अपमान वह न करेगी। कि वह बोली, "आप खड़े हैं। बैठिए न। मैं नहा लूँ तो चाय बना लाऊँ।"

अनमना-सा, भूल से गिरी हुई और टूक-टूक हुई शराब की बोतल-सा वह खड़ा ही रहा और सिर्फ़ इतना ही कहा, "हूँ! अच्छा!" और कुर्सी पर बैठ गया।

और, यूँ ही तीन दिन गुज़र गये। जैसे तो जेल में किसी एक टिकटी पर दो अपराधियों को कस-कसकर बेतों की मार पड़ी हो और बाद में बेसुध-से कराहते हुए दोनों एक ही कोठरी में अपने-अपने घावों को देख रहे हों और एक-दूसरे को देखने का साहस न कर पा रहे हों। माधवी अपनी रसोई में व्यस्त रही; वह रसोई उसने बनाई जो इन्हें पसन्द थी। शर्मा अपनी स्टडी में बन्द क्या करता रहा, सो वह स्वयं नहीं जान सका। और रात को दोनों अलग कुछ जागते हुए, कुछ दुःखी, कुछ आहत, कुछ परेशान, कुछ ग्लानि-सी में मरते हुए करवट लेते रहते और आहट लेते रहते कि अपने-अपने कमरे में क्या कर रहे हैं? विकर्षण सेंध लगाने वाले चोर-सा सजग आहट लेता रहता···

दिन में माधवी की जयजयकार करने वाले आते। फूल-मालायें पहनाने वाले आते, भाषण के लिए निमन्त्रण देने आते और शर्मा के साथ उसे खड़ा कर फोटो उतारने आते। उन क्षणों में ज़रूर दोनों इस तरह मुस्कराते कि जयजयकार का आनन्द तो संयुक्त ही हम दोनों ले रहे हैं। पर रात्रि आती और वह कमरा अपने अँधेरे में एक जंगली झाड़ियों से भरा हुआ युद्ध-मोर्चा बन जाता, जिसमें दो किराये के सैनिक भगोड़े बने हुए दो अलग दिशाओं में रास्ता ढूँढ़ रहे हों भाग निकलने का।

ग्यारह रोज़ बाद नागपुर से तार आया। माधवी को निमन्त्रण था। वहाँ पर रजनी के साथ उसका अभिनन्दन किया जायगा। वह तार शर्मा को उसने दिखा भर दिया और कुछ न पूछा। साथ में यात्रा का सामान ले वह नागपुर चली गई। और प्रवास में जयजयकार का रसास्वादन करते हुए बीत गये बीस रोज़। लौटी तो उसने ट्रेन में निश्चय किया कि नहीं, उनका मौन वह तोड़ेगी। उसके गले में बहियाँ लेकर वह झूलेगी और अपनी विजय को उनके मानस की नई हरियाली उगाने में सींच देगी। शर्मा भी आखिर अपने अवसाद को चीर फेंकने में समर्थ हुआ। गिरस्ती के स्वर्ग में माधवी सार्वभौम शक्ति की अधिकारिणी रहे, शर्मा माधवी के साम्राज्य में सुख की निंदिया सोये। माधवी से असन्तुष्ट, वह युद्ध में गया था। वहाँ मात्र हत्यायें ही सम्पादित कर पाया। कम-से-कम मारे होंगे अपने हाथों से उसने यही साढ़े तीन हज़ार व्यक्ति निशानेबन्द गोलियों से। ओह! उधर वह व्यक्ति मरता था और इधर एक दाहक दाग़ से शर्मा तड़प उठता था···नहीं, अब माधवी के साम्राज्य में कोई संशय गोली नहीं दाग़ सकेगा···शर्मा आज रात अवश्य ही आत्मसमर्पण कर देगा। तुरन्त वह बाज़ार गया और एक बहुमूल्य एबॉनि का 'डबल-बेड' खरीद लाया। बराँडे में सजाकर उस पर डबल मसहरी का चँदोवा ताना और प्रतीक्षा करने लगा कि माधवी आये। बाज़ार से वह दो हार खरीद लाया है। एक हार वह उसे पहनायगा। जानता है कि माधवी भी उसे एक हार पहनायगी सो यह दूसरा हार है। गाड़ी रात के ग्यारह बजे आयेगी, पर वह शाम के सात बजे से ही स्टेशन के प्लेटफार्म पर व्यग्रता से चहलक़दमी करने लगा।

नागपुर में रजनी ने अपने भाषण में घोषणा की है कि वे दोनों कलकत्ता जाकर नोआखाली की आग को शान्त करने का बीड़ा उठायेंगे। माधवी से उसने आग्रह किया है कि शर्मा को भी वह राज़ी करे और उसे साथ ले चले। माधवी ने भाषण में कहा था, "देश की सब स्त्रियाँ आपस में सगी बहनों की तरह हैं। किसी ने क्यों हक़ ले लिया है कि उनकी हत्यायें करे और उनका अपहरण करे और उनका धर्म परिवर्तन कर उनके साथ बलात् विवाह करे?"

स्टेशन पर वे मिले। माधवी ने मुस्कराकर हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

पूछा कि क्या बहुत पहले से स्टेशन चले आये थे ? शर्मा ने खिलखिलाकर कहा, "मैं अब धोखा नहीं खाऊँगा। देश तुम्हारी जयजयकार करे और मैं चुप रहूँ। मैं भी तुम्हारी जयजयकार करूँगा।"

माधवी ने सिर नवाकर इस आत्मीयता का आभार माना और उनके हाथ में रजनी का पत्र थमा दिया। शर्मा ने पढ़ा, "आदरणीय श्री भाई, देश में जो कुहराम फैल रहा है, उसका नासूर नोआखाली में और कलकत्ता में फूट पड़ा है। आप से निवेदन है, वहाँ चलें और मेरा तथा माधवी का नेतृत्व करें। आप सफल सैनिक हैं। सेवा-भावी सैनिकत्व की शिक्षा आप हमें दें, यह विशेष आग्रह है।" रजनी के शब्दों ने एक सुखद स्पर्श उसे दिया और उसके मानस में एक स्निग्ध प्रकाश फैल गया।

बग्घी के अँधियारे में माधवी ने अपना हाथ उनकी सख्त हथेलियों में थमा दिया। अश्रु उसके बह चले। कितने वर्षों बाद राम बनवास से लौटे हैं और आज उसे अयोध्या ले जा रहे हैं। अरे, बिना अग्नि-परीक्षा लिये उसे अयोध्या की राज-रानी बनाने जा रहे हैं!

डिनर-टेबल पर शहर के सब से श्रेष्ठ हलवाई की मिठाइयाँ सजी रखी थीं। फल थे। शर्मा ने प्लेटें आगे सरकाई तो माधवी ने खाना शुरू किया। शर्मा ने खाया तो महज़ तृप्ति की दीर्घ श्वास ली कि उसकी हृदय-रानी आज उसे अपने साक्षात् रूप में मिली है। वह उसके रूप को निहारता रहा और देखता रहा कि माधवी का रूप तो आज इतना मुखर है, उसमें साक्षात् अनिवर्चनीय निमन्त्रण का गीत भी रुनझुन कर रहा है। शिष्ट दबे स्वर में उसने कहा, "माधवी, आज्ञा दो, मैं दुबारा तुम से ताज़ा विवाह आज रचाऊँ।"

केशर और मेवा से सिक्त दूध वह पी रही थी। सुना और गुदगुदा गई। चुपके से बोली, "विवाह ही क्यों, दीर्घ सुहाग-रात्रि भी।"

ओह! शर्मा तुरन्त खड़ा हुआ। लपककर उसने एक हार उसे पहनाकर सुशोभित किया। माधवी ने दूसरा हार लेकर अपने नव-प्रणय के स्वामी को सज़ित किया और बरांडे में आकर परस्पर की प्रेरणा से पुष्प-मण्डित शैया पर आ लेटे। माधवी ने इस हाथ उन्हें पान खिलाया। शर्मा ने उस हाथ से अपनी रानी के अधरों को पान की गिलौरी से चर्चित किया और दोनों दीर्घ वियोग के खण्डहर से निकलकर नये प्रणय-उद्यान में एकनिष्ठ हो गये······

कि तत्क्षण ठाँय-ठाँय तीन गोलियाँ शर्मा की छाती को आरपार कर गई। मुहल्ले भर में लूट फैल गई है, आग जलाई जा रही है और कत्लेआम चल रहा है। दो गुण्डे मसहरी के अन्दर घुसे। एक ने माधवी के मुँह पर कब्ज़ा किया और दूसरा बलात्कार करने लगा। दूसरे ने भी उसके साथ बलात्कार किया और गुस्से से थूक

उड़ाते हुए छुरी से उसकी गर्दन हलाल कर दी···

नोआखाली की आग यत्र-तत्र युक्तप्रान्त में फैल चुकी है और फैलती जा रही है······

× × ×

उस रात उस कोठरी में रजनी और माधवी दो प्रस्तर-खण्डों की तरह से नहीं पड़े रहे। हिमालय रात्रि के अँधियारे एकान्त में कुछ मंत्र उच्चार रहा था। रजनी ने प्रस्ताव किया कि हम इस महान् पथ पर न सोयें। इस नगराज हिमालय के आक्रोड़ में मात्र अस्तित्वहीन पुरुष की तरह से तुम मुझे न रहने दो। कुछ अपनी कवितायें सुनाओ और मुझे नया उदय दो। एक दैदीप्यमान नक्षत्र की तरह से अब मुझे चमकना होगा। एक दिन मैं सड़ी हुई गृहस्थी से विदा लेकर भागा था। आज रात बीतेगी और कल मैं पुलिस के सड़े हुए कानून के कब्रिस्तान से अपनी जीवित कब्र खोदकर भाग निकलूंगा। इस कब्र से विदायगी के क्षणों में तुम मेरे संग लेटी हो। तुम्हारी लहरें भी मुझे इधर-उधर कितना न घुमा चुकी हैं, थपेड़े दे चुकी हैं। आज तुम मुझे जीवित उल्लास के दर्शन कराओ और ज्वालामुखी बनकर अपनी तीक्ष्ण अग्नि से इतना लब्ध बना दो कि बस, मैं नवनिर्माण की सृजना का अक्षय घट अपने कन्धों पर उठाये घूमूँ बरसने वाले बादलों की तरह। मुझे द्रौपदी कहीं इन शिलाखण्डों में मिले तो उसका स्पर्श करूँ और उस स्पर्श-जनित पुण्य को ही अपने देशवासियों के लिये लेता जाऊँ। माधवी, आज तुम मेरी द्रौपदी बन जाओ इन शिलाखण्डों में।

वह उठी और उसने लेटे हुए रजनी का माथा अपनी गोदी में रख लिया। अथाह उमंगों की लहरों पर वह भारी-भरकम जलपोत-सी तैरने लगी। मुस्कराते हुए उसने रजनी के बालों में अपनी क्रीड़ा-शील उँगलियाँ उलझा दीं। अत्यन्त सरस बनी और अपनी एक कविता गुनगुनाने लगी :

"रिक्त मेरा क्षीर-सागर, रिक्त चतुर्दिक दिशायें।
वंदना और वेदना का शून्य जगत्, वियोगिनी निशायें।"

कि खूब ज़ोरों की बारिश फिर शुरू हो गई। रजनी का शरीर शीत से ठिठुरने लगा। रजनी को कल लौटना है। यह शीत यदि किसी दुर्घटना के इरादे से आई है तो माधवी इस से लोहा लेगी। उसने रजनी को अपने अंगों में गहरे ढँक लिया और अपने भूगर्भ में दबी वेगवती अग्नि-सी श्वासों से उसे सम्मोहन दिया और भूकम्प के क्षणों में देवालय-सी बनकर वह इस देवता को गाढ़े थामकर बैठ गई। रजनी उसकी वक्ष के तईं लेटकर कण-कण चूती हुई दिव्य-धारा का आकण्ठ पान करता रहा। माधवी ने संक्षिप्त इतना ही कहा, "द्रौपदी मुझे समझने का तुम्हारा साहस अपराजेय है। परम्परा का यह उच्छेद नहीं है। न मैं सर्पिणी हूँ कि इस क्षण अपने

फन से तुम्हारा चुंबन करने लगूँ और तुम्हें ऐसा डसूँ कि तुम मेरे विष से विषमय हो जाओ। मेरे आलिंगन की भूख अब तुम्हें नहीं है, यह भी जानती हूँ। फिर भी लाओ, तुम्हारी ज़रा-सी इच्छा का पालन मैं करूँगी।" कुछ ठहरकर वह नटखट भाव में बोली, "मुझे लग रहा है कि जैसे तुम कृष्ण बनकर मुझ रुक्मिणी का हरण किये जा रहे हो।"

रजनी एक मिष्ट हँसी हँसकर रह गया। उसने सोचा, जब कृष्ण ने रुक्मिणी को अपने आलिंगन में बद्ध कर पलायन किया होगा तो उस युग का इधर-उधर बिखरा हुआ चरम सुख क्या एकाकार न हो गया होगा? चुपके से बोला, "माधवी, यह अपहरण शब्द तो हमारे समूचे आर्यत्व का शंखनाद बनकर रहा है। रावण ने जब सीता का अपहरण किया था तो वह एक विनम्र मानव बनकर ही आया था।"

दूसरे दिन दोनों हरिद्वार आये। माधवी के आग्रह से रजनी ने गंगा-स्नान किया और मन्दिरों का दर्शन किया। सिर्फ़ रूढ़ अस्तित्व इनका है, सो बात उसे नहीं लगी। कोटि-कोटि जनता अपना विश्वास इन्हें देती ह, तभी इनका क्षय आज तक नहीं हुआ है। पर रजनी अपना विश्वास उन मूर्तियों को और देवालयों को न दे सका, न उनसे वह कैसा भी क्षीण प्रकाश या विश्वास ले सका। रात की गाड़ी से माधवी के संग वह नारनौल लौट आया। दादा का मकान इसी नगरी में है। इतने दिनों वह इस "बादशाही ऐश्वर्य के विराट खण्डहरों" की बस्ती में दादा के वरद् हस्त के नीचे सुरक्षित अपने मानस के लिए नया कवच बुनता रहा था।

उसने आग्रह किया, अपने वारंट न हटने तक माधवी इसी मकान में रहे और नारनौल की आहत आत्मा के स्वरों को सुनते हुए कुछ ऐतिहासिक कवितायें लिखे। अपने बारे में निश्चय उससे हो ही नहीं रहा था। आखिर रजनी तीसरी रात डैडी को तार से अपने आगमन की सूचना दे सका। पहले इरादा उसका यही था कि वह लाहौर-जेल जाय। और उन कैदियों को जाकर अपना धन्यवाद दे, जिन्होंने इस महाप्रवास के लिये उसे मुक्त छोड़ दिया था। पर अब लाहौर जल रहा है···और इस क्षण वह पराई दुनियाँ का एक नगर हो गया है······

दिल्ली पहुँचा तो एक अपार जनसमूह स्टेशन पर लहरा रहा था। रेवती के पिता जी ने उसे अपने बाहुपाश में बाँधा और दो अश्रु उसके मुख पर स्वागत-स्नेह के डाल दिये। असंख्य करतल-ध्वनियाँ पुष्प-पंखुरियाँ सी हवा में उड़ती हुई उस पर बिखराई जाने लगीं। 'रजनी की जय' से व्योम खूब-खूब गुँजित हुआ। जनता के सहस्र-सहस्र अधरों का स्पर्श व्योम तक जा ही पहुँचा। गम्भीर दृष्टि वह सिर्फ़ नत मस्तक बना रहा और हाथ जोड़े हुए जनसमुदाय की वंदना लेता रहा। अपना केन्द्र यों घोषित कर यह जनता मुझ से क्या अपेक्षा रखती है? इसकी परिधि में स्थिर होकर मुझे कौन से युग-

संदेश का प्रकाश स्तंभ वनना होगा ? जेल के और पुलिस के जर्जर क़ानूनों से मुक्त कराकर यह जनता मुझे कौन से नये क़ाननों की मर्यादाएँ दे रही है ?

बड़ी कठिनाई से भीड़ ने अपने बीच से उसे जाने दिया। कुछ लोगों ने मौका पाते ही उसे अपने कंधों पर उठा लिया और तत्क्षण दूर तक फैली हुई भीड़ हर्ष-चीत्कार कर उठी। स्टेशन से बाहर एक सजी हुई वग्घी में वह बैठा दिया गया। उसकी दृष्टि जन-लहरी पर तैरती हुई अपना लक्ष्य देखती रही। यह जय-जयकार क्यों है ? यह सघोष स्वागत क्यों है ? जनता का संवल क्यूँ यूँ उसके दर्शन मात्र से तरंगायित हो गया है ? विनम्र, विनीत वह देखता रहा कि ये नरमुंड नृशंस शासन की गोलियों से मात्र लक्ष्य-भेद के विन्दु भर माने जाते हैं। आज साम्प्रदायिक गुण्डे एक व्यक्ति को बस अपने छूरे का एक वार भर स्वीकार करने लगे हैं। किन्तु मुझ से यह जनता कौन सा मूल्य चाहती है ? कौन सा प्रतिदान माँग रही है ? अपनी जयजयकार से रजनी धन्य नहीं हुआ। एक नये दायित्व के बोझ से वह सहम गया। जयजयकार की ध्वनियाँ-प्रतिध्वनियाँ उसके मानस पर टंकार देती रहीं। जैसे तो आज तक वह खुली हुई प्रत्यंचा का धनुष मात्र था। आज जनता ने उस प्रत्यंचा को चढ़ा दिया है। तने हुए धनुष की नाईं वह एक कठिन तनाव खा गया। इतनी सहस्र पुतलियाँ उसे एक प्रत्याशा में घूर रही हैं, अपनी परीक्षा देने के लिये वह गम्भीर हो गया।

घर पर डैडी और रिक्शी नहीं मिले। वे गोरखपुर गये हुए हैं। शाम तक कई सौ छात्र और राजनीतिक व्यक्ति उससे भेंट करने आये। समाचार पत्रों के प्रतिनिधि प्रश्न करने आये। रजनी ने सब से यही विनम्र याचना की कि एक सप्ताह का विश्राम आप मुझे दें। किन्तु नहीं, नगर की उत्साही जनता उसके स्वागत् में विश्राम का अवकाश जब स्वयं नहीं ले रही है, तो देगी क्यों। तय हुआ कि परसों बड़े मैदान में एक जनसभा की जाय। रजनी को उसमें भाषण देना होगा। उपस्थित कार्यकर्त्ताओं को चकित करते हुए स्वीकृति के स्वर में वह इतनी मीठी स्त्रैण हँसी निःसृत कर बैठा, कि वे सोचने लगे, यह किस तरह जेल से फरार होने के समय फौलादी छाती वाला युवक बन गया होगा ? और किस तरह पुलिस की गोलियों के सामने अपने को अलंघनीय बनाये रहा होगा ?

शाम रेवती के पिता जी ने भोजन पर याद किया था। स्वयं रेवती की माता जी निमन्त्रण देने आई थीं। रजनी उनके परिवार के लिए जंवाई-भाई था। दर्शनार्थियों की भीड़ से अवकाश लेकर वह जब कार में बैठा, मन उसका रो आया। नाहक ये लोग दर्शनीयता की चाँदी का वर्क़ मेरे शरीर पर चिपकाये जा रहे हैं। अरे! मैं कोई नई ईजाद की हुई सिगरेट नहीं हूँ जो बहतरीन किस्म की चाँदी के वर्क़ में लिपटकर पेश की गई हो ! मैं सिर्फ़ साधारण रजनी हूँ।

रेवती के पिता जी ने अपने मकान को विद्युत-प्रकाश की चित्र-विचित्र रंगावलियों से आलोकित किया था। रजनी के स्वागत में वे स्वयं भी तीव्र प्रकाश से प्रकाशित बन गये थे। रेवती की गुणगाथा का वर्णन करते हुए उन्होंने जता दिया था कि उसी के दम पर आज हम दिल्ली के लखपतियों में आ बैठे हैं। शीघ्र ही लखनऊ के सबसे बड़े रईस, जो कि प्रायः दस महीने अमरीका रहते हैं, अपनी उस कन्या से रेवती का रिश्ता करने वाले हैं, जो आज तक एक बार भी इंडिया नहीं आई है। रेवती के इस गौरव पर रजनी गौरवान्वित हुए बिना नहीं रहा। रेवती की माता जी ने पड़ौस की स्त्रियों के संग बैठकर जंवाई जी का स्वागत गीत गाकर किया और चाँदी के बर्तनों में रजनी ने भोजन शुरू किया। वह सोच रहा था, यदि रेवती इतना बड़ा धनपति हो गया है तो निश्चय ही उस से कुछ रचनात्मक कार्य के लिए धन की सुविधा हो सकेगी और एक सुन्दर मासिक के प्रकाशन का काम स्थापित किया जा सकेगा···कि पोस्टमैन ने आकर तार दिया···

गीत गाता हुआ कोमल नारी-कंठ तत्क्षण हाहाकारी रुदन करने लगा। रेवती की माता जी छाती पीट-पीटकर अपने एकमात्र पूत का नाम ले-ले विकराल मौत से याचना करने लगीं। मकान की चमक-दमक और जगमग करती हुई बत्तियाँ बुझा दी गईं। रेवती के पिता जी गश खाकर गिर पड़े। सारा मुहल्ला एक अकल्पनीय यन्त्रणा से दुःखी रो उठा। कलकत्ते के दंगों में रेवती का कत्ल कर दिया गया है···उसके पिता जी को ठण्डे जल के छींटे देता हुआ रजनी उस अँधेरे में अपने को खो बैठा। और विमूढ़-सा अपने को खोजने लगा···सुबह से जो जयजयकार और दर्शनीयता की बन्दनवार सजाई गई थी, कौन क्रूर मायाविनी जादू के बल पर उस बन्दनवार की सजावट को पलक झपकते समेट ले गई है? रेवती की दुखद स्मृति में चुपके-चुपके रोते हुए उसकी हिचकियाँ बँध गईं। रात भर अपनी सार्वजनिक विजय की वंचनामयी श्री से ताड़ित और अपमानित सोचता रहा कि मुक्ति के प्रारम्भिक क्षणों में ही यह कैसा अपशकुन है?

सुबह हवाई जहाज़ से रेवती के पिता जी और माता जी कलकत्ता चले गये। घर से रोते हुए उन्होंने विदा ली। हवाई-अड्डे तक रजनी पहुँचाने गया। कठिनाई से उसने दोनों से यही कहा, "मौत के तक़ाज़ों को यूँ रोते हुए आप चुनौती न दें। शान्ति से कलकत्ता जायें और देखें कि क्या सिर्फ़ रेवती ही ऐसा एक शिकार है, या हज़ारों रेवती इस तरह के शिकार बने हैं।"

लौटा और सीधे डैडी के मकान पर पहुँचा। प्रातःकालीन समाचारपत्र रेवती के चित्रों से और उसकी अगवानी करने गई हुई भीड़ के चित्रों से बोझिल बने हुए थे। उन पृष्ठों में मुस्कराता हुआ रजनी नगर की तरुणाई को एक नया आमन्त्रण दे

रहा था। अपनी आत्मा का स्वर उसे सुन पड़ा कि 'नहीं, वह रेवती की प्रीत के अँधियारे में नहीं खोया है।' हृदय की सांत्वना ने उसे बल दिया। एक उज्ज्वल भविष्य उसके चरणों में पलकें पसारे खड़ा हुआ है···कि तार आया। डैडी के वृद्ध मैनेजर ने तार पढ़ा। दो क्षण के लिए वे कठोर हो गये। पर कुर्सी से उठे और जमीन पर बैठकर एक लम्बी हाय मारकर रोने लगे।·· गोरखपुर के निकट डैडी और रिवशी को कत्ल कर दिया गया है···दो क्षण पहले ही स्वस्थ हुए रजनी पर दूसरा मानसिक प्रहार···असह्य आघात···किसी अदृष्ट हाथ ने जैसे तो रजनी के चेहरे पर फाँसी का काला टोपा पहना दिया हो और उसके गले में फाँसी का रस्सा डाल दिया हो···वह कठिन मन न रो सका। ज़ोरों से अपने ओठों को दाँतों से दबाये बैठा रहा। स्थिर पलकों उस तार को देखता रहा···

कि सड़क पर भगदड़···दिल्ली में भी कलकत्ता और नोआखाली की आग फैल गई है। सामने सड़क पर उसने चार आदमियों को छुरों से तड़प-तड़पकर मरते देखा और निस्सहाय वहीं बैठा रहा। डैडी के प्रहरी गुरखों ने अभी इसी क्षण तीन दंगाइयों को अपनी बन्दूक का निशाना बनाया है···

रुदन के वेग ने रजनी को अन्दर से नोच लिया। पर वह रोयेगा नहीं। मैनेजर को उसने उठाया। डैडी का मकान दंगाइयों के मुहल्ले में है। एक बन्दूक मैनेजर को दी और उसे पिछवाड़े भिजवा दिया। खुद वह इधर की खिड़की पर पिस्तौल लेकर बैठा। उसकी संज्ञा नष्ट हो गई है। एक अतल कूप में वह मौत की नग्न किटकिटाहट-भरी वेदना से त्रस्त होता रहा, बुरी तरह पिटता रहा और सतर्क रहा कि मकान में कहीं कोई आग न लगा दे···

देर रात में पुलिस ने जब स्थिति पर नियन्त्रण किया तो रजनी की मूक अश्रुधारा बह चली। अब मैनेजर ने उसे ढाढस बँधाया। उसके सूखे कंठों में जल की बूँदे डालीं। पर कराहते हुए खड़े होने की शक्ति अब वह नहीं संजो पाया। शाम के अखबार में नया समाचार था कि निकट के प्राय: सभी नगरों में देश के विभाजन की आग तेज़ी पकड़ चुकी है। सारे पृष्ठों में बस यही सूचनाएँ थीं कि किस शहर में कितने व्यक्तियों को कत्ल कर दिया गया है···और रजनी ने साहस कर एक दृष्टि जो समाचारपत्र पर दौड़ाई तो पता चला कि पिता जी के नगर में पिछले चार दिनों से लगभग पाँच हज़ार व्यक्ति मौत के घाट उतारे जा चुके हैं। ओह! क्या पिता जी भी?

वह कुछ सोच न सका। पिता जी की शक्ल ने उसकी आँखों में एक जलन पैदा कर दी। रिवशी की स्मृति ने चिलचिलाती धूप की तपिश में उसे बुरी तरह झुलसा दिया। डैडी की याद तो वह करता है और तिलमिलाकर रह जाता है। जैसे

तो इसी कारण डैडी और रिक्शी को कत्ल करने वाला छुरा रजनी की गर्दन पर भी चलने वाला है···पाँचवें रोज़ बड़े भाई का पत्र डैडी के नाम आया कि हमारे नगर में मारकाट चल रही है। पिता जी ने एक मुसलमान को शरण दे दी थी। रात को उसने चुपके से पिता जी का गला काट दिया। उनकी चीत्कार सुनकर मैं ऊपर जा छिपा। फिर उसने मेरी बहू के साथ ज़बरजिन्हा किया और उसे भी छुरे से मार डाला। जैसे-तैसे मैंने हाथापाई में विजय पाई और उसी के छुरे से उसे मारने में सफल हो सका। पर नगर में कर्फ्यू है और नहीं मालूम कि मेरी गति भी क्या हो? घर में तीनों लाशें सड़ रही हैं। किसी तरह यह पत्र आप तक पहुँचे तो मदद के लिए दौड़कर आयें।

सुन्न और विरस। संज्ञाहीन और अर्द्धमृत। विवेकशून्य और आहत। रोते-रोते चेतनाशून्य। कठिन मन रजनी उठा और वह पत्र टेबिल की दराज में रख दिया। हृदय के आँसू सूख चुके हैं। आँखें फाड़े हुए वह सिर्फ़ दीवार पर टँगे डैडी के चित्र को देखता रहा। वहाँ दीवार पर लटके हुए वे किस शान से मुस्करा रहे हैं? रह-रहकर एक जलन शरीर को हिला देती है, और वह काँपकर रह जाता है। रोने की शक्ति उसकी खर्व हो चुकी है। ठहर-ठहरकर कोठी के बाहर पड़ी हुई तीनों लाशों की बदबू अंगों को सिहरन दे जाती है। वे कोठी पर आक्रमण करने आये थे। मैनेजर ने बचाखुचा साहस बटोरकर अपनी पिस्तौल से उन्हें मार दिया था।

बीत गया एक हफ़्ता। सारा उत्तरी भारत, लाहौर और रावलपिंडी से लेकर कलकत्ता तक, एक वहशी गृह-युद्ध से आक्रान्त है; ख़ूनी राजनीति के ख़ूनी इरादों के जबड़ों में भिचा हुआ है। पाकिस्तान बन गया है याने देश के रक्त का बँटवारा हो गया है। उस बँटवारे में कुछ ख़ून अनिवार्य रूप से ज़मीन पर रिस-रिसकर, छलक-छलककर बह रहा है। हज़ारों नागरिक शरणार्थी के रूप में उस दिशा से इधर आ रहे हैं। हज़ारों नागरिक अपनी जान हथेली पर लिये हुए इस दिशा से उधर जा रहे हैं···पीढ़ियों के रुग्ण संस्कारों से जर्जर स्त्री-पुरुष एक नये राजनीतिक संरक्षण का अमृत चखने के लिए महाप्रवास पर अग्रसर हो रहे हैं···देवी-देवताओं के आगे निरीह पशुओं की बलि एक सनातन सत्य बन चुका है···इस नये राजनीतिक अमृत की सिद्धि के लिए कई सहस्र अबोध नागरिकों की बलि क्या सदा के लिए एक परम्परा बनने वाली है इस देश में···?

मैनेजर ने न तो रजनी को गोरखपुर जाने दिया। न अपने बड़े भाई के प्राणों की रक्षा के लिए पिता जी के नगर। वहाँ ट्रेन का यातायात स्थगित हो चुका है। चारों ओर स्थिति इतनी अस्पष्ट है कि वहाँ सिर्फ़ मौत की वीभत्स पैशाचिक हँसी ही स्पष्ट सुनाई पड़ रही है···गाँवों और कस्बों का, गली और कूचों का, मुहल्लों और

बाड़ों का और शहरों में कमाई के वशीभूत परस्पर आश्रित व्यवसायियों का आपसी सौहार्द्र, स्नेह, विश्वास और आत्मीयभाव रद्दी करार दिये हुए कागज़ी नोटों की तरह से अपना मूल्य खो बैठा है···खून की प्यास बुझाते हुए और खून की क़ै करते हुए, मौत से जान बचाते हुए हज़ारों-लाखों स्त्री-पुरुष एक नये किस्म के सौहार्द्र, स्नेह, विश्वास और आत्मीयभाव की खोज में चले जा रहे हैं···चले आ रहे हैं···

आज मैनेजर ने बताया कि दुपहर में वे उधर खून के प्यासे लोगों के मोर्चे की गिरफ़्त में आ गये थे। वहाँ उन्होंने उनकी पैंट उतारकर देखी, और जब यकीन कर लिया कि वे मुसलमान नहीं हैं तब जाकर उनकी जान बख़्शी। उन्होंने बताया कि इसी तरह मुसलमान भी अपने शिकार की लिंग-परीक्षा कर रहे हैं···युद्ध में पकड़े गये सैनिक के स्टार या मैडल या 'ऐनसाइन' उसका पूरा परिचय दे देते हैं। इन दंगों में लिंग हर व्यक्ति के धर्म का श्रेष्ठ प्रतीक करार दिया जा रहा है। राम और रहीम के सन्तुलन में यह नया अन्तर कौन से पतन का आग्रह लेकर उपस्थित हुआ है?

दूसरे दिन अपनी घनीभूत पीड़ा को बरबस भूले हुए वह आराम-कुर्सी पर लेटा हुआ दुखी मन सो रहा था कि उसके दोनों पैरों को किसी ने कसकर पकड़ लिया। देखा तो फ़र्श पर ललिता और रेणुका पड़ी हुई फूट-फूटकर रो रही हैं और उसके पैरों को थामे हुए हैं। जल्दी से उसने दोनों को उठाया और ठीक बैठाया। ललिता ने मर्मभेदी विलाप करते हुए बताया कि उसकी दोनों बच्चियों को सड़क पर काट डाला गया है, रेणुका के पिता जी और माता जी भी अब इस दुनियाँ में नहीं हैं। दोनों अपनी जान बचाकर जैसे-तैसे आई हैं। यहाँ दिल्ली में वे भी (नरेश) अपनी कोठी में कटे हुए पड़े हैं···तभी हम यहाँ भागकर आई हैं···! उसने सुना और उसके प्राण उसके कंठ में आ गये। दोनों के बीच वैठकर वह सांत्वना न दे सका। चारों ओर आँसूओं की महामारी जो आई हुई है। अच्छा है, इन दोनों के आँसू भी शेष हो लें तो वह कुछ बात करे···

रात भर गोलियाँ और बम चलते हैं। शहर में श्मशान की प्रेतात्मा खुले आसमान में डैने चौड़ाये हुए डोल रही है। उसकी आत्मा से बूँद-बूँद खून चू रहा है और अब वह प्रतीक्षा कर रहा है कि कोई और अनाहूत सूचना उसे मिले। शान्त होने पर उसने ललिता और रेणुका से सिर्फ़ इतना ही कहा, "किसी भी तरह से धैर्य रखो। तुम्हारे बहते हुए आँसूओं से तो मैं ही मर मिटूँगा।" जब दोनों ने डैडी, रिक्शी, रजनी के पिता जी और उसकी बड़ी भाभी और रेवती के कत्ल का समाचार जाना तो वे इतनी भयभीत हो गईं कि लाचार चुप हो गईं। आह लेने का शोर करते हुए भी उन्हें डर होने लगा···जीवित लाश-सीं, साँस रोके-सीं वे बस लेटी रहीं···

बारह रोज़ बाद उसने समाचार पढ़ा कि माधवी पर से वारंट हट गया है

और उसके नगर में उसका शानदार स्वागत किया गया है। उसने समाचार पूरा नहीं पढ़ा। जब कि हज़ारों अबोध स्त्री-बच्चे ख़ून की क़ै कर रहे हों, माधवी को पुष्प-मालायें पहनाना उसे एक भौंडी मज़ाक लगी। सड़क पर जो नित नये शरणार्थी आकर पेड़ों के नीचे, खुले मैदानों में एकत्र होते जा रहे हैं, यह आज की असली सचाई है और वह इस सचाई से आँख नहीं हटा पा रहा है।

कि नागपुर से उसके नाम तार आया। वहाँ का वातावरण साम्प्रदायिक तनाव में दूषित होता जा रहा है। वहाँ के राष्ट्रीय तत्वों का ख्याल है कि रजनी और माधवी को लेकर वह अमन क़ायम करने में सफल हो सकेंगे। मैनेजर के आग्रह के बावजूद रजनी नागपुर के लिए रवाना हो गया। मार्ग में उसने दंगों का व्यापक सर्वनाश देखा। इंसानी ख़ून की प्रलयंकारी वर्षा के प्रकोप से ग्रस्त और उजाड़ परिवारों को सड़कों पर निराश्रित चलते देखा। और देखा, उसकी ट्रेन रोककर मार्ग में कुछ लोगों को नीचे घसीट लिया गया है और काट डाला गया है···उसके बाद ट्रेन आगे चलने लग गई है। इस घृणित कार्य-व्यापार पर वह क्या सोचे, क्या चिंतन करे? पन्द्रह दिन तक वह नागपुर के गाँवों में घूमता हुआ भाईचारे का संदेश फैलाता रहा। माधवी को उसने रिक्शी या डैडी का या कोई अन्य समाचार नहीं दिया। वह अपने दुख को मूल्यहीन समझने लगा। और वहाँ के निराश्रितों और घायलों की सेवा में अपने को भूल गया। जब माधवी लौटने लगी तो उसने आग्रह किया कि वह मेजर शर्मा को लेकर लौटे, हम तीनों कलकत्ता चलेंगे, जहाँ इस समय देश का सब से गहरा घाव स्रवित हो रहा है। ऐसा आग्रह नागपुर के मित्रों ने उसे दिया था।

माधवी के लौटने के बाद, उसकी इच्छा हुई कि वह दिल्ली लौटे और एक बार ललिता और रेणुका की सँभाल कर ले। उन्हें मैनेजर के संरक्षण में छोड़ आया है। पर नागपुर के कार्यकर्त्ताओं का आग्रह शिरोधार्य कर वह सीधे कलकत्ता चल दिया। वहाँ पहुँचकर उसने सब से पहला काम यह किया कि माधवी को सूचना दी कि वह शर्मा के साथ कहाँ आये। कि उसी क्षण पत्र समाप्त करते ही, सुबह के समाचारपत्र में मेजर शर्मा और माधवी के कत्ल का समाचार उसे पढ़ने को मिल गया। दोनों के चित्र समाचार के साथ प्रकाशित हुए थे। लिखा था कि दोनों शीघ्र ही कलकत्ता में मानवता की सेवा के लिए प्रस्थान करने वाले थे! रजनी ने पढ़ा। ओंठ उसके काँप गये। एक तीव्र ठिठुरन उसे चढ़ गई। नसों पर इतना कष्टदायक दबाव पड़ा कि दो सूखे आँसू उमड़ आये। वह उठा कि एक गहरी नींद सो ले। माधवी भी शेष हो ली?

उसने माधवी के नाम लिखे हुए पत्र को फाड़ा और उसे ज़मीन पर बिखेर दिया। हाय! यह सब क्या यथार्थ में हो रहा है? इस ख़ूनी चक्र

के प्रवेग में जो भी कट-मर रहे हैं, उनकी मौत पर आँसू बहाना क्या ठीक है ? कि एक बेहाल पागल-से व्यक्ति ने उसके कमरे में प्रवेश किया । अख़बार में प्राप्त सूचना के बल पर वह उस से मिलने आया है । उसने डरावनी दृष्टि रजनी को दी तो वह सतर्क होकर बैठा । आगन्तुक ने काँपते गले से पूछा कि आप हीं रजनी बाबू हैं ? रजनी के सिर हिलाने पर उसने कहा कि मैं मिस शिलोठिआ का पति हूँ । अभी बड़ी मुश्किल से लाहौर से जान बचाकर चला आ रहा हूँ । उन नर-भक्षकों ने शिली को पकड़ लिया है । मेरी आँखों के आगे वे उसे नंगी कर सड़क पर नंगी औरतों के जुलूस में घसीटकर ले गये थे । पर वह तो उसे सुबुद्धि आई कि उसने अपनी उँगली की हीरे की अँगूठी चूस ली और तत्काल मर गई···कि दास्तान सुनाकर वह वहीं ज़मीन पर फैल गया और टूटी आवाज़ से रोने लगा । इस व्यक्ति का पूरा परिवार भी वहीं ख़त्म कर दिया गया है ।

रजनी माधवी का भी दुख भूल गया । उसने शिली के पति को चाय दी और मुँह धोने के लिए पानी दिया । फिर टैक्सी में उसकी कोठी तक उसे सुरक्षित पहुँचवा दिया । आश्वासन दिया कि वह फ़ुर्सत मिलते ही आयेगा, तब बातें करेगा । शिली एक बहादुर युवती थी । इतिहास में उसका नाम सदैव अमर रहेगा । लेकिन उसके पति को यह शब्द थोथे लगे । वह तो अपनी हिचकियों में ही मुब्तिला था ।

दो घंटे बाद सुबह की डाक आई । दिल्ली से मैनेजर साहब ने उसके बड़े भाई का अंतिम पत्र 'रि-डायरेक्ट' कर भिजवाया है । बड़े भाई ने लिखा है, "दो दिन तक भूखा-प्यासा मैं अपने मकान में बन्द रहा । बाहर मौत मेरे दरवाज़े के आगे ठहर-ठहरकर दस्तक देती रही । कि रात को मौक़ा पाकर मैं एक गाँव की ओर भाग लिया । पर वहाँ से पाँच मील दूर पर जो तीन गाँव हैं उनके सब औरत-आदमी मारे जा चुके हैं । मैं अपनी मौत की यह सूचना दे तो रहा हूँ । पहुँच जाय तो समझ लेना कि अब मैं इस दुनियाँ में नहीं हूँ ।"

चिट्ठी पढ़कर वह और दो आँसू बहाने की ज़बरदस्ती कोशिश करने लगा कि सहायता-शिविर में एम्बुलेंस कार आकर रुक गई । उसमें से पाँच बच्चे उतारे गये । किसी की टाँग कटी पड़ी है । किसी की जीभ काटी गई है । किसी का हाथ काटा जा चुका है । और अब वे रोने में समर्थ नहीं हैं । दिल पर पत्थर रखकर उसने चिट्ठी जेब में रखी और सुश्रुषा में लग गया ···

रात के तीन बजे उसे सोने का अवकाश दिया गया । शिविर में घायल और आहत कराह रहे हैं । दूरस्थ अंचलों में बन्दूक या बम के फटने का हौलनाक शोर गूँजकर रह जाता है । ऊपर छत पर जाकर रजनी ने आकाश देखा और एक गहरी निश्वास लेकर वह दुखते अंगों शिथिल बैठ गया । अपना दुख वह किसे बताये ? कि उसे

भ्रान्ति हुई, डैडी···माधवी···शर्मा···रिक्शी···पिताजी···माताजी···भाभी··· बड़े भैया···शिली···नरेश··· बड़े ज़ोर से रो रहे हैं। कि अब उन्होंने एक साथ अट्टहास करना शुरू कर दिया··· और वह वेश्यापुत्री रजनी से—घायल होकर मरती नहीं है, भयावना···पैशाचिक अट्टहास करने लगती है—उँगली उठाकर पूछ रही है, "क्यों तूने ही मुझे छुरे से मारा था? ले, तेरी सारी दुनियाँ छुरे से मर रही है। मजा ले इस छुरे का" ···और तत्क्षण···हबीब आकर कुत्सित नाच नाचने लगता है···रजनी को अँगूठा दिखाता हुआ बोल रहा है, "मुझे पिस्तौल से मारा था? ले, वही पिस्तौल तेरे सब चहीते भून रही है।"···रजनी ने अपने को बरबस पत्थरवत् बनाया और निःसाँस नींद लेने का उपक्रम करने लगा। कि विस्फारित आँखों उसने आसमान देखा। अपने परिवार के सब पक्षियों के पकड़े जाने पर जिस तरह कोई एकाकी पक्षी व्योम में व्यग्र रोता हुआ उड़ता रहा है नये रैन-बसेरे के लिए, रजनी की आत्मा उस आसमान में भटकती रही···दूर-दूर की उड़ान भरती रही···पर उसे न सूझा कि वह कहाँ जाकर दुलार-भरा आश्रय पाये पर आश्रय इस जर्जर राजनीति की दुनियाँ में कहाँ है? जर्जर गृहस्थी के खंडहरों से वह निकला तो···समाज के जर्जर राजमहलों में अपना रास्ता भूलने लगा था···वहाँ से भागा तो···जर्जर न्याय और समाज-व्यवस्था का बंदी बन गया···जिस जेल में वह रहा, वह कैसी इंसान-निर्मित नारकीय दुनियाँ थी···वहाँ से भी भागा तो इस जर्जर राजनीति के खूनी दलदल में आ फँसा है।

उसकी अँधियारी आत्मा के निकट एक जुगनू-सी चिलक कहीं चमकी। चुपके से किसी ने उसे कहा, "यह सहायता-शिविर तेरा पहला पड़ाव है!"

इतने दिनों बाद आज रजनी को मानसिक शांति मिली। चारों ओर भयावह नीरवता है। वह कुछ गुनगुनाने लगा। और शीघ्र ही एक नई कविता का छन्द उसने बनाया—

जीवित चर्म से मंडित ये हड्डियाँ,
खूनी राजनीति की ताजी भट्टियाँ।
फिर भी, मनुष्य देगा तीव्र प्रकाश,
दो टूक अपनी आत्मा को तराश···

कि वह एक गहरी नींद सो गया।